कोटा राज्य का इतिहास

द्वितीय भाग

लेखक

मथुरालाल शर्मा

एम० ए०, डी० लिट्०

प्रथमबार ५००]

[मूल्य ३०)

मुद्रक
दी कोटा प्रिंटिंग प्रेस, कोटा

विषय सूची

महाराव दुर्जनशालजी

शिवाजी—शम्भाजी—राजाराम—ताराबाई—शाहू—बालाजी राव—बाजीराव—मराठों का गुजरात में प्रवेश—राजपूताना में प्रवेश—पेशवा और महाराणा की भेंट—पेशवा और सवाई जयसिंह जी की भेंट—बाजीराव पेशवा की दिल्ली पर चढ़ाई—महाराव दुर्जन शालजी ने बाजीराव का स्वागत किया—बाजीराव ने नाहरगढ़ का किला जीत कर महाराव दुर्जनशालजी को दिया—बाजीराव ने दिल्ली का पड़ोस लूटा—बाजीराव के साथ निजामुल्मुल्क की संधि—पेशवा ने कोटा नगर को घेरा और दश लाख रुपये दंड के लिये—कोटा राज्य का मराठों से राजनैतिक संबंध स्थापित हुआ—मराठों को राजपूताने से निकालने के लिये राजपूत नरेशों का प्रयत्न—उम्मेदसिंहजी की आकांक्षा—महाराव दुर्जनशालजी ने नाथद्वारे में धर्म महोत्सव किया—इस महोत्सव में राजनैतिक बातें भी हुई होंगी—महाराव दुर्जनशालजी ने ईश्वरीसिंहजी को पत्र लिखा—महाराणा उदयपुर और कोटा नरेश की जयपुर पर चढ़ाई—ईश्वरीसिंहजी से संधि—दुर्जनशालजी ने बूँदी के लिये महाराजा अभयसिंहजी से सहायता मांगी—गोविन्दराम नागर की फखरुद्दौला से भेंट—बूँदी पर महाराव दुर्जनशालजी की चढ़ाई, ईश्वरीसिंहजी के सेनानायक का विश्वासघात—दुर्जनशालजी ने बूँदी में प्रवेश किया—बूँदी में दुर्जनशालजी ने अपना शासन स्थापित किया—उम्मेदसिंहजी असन्तुष्ट होकर सहायता माँगने को मारवाड़ गये—बूँदी को जीतने के लिये ईश्वरीसिंहजी ने मराठों से सहायता माँगी—दुर्जनशालजी को जयपुर पर चढ़ाई करने के लिये महाराणा ने बुलाया—राजमहल की लड़ाई में कोटे की सेना की हार—ईश्वरीसिंहजी ने बूँदी उम्मेदसिंहजी को देना स्वीकार किया—परन्तु तुरन्त ही मराठों की सहायता से पुनः

उस पर अधिकार जमा लिया—ईश्वरीसिंहजी ने कोटे को घेरा—उम्मेदसिंहजी का परिवार कोटे रहता था—उम्मेदसिंहजी और अभयसिंहजी की मुलाकात—उम्मेदसिंहजी का बूँदी विजय और पराजय—उम्मेदसिंहजी का विवाह और दुर्जनशालजी का उनको आश्वासन—महाराव दुर्जनशालजी ने होल्कर की सहायता से उम्मेदसिंहजी को पुनः बूँदी दिलाई—महाराव दुर्जनशालजी का बूँदी नरेशों के साथ स्नेह व्यवहार—महाराव दुर्जनशालजी की उदारता—राजपूताने में दुर्जनशालजी की प्रतिष्ठा—मुगल बादशाह के साथ सद् व्यवहार—दुर्जनशालजी और मराठे—दुर्जनशालजी की सन्तानें, राणियाँ और मृत्यु—शेर के शिकार का शौक—प्रमुख दरबारी—दुर्जनशालजी की भगवद्भक्ति और सरल प्रकृति—उन्होंने दिल्ली का जिब्हखाना बन्द करवाया—मन्दिर और इमारतें—धार्मिक उत्सव—दुर्जनशालजी की छोटी लड़ाइयाँ—घाटी के रावतजी की बगावत—रामपुरे पर महाराव दुर्जनशालजी का आक्रमण—बृजनाथजी और मथुराधीश—यात्रा और यज्ञ। पृष्ठ ३६१-४११

महाराव अजीतसिंहजी

दुर्जनशालजी के देहान्त पर समस्या—अजीतसिंहजी गद्दी पर बैठे—चालीस लाख का नजराणा दिया—मराठों को सैनिक सहायता—अजीतसिंहजी का देहान्त। पृष्ठ ४१२-४१५

महाराव शत्रुशालजी

गद्दी पर बैठे—मराठों की स्थिति—शत्रुशालजी ने दो लाख रुपये टीके के दिये—जयपुर नरेश माधोसिंहजी की कृतघ्नता—नादिरशाह के बाद मुहम्मदशाह की दशा—अहमदशाह का चरित्र—अहमदशाह के सलाहकार—आर्थिक संकट और सैनिक क्षीणता—बादशाह और वजीर में लड़ाई—माधोसिंहजी ने संधि करवाई—माधोसिंहजी को रणथम्भौर मिला—मल्हारराव होल्कर ने शाही लश्कर को लूटा—बादशाह पर मराठों की माँग—दिल्ली निवासियों का धन

हरण—शाही परिवार की दुर्दशा—दिल्ली में अहमदशाह अब्दाली का आतंक—नगर निवासियों का धनहरण—लूट कर अब्दाली वापस गया—आलमगीर को उसके वजीर ने मार डाला—मराठों का उत्थान—राजपूताने में मराठे—बंगाल, बिहार आदि—दिल्ली—पंजाब—उत्तर भारत से मराठों का हटना—पानीपत की लड़ाई—मराठों की पराजय का परिणाम—माधोसिंहजी का प्रयत्न—कोटा नरेश माधोसिंहजी से नहीं मिले—रणथम्भौर जयपुर के हाथ आया—सरकार रणथम्भौर के अन्तर्गत राज्य—माधोसिंहजी कोटा को अधीन करना चाहते थे—जयपुर की सेना की कोटा राज्य पर चढ़ाई और उणियारा तथा लाखेरी पर अधिकार—पालीघाट पार किया—कोटे की सेना की कूंच—भटवाड़े के मैदान में युद्ध आरम्भ हुआ—कोटा और मराठे—कोटा और होल्कर—उम्मेदसिंहजी की उदासीनता—उम्मेदसिंहजी ने मारवाड़ नरेश को सहायता दी—सेंधिया और शत्रुशालजी की बूँदी पर चढ़ाई—मराठों की आर्थिक माँग कभी पूरी नहीं होती थी—मराठों की लूटमार—मराठों को संतुष्ट करने के लिये नये कर लगाये गये—मुख्य राजकर्मचारी—शत्रुशालजी का देहान्त। पृष्ठ ४१६-४५५

महाराव गुमानसिंहजी

राजनैतिक समस्या--मराठों की स्थिति—कोटा राज्य में मराठे जागीरदार—जालिमसिंह की आवश्यकता— जालिमसिंह को कोटे से निकाल दिया—भोपतसिंहजी और स्वरूपसिंहजी का मंत्रीत्व—जालिमसिंह मेवाड़ के कलह में शामिल हुआ—और लड़ता हुआ घायल होकर मराठों द्वारा गिरफ्तार हुआ—गुमानसिंहजी ने जालिमसिंह को वापस बुलाया—बकानी और सुकेत को मराठों ने घेरा—जालिमसिंह ने सन्धि करवाई—माधोसिंहजी का इरादा—कोटरियात का मराठों को कर—गुमानसिंहजी ने नाथद्वारे की यात्रा की—यात्रा का दूसरा उद्देश्य—कोटा राजकुमारी का जोधपुर राजकुमार के साथ विवाह—गुमानसिंहजी का पारिवारिक स्नेह—उनका पत्नी प्रेम—गुमानसिंहजी का देहान्त और उनका कार्य। पृष्ठ ४५६-४७०

महाराव उम्मेदसिंहजी

जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा बन गया—उनकी योग्यता—स्वरूपसिंहजी के विरुद्ध उसका षड्यंत्र—स्वरूपसिंहजी को छल से मरवा दिया—हत्यारे को युक्ति से निकाल दिया—जालिमसिंह की कूटनीति—जालिमसिंह ने गढ़ में हवेली बनवाई—आटोण पर सेना चढ़ाई—मूसाकाल्पी की सहायता लीगई—देवसिंहजी ने किला खाली कर दिया—सेंधिया की शरण ली—अन्य जागीरदारों के साथ व्यवहार—टीकादौर—शाहाबाद विजय—श्योपुर बड़ौदे पर चढ़ाई—जयपुर का आक्रमण—पिण्डारे—जालिमसिंह ने उनको भगाया—फिर मित्रता की—जीवाजी अप्पा की कोटे पर चढ़ाई—पुनः मराठों की चढ़ाई—नरहरराव की सेना की चढ़ाई—खाँडेराव को संतुष्ट किया—होल्कर की खुशामद—अन्य मराठा सरदारों को मामलत—बेगूँ को बचाया—शाहाबाद की मामलत निश्चित हुई—खण्डणी का विभाग—अँग्रेजों से प्रथम सम्पर्क—भारत में पुर्त्तगालियों का आगमन—डच, अँग्रेज और फ्रान्सीसी लोगों का आगमन—अँग्रेजों ने डच और फ्रान्सीसियों को दबा दिया—अँग्रेजों ने भारत में अपना राज्य स्थापित किया—होल्कर से अँग्रेजों का युद्ध—जालिमसिंह ने अँग्रेजों को सहायता दी—कोटा राज्य की सेना ने मानसून को बचाया—होल्कर की सेना का कोटे की सेना पर आक्रमण—आप अमरसिंहजी का स्मारक—कप्तान लूकन भी मारा गया—मानसून भाग कर कोटा आया—और अन्त में उसने लार्ड लेक को अपनी विपद कहानी सुनाई—कोटे पर होल्कर का आक्रमण—सन्धि का प्रस्ताव—होल्कर तीन लाख रुपये लेकर हटा—होल्कर की शक्ति घटी और कोटा रियासत पर अधिकार कम हुआ—जयपुर उससे लड़ने को तैयार होगया—जालिमसिंह ने शिष्ट व्यवहार जारी रक्खा—कोटा राज्य ने उदयपुर के महाराणा को मराठों के विरुद्ध सहायता दी—सेंधिया को हराने में कोटा राज्य की सेना का सहयोग—तो भी मेवाड़ अराजकता का रंगमंच बन गया—मेवाड़ के घरेलू कलह में जालिमसिंह का हस्तक्षेप—सेंधिया और महाराणा की मुलाकात—जालिमसिंह मेवाड़ के

विद्रोही पठानों को दबाया—जालिमसिंह वापस आया—जालिमसिंह की मेवाड नीति—इसमें उसको दो बार निराशा हुई—अवसर पाकर जालिमसिंह फिर मेवाड़ पहुँचा—जालिमसिंह ने महाराणा को हराया और जहाजपुर पर कब्जा कर लिया—मेवाड़ के अन्य परगनों पर जालिमसिंह का अधिकार—मेवाड़ पर कोटा राज्य का ऋण—ये परगने मेवाड़ को वापिस कैसे मिले—जालिमसिंह की बूँदी के प्रति नीति—कोटा और बूँदी में मेल—हाड़ा जागीरदारों के प्रति नीति—पलायथे पर जालिमसिंह का कोप—जालिमसिंह के प्रति विरोध—जालिमसिंह के विरुद्ध प्रथम षड्यंत्र—दूसरा षड्यंत्र—उसका त्रस्त जीवन—वही वास्तविक शासक था—उसकी राजभक्ति—जालिमसिंह और अँग्रेज—अँग्रेजों को पिण्डारियों के विरुद्ध सहायता दी—जालिमसिंह और मराठे—सम्बन्ध विच्छेद—चौमहलाँ के परगने कोटा राज्य में मिलाये गये—ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि—संधि की ग्यारह शर्तें। मराठा शासन के अस्सी वर्ष—मराठा काल में कोटा राज्य की राजनैतिक स्थिति—वकील के कर्त्तव्य—मामलत वसूल करना—राजनैतिक कार्य—वकील का प्रबंध कार्य—कोटरियात—केशोराय पाटण और कापरेण—वकील सब मराठा सरदारों की नौकरी करता था—वकील का वेतन आदि—दीवान उसका मातहत था—कमाविसदार और उसका कार्य—इजारा—मराठों की शासन नीति—शिष्टाचार—कोटा रियासत और केशोराय पाटण तथा कापरेण—कोटा राज्य में दक्षिणी जागीरदार—जालिमसिंह के साथ अलग संधि—विस्तृत राज्य को कायम रक्खा और बढ़ाया—सन् १८१७ की संधि—जालिमसिंह और दलेलखाँ पठान की मैत्री—उसका सैनिक संगठन—उसका सैनिक अनुभव—उसके अँग्रेज जनरल—किलों का निर्माण और जीर्णोद्धार—शासन व्यवस्था का विचार—पटेल संस्था की प्राचीनता—अठारहवीं शताब्दी के बाद इसका विपर्यास और कोटा राज्य के पटेल—पटेल संस्था का सुधार—पटेलों की कौन्सिल और उसके कर्त्तव्य—कौन्सिल पर निगरानी—भूमि प्रबंध—उपज के अनुसार भूमि विभाग और नकद लगान—पटेल

और बोहरों का कृषकों पर जुल्म—पटेल प्रथा का अन्त—जालिम-सिंह का कृषि-कार्य—अन्न व्यापार—अन्य कर—जालिमसिंह की नीति से कोटा राज्य में तबाही—तत्कालीन जागीरदार—कोटा राज्य के परगने—आर्थिक स्थिति—स्थिति सुधार के प्रयत्न—महाराव उम्मेदसिंहजी का देहान्त। पृष्ठ ४७१-५५३

महाराव किशोरसिंहजी

राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन—उम्मेदसिंहजी के तीन पुत्र—जालिमसिंह के दो पुत्र—पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास की किशोरसिंहजी को सलाह—जालिमसिंह के प्रति असन्तोष—किशोर-सिंहजी का असन्तोष और कर्नल टॉड की सम्मति—महाराव किशोर-सिंहजी का पोलिटिकल एजेण्ट के नाम पत्र—गवर्नर जनरल का उत्तर—किशोरसिंहजी का रंगबाड़ी को प्रयाण—किशोरसिंहजी का रंगबाड़ी से वापस आना—महाराव किशोरसिंहजी का राज्याभिषेक—गोरधनदास का दिल्ली में निवास और झाबुआ आना—महाराव किशोरसिंहजी बूँदी पहुँचे—जालिमसिंह ने राजगद्दी पर किशोरसिंहजी की खड़ाऊँ स्थापित कीं—बूँदी में किशोरसिंहजी का स्वागत—कर्नल टॉड की चालें—बूँदी छोड़कर किशोरसिंहजी भरतपुर और दिल्ली पहुँचे—युद्ध के लिये तैयारी—कम्पनी ने जालिमसिंह को सहायता दी—समझौते की बातचीत—विफल हुई—युद्ध आरंभ हुआ—दो अंग्रेज अफसर मारे गये—पृथ्वीसिंहजी आहत हुये—उनके देहान्त में जालिमसिंह का हाथ—किशोरसिंहजी हार कर नाथद्वारे चले गये—पराजित सरदारों के साथ कम्पनी का सद्व्यवहार—रामसिंहजी किशोरसिंहजी के साथ रहे—पृथ्वीसिंहजी का श्राद्ध—मेवाड़ के महाराणा मध्यस्थ बने—जालिमसिंह का नाटक—महाराव किशोरसिंहजी और कम्पनी में सन्धि—एक बनिये का उत्पात—किशोरसिंहजी और माधोसिंहजी में मेल—जालिमसिंह का राज्य में दौरा—जालिमसिंह और किशोरसिंहजी का देहान्त—किशोरसिंहजी का चरित्र—जालिमसिंह का चरित्र। पृष्ठ ५५४-५८६

महाराव रामसिंहजी

राज्याभिषेक—उनकी नौ राणियाँ—गवर्नर जनरल से भेंट—महाराणा का आगमन—माधोसिंहजी का देहान्त—झाला मदनसिंह का व्यवहार—रामसिंहजी का असन्तोष और मदनसिह की शिकायत—कोटा कन्टिन्जेन्ट—मदनसिंह की तरफ कम्पनी का रुख—उसको पृथक् राज्य देने के लिये गवर्नर जनरल का आदेश—राज्य विभाग का निश्चय—एक बनावटी पत्र—महाराव रामसिंहजी की स्वीकृति—पंद्रह लाख का राज्य लेकर मदनसिंह विदा हुआ—एक किंवदन्ती—जागीरें दीगईं—बूँदी नरेश से मुलाकात---दिल्ली दरबार में रामसिंहजी—बृजयात्रा—गदर—कम्पनी का आधिपत्य और असंतोष—इसके कारण—देश व्यापी गदर—राजपूताने का ए० जी० जी०—नसीराबाद में गदर—मेजर बर्टन नीमच गये—वापिस आये और उनसे रामसिंहजी ने गढ़ में रहने का आग्रह किया—कोटा कन्टिन्जेन्ट का गदर—मेजर बर्टन का बध—विद्रोहियों के नेता—कोटा नरेश के विरुद्ध—खरीता पकड़ा गया—बागियों के स्वप्न—लेखकों को कैद किया—राज की सहायतार्थ राजपूत आये—दिल्ली से पत्रव्यवहार—गढ़ पर बागियों के हमले—नगर को लूटा—राजभक्तों ने बागियों को हटाया—बागियों पर घोर आक्रमण—कामदारखाँ बागी मारा गया—आठ सौ बागी मारे गये—राजभक्तों को बागियों ने पुनः पीछे हटा दिया और गढ़ पर गोलाबारी की—करौली की सेना का आना और बागियों के साथ संधि का प्रस्ताव—गुसाईंजी ने पंद्रह दिन के लिये लड़ाई बन्द करवाई—करौली की सेना गढ़ में पहुँची—बागियों की धमकी और गुसाईंजी का महाराव रामसिंहजी को उत्तर—फिर लड़ाई शुरू हुई और बागी पीछे हटे—अँग्रेजी सेना का आगमन—अँग्रेजी तोपखाने का काम—बागियों के मेगजीन और घास में आग लगाई—बागियों को शहर के आन्तरिक भाग से हटा दिया—अँग्रेजी सेना की शक्ति—कैथूनीपोल को तोड़कर बागियों पर हमला किया—सूरजपोल पर अँग्रेजी सेना का अधिकार—रामपुरे पर अँग्रेजी सेना का कब्जा और अँग्रेज एञ्जिनियर की मृत्यु—सब नगर

पर अधिकार—हरदयाल मारा गया—बागियों का पीछा और बध —जनरल रोबर्ट्स की दरबार से भेंट और विदा—शहर में शान्ति स्थापित हुई—करौली की सेना को विदा और राजभक्तों को जागीरें —कम्पनी का खरीता—महाराव रामसिंहजी ने नाथद्वारे की यात्रा की—महाराव रामसिंहजी की ए० जी० जी० से भेंट—मेहराबखाँ और जयदयाल को फाँसी—रामसिंहजी की चार तोपें कम हुईं— मेजर बर्टन का स्मारक—विद्रोह के परिणाम—शासन व्यवस्था का आयोजन—पुराने शासन की दुर्व्यवस्था—शासन का नया ढंग—जिले —जिला पुलिस—नगर पुलिस—मार्ग रक्षा—न्याय विभाग—पोलि-टिकल एजेण्ट का हस्तक्षेप—कानून—दफ्तरों का समय आदि— व्यवस्था—केन्द्रित शासन—अपील—नौकरियों का स्थायीपन— सेना—राजकोष—महाराव रामसिंहजी का देहान्त ।

पृष्ठ ५८७-६३८

महाराव शत्रुशालजी

बाल्यकाल—सम्वत् १९१४ का गदर—राज्याभिषेक— प्रबन्ध परिवर्त्तन—राज्य की हालत—प्रबन्ध शैली—न्याय विभाग— बड़ी कचहरी—डूँगर की कचहरी—जेल—पुलिस—खर्च—गिराही —तोपखाना—आर्थिक संकट—महाराव शत्रुशालजी का प्रयत्न— नवाब फैजअलीखाँ की नियुक्ति—महाराव शत्रुशालजी का असंतोष —नवाब फैजअलीखाँ का प्रबंध—आर्थिक सुधार—बकाया किस्तें— वोहरों का रुपया और राज कर—बकाया की वसूली—टप्पण कचहरी का अन्त—शहर खबरी हरकारों पर नियन्त्रण—डाक प्रबन्ध— —ग्राम विवरण—मुकाते की व्यवस्था—निजामतें और तहसीलें— प्रजाहित के कार्य—शफाखाना—म्यूनिसिपल कमेटी—एञ्जिनियरिंग विभाग—न्यायविभाग—उर्दू राजभाषा बनाई—बन्दोबस्त—कौन्सिल का प्रबन्ध—नवाब फैजअलीखां की विदा—कौन्सिल—कौन्सिल के अधिकार—कौन्सिल का कार्य—आर्थिक सुधार—बन्दोबस्त— मुन्शी दुर्गाप्रसाद का बन्दोबस्त—कृषकों को सहायता—नहरें—

न्याय विभाग—जकात—जगल—अफीम—नमक सन्धि—सेना और पुलिस—माल विभाग का संगठन और सुधार—अन्य प्रबंध—टकसाल—शिक्षोन्नति—प्रजा की चिकित्सा—प्रजा का स्वास्थ्य—कर—महाराव शत्रुशालजी के अस्तियारात—शत्रुशालजी का देहान्त—गढ का प्रबंध—सांवल पासवान को हवालात। पृष्ठ ६३९-६९८

महाराव उम्मेदसिंह जी

जन्म और गोदनशीनी—राजतिलक और शिक्षा—विवाह—महाराजकुमार की शिक्षा—महाराज कुमार का विवाह—पौत्र जन्म—राजमाताएँ—प्रारंभिक शासन कार्य—शासन के पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति—सार्वजनिक पुस्तकालय आदि—झालावाड़ के परगनों की वापसी—सम्राट् द्वारा सम्मान—देशाटन यात्रा आदि—काशी विश्वविद्यालय—लेडी हार्डिञ्ज मेडीकल कालिज दिल्ली—बम्बई में बीकानेर नरेश की विदा—द्वारिका—काशी विश्वविद्यालय द्वारा सम्मान—बूँदी, जयपुर व झालावाड़ से मेल—बूँदी—जयपुर—झालावाड़—अन्य नरेशों से मित्रता—प्रजाहितैषिता—मंत्रिमण्डल—सर रघुनाथदासजी—मुन्शी शिवप्रतापजी—मेजर जनरल आप सर ओंकारसिंहजी—रायबहादुर पं० विश्वम्भरनाथजी—रायबहादुर सरदार कान्हचन्दजी—भारत सरकार और कोटा राज्य—लार्ड कर्जन—लार्ड लिटन—लार्ड रीडिंग—लार्ड इरविन—मि० मार्टिन्डेल की भविष्यवाणी—कर्नल बेनरमेन के विचार—एजेन्सी का दफ्तर हटा—विक्टोरिया की हीरक जयन्ती—विक्टोरिया का देहान्त—एडवर्ड सप्तम का राजतिलक—बादशाह का उत्तर—एडवर्ड सप्तम का भारत में राज्याभिषेक—एडवर्ड सप्तम के देहान्त पर कोटे में शोक—जार्ज पंचम का राजतिलक दरबार—सम्राट् से भेंट—दरबार में सम्मिलित हुए—कोटा राज्य में उत्सव—सम्राट् को निमंत्रण—ट्रान्सवाल युद्ध—कोटा राज्य ने ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की—यूरोपीय महासमर—इसके कारण—महा समर की चिनगारी—युयुत्स पक्ष—युद्ध की प्रमुख घटनायें—महासमर और ब्रिटेन—भारतवर्ष से सहायता—कोटा नरेश द्वारा सहायता—संधि परिषद में महाराजा

बीकानेर—राष्ट्रसंघ की स्थापना और इससे कोटा राज्य को क्षति—समर समाप्ति पर कोटा राज्य में उत्सव—कोटा राज्य में श्लेष्म ज्वर और प्लेग—भारतवर्ष में राजनैतिक अशान्ति—सन् १९१९ के भारतीय शासन सुधार—नरेन्द्र मण्डल की स्थापना—भारतीय संघ शासन की योजना—संघ विधान और कोटा राज्य—कोटा और इन्द्रगढ़—बूँदी से सीमा सम्बन्धी विवाद—शासन सुधार—भूमि प्रबन्ध—पड़त जमीन आबाद कराई—राज्य सम्वत्—हिन्दी राज भाषा बनी—बन्दोबस्त की समाप्ति—बन्दोबस्त का सुपरिणाम—तीसरा बन्दोबस्त—जमींदारी की प्रथा—तकावी, बन्दे कानून आदि—कृषि सुधार के लिये वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग—कृषि प्रयोग क्षेत्र—दुर्भिक्ष के समय सहायता—प्रजाहित के कार्य—शिक्षा—अँग्रेजी शिक्षा—स्त्री शिक्षा—नार्मल स्कूल—अन्य स्कूल—मु० शिव प्रताप का देहान्त—छात्रवृत्तियाँ—परीक्षा परिणाम—चिकित्सा विभाग और म्यूनिसिपल बोर्ड—सामाजिक सुधार—रेलवे लाइन—गवर्नमेन्ट डाक विभाग से सन्धि—तार—सहकारी सभायें—सहकारी बैंक—औद्योगिक उन्नति—सिक्का सुधार—इमारतें—पुरानी इमारतें—बिजली और पानी के नल—उच्च राजकर्मचारियों को उपाधियाँ।

पृष्ठ ६९९-७८६

मराठों का उत्कर्ष

शिवाजी—सम्वत् १६८४ में जब मुगलों की शक्ति अत्यन्त उच्च शिखर पर पहुँची हुई थी और ऐश्वर्यशाली शाहजहाँ संसार को चकित करने वाले बहुमूल्य रत्नजटित तख्त ताऊस के निर्माण करवाने की तैयारी कर रहा था तो मुगल साम्राज्य की जड़ को हिलाने वाले, और पुनः हिन्दू राज्यस्थापना के उच्च ध्येय को धारण करने वाले महाराज शिवाजी ने महारष्ट्र में जन्म धारण किया। १६ वर्ष की अवस्था में शिवाजी एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का आयोजन करने लगे। पूना के पास तोरण नामक किले को उन्होंने अधिकृत कर लिया। और वहाँ जो उन्हें धन मिला उससे ५ मील की दूरी पर एक दूसरा सुदृढ़ किला बनवाया और उसका नाम राजगढ़ रक्खा। उनकी बढ़ती हुई शक्ति को बीजापुर के सुलतान ने रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उसके सेना नायक अफजलखाँ को मार कर शिवाजी ने दक्षिण देश में अपनी धाक जमादी। जब वे मुगलों के सूबे से चौथ लेने लगे तो औरंगजेब ने उनका दमन करने के लिये पहिले अपने मामा शाइस्ताखाँ को, उसके बाद महाराजा जसवन्तसिंहजी को और तत्पश्चात् आमेर नरेश मिर्जा राजा जयसिंहजी को भेजा। शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंहजी अपने कार्य में असफल हुये परन्तु मिर्जा राजा जयसिंहजी ने शिवाजी को औरंगजेब के दरबार में हाजिर कर दिया। कुछ दिन आगरे में एक प्रकार के बन्दी रहकर वे युक्ति पूर्वक भाग निकले और स्वदेश लौटकर अपना राज्य विस्तृत किया तथा अभिषिक्त होकर वे विधिपूर्वक राजा बन गये और हिन्दू ढंग का राज्य शासन स्थापित किया। ५३ वर्ष की अवस्था में सम्वत् १७३७ में

शिवाजी का देहान्त होगया। मरते समय उनके राज्य में तमाम कोंकण शामिल हो चुका था और कितने ही सुदृढ़ किलों पर उनका अधिकार था।

शम्भाजी—शिवाजी के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी गद्दी पर बैठा और एक वर्ष बाद ही उसको औरंगजेब के घोर आक्रमण का सामना करना पड़ा। इस समय औरंगजेब राजपूताने में मारवाड़ और मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। दुर्गादास राठौड़ ने युक्ति पूर्वक औरंगजेब के पुत्र अकबर को अपनी ओर मिला लिया था और अपनी हार होती देखी तो अकबर को तरकीब से भगाकर दक्षिण में शम्भाजी की शरण में पहुँचा दिया था। शम्भाजी और अकबर के सम्मेलन से औरंगजेब बहुत भयभीत हुआ और राजपूतों से जैसी हो सकी वैसी जल्दी से सन्धि करके वह शम्भाजी पर आक्रमण करने के लिये सम्वत् १७३८ में दक्षिण की ओर रवाना हुआ। शरत्काल में वह बुरहानपुर पहुँचा। कोटा नरेश जगतसिंहजी उसके साथ गये। दक्षिण में २६ वर्ष तक वह निरन्तर युद्ध करता रहा। जगतसिंहजी बीजापुर की लड़ाई में वीरता पूर्वक युद्ध करते हुये मारे गये। शाहजादा अकबर विवश होकर ईरान भाग गया। शम्भाजी गिरफ्तार करके सम्वत् १७४७ में मार डाले गये और उनके परिवार को बन्दी बना लिया गया। महाराष्ट्र के कई किलों को जीतने में राव किशोरसिंहजी और उनके राजकुमार रामसिंहजी ने बड़ी वीरता दिखाई और औरंगजेब जैसे कट्टर बादशाह से सम्मान प्राप्त किया।

राजाराम—शम्भाजी के बाद उनका भाई राजाराम मराठों की शक्ति का संचालन करने लगा। कर्नाटक में उसने औरंगजेब के प्रधान सेनापति जुल्फिकारखाँ से कई लड़ाइयाँ लड़ीं जिनमें किशोरसिंहजी और रामसिंहजी ने अपूर्व वीरता के काम किये। जिंजी के किले पर

औरंगजेब का अधिकार होजाने के बाद राजाराम बीमार होकर मर गया।

ताराबाई—उसकी स्त्री ताराबाई अपने पुत्र शिवाजी की संरक्षिका बन कर राज्य का संचालन करने लगी। यह विचित्र बात थी कि ज्यों ज्यों औरंगजेब मराठों के किले छीनता जाता था और उनका राज्य दबाता जाता था, त्यों त्यों उनकी शक्ति अधिकाधिक प्रबल और जाग्रत होती जाती थी। आततायी औरंगजेब के आक्रमण ने सम्पूर्ण मराठा जाति में अपूर्व राष्ट्रीयता का संचार कर दिया था जिससे प्रत्येक गाँव में मराठे लोग शस्त्र धारण करके शिवाजी के वंश की ही नहीं किन्तु महाराष्ट्र देश की रक्षा करने के निमित्त कटिबद्ध होगये थे। औरंगजेब के भारी लश्कर को तथा उसके पुत्र आजम और सेना नायक जुल्फिकारखाँ की सेनाओं को जो सम्पूर्ण दक्षिण देश को खूँदती फिरती थीं, रसद और चारा मिलना कठिन हो गया। मराठों की छोटी छोटी पार्टियाँ रसद और चारे को लूटती हुईं, रास्ते बन्द करती हुईं तथा कृषकों और व्यापारियों को आक्रमणकारी मुगलों के प्रतिकूल उभारती हुईं इधर उधर घूमने लगीं। औरंगजेब और उसका लश्कर मराठों की इस राष्ट्रीय बाढ़ में शनैः शनैः डूबने लगे। औरंगजेब और उसके सेनानायक दक्षिण में किले और राज्य जीतने में लगे हुये थे कि मराठे लोग नर्मदा पार करके मालवे में जा पहुँचे और खानदेश तथा बरार को खूँदते हुये गुजरात में जा घुसे। इस नाजुक स्थिति को देख कर औरंगजेब बहुत चिन्तित हुआ, और उसने सन्धि करना चाहा। वह शम्भाजी के पुत्र शाहू को रिहा करने पर और दक्षिण प्रान्त पर 'सरदेशमुखी' नामक कर मराठों को देने पर तैयार होगया। परन्तु सन्धि की बात चीत विफल हुई और सम्वत् १७६४ के ग्रीष्म काल में औरंगजेब का अहमदनगर में देहान्त होगया।

शाहू—औरंगजेब के मरने के बाद उसके डेरे, लश्कर और

शाहू आजम के हाथ लगे। अपने भाई मुअज्जम का सामना करने के लिये आगरे की ओर कूँच करते हुये जुल्फिकारखाँ के कहने से आजम ने शाहू को रिहा कर दिया। उसके वापिस लौटने पर ताराबाई ने कुछ विरोध किया परन्तु सम्वत् १७६५ में शाहू ने सतारे पर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ समय के लिये जुल्फिकारखाँ के 'चौथ' देना स्वीकार कर लेने पर मराठे शान्त रहे, परन्तु सम्वत् १७७० में जब फर्रुखसियर ने जुल्फिकारखाँ को मार डाला और मराठों को किसी मुगल सेनानायक का भय नहीं रहा तो फिर उनके धावे शुरू होगये।

बालाजी राव—इसी समय बालाजी नामक एक ब्राह्मण राजा शाहू का पेशवा अर्थात् प्रधान मन्त्री बन गया जो बड़ी योग्यता से राज्य का संचालन करने लगा। सम्वत् १७७६ में सैयद हुसैनअलीखाँ बरहा जो कहने को मुगल साम्राज्य का अमीर-उल-अमरा और प्रधान बख्शी था, परन्तु वास्तव में उस समय स्वयम् ही कर्ता धर्ता था, दक्षिण में पहुँचा और मराठों के विरुद्ध संग्राम करने लगा। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी उसको सफलता नहीं हुई और मराठों को 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' दोनों प्रकार के कर देना स्वीकार करके तथा उनका परम्परागत राज्य उन्हीं के हवाले करके वापिस देहली लौट गया। इस समय हुसैनअलीखाँ के साथ महाराव भीमसिंहजी के पुत्र अर्जुनसिंहजी एक वर्ष तक बुरहानपुर में रहे थे। मराठों की शक्ति को अब मुगल सेना नायक भी मानने लगे और फर्रुखसियर को गिरफ्तार तथा कत्ल करते समय सैयदों ने मराठों की सहायता ली।

बाजीराव—सम्वत् १७७७ में बालाजी विश्वनाथ राव पेशवा का देहान्त होगया और उसके स्थान पर उसका पुत्र बाजीराव पेशवा नियुक्त हुआ। बाजीराव बहुत योग्य और कुशल शासक तथा चतुर सेनापति था। यों तो बालाजी विश्वनाथराव ने ही अपनी पूरी धाक

जमा ली थी, परन्तु बाजीराव ने शासन संचालन पूर्णतया अपने हाथ में ले लिया और मराठा राज्य का उसी प्रकार कर्ता धर्ता बन गया जैसे हुसैनअलीखाँ इस समय मुगल साम्राज्य का बना हुआ था। बाजीराव बड़ा महत्वाकांक्षी था और मुगल साम्राज्य की निर्बलता को भली प्रकार समझ चुका था। वह चाहता था कि मुगलों की सत्ता को नष्ट करके मराठों का साम्राज्य स्थापित किया जावे। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने का आयोजन किया।

मराठों का गुजरात में प्रवेश—प्रथम वार मराठों ने गुजरात पर सम्वत् १७५९ में आक्रमण किया था। उसके तीन वर्ष बाद उनका दूसरा धावा हुआ था जिसमें सूरत के फौजदार को हरा कर उन्होंने बहुत लूटमार की थी। सम्वत् १७७६ में हुसेनअलीखाँ ने मराठों को गुजरात से चौथ लेने का अधिकार दिया था। सम्वत् १७७७ में बाजीराव पेशवा ने गुजरात पर पूर्णरूपेण राज्य स्थापित करने के लिये धावे करना शुरू किया तो इसी अरसे में दायाजी गायकवाड़ नामक एक मराठा सरदार की वीरता से प्रसन्न होकर राजा शाहू ने उसको शमशेर वहादुर का खिताब देकर अपनी सेना का एक बड़ा अफसर बनाया जो थोड़े अर्से बाद मराठों की ओर से गुजरात का सूबेदार और वर्तमान गायकवाड़ राजवंश का संस्थापक बना। मराठों के प्रवेश को रोकने के लिये मुगल बादशाहों ने गुजरात में कितने ही योग्य और वीर मुसलमान सूबेदार भेजे। कुछ अर्से के लिये पहिले जोधपुर नरेश अजीतसिंहजी को और फिर उनके पुत्र अभयसिंहजी को भी सूबेदार नियत किया। इन सूबेदारों में से कई मराठों से सफलतापूर्वक और कई विफलतापूर्वक लड़े और कुछ अधिकार प्राप्ति के लिये आपस में भी लड़े। सम्वत् १७७७ से सम्वत् १७९९ तक गुजरात में यही

गति रही। मराठों की शक्ति अदम्य हो चुकी थी और सम्वत् १७९६ में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य को नामशेष कर दिया था। अतः १७९९ के बाद मुगलों ने गुजरात पर पुनः अपना अधिकार स्थापित करने का कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किया।

राजपूताना में प्रवेश—राजपूताना के रईस अनुभव करने लगे थे कि मराठों की शक्ति बहुत प्रबल हो चुकी है और नामशेष मुगल बादशाहों में उसको रोकने की शक्ति नहीं है। यही कारण था कि सम्वत् १७९१ में प्रतापसिंह की सलाह से बुद्धसिंहजी की कछवाही राणी ने बूँदी में पुनः अपना राज्य जमाने के लिये मराठों को सहायतार्थ बुलवाया था। इससे भी एक वर्ष पूर्व पिल्लाजी जादव ने कोटा और बूँदी पर आक्रमण करने का आयोजन कर लिया था। उसने तो आक्रमण नहीं किया किन्तु होल्कर और सिन्धिया ने बूँदी में कुछ लूट मार की थी[1]। सवाई जयसिंहजी ने बूँदी पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया था तो प्रतापसिंह (दलेलसिंह के भाई) ने भाग कर मल्हार राव होल्कर की नौकरी कर ली थी। फिर भी अब तक राजपूत रियासतों के साथ मराठों का राजनैतिक सम्बन्ध स्थिर नहीं हुआ था। यही कारण था कि महाराव दुर्जनशालजी ने खानदौराँ का साथ दिया था। सम्वत् १७९१ में खानदौराँ की हार होजाने के बाद मराठों का प्रभुत्व राजपूताने में बढ़ने लगा और चम्बल के दक्षिण की रियासतों से मुगलों का सम्बन्ध स्वतः ही टूट गया। उसी वर्ष बाजीराव पेशवा ने राजपूताने का दौरा किया। राजपूताने की जनता पहिले ही होल्कर और सिन्धिया की लूट मार का अनुभव कर चुकी थी और सब लोग जानते थे कि मराठों की शक्ति अजेय है। न दिल्ली का बादशाह उनके धावों से

(१) i सरकार: फॉल ऑफ दी मुगल ऐम्पायर, पृष्ठ २४९।
ii एस. पी. डी. जिल्द १४, लेटर्स नं० १०, ११, १३।

किसी को बचा सकता है और न कोई राजपूत नरेश लोगों की रक्षा कर सकता है। लेकिन बाजीराव के दौरे का उद्देश्य लूटमार करना नहीं था। वह सन्धि द्वारा राजपूत रईसों से चौथ लेना निश्चित करना चाहता था।

पेशवा और महाराणा की भेंट—गुजरात में होता हुआ डूँगरपुर और लुनावाड़ा के मार्ग से सम्वत् १७९३ के शरत्काल में पेशवा मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर पहुँचा। महाराणा ने उसके स्वागत के लिये तैयारी की। जब मुलाकात हुई तब महाराणा ने पेशवा को प्रणाम किया और पेशवा ने आशीर्वाद दिया। उदयपुर के निकट पेशवा को चम्पाबाग में ठहराया गया। पाँच हजार रुपये, बहुमूल्य वस्त्र, घोड़े तथा हाथी उसके भेंट किये। दूसरे दिन एक बहुत बड़ा दरबार हुआ जिसमें पेशवा को आमंत्रित किया गया। पास पास दो गद्दियाँ बिछाई गईं। महाराणा ने दरवाजे पर पेशवा का स्वागत किया और उसको गद्दी तक लिवा लेगये और बैठने को कहा, परन्तु बाजीराव महाराणा से नीचे फर्श पर बैठ गया और अपने हाथ से महाराणा पर चँवर करने लगा। महाराणा ने कहा, "आप ब्राह्मण हैं और पूज्य हैं"। परन्तु बाजीराव ने नीतिपूर्वक उत्तर दिया कि मैं आपको ही राजा समझता हूँ क्यों कि आपकी अधीनता में १६ उमराव हैं। इसके बाद राजनैतिक सन्धि की बातचीत हुई। विवश होकर महाराणा ने सन्धि पर हस्ताक्षर किये और एक लाख साठ हजार रुपये प्रति वर्ष खण्डणी के देने स्वीकार किये। इन रुपयों की एवज में बनहड़ा का परगना मराठों के सुपुर्द कर दिया। यह रकम होल्कर, सिन्धिया और पँवार में समान तीन भागों में विभक्त करदी गई और उसको वसूल करने का कार्य पहले होल्कर के तथा पीछे सिन्धिया के सुपुर्द किया गया[1]।

(१) टॉड : राजस्थान जिल्द २, पृष्ठ १५।

जिस समय सन्धि की चर्चा हो रही थी तो एक ऐसी घटना हुई कि जिससे पेशवा अत्यन्त रुष्ट होगया। महाराणा ने पेशवा को जगमन्दिर देखने के लिये आमन्त्रित किया। किसी ने पेशवा को बहका दिया कि महराणा पेशवा को पीछोला तालाब में बुलवाकर मार डालना चाहता है। बाजीराव को इस बात का विश्वास होगया और क्रुद्ध होकर मेवाड़ को नष्ट भ्रष्ट करने की धमकी देने लगा। जब मेवाड़ के मन्त्रियों ने अनुनय विनय की और सात लाख रुपये दण्ड के देने स्वीकार किये तब वह कहीं शान्त हुआ। इससे कुछ दिन पूर्व ही महाराणा की दादी का देहान्त हुआ था और उनके अन्तिम संस्कार के समय महाराणा ने तीन लाख रुपये के सोने का दान देने का संकल्प किया था। सात लाख रुपये चुकाने में यह सोना भी सम्मिलित किया गया और चार लाख रुपया नकद देदिया गया[1]।

पेशवा और सवाई जयसिंहजी की भेंट—महाराणा से इस प्रकार सन्धि करके पेशवा ने उत्तर की ओर कूँच किया। मार्ग में वह नाथाद्वरा गया और मन्दिर में दर्शन किये। वहाँ से रवाना होकर वह जहाजपुर[2] पहुँचा। सवाई जयसिंहजी कूँच दर कूँच अपनी सेना के साथ पेशवा का स्वागत करने के लिये दक्षिण की ओर चले और किशनगढ़ के पास एक गाँव में उनकी मुलाकात हुई। सवाई जयसिंहजी चाहते थे कि पेशवा उनके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा महाराणा के साथ किया गया था। इस पर पेशवा ने उत्तर दिया कि "महाराणा का दर्जा महाराजा शाहू के समान है क्योंकि उन्होंने मुसलमानों की अधीनता कभी स्वीकार नहीं की और आप मुसलमान

(१) i एस. पी. डी. १४ वां; ५४, ५०, ५१।
ii वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ २३६३–३८।
(२) बूँदी से २५ मील उत्तर पश्चिम में।

बादशाहों के मनसबदार रह चुके हैं अतः आप महाराणा की समानता नहीं कर सकते"। दोनों रईसों की सेनाओं ने आमने सामने पड़ाव डाल दिये और मुलाकात के लिये एक सुन्दर मण्डप तैयार करवाया गया। मुलाकात के समय दोनों सेनायें शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर मण्डप के दोनों ओर खड़ी होगईं। दोनों सरदार आमने सामने से हाथियों पर बैठकर मण्डप की ओर बढ़े। जब दोनों हाथी एक दूसरे के निकट आये तो सवाई जयसिंहजी और पेशवा बाजीराव नीचे उतरे, परस्पर आलिंगन किया और दोनों एक ही गद्दी पर बैठ गये। पेशवा दाईं ओर बैठा और सवाई जयसिंहजी को बाईं ओर बिठाया गया। गद्दी पर बैठ कर पेशवा हुक्का पीने लगा और निःसंकोच सवाई जयसिंहजी की ओर धुआँ चलाने लगा। सवाई जयसिंहजी बड़े शिष्ट, सभ्य और शिष्टाचारी थे और कई योरोपियन विद्वानों को अपनी संगति में रख चुके थे। उनको पेशवा का व्यवहार बहुत अखरा परन्तु विवश थे, क्या करते? पेशवा ने अपने सैनिक सरदारों को एक एक करके सवाई जयसिंहजी से मिलाया। उस समय मल्हारराव होल्कर बहाना कर गया और जयसिंहजी से नहीं मिला। कारण यह था कि मल्हारराव प्रतापसिंह हाड़ा के पक्ष में था जो बूँदी में बुद्धसिंहजी का राज्य स्थापित करवाना चाहता था। जब वह दक्षिण में बूँदी के लिये सैनिक सहायता माँगने के लिये गया था तो सब मराठा सरदारों ने सहायता देने का वचन दिया था। मल्हारराव होल्कर ने एक बार बूँदी में बुद्धसिंहजी की दुहाई फिरवादी थी परन्तु उसके बाद ही सवाई जयसिंहजी ने फिर वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। अब प्रतापसिंह मल्हारराव की नौकरी में था और सब मराठा सरदारों से बूँदी की सहायता करने की प्रार्थना करता था,

परन्तु मल्हारराव होल्कर के अतिरिक्त कोई भी सरदार सवाई जयसिंहजी से भिड़ने के लिये तैयार नहीं होता था और अकेले मल्हारराव होल्कर का उनका सामना करने का साहस भी नहीं होता था।

पेशवा ने सवाई जयसिंहजी के साथ दिल्ली पर आक्रमण करने के विषय में परामर्श किया तो जयपुर नरेश ने सलाह दी कि अभी आक्रमण एक वर्ष के लिये स्थगित कर देना चाहिये और आगामी वर्ष अधिक तैयारी के साथ चढ़ाई करनी चाहिये। उन्होंने यह भी वचन दिया कि इस अर्से में बादशाह मुहम्मदशाह को इस बात पर तैयार किया जायगा कि वह मालवा मराठों के सुपुर्द कर दे और शाहू को चौथ वसूल करने का अधिकार सौंप दे। इस सलाह को मानकर बाजीराव पेशवा ने वापिस दक्षिण को कूँच कर दिया। मल्हारराव होल्कर के कहने से मार्ग में वह बेगूँ गया और राज्यभ्रष्ट बुद्धसिंहजी से मिला। इस मुलाकात के समय प्रतापसिंह हाड़ा भी पेशवा के साथ था। पेशवा ने बुद्धसिंहजी को धीरज बँधाया परन्तु बुद्धसिंहजी इस समय विक्षिप्त चित्त से रहते थे। इसलिये न पेशवा ने मुलाकात में कुछ महत्त्व समझा और न बुद्धसिंहजी ने ही इसमें अपनी कुछ भलाई समझी[1]।

बाजीराव पेशवा की दिल्ली पर चढ़ाई—सवाई जयसिंहजी ने बहादुरशाह को और उसके मन्त्रियों को बहुत समझाया कि मालवा मराठों के सुपुर्द कर दिया जावे परन्तु मुहम्मदशाह को शायद अब तक यह आशा थी कि मराठों का उदय एक तूफान है जो कुछ समय तक अपना जोर दिखाकर दब जायगा। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर मुहम्मदशाह केवल इस बात पर राजी हुआ कि बाजीराव पेशवा को

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२३८–४०।
ii एस. पी. डी., १४ वाँ, ५२, ५६।
उपरोक्त, २२वाँ, ३३१, ३३३।

मालवे का नायब सूबेदार मानलिया जावे और नाममात्र के लिये वह स्वयम् (सवाई जयसिंहजी) सूबेदार बना रहे। मुहम्मदशाह ने यह भी मान लिया कि राजा शाहू दक्षिण से सरदेशमुखी अर्थात् मालगुजारी का पाँच फी सदी वसूल कर सकता है[1]। इन शर्तों से मराठों को सन्तोष नहीं हुआ। तब सवाई जयसिंहजी ने गुप्त रूप से पेशवा को सलाह दी कि अब दिल्ली पर आक्रमण करने का अनुकूल अवसर है[2]। सम्वत् १७९३ के ग्रीष्मकाल में बाजीराव पेशवा ने दिल्ली को लूटने के उद्देश्य से पूना से कूँच किया।

महाराव दुर्जनशालजी ने बाजीराव का स्वागत किया— मालवे के मार्ग से कूँच करता हुआ बाजीराव कोटा राज्य में घुसा। तारज के पास अपनी सेना का पड़ाव डालकर उसने महाराव दुर्जनशालजी से रसद माँगी। दुर्जनशालजी मराठों की दुर्दान्त शक्ति का पहिले ही भली भाँति अनुभव कर चुके थे। मराठों से घिरे हुये विपिन्न खानदौराँ को रसद पहुँचाने का प्रयास करते हुये वे मल्हारराव से हार चुके थे और होल्कर तथा सिन्धिया दोनों मराठे सरदार अपनी सेनाओं के साथ कोटा तथा बूँदी दोनों राज्यों को खूँद चुके थे। दुर्जनशालजी को मुहम्मदशाह की निर्बलता और क्षीणता का भी खूब पता था। अतः बाजीराव पेशवा का सन्देश मिलने पर उन्होंने यही हितकर समझा कि उसका स्वागत किया जावे और उसकी सेना के लिये रसद पहुँचाई जावे। महाराव दुर्जनशालजी के व्यवहार से पेशवा को बहुत सन्तोष हुआ और इसके बदले में उसने उनकी

---

(१) इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ २८४–८५।

(२) i वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३२४०।

ii एस. पी. डी., २२वाँ, ३४१।

अच्छी सेवा की[1]।

बाजीराव ने नाहरगढ़ का किला जीत कर महाराव दुर्जन शालजी को दिया—इस समय नाहरगढ़ का किला एक मुसलमान नवाब के अधिकार में था जो पहिले राठौड़ राजपूत था और लोभवश मुसलमान हो गया था। यह नवाब बादशाह का कृपापात्र था और नया मुसलमान होने के कारण अधिक कट्टर और अभिमानी था। महाराव दुर्जनशालजी उसको धर्मच्युत क्षत्रिय मान कर उससे घृणा करते थे। अतः इन दोनों में परस्पर वैमनस्य रहा करता था। यों तो कोटा नरेश के सामने नाहरगढ़ के नवाब की क्या शक्ति थी परन्तु वह बादशाह के जोम पर दर्प किया करता था। अतः बाजीराव से भेंट करते समय दुर्जनशालजी ने कहा कि यदि नाहरगढ़ मुसलमानों से छीन लिया जावे तो कोटा राज्य का कण्टक मिट जावे। बाजीराव के लिये नाहरगढ़ को छीन लेना क्या बड़ी बात थी? दिल्ली जाते हुये बाराँ तथा किशनगंज होकर उसका रास्ता था ही। उसको थोड़ा सा मुड़ना पड़ा और बात की बात में नाहरगढ़ छीन कर कोटा नरेश के सुपुर्द कर दिया[2]।

बाजीराव ने दिल्ली का पड़ोस लूटा—कूँच करता हुआ बाजीराव पेशवा दिल्ली के पास कालकादेवी पर पहुँचा। वहाँ पर उस समय मेला था और हजारों स्त्री पुरुष वहाँ पर आये हुये थे। बाजीराव ने लूट मार करनी शुरू की। लुटे हुये लोगों ने जब बादशाह से पुकार की तो वह प्रमादवश केवल हँसा और बार बार यही कहता रहा कि यहाँ तक मराठे कैसे आसकते हैं? बादशाह की उपेक्षा के कारण लोगों का आतंक और भी बढ़गया। बादशाह ने जाँच

(१) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५९।
(२) उपरोक्त।

करने के लिये कुछ खबरदारों को भेजा और जब उसको निश्चय होगया कि वास्तव में पेशवा ने दिल्ली के पास ही अपनी सेना ला जमाई है तो उसको हटाने के लिये एक शाही सेना रवाना की। नालकटोरे के पास दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई जिसमें शाही सेना हार कर भाग गई। इसके बाद बादशाह के वजीर ने बाजीराव को हराया जिससे वह वापिस राजपूताने की तरफ हट गया[1]।

बाजीराव के साथ निजामुल्मुल्क की सन्धि—जब निजामुल्मुल्क को दक्षिण में खबर मिली कि बाजीराव पेशवा ने दिल्ली जा लूटी तो वह मुहम्मदशाह की मदद करने के लिये उत्तर की ओर बढ़ा। इधर से निजामुल्मुल्क कूँच कर रहा था और उधर से वजीर से हार कर बाजीराव वापिस लौट रहा था। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ भोपाल के पास हुई जिसमें निजामुल्मुल्क बुरी तरह हार गया और विवश होकर उसको अत्यन्त लज्जाजनक सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार मालवा तथा नर्मदा और चम्बल के बीच का सम्पूर्ण प्रदेश पेशवा के हवाले कर दिया गया और पचास लाख रुपये सैनिक व्यय के पेशवा को दिये गये।

पेशवा ने कोटा नगर को घेरा और दश लाख रुपये दण्ड के लिये—महाराव दुर्जनशालजी ने जो खानदौराँ को सैनिक सहायता देने का तथा रसद पहुँचाने का प्रयास किया था उसको बाजीराव पेशवा भूला नहीं था। दिल्ली पर कूँच करते समय कोटे को घेरना या दुर्जनशालजी से दण्ड माँगना राजनैतिक तथा सैनिक दृष्टि से उचित नहीं था। ऐसा करने से उसकी सैनिक शक्ति क्षीण होती और दिल्ली तथा कोटा इन दो शत्रुओं के बीच में फँस जाता। दिल्ली

(१) इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २ पृष्ठ २८६–३०६।
(२) सरकार : फॉल ऑफ मुगल एम्पायर, जिल्द १, पृष्ठ २७१–७२।

से हार कर वापिस भागते हुये उसको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। अब वह दिल्ली का खोखलापन अपनी आँखों से देख चुका था। अतः उधर से उसको कुछ डर नहीं रहा। निजामुल्मुल्क के पराजय ने उसको और निर्भीक बना दिया और उत्साहित किया। येन केन प्रकारेण धन एकत्र करना मराठों का ध्येय था ही। अतः तारज के स्वागत, सम्मान और सद्व्यवहार को भूलने में बाजीराव पेशवा को कोई कठिनता नहीं हुई। उसने मल्हारराव होल्कर तथा जसवन्तराव पँवार के साथ कोटा राज्य पर आक्रमण किया और इलाके को लूटता हुआ राजधानी तक आपहुँचा और शहर को घेर लिया। चालीस दिन तक घेरा जारी रहा। महाराव दुर्जनशालजी माँगरौल चले गये। नगर रक्षकों को स्थिति नाजुक मालूम होने लगी और उधर बाजीराव भी घेरे से ऊब गया। अतः सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई। दश लाख रुपये दण्ड के देना महाराव दुर्जनशालजी ने स्वीकार किया जिसमें से आठ लाख रुपये तत्काल दे दिये गये और शेष दो लाख के लिये दस्तावेज लिखदी गई[1]।

जो बाजीराव दिल्ली में त्रास पैदा कर चुका था, निजामुल्मुल्क को परास्त कर चुका था, और महाराणा उदयपुर से अधीनता स्वीकार करवा चुका था उसके लिये कोटे से दण्ड लेना क्या बड़ी बात थी ? हाँ, आश्चर्य की बात यह अवश्य थी कि पेशवा चालीस दिन के निरन्तर घेरे के बाद भी कोटा नगर में प्रवेश नहीं कर सका।

कोटा राज्य का मराठों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ—चालीस दिन के घेरे के बाद दण्ड के दश लाख रुपये निश्चित

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ ३०४।
ii एस. पी. डी. १५वाँ, ६८; २२वाँ, १२०।
iii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२४१।

करने में तथा कोटा राज्य और मराठों में परस्पर राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने में बालाजी यशवन्त नामक एक कोंकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण ने ऐसी चतुराई से कार्य किया कि पेशवा तथा महाराव दुर्जनशालजी दोनों उससे सन्तुष्ट और प्रसन्न हुये[1]। यों तो सम्वत् १७८९ में ही मराठों ने कोटा राज्य को अपने अधीन बनाने का निश्चय कर लिया था और बालाजी यशवन्त ने कोटा राज्य के उस भाग का हिसाब बना लिया था जो मराठों के परस्पर बटवारे के अनुसार सिन्धिया के हिस्से में आना चाहिये था, परन्तु ये सब प्रारम्भिक योजनायें थीं। निश्चित रूप से कोटा राज्य ने मराठों की अधीनता सम्वत् १७९४ में स्वीकार की। बालाजी यशवन्त की चतुर सेवा के उपलक्ष में महाराव दुर्जनशालजी ने उसको बरखेड़ी नामक गाँव परगना उरमाल में जागीर में दिया और पेशवा ने उसको अपना वकील अर्थात् प्रतिनिधि बना कर कोटा राज्य में नियुक्त कर दिया। इस प्रकार सम्वत् १७९५ से मराठों का वकील कोटा नगर में रहने लगा और कोटा नरेश मराठों को खण्डणी देने लगे[2]।

मराठों को राजपूताने से निकालने के लिये राजपूत नरेशों का प्रयत्न—भोपाल की विजय के बाद मराठों को किसी का डर नहीं रहा। सब राजपूत नरेश उनको अपने भावी स्वामी मानने लगे। इससे चार वर्ष पूर्व महाराजा सवाई जयसिंहजी ने राजपूताने के समस्त मुख्य नरेशों को एकत्र करके सम्मिलित सैन्य बल द्वारा मराठों को मालवे से हटा देना चाहा था। मराठों को हटाने में उस समय प्रायः समस्त राजपूत नरेशों का स्वार्थ था। अपने राज्य को भावी

(१) फाल्के : शिंदेशाही इतिहासांची साधने, जिल्द १, पृष्ठ ३, नोट सं० ४।
(२) उपरोक्त।

गृह कलह से बचाने के लिये सवाई जयसिंहजी मालवा और रामपुरे को मिलाकर एक नया राज्य स्थापित करना चाहते थे और अपने पुत्र माधोसिंह को इस नये राज्य का राजा बनाना चाहते थे। महाराजा अभयसिंहजी को गुजरात और मारवाड़ को मिलाकर अपने राज्य को विशाल तथा विस्तृत बनाने की अभिलाषा थी। उधर महाराणा मराठों की बढ़ती हुई शक्ति से त्रस्त थे। इसी प्रकार राजपूताने के अन्य नरेश भी अपनी रक्षा करने और राज्य को बढ़ाने के लिये उत्सुक हो रहे थे। इस विचार से मेवाड़ के आगौंच नामक गाँव में उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, किशनगढ़, नागौर आदि कई राज्यों के नरेश इस सम्मेलन में सम्मिलित हुये और महाराव दुर्जनशालजी को भी आमन्त्रित किया गया। श्रावण कृष्णा त्रयोदशी सम्वत् १७९१ के दिन सब नरेशों ने मिल कर निम्नलिखित अहदनामा लिखा:—

(१) सब राजा धर्म की शपथ खाकर एक दूसरे के सुख और दुख में साथी रहें। एक का मान और अपमान सब का मान और अपमान समझा जावे।

(२) एक के शत्रु को दूसरा नरेश अपने पास न रक्खे।

(३) वर्षा ऋतु के पश्चात् मराठों पर चढ़ाई की जावे और सब नरेश रामपुरा में एकत्र हों। यदि कारण वश कोई नरेश स्वयम् चढ़ाई में सम्मिलित न होसके तो अपने पुत्र को भेजदे।

(४) यदि कुँवर अनुभव की कमी के कारण कोई भूल करे तो महाराणा ही उसको ठीक करें।

(५) कोई नया काम यदि आरम्भ किया जाय तो सब नरेशों की सलाह से किया जावे[1]।

उपरोक्त सन्धि का जो परिणाम होना चाहिये था, वह नहीं हुआ। कारण यह था कि राजपूत नरेश अपने अपने स्वार्थों का अनुसरण करने लगे। महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय को अपने विषय-विलास से अवकाश नहीं मिलता था और मेवाड़ के सरदार लोग पारस्परिक कलह में ग्रस्त थे। सवाई जयसिंहजी की चालें सब से निराली ही थीं। केवल महाराव दुर्जनशालजी ने इस अहदनामे का अक्षरशः पालन किया। मुगलों की सहायता करने के लिये पहिले सम्वत् १७९१ में और फिर सम्वत् १७९५ में वे खानदौराँ और निजामुल्मुल्क की मातहती में मराठों के विरुद्ध लड़े और उन्होंने हानि उठाई। जब स्वयम् निजामुल्मुल्क ने हार मान कर नर्मदा और चम्बल के बीच का प्रदेश जिसमें कोटा सम्मिलित है, बाजीराव के सुपुर्द कर दिया तब भी ४० दिन के घेरे के बाद विवश होकर उन्होंने मराठों की अधीनता स्वीकार की।

उम्मेदसिंहजी की आकांक्षा—जिस समय राजपूताने में इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण घटनायें घट रही थीं, मुगलों का ह्रास और मराठों का उदय होरहा था तथा सब राजपूत नरेश अपने अपने स्वार्थों की रक्षा में लगे हुये थे तो बुद्धसिंहजी बेगूँ में अपनी ससुराल में बैठे हुये दिन व्यतीत कर रहे थे। बेगूँ के जागीरदार देवसिंह ने बुद्धसिंहजी के साथ बड़े प्रेम का व्यवहार किया था, परन्तु बुद्धसिंहजी ने उससे कुछ

---

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२२७-२८।
ii ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ९३९।
iii टॉड : राजस्थान, जिल्द १, पृष्ठ ४८२–८३।
iv वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ १२१८–२१।

लाभ नहीं उठाया। वास्तव में उनकी अकर्मण्यता के कारण बूँदी के सहायक भी निराश होचुके थे और ऐसा अनुभव होने लगा था कि बूँदी सदैव के लिये जयपुर राज्य में मिल गई। सम्वत् १७९६ में बुद्धसिंहजी बीमार हुये और बेगूँ से तीन कोस की दूरी पर नगपुरा नामक ग्राम में उनका देहान्त होगया। इस समय बुद्धसिंहजी के पुत्र उम्मेदसिंहजी की अवस्था केवल सत्रह वर्ष की थी। वे होनहार और बुद्धिमान तथा वीर युवक थे और अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिये लालायित थे। उनके पास साहस और वीरता की नहीं बल्कि साधनों की कमी थी। बुद्धसिंहजी के मरते ही महाराव दुर्जनशालजी को उम्मेदसिंहजी का खयाल आया और उनकी सहायता करने के लिये वे उद्योग करने लगे।

महाराव दुर्जनशालजी ने नाथद्वारे में धर्म महोत्सव किया—महाराव दुर्जनशालजी अपने वीर पिता महाराव भीमसिंहजी की भाँति अनन्य ईश्वर भक्त थे। सम्वत् १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को नाथद्वारा में एक धर्म महोत्सव करने का उन्होंने आयोजन किया जिसमें शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के सप्त स्वरूपों को उन्होंने एकत्र करवाया। वैष्णव जनता के लिये सप्त स्वरूपों का एकत्र होना एक असाधारण महोत्सव था। इस अवसर पर सम्मिलित होने के लिये महाराव दुर्जनशालजी ने सवाई जयसिंहजी जयपुर, राजा गोपालसिंहजी करौली, महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय उदयपुर, जुहारमलजी जाट भरतपुर, सूरतसिंहजी चूँड़ावत भैंसरोड़ और देवसिंहजी राणा बेगूँ आदि नरेशों को सपरिवार आमन्त्रित किया। अन्नकूट के अवसर पर श्री विट्ठलनाथजी, नवनीत प्रियाजी, द्वारिकानाथजी, गोकुलचन्द्रमाजी, मथुरानाथजी, गोकुलनाथजी और मदन मोहनजी ये सात स्वरूप इकट्ठे करवाये गये थे। इस उत्सव में महाराव दुर्जनशालजी ने लगभग एक लाख

रुपये खर्च किये थे। वहाँ पर एकत्र होने वाले सब रईसों ने उनका सम्मान किया था। इस अवसर पर महाराणा उदयपुर ने महाराव दुर्जनशालजी को दो घोड़े और एक पौंची जोड़ा भेंट किया था। भैंसरोड़ के सूरतसिंहजी चूँड़ावत ने नजर की थी और उदयपुर की माता झालीजी ने भी नजर भेजी थी। इसी प्रकार अन्य रईस और सरदारों ने भी जो वहाँ एकत्र हुये थे, दुर्जनशालजी की भेंट की होगी[1]।

इस महोत्सव में राजनैतिक बातें भी हुई होंगी—इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह महोत्सव महाराव दुर्जनशालजी ने भगवद्भक्ति से प्रेरित होकर किया था परन्तु यह ऐसा समय था कि इस अवसर पर राजनैतिक बातें हुये बिना नहीं रह सकती थीं। कुछ मास पूर्व नादिरशाह ने दिल्ली में कत्ले आम करके राजधानी को ही नष्ट भ्रष्ट नहीं कर डाला था बल्कि मुगल साम्राज्य की नामशेष शक्ति को निःशेष कर दिया था। दिल्ली का शाही कोष खाली होगया था। बादशाह के बड़े बड़े सेना नायक काम आचुके थे। अधिकांश सेना कट चुकी थी और मुहम्मद-शाह की असहाय अवस्था देश पर पूर्णरूपेण प्रकट होचुकी थी। उसने नादिरशाह की अधीनता स्वीकार करली थी। घोर रक्तपात और नृशंस ताण्डव करने के बाद नादिरशाह ने भारतवर्ष के सम्पूर्ण मुसलमान और हिन्दू नरेशों के नाम फरमान जारी किये थे कि, "मुहम्मदशाह मेरा भाई और प्रतिनिधि है और सारे रईसों को उसके साथ परम्परागत आधीनता का वर्ताव करना चाहिये"। यह तो नहीं कहा जासकता कि इस घोषणा की नवाबों और नरेशों ने पूर्णरूप से उपेक्षा की हो। तत्कालीन जीर्ण अवस्था में भी लोगों पर बादशाह के नाम का ही काफी आतंक था। यह समझते हुये भी कि केन्द्रीय शक्ति अत्यन्त क्षीण होगई है किसी

(१) i कागजात सम्वत् १७६७।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३१२।

को बादशाह की प्रत्यक्ष अवज्ञा करने का साहस नहीं होता था। यही कारण था कि इस घोषणा के बाद अर्थात् सम्वत् १७९८ की आषाढ़ सुदी पंचमी के दिन खर्च के पांच हजार रुपये देकर महाराव दुर्जनशालजी ने शाही सनद हासिल करने के लिये एक प्रतिष्ठित पुरुष को दिल्ली भेजा था[1]। क्योंकि जिस समय दुर्जनशालजी गद्दी पर बैठे, मुहम्मदशाह ने टीके के दस्तूर के लिये हाथी तो भेज दिया था, परन्तु मसनदनशीनी की सनद नहीं भेजी थी[2]। बादशाह का इतना आतंक होते हुये भी हिन्दू नरेश अनुभव करते थे कि सम्राट् उनकी रक्षा करने में असमर्थ है। यही कारण था कि मराठों से अपने को बचाने के लिये कितने ही हिन्दू नरेशों ने मिल कर आगौंच में एक अहदनामा स्थिर किया था। अपनी पारस्परिक कलह में कोई भी नरेश बादशाह से फैसला नहीं करवाना चाहते थे और सब अपने बाहुबल द्वारा निर्णय करने का यत्न करते थे। सवाई जयसिंहजी ने इसीलिये बादशाह से बूझे बिना ही पहिले दलेलसिंह को बूँदी की गद्दी पर बिठा दिया था और फिर इस घटना को वैध रूप देने के लिये तथा कोटा आदि अन्य नरेशों की जबान बन्द करने के लिये उन्होंने दलेलसिंह की मसनदनशीनी के लिये मुहम्मदशाह से फरमान हासिल किया था। परन्तु व्यवहार में सब जानते थे कि अब बादशाह नाममात्र का रह गया है। उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुये यह अनुमान करना निराधार नहीं है कि सम्वत् १७९८ में जब राजपूताना के सम्पूर्ण प्रमुख नरेश नाथद्वारे में एकत्र हुये तो तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति पर अवश्य विचार हुआ होगा। यह भी स्पष्ट है कि निश्चय कुछ नहीं हो सका होगा। फिर भी यह महाराव दुर्जनशालजी की दूर-दर्शिता और राजनीतिज्ञता का परिचायक है कि उन्होंने नादिरशाह के

(१) कागजात सम्वत् १७९८।
(२) कागजात सम्वत् १७२०।

हमले के कुछ मास बाद ही सम्पूर्ण प्रबल नरेशों को एकत्र करके परस्पर विचार करने का अवसर दिया। नाथद्वारे के महोत्सव की गति और विधि को मराठों ने बड़े ध्यान से देखा था। वे लोग समझते थे कि यह केवल धार्मिक सम्मेलन नहीं है। इस विषय में महाराव दुर्जनशालजी के प्रत्येक कार्य की कोटा स्थित मराठा वकील सिन्धिया को सूचना दिया करता था[1]। इससे स्पष्ट है कि मराठे इस उत्सव के राजनैतिक महत्व को अनुभव करते थे। इसी अवसर पर महाराणा उदयपुर ने और महाराव दुर्जनशालजी ने परस्पर विचार किया कि माधोसिंहजी को जयपुर का और उम्मेदसिंहजी को बूँदी का राज्य किस प्रकार दिलवाया जावे। महाराणा उदयपुर भी माधोसिंहजी को जयपुर की गद्दी पर बिठाने के लिये उतने ही उत्सुक थे जितने महाराव दुर्जनशालजी उम्मेदसिंहजी को बूँदी की गद्दी पर बिठाने के लिये। दुर्जनशालजी ने महाराणा को यह सलाह दी कि सवाई जयसिंहजी अत्यन्त वृद्ध होगये हैं और अधिक समय तक उनके जीवित रहने की आशा नहीं है। अतः माधोसिंहजी को जयपुर की गद्दी पर बिठाने का उद्योग सवाई जयसिंहजी की मृत्यु तक स्थगित रक्खा जावे। सवाई जयसिंहजी का आतंक उस समय तमाम राजपूताने पर था। महाराणा पहिले जयसिंहजी के विरुद्ध युद्ध में असफल हो चुके थे। अतः उन्होंने महाराव दुर्जनशालजी की सलाह उचित समझी। दो वर्ष पश्चात् अर्थात् सम्वत् १८०० में सवाई जयसिंहजी का देहान्त होगया और उनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंहजी जयपुर की गद्दी पर बैठे[2]।

महाराव दुर्जनशालजी ने ईश्वरीसिंहजी को पत्र लिखा— सम्वत् १८०० में सवाई जयसिंहजी के मरते ही उनके पुत्र ईश्वरीसिंहजी

(१) फालके: १, पृष्ठ ५९।

(२) i ठाकुर लक्ष्मणदान।

ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३२०।

जयपुर की गद्दी पर बैठ गये और माधोसिंहजी राज्य प्राप्ति की लालसा से सहायता माँगने के लिये उदयपुर पहुँचे। बूँदी में अब तक जयपुर का अधिकार बना ही हुआ था। गद्दी पर बैठते ही और अधिक आतंक जमाने के लिये ईश्वरीसिंहजी ने बूँदी पर चढ़ाई करदी। इलाके में खूब लूटमार की और लोगों पर अपनी धाक जमा कर वापिस चले गये। असहाय किन्तु साहसी उम्मेदसिंहजी उत्सुकता के साथ अपने पैतृक राज्य की पुनः प्राप्ति के लिये कोटा नरेश की सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे। कोटा नरेश का अनुमान था कि सवाई जयसिंहजी के मरने पर जयपुर राज्य में जो भ्रातृ-कलह होगा उससे घबरा कर ईश्वरीसिंहजी स्वतः ही बूँदी राज्य से अपना शासन उठा लेंगे और अपनी घरू लड़ाई में लग जायँगे। परन्तु बात उनकी आशा के विपरीत हुई। अतः महाराव दुर्जनशालजी ने ईश्वरीसिंहजी को पत्र लिखा कि "पुरानी कलह को मिटाने के लिये अब बूँदी राज्य आपको उम्मेदसिंहजी के सुपुर्द कर देना चाहिये"। इस शिष्टाचारपूर्ण पत्र का उत्तर ईश्वरीसिंहजी ने यह दिया कि "बूँदी हाथी के पेट में है। वहाँ से नहीं निकल सकती[1]"। इस दम्भमय पत्र को पाकर महाराव दुर्जनशालजी ने हाथी के पेट को चीर कर बूँदी को निकाल लेने का दृढ़ विचार कर लिया।

महाराणा उदयपुर और कोटा नरेश की जयपुर पर चढ़ाई—जब महाराणा उदयपुर को पता लगा कि महाराव दुर्जनशाल जी और ईश्वरीसिंहजी में बूँदी के विषय में खटपट हो चुकी है तो इसको अनुकूल अवसर समझ कर महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय ने अपने भानजे माधोसिंहजी को जयपुर की गद्दी पर बिठाने का प्रयत्न शुरू

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३२४।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

किया। उन्होंने महाराव दुर्जनशालजी को उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार सहयोग देने के लिये आमन्त्रित किया। दोनों नरेश उदयपुर में नाहर-मगरा नामक गाँव में मिले और यह निश्चय किया कि कोटा और उदयपुर के सम्मिलित सैन्य बल द्वारा जयपुर का राज्य माधोसिंहजी को और बूँदी का राज्य उम्मेदसिंहजी को दिलाया जावे। दोनों नरेशों ने अपनी सेनाओं के सहित कूँच किया और जहाजपुर परगने के जामोली नामक ग्राम में पहुँच कर पड़ाव डाला। उधर से महाराजा ईश्वरीसिंहजी भी अपनी सेना के सहित सामना करने के लिये बढ़े और नाहरमगरे से कुछ दूर पाँडेर नामक गाँव में पहुँच कर उन्होंने अपनी सेना का पड़ाव डाला। निरन्तर चालीस दिन तक दोनों सेनायें परस्पर आक्रमण की प्रतीक्षा करती रहीं। महाराजा ईश्वरीसिंहजी वास्तव में कोटा और उदयपुर की सम्मिलित सेना से युद्ध नहीं करना चाहते थे। अतः उन्होंने भेदनीति का आश्रय लिया। ईश्वरीसिंहजी ने महाराणा जगतसिंहजी से कहलाया कि "आप हाड़ों की बात में आकर अपना पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध क्यों तोड़ना चाहते हैं? हमारा आपसे कोई वैर नहीं है"। इस पर महाराणा ने ईश्वरीसिंहजी को उस शर्त का स्मरण दिलाया जो सवाई जयसिंहजी और उदयपुर की राजकुमारी चन्द्रकुँवर का विवाह होते समय की गई थी और जिसके अनुसार चन्द्रकुँवर की कुक्षि से जन्म धारण करने वाले पुत्र को जयपुर का राज्य मिलना चाहिये था[1]।

ईश्वरीसिंहजी से सन्धि—यह बातचीत ईश्वरीसिंहजी के प्रधान मन्त्री राजमल खत्री के द्वारा हो रही थी। अतः उसने ही उत्तर दिया कि "बादशाह मुहम्मदशाह ने ईश्वरीसिंहजी को सवाई जयसिंयजी

(१) वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ९७३–७७।

का ज्येष्ठ पुत्र मानकर शाही फरमान द्वारा जयपुर की गद्दी का उत्तराधिकारी स्वीकृत किया है। अतः आपको इस समय उनका विरोध करके बादशाह से भिड़ने में अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिये। माधोसिंहजी के लिये जयपुर राज्य का कोई इलाका ले लीजिये"। इस प्रकार की बातचीत होने पर माधोसिंहजी के लिये पचास लाख रुपये की आय वाला टोंक का इलाका लेकर महाराणा ने ईश्वरीसिंहजी से गुप्त रूप से सन्धि करली। महाराव दुर्जनशालजी समझते थे कि ईश्वरीसिंहजी से यदि कोई सन्धि की गई तो उनसे भी अवश्य सलाह ली जायगी और सन्धि की शर्तों में एक शर्त यह भी होगी कि उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाई जावे, परन्तु ईश्वरीसिंहजी की भेद नीति सफल होगई। महाराणा ने सेना सहित आगे बढ़ने में अरुचि सी प्रगट की। दुर्जनशालजी महाराणा के व्यवहार से अप्रसन्न होकर वापिस लौटे और मार्ग में बूँदी राज्य के इलाके को लूटते हुये कोटा पहुँचे[1]।

दुर्जनशालजी ने बूँदी के लिये महाराजा अभयसिंहजी से सहायता माँगी—अब दुर्जनशालजी को अनुभव होगया कि उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाने में उनको उदयपुर से सहायता न मिल सकेगी। अतः उन्होंने दूसरे प्रकार का उद्योग करना आरम्भ किया। गोविन्दराम नागर ब्राह्मण को उन्होंने मारवाड़ नरेश के पास एक पत्र लेकर भेजा कि कछवाहों से बूँदी छीन कर पुनः उम्मेदसिंहजी को दिलाने में आप हाड़ों पर अहसान कीजिये। महाराजा अभयसिंहजी ने गोविन्दराम नागर को सम्मानपूर्वक अपने यहाँ ठहराया, परन्तु सहायता के विषय में वे टाल टूल करते रहे और स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। गोविन्दराम ने समझ लिया

---

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३३७–३८।

ii ओझा: राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ९४४।

कि महाराजा अभयसिंहजी सैनिक सहायता नहीं देना चाहते और केवल बहाने बना रहे हैं। निराश होकर वह चतुर ब्राह्मण जोधपुर से अजमेर पहुँचा।

गोविन्दराम नागर की फखरुद्दौला से भेंट—इस समय गुजरात का सूबेदार नवाब फखरुद्दौला ख्वाजा साहिब की यात्रा करने के लिये आया हुआ था। गोविन्दराम ने उससे बातचीत की और प्रस्ताव किया कि आप अपनी सेना के द्वारा बूँदी छीन कर कोटे को दिला दें तो आपको एक लाख रुपये सैनिक व्यय के रूप में दिये जावेंगे। नवाब फखरुद्दौला ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और बूँदी की तरफ अपनी सेना का प्रयाण किया। इसके साथ ही साथ शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंहजी के साथ भी गोविन्दराम ने इसी प्रकार की बातचीत की और उसको भी बूँदी की ओर कूँच करने पर राजी कर लिया। तब गोविन्दराम ने महाराव दुर्जनशालजी को सूचना दी कि नवाब फखरुद्दौला और राजा उम्मेदसिंहजी शाहपुरा वाले की सम्मिलित सेना आमेर की तरफ से बूँदी पर चढ़ी हुई आरही है। आप कोटे की ओर से अपनी सेना के साथ बूँदी की ओर बढ़ें।

बूँदी पर महाराव दुर्जनशालजी की चढ़ाई, ईश्वरीसिंहजी के सेनानायक का विश्वासघात—इस आयोजन के अनुकूल दोनों सेनायें बूँदी की ओर बढ़ीं। उम्मेदसिंहजी को दुर्जनशालजी ने अपने साथ लिया। सम्वत् १८०१, आषाढ़ शुक्ला द्वादशी को दोनों सेनाओं ने मिल कर बूँदी पर आक्रमण किया। जब ईश्वरीसिंहजी ने सुना कि बूँदी को छीनने के लिये फखरुद्दौला और दुर्जनशालजी ने दो तरफ से आक्रमण किया है तो उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री के छोटे भाई शिवदास खत्री के नेतृत्व में दलेलसिंह की सहायतार्थ बूँदी की ओर सेना रवाना की। राजमल प्रधान मन्त्री दलेलसिंह से अप्रसन्न था। दलेलसिंह बूँदी की

गद्दी मिलने के उपलक्ष में राजमल को एक लाख रुपया प्रति वर्ष दिया जाता था, परन्तु एक बार जयसिंहजी ने किसी बात पर असन्तुष्ट होकर राजमल को प्रधान पद से पृथक् कर दिया और तीन वर्ष तक वह विपत्ति में रहा। उसने दलेलसिंह से एक लाख रुपया जो प्रति वर्ष दिया जाता था, माँगा परन्तु उसने नहीं दिया। अब दलेलसिंह पर विपत्ति आई तो राजमल भी नहीं चूका। महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने तो शिवदास को आज्ञा दी थी कि शीघ्रातिशीघ्र बूँदी पहुँच कर दलेलसिंह की सहायता की जावे, परन्तु राजमल ने अपने भाई को दूसरा ही मन्त्र पढ़ाया। उसने कहा कि तुम पहिले बरवाड़े के ठाकुर शिवसिंह से लड़ कर उसका इलाका छीनना, फिर सोचना कि बूँदी की ओर बढ़ा जावे या नहीं। इस गुप्त मन्त्र के अनुकूल शिवदास खत्री ईश्वरीसिंहजी की आज्ञा के अनुसार बूँदी की ओर रवाना तो होगया, परन्तु बरवाड़े में ही लड़ता रहा[1]।

दुर्जनशालजी ने बूँदी में प्रवेश किया——इधर बूँदी घेर ली गई। दलेलसिंह संयुक्त सैन्य बल के आगे अधिक देर तक नहीं टिक सका। विजयी सेना ने नगर में प्रवेश किया और दलेलसिंह तारागढ़ में जाकर छिपगया और आत्मरक्षा करने लगा। महलों के पास भैरव दरवाजे के पश्चिम की ओर कोटा राज्य की सेना का नायक भट्ट गोविन्दराम नागर बड़ी वीरता से लड़ रहा था। उसके एक तोप का गोला लगा और उसने वीरगति प्राप्त की। अब राजमहल भी दुर्जनशालजी के हाथ में आगया और केवल तारागढ़ का किला ही दलेलसिंह के हाथ में रह गया। विजयी सेना गोलाबारी करती रही। सुरंग लगाये गये और सीढ़ियों के द्वारा सैनिक किले की दीवार फोड़ कर किले के अन्दर घुसने लगे। यह स्थिति देख कर दलेलसिंह पश्चिम की तरफ के गुप्त मार्ग से अपनी स्त्रियों के सहित निकल भागा और नैनवाँ में जाकर उसने शरण ली।

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३६८।

दुर्जनशालजी और उम्मेदसिंहजी तारागढ़ में घुस गये। वहाँ पर अपने झण्डे गाढ़ दिये और बूँदी पर अपना कब्जा कर लिया[1]।

बूँदी में दुर्जनशालजी ने अपना शासन स्थापित किया— अब महाराव दुर्जनशालजी ने उम्मेदसिंहजी से कहा कि आप से बूँदी का राज्य नहीं दब सकेगा इसलिये आप अभी लोहितपुर के परगने में रहो और वहाँ राज्य करो। यह कह कर शेष सम्पूर्ण बूँदी राज्य पर दुर्जनशालजी ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। स्थान स्थान पर अपने थाने नियत कर दिये। केशवराय पाटन और बरौंधन दोनों बृज-नाथजी के भेंट कर दिये। इतना ही नहीं, विजय के अनन्तर उन्होंने एक प्रहर तक बूँदी नगर को लूटा भी। शाहपुरा के उम्मेदसिंहजी ने दुर्जनशालजी के कार्य का विरोध किया और कहा कि आप नीति, धर्म तथा स्नेह को त्याग कर यह लज्जाजनक कार्य कर रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि दुर्जनशालजी को बूँदी पर अपना अधिकार स्थापित करने की सलाह भूपतिराम चारण ने दी थी, जो उनका मन्त्री था। उसका कहना था कि कोटा राज्य की बूँदी को विजय करने में महान् क्षति हुई है। नवाब फखरुद्दौला और शाहपुरा नरेश कोटा के बुलाये हुये आये हैं और उनको सेना खर्च के लिये बहुत बड़ी रकम देनी पड़ी है। कोटे का सेनापति गोविन्दराम भट्ट इस युद्ध में मारा गया है। इस दृष्टि से उम्मेदसिंहजी को एक परगना देकर शेष बूँदी राज्य पर कोटे का अधिकार करना अनुचित नहीं है। इस दलील को सुन कर शाहपुरा नरेश अपने घर चले गये और फिर दुर्जनशालजी ने खूब मन भर कर बूँदी की लूट की। तदनन्तर पलायथे के आप रूपसिंहजी को बूँदी राज्य में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके तथा अन्ते के महाराजा

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३७१।

अजीतसिंहजी को किलेदार बनाकर तारागढ़ उनके सुपुर्द किया और दुर्जनशालजी वापिस कोटा रवाना होगये[1]।

उम्मेदसिंहजी असन्तुष्ट होकर सहायता माँगने को मारवाड़ गये—उम्मेदसिंहजी को दुर्जनशालजी का व्यवहार बहुत बुरा लगा। अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करने के लिये वे तुले हुये थे और लोहितपुर के परगने की संकुचित भूमि उनको सन्तुष्ट नहीं कर सकती थी। वे इस परगने को छोड़ कर शीघ्र ही मारवाड़ नरेश महाराजा अभयसिंहजी के पास गये, जो इस समय अजमेर में निवास करते थे; और उनसे सैनिक सहायता की याचना की।

बूँदी को जीतने के लिये ईश्वरीसिंहजी ने मराठों से सहायता माँगी—उधर दलेलसिंह ईश्वरीसिंहजी के पास पहुँचा। ईश्वरीसिंहजी ने इसको आश्वासन दिया और शीघ्र ही बूँदी वापिस दिलाने का वचन दिया। फिर ईश्वरीसिंहजी दिल्ली गये। बादशाह से बूँदी का सब हाल कहा और सहायता के लिये याचना की। कुछ अर्से तक वे दिल्ली में इसी आशा से टिके रहे कि उनको सहायता मिले। जब निराश होगये तो गुप्त रूप से उन्होंने अपने मन्त्री राजमल खत्री को मराठों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा। उसने फौज खर्च के एक करौड़ रुपये का लोभ देकर राणोजी सिन्धिया तथा रामचन्द्र पण्डित को अपनी ओर मिला लिया और बूँदी पर सेना चढ़ाने की प्रतिज्ञा करवाली[2]। परन्तु यह प्रतिज्ञा कार्यरूप में परिणत नहीं होसकी।

दुर्जनशालजी को जयपुर पर चढ़ाई करने के लिये महाराणा ने बुलाया—उधर जब महाराणा उदयपुर को पता लगा कि

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३७३।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ३३७४–७५।

बूँदी हाड़ों ने छीनली है और जयपुर निर्बल होगया है तो उन्होंने सोचा कि माधोसिंहजी की सहायता करने का यह अच्छा अवसर है। इसलिये महाराव दुर्जनशालजी को पत्र लिखा कि अब आप और हम मिल कर जयपुर को जीत सकते हैं। अतः आप सेना लेकर आइये। महाराव दुर्जनशालजी महाराणा के पिछले व्यवहार को भूले नहीं थे। अतः उन्होंने महाराणा के रणनिमन्त्रण का विशेष आदर नहीं किया और उत्तर देदिया कि आप कूँच करें, मैं पीछे से आता हूँ[1]। तब महाराणा ने अपने दो सरदारों को सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये मल्हारराव होल्कर के पास भेजा। होल्कर ने एक करोड़ रुपया लेना स्वीकार कर माधोसिंहजी को गद्दी पर बिठाने का वचन दिया। यह समाचार पाकर महाराणा जयपुर की ओर बढ़ा। जयपुर के सरदारों ने उनसे प्रार्थना की कि महाराजा ईश्वरीसिंहजी दिल्ली से वापिस न आजावें तब तक युद्ध स्थगित रक्खा जावे। महाराणा ने इस बात को भूलवश मान लिया। ईश्वरीसिंहजी के वापिस आने पर राजमल खत्री ने ऐसी चाल चली कि न लड़ाई हुई और न माधोसिंहजी को जयपुर का राज्य मिला[2]।

राजमहल की लड़ाई में कोटे की सेना की हार—सम्वत् १८०४ में महाराणा उदयपुर ने फिर जयपुर से लड़ने की तैयारियाँ कीं। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को महाराव दुर्जनशालजी अन्नकूट के दर्शन करने के लिये नाथद्वारे में थे। महाराणा उदयपुर भी माधोसिंह जी को साथ लेकर वहाँ पहुँचे और जयपुर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। दो लाख रुपये देकर मल्हारराव के पुत्र खाँडेराव को भी

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३७६।

(२) i वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ १२३२।

ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३७६–८०।

बुलाया। शाहपुरा नरेश उम्मेदसिंहजी भी महाराणा के साथ रवाना हुये, परन्तु इस सेना के साथ महाराव दुर्जनशालजी स्वयम् नहीं गये। उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री भूपतिराम चारण तथा कोयले के कुँवर पृथ्वीसिंहजी को सेना के साथ भेज दिया। ईश्वरीसिंहजी ने अपने मन्त्री हरगोविन्द नाटाणी की अध्यक्षता में सेना रवाना की। बनास नदी के तट पर राजमहल के पास दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ, जिसमें भूपतिराम चारण भाग गया परन्तु पृथ्वीसिंहजी वीरता-पूर्वक लड़ते हुये सख्त घायल हुये। ईश्वरीसिंहजी की विजय हुई, परन्तु दोनों पक्ष की बड़ी हानि हुई[1]।

ईश्वरीसिंहजी ने बूँदी उम्मेदसिंहजी को देना स्वीकार किया—इस पराजय से भी हतोत्साह न होकर महाराणा ने दूसरे वर्ष फिर महाराव दुर्जनशालजी से जयपुर पर चढ़ाई करने के लिये सहायता माँगी परन्तु दुर्जनशालजी ने सहयोग नहीं दिया। साथ ही खाँडेराव होल्कर को भी बुलाया। संयुक्त सेना के साथ महाराणा खारी नदी के तट पर पहुँचे, उधर से महाराजा ईश्वरीसिंहजी भी उसी स्थान पर मुकाबले के लिये आये। थोड़ी ही देर लड़ाई हुई कि सन्धि होगई। ईश्वरीसिंहजी ने उम्मेदसिंहजी को बूँदी और माधोसिंहजी को टोडा देना स्वीकार कर लिया[2]।

परन्तु तुरन्त ही मराठों की सहायता से पुनः उस पर अधिकार जमा लिया—सन्धि होजाने पर भी ईश्वरीसिंहजी बूँदी

---

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३४५५–६५।
ii टॉड: राजस्थान, जिल्द १, पृष्ठ ४९४।
iii ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) i वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ १२३७।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३४६८–७३।

को नहीं भूल सकते थे। वे दलेलसिंह को वचन दे चुके थे कि उसको बूँदी की गद्दी पर पुनः बिठाया जावेगा। उन्होंने राणोजी सिन्धिया के पुत्र जियाजी सिन्धिया से बातचीत की और यह निश्चय हुआ कि जयपुर और मराठों की फौज बूँदी पर आक्रमण करे। इस निश्चय के अनुकूल प्रबल और प्रचुर सेना ने बूँदी पर चढ़ाई की और बूँदी का सब इलाका जीतकर दलेलसिंह के अधीन कर दिया। केवल तारागढ़ कोटे के अधिकार में रह गया। उस समय पलायथे के आप रूपसिंहजी और अन्ते के महाराजा अजीतसिंहजी तारागढ़ के किलेदार थे। चारों ओर प्रबल और विजयी शत्रुओं से घिरे हुये भी वे वीरतापूर्वक किले की रक्षा करते रहे। ऐसे ही साहस के साथ राव माधोसिंहजी ने बल्ख के किले की रक्षा की थी। स्थिति को निराशाजनक जानकर जब कोटे से आप रूपसिंहजी के नाम हुक्म भेजा गया तब उन्होंने किला खाली किया। इसके अनन्तर दलेलसिंह ने बूँदी को खूब लूटा और फिर गद्दी पर बैठ गया[1]।

ईश्वरीसिंहजी ने कोटे को घेरा—अब ईश्वरीसिंहजी होल्कर को तथा दलेलसिंह को साथ लेकर कोटे पर चढ़ आये। चम्बल पार महलों के सामने सेना का पड़ाव डाल कर नगर को चारों ओर से घेर लिया। ईश्वरीसिंहजी ने चम्बल के दूसरी पार एक बुर्ज बनवाई, जिसका नाम फतेहगढ़ी रक्खा। उस पर गढ़ की बुर्जों से गोलों की वर्षा की जाने लगी, जिससे उसका ध्वंस होगया। यह लड़ाई इसी प्रकार ६१ दिन तक जारी रही। ६१वें दिन एक तोप के गोले से जियाजी सिन्धिया का हाथ उड़ गया और वह मरता मरता बचा[2]। इस पर विपक्षी सेना में बड़ी खलबली मची और

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३८१।
(२) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५६०।

सन्धि की बातचीत होने लगी। महाराव दुर्जनशालजी ने कहलाया कि जब कोटा सिन्धिया, होल्कर और पँवार को मामलत देता है तो सिन्धया को कोटे पर चढ़ कर नहीं आना चाहिये था और यह भी कहा कि सिन्धिया का जो अंग भंग हुआ है उसकी क्षतिपूर्ति या तो ईश्वरीसिंहजी करें या दलेलसिंह, न कि कोटा; क्योंकि कोटे में और सिन्धिया में किसी प्रकार का द्वेष या बैर भाव नहीं है। वैशाख सम्वत् १८०५ में सन्धि हुई। जिसके अनुकूल ईश्वरीसिंहजी ने दलेलसिंह से पाँच गाँव सहित कापरेण और बयालीस गाँव सहित केशोराय पाटन मराठों को दिलवाये। कोटे ने भी चार लाख रुपये देने का वचन दिया परन्तु कुछ दिन बाद सिन्धिया के साथ पत्रव्यवहार करके कोटा के फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने ये रुपये माफ करवा दिये[1]।

उम्मेदसिंहजी का परिवार कोटे रहता था—जिन दिनों में यह लड़ाई चल रही थी तो उम्मेदसिंहजी का परिवार कोटे में ही रहता था। लड़ाई के दिनों में ही उम्मेदसिंहजी की माता चूड़ावतजी का देहान्त होगया और उम्मेदसिंहजी के छोटे भाई दीपसिंहजी ने चम्बल नदी के तट पर उनका दाह-कर्म किया। उम्मेदसिंहजी की माता चूड़ावतजी, राणी झालीजी, छोटे भाई दीपसिंहजी और बहिन दीपकँवर बाई महलों में ही रहते थे और उनका सब खर्च कोटे से दिया जाता था[2]।

उम्मेदसिंहजी और अभयसिंहजी की मुलाकात—उम्मेदसिंहजी सैनिक सहायता की खोज में इधर उधर घूम रहे थे। जिस समय कोटे को ईश्वरीसिंहजी की सेना ने घेर रक्खा था तो उम्मेदसिंहजी घोर आर्थिक संकट में पड़े हुये अपनी पैतृक गद्दी को पुनः

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।
(२) उपरोक्त।

प्राप्त करने का आयोजन कर रहे थे। संयोगवश जोधपुर नरेश अभयसिंहजी पुष्कर आये और उम्मेदसिंहजी उनसे मिले। इस समय उम्मेदसिंहजी की आयु केवल १९ वर्ष की थी, परन्तु ये अत्यन्त होनहार नवयुवक थे। निरन्तर विपत्ति झेलने के कारण संकटों का सामना करने का उनको अभ्यास हो गया था और प्रत्येक परिस्थिति में अपने लिये मार्ग टटोलना उन्होंने सीख लिया था। महाराजा अभयसिंहजी पर उम्मेदसिंहजी के व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव पड़ा। एक दिन शिकार में उम्मेदसिंहजी ने शस्त्र प्रयोग में ऐसी कुशलता प्रदर्शित की कि अभयसिंहजी उन पर मुग्ध होगये और अपने एक बड़े सरदार की कन्या का उनके साथ विवाह करवा दिया[1]।

उम्मेदसिंहजी का बूँदीविजय और पराजय—कुछ दिन बाद उम्मेदसिंहजी ने थोड़ी सी सेना जुटाकर बूँदी की ओर प्रयाण किया। जब वे हिंडोली के पास पहुँचे तो प्रजा ने उनका बड़ा स्वागत किया और हजारों रुपये उनके नजर किये। बीचड़ी के मैदान में उम्मेदसिंहजी ने दलेलसिंह को हराया। वह भाग कर महाराजा ईश्वरीसिंहजी के पास पहुँचा और कहा कि अब मैं बूँदी नहीं जाना चाहता, मुझे आप दो परगने दे दीजिये और बूँदी को यदि आप ले सकें तो आप ले लीजिये। ईश्वरीसिंहजी ने शीघ्र ही बूँदी पर सेना चढ़ाई। उधर उम्मेदसिंहजी ने भी युद्ध की तैयारी की। अमरपुरा के रणक्षेत्र में दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। कितने ही वीर जागीरदारों ने उम्मेदसिंहजी की वीरोचित सहायता की। परन्तु विजयश्री जयपुर के हाथ लगी। उम्मेदसिंहजी ने घायल होकर रणाङ्गण छोड़ा और मार्ग में इन्द्रगढ़ के राजा से एक अच्छा घोड़ा माँगा। इन्द्रगढ़ का राजा उम्मेद-

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३३८९।

सिंहजी का सगोत्रज भाई था, परन्तु उसने इस घोर संकट के समय भी उम्मेदसिंहजी की सहायता नहीं की। उम्मेदसिंहजी कुछ दिन राणपुर में टिके और पुनः बूँदी पर आक्रमण करने की चिंता करते रहे[1]।

उम्मेदसिंहजी का विवाह और दुर्जनशालजी का उनको आश्वासन—इसके कुछ ही दिन बाद बनेड़ा के रामसिंहजी ने अपनी पुत्री बख्तावरकुँवर का डोला राणपुर भेजा और सम्वत् १८०३ में उम्मेदसिंहजी ने उससे विवाह किया। इस समय उम्मेदसिंहजी की माँ, स्त्री तथा छोटा भाई कोटे में ही रहते थे। अब नवविवाहिता वधू को भी उन्होंने कोटे भेज दिया और स्वयम् पुनः बूँदी पर आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत हुये। तब महाराव दुर्जनशालजी ने आप अजब-सिंहजी को उनके पास भेजा और समझाया कि जयपुर की शक्ति बहुत प्रबल है। आप व्यर्थ लड़ कर हानि न उठावें। आपके लिये मराठों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये मैं उद्योग कर रहा हूँ।

महाराव दुर्जनशालजी ने होल्कर की सहायता से उम्मेद सिंहजी को पुनः बूँदी दिलाई—महाराव दुर्जनशालजी ने मल्हारराव होल्कर के पास अपना वकील भेजा और बूँदी को विजय करने के

---

(१) दुर्जनशालजी का निन्दनीय कार्य—वंशभास्कर में लिखा है कि इस समय ईश्वरीसिंहजी ने महाराव दुर्जनशालजी से यह कहलाया कि आप चतुर नीतिज्ञ हैं। उम्मेदसिंहजी को समझाइये कि बूँदी लेने का प्रयास छोड़ दें। हम उनको २००) रुपये रोज खर्च के देते रहेंगे। दुर्जनशालजी महीनों तक जयपुर से उम्मेदसिंहजी को देने के निमित्त २००) रुपये रोज लेते रहे, परन्तु उम्मेदसिंहजी के पास एक पैसा भी नहीं पहुँचवाया। दुर्जन-शालजी ने तो समय समय पर उम्मेदसिंहजी की सहायता की थी और उदारता का व्यवहार किया था। उसको देखते हुये उपरोक्त बात विश्व-सनीय नहीं मालूम होती।

लिये सैनिक सहायता चाही। मल्हारराव ने सहायता देने का वचन दिया। कोटे से अखयराम कायस्थ, नागदे के आप जोधसिंहजी, उम्मेदसिंहजी और होल्कर का मुसाहिब सेना के साथ बूँदी आये, और किलेदार से कहलाया कि युद्ध किये बिना ही शहर खाली कर दिया जाये तो अच्छा है। बूँदी के कारबारियों ने मल्हारराव के मुसाहिब की बात नहीं मानी और लड़ने के लिये सन्नद्ध होगये। तब होल्कर ने बूँदी में कारबारियों से लड़ने के बजाय जयपुर में ईश्वरीसिंहजी से लड़ना अच्छा समझा और अपनी तथा कोटे की सेना के सहित उसने जयपुर की ओर कूँच किया। कोटे की सेना के साथ उम्मेदसिंहजी तथा नागदे के आप जोधसिंहजी थे। उधर महाराणा से भी कहलाया कि ईश्वरीसिंहजी पर चढ़ाई करें। यह हाल सुन कर ईश्वरीसिंहजी भी अपनी सेना के सहित आगे बढ़े और भाद्रपद कृष्णा द्वितीया सम्वत् १८०५ के दिन ईश्वरीसिंहजी ने मल्हारराव, कोटा तथा उदयपुर की सेना से बगरूँ गाँव के पास युद्ध किया। इस सेना में कोटे के लगभग ६०० सैनिक और आप जोधसिंहजी मारे गये, परन्तु ईश्वरीसिंहजी ने भी हार कर बूँदी वापिस उम्मेदसिंहजी को देना स्वीकार कर लिया। मल्हारराव होल्कर तथा शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंहजी ने बूँदी तक साथ आकर उम्मेदसिंहजी को अपने पिता की गद्दी पर बिठाया। कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन उम्मेदसिंहजी का पुनः बूँदी पर अधिकार स्थापित हुआ[1]।

महाराव दुर्जनशालजी का बूँदी नरेशों के साथ स्नेह व्यवहार—महाराव भीमसिंहजी के देहावसान होने पर उनके पुत्र

(१) i वंशभास्कर चतुर्थभाग।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

अर्जुनसिंहजी ने स्वयम् अपना शासन बूँदी से उठा लिया था। बुद्धसिंहजी वहाँ राज करने लगे थे, परन्तु महाराजा जयसिंहजी ने उनको राज्य-भ्रष्ट कर दिया और बूँदी अपने कब्जे में करली। जब बुद्धसिंहजी ने काणीकोह से बूँदी की ओर चढ़ाई की तो महाराव दुर्जनशालजी ने उनको सैनिक सहायता दी और जब वे हारकर कोटे आये तो उनको शरण दी और उनके सब परिवार को आराम से रक्खा। महाराजा जयसिंहजी से इस कारण द्वेष होगया और महाराव दुर्जनशालजी को बहुत क्षति उठानी पड़ी। जब बुद्धसिंहजी की महाराणी कछवाही ने प्रतापसिंह के कहने पर मराठों की सहायता से बूँदी को जीता तब वे कोटे में रहती थीं। बुद्धसिंहजी के देहावसान के बाद उम्मेदसिंहजी को राज्य दिलाने में महाराव दुर्जनशालजी निरन्तर उद्योग करते रहे और इस कारण जयसिंहजी से उनका द्वेष बढ़ता ही गया। महाराजा ईश्वरीसिंहजी से उन्होंने कई लड़ाइयाँ लड़ीं। राजमहल की लड़ाई में उनके उमराव पृथ्वीसिंहजी घायल हुये। जब महाराणा ने अपने भानजे के लिये टोंक का परगना लेकर सन्तोष कर लिया और उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाने में कुछ उदासीनता सी प्रकट की तो महाराव दुर्जनशालजी की महाराणा से भी अनबन हो गई। उम्मेदसिंहजी को राज्य दिलाने की चिन्ता में वे इस बात को भी भूल गये कि महाराणा उदयपुर उनके साले हैं। इसके बाद उन्होंने कितने ही लाख रुपये खर्च करके और कितने ही सैनिकों के प्राण न्यौछावर करके बूँदी को कछवाहों के हाथ से निकाला और या तो वास्तव में उम्मेदसिंहजी को कम उम्र जानकर या कोटा राज्य की आर्थिक क्षति की पूर्ति करने के निमित्त बूँदी पर अपना शासन स्थापित करके एक परगना उम्मेदसिंहजी के सुपुर्द कर दिया। नहीं कहा

जासकता कि उम्मेदसिंहजी यदि कुछ अर्से सन्तोष करते तो बूँदी का सम्पूर्ण राज्य दुर्जनशालजी उनके सुपुर्द कर देते या नहीं; परन्तु अगली घटनायें इस बात को अवश्य प्रकट करती हैं कि महाराव दुर्जनशालजी उम्मेदसिंहजी के परम हितैषी थे । जब ईश्वरीसिंहजी ने मराठों की मदद से बूँदी को छीन लिया और कोटे को घेर कर राजमहलों पर गोलाबारी करने लगे तो उम्मेदसिंहजी का सब परिवार कोटे में था । दुर्जनशालजी के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर उम्मेद-सिंहजी बूँदी छोड़कर पुष्कर चले गये थे, परन्तु फिरभी उनको दुर्जनशालजी के स्नेह का पूरा विश्वास था और इसीलिये भरोसा करके वे अपने परिवार को अर्थात् माता, बहिन और भाई को कोटे में ही छोड़ गये थे । कोटे ने ईश्वरीसिंहजी के आक्रमण से बड़ी हानि उठाई । फिर भी उम्मेदसिंहजी के व्यवहार की ओर ध्यान न देकर दुर्जनशालजी उनको सहायता देने की चिन्ता करते रहे । अमर-पुरा के युद्ध में घायल होकर जब उम्मेदसिंहजी आये तो कोटे के पास राणपुर के महलों में महाराव दुर्जनशालजी ने उनको ठहराया और वे यहाँ कई महीनों तक टिके । यहीं उनका विवाह हुआ और फिर नवविवाहिता पत्नी को महाराव दुर्जनशालजी की ही संरक्षता में रख कर सैनिक सहायता की तलाश में निकल गये । अन्त में महाराव दुर्जनशालजी ने मल्हारराव होल्कर को लाखों रुपये सैनिक सहायता देकर बूँदी विजय करवाने के लिये बुलवाया और सम्पूर्ण राज्य जयपुर से छीनकर उम्मेदसिंहजी को दिलवाया ।

महाराव दुर्जनशालजी की उदारता—महाराव दुर्जनशाल जी ने अपने पिता की विपत्ति को और उनके उत्थान को खूब देखा था । भीमसिंहजी के संन्यास ग्रहण करने का समाचार पाकर जब बूँदी

के प्रधान सेनापति तथा शासक सालमसिंह ने कोटे पर आक्रमण करके अर्जुनसिंहजी और दुर्जनशालजी दोनों राजकुमारों को घोर संकट में डाल दिया था, उसको वे भूले नहीं होंगे। उन्होंने अपने पिता से यह भी अवश्य सुना होगा कि जब वे अपने वीर पिता रामसिंहजी का अन्त्येष्टि श्राद्ध पूर्णरूप से सम्पन्न भी नहीं कर पाये थे और जब उनकी अवस्था तेरह ही वर्ष की थी, तभी बुद्धसिंहजी ने कोटे के विरुद्ध सेना भेजी थी और बुद्धसिंहजी की माता ने भीमसिंहजी की यह भी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी कि उनके लिये केवल कोटा नगर छोड़ दिया जाय, और शेष सम्पूर्ण राज्य पर बूँदी का अधिकार स्थापित कर लिया जाय। यह महाराव दुर्जनशालजी के चरित्र की महानता थी कि उन्होंने बुद्धसिंहजी को, उम्मेदसिंहजी को और उनके परिवार को आदरपूर्ण आश्रय ही नहीं दिया, बल्कि महान् क्षति उठाते हुये भी उम्मेदसिंहजी को पुनः राज्य दिलाने का निरन्तर उद्योग किया और उम्मेदसिंहजी को अपनी पैतृक राजगद्दी पर बिठाकर ही विश्राम किया। बुद्धसिंहजी ने शाही दरबार में अपने प्रभाव का लाभ उठाकर कोटा छीनना चाहा था और महाराव भीमसिंहजी ने अपने ऐसे ही प्रभाव का लाभ उठाकर बूँदी पर अपना अधिकार स्थापित करके बदला लिया था, परन्तु महाराव दुर्जनशालजी ने मराठों की मैत्री का लाभ उठाकर बूँदी वापिस उम्मेदसिंहजी को दिलवाई और क्षत्रियोचित उदारता तथा अपनी परम वैष्णवता का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया।

राजपूताने में दुर्जनशालजी की प्रतिष्ठा—इन दिव्य गुणों के कारण ही दुर्जनशालजी का राजस्थान में बड़ा मान था। वे प्रायः प्रति वर्ष नाथद्वारे में अन्नकूट के अवसर पर अर्थात् कार्तिक शुक्ला

प्रति पदा को दर्शनार्थ जाया करते थे । वहाँ उदयपुर, जयपुर तथा किशनगढ़ आदि राज्यों के नरेशों को निमन्त्रित किया करते थे। सम्वत् १७९७ में उन्होंने नाथद्वारे में सप्त स्वरूपों को एकत्र करवाया था। इस अवसर पर उदयपुर, जयपुर, करौली, धौलपुर आदि राज्यों के रईसों के अतिरिक्त राजपूताने के कितने ही प्रमुख ठिकानों के ठाकुरों को निमन्त्रित किया था और वे सब परिवार सहित सम्मिलित हुये थे। सब रईसों ने उनकी भेंट की थी और उदयपुर की माँ साहब झालीजी ने उनके लिये नजर भेजी थी। जब महाराव दुर्जनशालजी वापिस कोटे आरहे थे तो मार्ग में बेगूँ की राणी ने भी नजर भिजवाई थी।

मुगल बादशाह के साथ सद्व्यवहार—महाराव दुर्जनशालजी को मुहम्मदशाह की निर्बलता का खूब पता था, परन्तु वे उसके विरुद्ध कभी प्रपञ्च नहीं करते थे और काम पड़ने पर सहायता भी देते थे। अतः शाही दरबार में उनका बड़ा मान था। जब वे गद्दी पर बैठे स्वतः ही बादशाह ने टीके के दस्तूर का हाथी भेजा था। महाराव दुर्जनशालजी ने मसनदनशीनी के फरमान की कुछ चिन्ता नहीं की परन्तु उनके राजतिलक के १८ वर्ष बाद दिल्ली को नष्ट भृष्ट करके वापिस लौटते समय नादिरशाह ने भारतवर्ष के सब राजा और नवाबों के नाम जब ये फरमान जारी किये कि सब मुहम्मदशाह बादशाह को अपना सम्राट् समझ कर उसकी आज्ञा को मानें तब शायद इस नवीन शक्ति के उदय से चिन्तित होकर महाराव दुर्जनशालजी ने अपने विश्वसनीय आदमी दिल्ली भिजवाये और सनद की प्राप्ति के लिये प्रयास किया। अब भी मुगल बादशाह के नवाब और सूबेदार जब कोटा आते थे तो उनकी पूर्ववत् खातिर की जाती थी[1]। मराठों के आक्रमणों

(१) कागजात सम्वत् १७९८।

को रोकने के लिये दुर्जनशालजी दो बार मुगल पक्ष से लड़े। एक बार सन् १७३४ में खानदौराँ की अध्यक्षता में रामपुरे में और दूसरी बार १७३८ में भोपाल के पास निजामुल्मुल्क के नायकत्व में। उनमें महाराव दुर्जनशालजी की सेना के लगभग १५०० सवार मारे गये थे। इस प्रकार दुर्जनशालजी ने म्रियमाण मुगल दरबार का सच्चे क्षत्रिय की भाँति साथ दिया था। मराठों की अधीनता स्वीकार कर लेने के आठ वर्ष बाद तक अर्थात् सम्वत् १८०३ तक दिल्ली में महाराव दुर्जन शालजी का वकील रहा करता था जिसका नाम लाला मुरारीलाल था और इस सम्वत् तक निजामुल्मुल्क से भी पत्रव्यवहार जारी था[1]।

दुर्जनशालजी और मराठे—मराठों के तूफान का धक्का सर्वप्रथम और सर्वाधिक कोटा राज्य को ही सहना पड़ा। महाराव दुर्जनशालजी ने विवश होकर सेन्धिया, पवाँर और होल्कर तीनों को सम्वत् १७९५ में सालाना मामलत देना स्वीकार कर लिया[2], परन्तु इस मामलत का जाल मराठों ने इस प्रकार बिछाया कि उनका हिसाब कभी साफ ही नहीं होने पाया। कभी यह मामलत घटती थी और कभी बढ़ती थी। सम्वत् १८०५ में मामलत के दो लाख और तीस हजार रुपये दिये गये थे[3]। जब मराठे सरदार कोटा आते थे तो उनका उसी प्रकार आदरसत्कार और स्वागत किया जाता था जैसे मुगल सूबेदारों का। सरदारों की भेंट की जाती थी और सब अनुचरों को इनाम बख्शिश दी जाती थी[4]। इस पर भी मराठों के साथ अनबन

---

(१) कागजात सम्वत् १७८०, १७९८, १८०३।
(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।
(३) कागजात सम्वत् १८०५।
(४) कागजात सम्वत् १७९७।

चलती रहती थी। तीनों मराठा सरदारों में से कोई पक्ष में रहता था और कोई विपक्ष में।

दुर्जनशालजी की सन्तानें, राणियाँ और मृत्यु—महाराव दुर्जनशालजी के तीन राणियाँ थीं। एक सीसोदिया, दूसरी नरूका और तीसरी गौड़[1]। कविराजा सूरजमल, ठाकुर लक्ष्मणदान, जेम्स टॉड और मुन्शी मूलचन्द ने लिखा है कि महाराव दुर्जनशालजी के कोई सन्तान नहीं हुई, परन्तु पुराने कागजात से नरूकीजी के पुत्र होना पाया जाता है[2]। ऐसा मालूम होता है कि यह पुत्र अधिक समय तक जीवित नहीं रहा और इसलिये महाराव दुर्जनशालजी का निःसन्तान स्वर्गवास हुआ। ऐसा अनुमान होता है कि यह रसिक प्रकृति के पुरुष थे। गणगोर के मेले में ये राणियों के सहित जाया करते थे और नगर की स्त्रियों को मिठाई बँटवाया करते थे[3]। एक बार कहते हैं कि इन्होंने रात्रि के समय कोई तेज बाजीकरण औषधि का प्रयोग किया, जिसके फलस्वरूप कृष्णविलास नामक बाग में सम्वत् १८१३ के श्रावण मास में उनका देहान्त होगया[4]।

शेर के शिकार का शौक—महाराव दुर्जनशालजी को शेर का शिकार करने का बड़ा शौक था और अपने साथ राणियों को भी लेजाया करते थे। इन्होंने कोटा राज्य में कई जगह शिकार के लिये

---

(१) i कागजात सम्वत् १७८२, १७८३।
ii राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ९३३।

(२) i कागजात सम्वत् १७८३।
"महाराणी सीसोदिनीजी के केवल एक लड़की हुई, जो जीवित नहीं रही"।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३७३०।

(३) कागजात सम्वत् १८०५–०६।

(४) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३६५४।

माले बनवाये थे। शिकार में ये प्रायः कई महीने व्यतीत कर दिया करते थे। सिंह को मारने पर ये लोगों को इनाम, बख्शिश दिया करते थे[1]।

प्रमुख दरबारी—महाराव दुर्जनशालजी के समय में प्रमुख सरदार हिम्मतसिंह झाला था जो माधोसिंह का पौत्र था। मराठों के साथ दाँव पेंच की बातें करने में, मामलत निश्चित करने में, और इनकी लूटमार से कोटे को बचाने में हिम्मतसिंह का बहुत बड़ा हाथ था। हिम्मतसिंह का छोटा भाई पृथ्वीसिंह था। सम्वत् १७९६ में इसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जालिमसिंह रक्खा गया और हिम्मतसिंह ने उसको गोद लेलिया। जालमसिंह ने अपनी छोटी उम्र में ही वीरता और कुशलता का अद्भुत परिचय दिया जिसके कारण लगभग ६० वर्ष वह कोटा राज्य का कर्ताधर्ता बना रहा।

हिम्मतसिंह के अतिरिक्त आप रूपसिंहजी, भट्ट बेणीरामजी, भट्ट गोविन्दरामजी, कुँवर पृथ्वीसिंहजी, आप अजबसिंहजी, और आप भोपतसिंहजी ऐसे उमराव थे जिन्होंने दुर्जनशालजी की सेवा करने में अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं की। आप रूपसिंहजी पलायथे के जागीरदार थे। सम्वत् १८०१ में बूँदी की लड़ाई[2] में बड़ी वीरता के साथ लड़े थे और बूँदी की विजय होने के बाद इनको महाराव दुर्जनशालजी ने तारागढ़ की रक्षा के निमित्त अपना किलेदार नियुक्त किया था। जब मराठों की सहायता से महाराजा जयपुर ने बूँदी विजय किया और तारागढ़ को घेरा तो इन्होंने किला सुपुर्द नहीं किया था और अपने प्राण न्यौछावर कर देने का निश्चय कर लिया था। फिर कोटे से

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) कागजात सम्वत् १८०१।

महाराव दुर्जनशालजी का हुक्म पहुँचने पर ये किला छोड़ कर कोटे आये थे। भट्ट बेणीरामजी नागर ब्राह्मण थे। ये बड़े चतुर राजनीतिज्ञ और परिस्थिति को पहिचानने वाले थे। जब महाराव दुर्जनशालजी गद्दी पर बैठे तो इनको मसनदनशीनी का फरमान हासिल करने के लिये दिल्ली भेजा था। महाराजा ईश्वरीसिंहजी के पास इनको इस उद्देश्य से भेजा गया था कि उनसे बूँदी खाली कर देने के विषय में बातचीत करें। ये ही नवाब फखरुद्दौला तथा शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंहजी को बूँदी पर चढ़ा कर लाये थे। इनके पुत्र भट्ट गोविन्दरामजी शूरवीर योद्धा थे जिनके नेतृत्व में बूँदी को सम्वत् १८०१ में विजय करते समय कोटे की सेना लड़ी थी और भेरू दरवाजे के पास वीरतापूर्वक लड़ते हुये एक तोप के गोले की चोट से इन्होंने वीरगति प्राप्त की थी। कोयले के आप अजबसिंहजी ने उस समय अच्छा काम किया था, जब महाराव भीमसिंहजी के संसार त्याग की खबर सुन कर बूँदी के प्रधान सालमसिंह ने कोटे पर आक्रमण कर दिया था। महाराव दुर्जनशालजी के समय में भी अजबसिंहजी ने अच्छी सेवा की थी। इनके पुत्र कुँवर पृथ्वीसिंहजी उम्मेदसिंहजी के साथ महाराजा ईश्वरीसिंहजी के विरुद्ध महाराणा उदयपुर को सहायता देने के लिये भेजे गये थे और राजमहल की लड़ाई में इनके इतने घाव लगे थे कि अचेत अवस्था में इनको रणभूमि से उठा कर लाया गया था। आप भोपतसिंहजी नागदे के जागीरदार थे। ये भी राजमहल की लड़ाई में लड़े थे।

दुर्जनशालजी की भगवद्भक्ति और सरल प्रकृति—महाराव दुर्जनशालजी शूरवीर योद्धा और चतुर राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, वे अपने पिता की भाँति सच्चे ईश्वरभक्त भी थे और उनकी संस्कृत भाषा में अच्छी गति थी। वे नित्य, विशेषकर श्रावण मास में, भागवत का

पाठ किया करते थे[1]। गागरोण में उन्होंने एक मन्दिर बनवाया था जिसमें मधुसूदनजी की प्रतिमा स्थापित की थी। इसके उत्सव में दुर्जनशालजी बड़े प्रेम और भक्ति के साथ सम्मिलित हुये थे[2]। मन्दिरों के गुसाइयों को और साधु सन्तों को लाखों रुपये भेंट किया करते थे। रास्ते में भी यदि कोई तुलसी चन्दन उनके नजर करता था तो वहीं ठहर जाया करते थे और भक्तिपूर्वक उसको ग्रहण करके लाने वाले को इनाम दिया करते थे[3]। जिधर इनकी सवारी जाती थी, उधर कई ब्राह्मण तुलसी चन्दन लेकर खड़े रहते थे। प्रकृति इतनी सरल थी कि रास्ते में इनाम पाने की गरज से कोई भी आदमी, कोई भी चीज लेकर नजर करने के लिये खड़ा होता था, उसी को ग्रहण करते थे और इनाम दिया जाता था। सवारी के समय कलश बँधाने के लिये सैकड़ों औरतें आया करती थीं[4]।

प्रायः प्रति वर्ष दुर्जनशालजी यात्रा किया करते थे। सम्वत् १७९७ में उन्होंने सप्त स्वरूपों को एकत्र करने में एक लाख रुपये से ऊपर खर्च किये थे। गुसाईं गोरधनजी, गोविन्दजी, गिरिधारीजी, गिरधरलालजी, गोपालजी, घनश्यामजी, कल्याणरायजी, विजयनाथजी, हरिरामजी, गोपीनाथजी, और जगन्नाथजी जो वहाँ पर एकत्र हुये थे, उन्हें हजारों रुपये भेंट दिये गये थे[5]। इसके अतिरिक्त एक बार महाराव दुर्जनशालजी द्वारिका की यात्रा करने भी गये थे[6]। परम्परा से कोटे में बृजनाथजी

---

(१) कागजात सम्वत् १८०३।
भागवत की प्रति सरस्वती भण्डार में जिसमें लिखा है "निज पाठार्थम्"।

(२) कागजात सम्वत् १८०८।

(३) कागजात सम्वत् १७९८, १८००।

(४) कागजात सम्वत् १८९८।

(५) कागजात सम्वत् १८००, बस्ता नं ५१।

(६) कागजात सम्वत् १८११।

की सेवा हुआ करती थी, परन्तु सम्वत् १८०१ में बूँदी को जीतने के बाद दुर्जनशालजी मथुराधीशजी की प्रतिमा को कोटे लिवा लाये थे। इस प्रतिमा का कोटा नगर में बड़े समारोह के साथ स्वागत किया गया था और तत्कालीन मुसाहिब राय द्वारकादास ने इस प्रतिमा की स्थापना के लिये अपनी हवेली भेंट की थी[१]।

उन्होंने दिल्ली का जिब्हखाना बन्द करवाया—एक अवसर पर महाराव दुर्जनशालजी ने देखा कि पवित्र यमुना के तट पर अनेक गौओं का बध किया जाता है और उनका रक्त यमुना की धारा में मिलता है। इस दृश्य से महाराव दुर्जनशालजी के धार्मिक हृदय को घोर आघात पहुँचा और उन्होंने बादशाह से कहा कि ऐसा गर्हित कर्म बन्द होना चाहिये। यह जिब्हखाना औरंगजेब के जमाने से बना हुआ था और देहली निवासी हिन्दुओं को ही नहीं, बल्कि समस्त हिन्दू जो उस स्थान को देखते थे, उनको बड़ा दुःख होता था; परन्तु किसी का साहस नहीं होता था कि बादशाह से इसको बन्द करने के लिये कहे। महाराव दुर्जनशालजी के कहने पर यह जिब्हखाना बन्द होगया जिससे हिन्दू लोग उनके बड़े कृतज्ञ हुये और भारतवर्ष में उनकी अच्छी ख्याति हुई।

मन्दिर और इमारतें—इनके समय में अखाड़े का महल, मोती महल, नीचे का तहखाना आदि कई इमारतों का निर्माण किया गया। इनके मुसाहिब राय द्वारकादास ने तीन मन्दिर बनवाये। सूरज-पोल के पास के तालाब को इन्होंने गहरा करवाया और उसकी बहुत सारी पाल को पक्की करवाया। इनकी उदयपुर वाली महाराणीजी ने

---

(१) i कागजात सम्वत् १८०१।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

इस तालाब के बीच जगमन्दिर बनवाया। दुर्जनशालजी की भक्ति से प्रभावित होकर कोटा राज्य के अनेक धनाढ्य लोगों ने भी बल्लभमत ग्रहण किया और कई मन्दिर बनवाये।

धार्मिक उत्सव—महाराव दुर्जनशालजी ने अन्नकूट आदि बल्लभ सम्प्रदाय के सम्पूर्ण उत्सव जारी किये और सब बड़ी धूमधाम से राज की ओर से मनाये जाने लगे। बल्लभ मत के नाम महाराव भीमसिंहजी ने सुने थे, परन्तु उनके समय में इस सम्प्रदाय की कोटा राज्य में इतनी उन्नति न हो सकी थी जितनी दुर्जनशालजी के समय में हुई। जन्माष्टमी के अवसर पर किस प्रकार दरीखाने हों, सब जागीरदार किस पोशाक में आवें, बृजनाथजी के मन्दिर में उत्सव किस प्रकार मनाया जावे—ये सब बातें दुर्जनशालजी ने ही निश्चित और जारी की थीं।

दुर्जनशालजी की छोटी लड़ाइयाँ—दुर्जनशालजी और श्यामसिंहजी की परस्पर लड़ाई के कारण कोटा राज्य को बड़ी क्षति पहुँची थी। बूँदी का सम्पूर्ण राज्य तो भीमसिंहजी के देहान्त के बाद ही कोटे से अलग हो चुका था। अब कोटा राज्य की भ्रातृकलह के कारण रामपुरा, भानपुरा और कालीपीट के इलाके जो बादशाह फर्रुखसियर के समय में छोटे राजपूतों से भीमसिंहजी ने छीन लिये थे, अवसर पाकर कोटा राज्य से निकल गये। इस प्रकार की घटनाओं से उत्साहित होकर फूलबड़ौदा और गूगेर के खींची राजाओं ने भी कोटे से अपना राजनैतिक सम्बन्ध तोड़ने का प्रयास किया। फूलबड़ौदे के उपद्रव को दुर्जनशालजी ने आसानी से शान्त कर दिया और गूगेर के राजा पर चढ़ाई की। गूगेर के ठाकुर बलभद्रसिंह ने रामपुरा, श्योपुर-बड़ौदा और बूँदी को अपना सहायक बना लिया। श्योपुर-बड़ौदा पर

भीमसिंहजी ने बलात् अधिकार कर लिया था लेकिन उनके देहान्त पर यह प्रदेश कोटे से पृथक् होगया था। फिर भी श्योपुर-बड़ौदे के राजा के हृदय में कोटा नरेश के प्रति पुराना द्वेष बना हुआ था। रामपुरे को फर्रुखसियर की अनुमति से भीमसिंहजी ने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था, परन्तु यह इलाका भी भीमसिंहजी के देहान्त पर कोटा राज्य से पृथक् होगया था। फिर भी यहाँ का राजा कोटा राज्य के विरुद्ध स्वयम् उत्पात करने में तथा दूसरों से उत्पात कराने में लगा रहता था। बूँदी इस समय तक दलेलसिंह के अधिकार में थी और उम्मेदसिंहजी महाराव दुर्जनशालजी के पास रहते थे। अतः दलेलसिंह को दुर्जनशालजी का बहुत भय था। इन कारणों से श्योपुर-बड़ौदा, रामपुरा और बूँदी के शासक गूगेर के राजा के सहायक बन गये। जब दुर्जनशालजी ने गूगेर पर आक्रमण किया तो बलभद्रसिंह ने बड़ी वीरता के साथ उनका मुकाबला किया और अन्त में कोटा की सेना की हार हुई और खेत छोड़कर भागना पड़ा। इस अवसर पर कोटे का केसरियाँ झण्डा खींचियों के हाथ पड़ने ही वाला था कि उम्मेदसिंहजी ने बड़ी वीरता के साथ पीछा करने वाले शत्रुओं को खदेड़ भगाया और झण्डे को बचा लिया[1]।

घाटी के रावतजी की बगावत—घाटी का ठिकाना दरे के दक्षिण पूर्व में लगभग ३६ मील के फासले पर स्थित है। यहाँ के जागीरदार हाड़ा राजपूत हैं और माधोसिंहजी के जमाने में इनको घाटी की जागीर मिली थी। ये माधोसिंहजी के वंशज नहीं हैं। दूसरी खाँप के हाड़े हैं। माधोसिंहजी के समय में इस ठिकाने की आमदनी एक लाख रुपये थी। यहाँ के जागीरदार प्रायः प्रत्येक कोटा नरेश के साथ मुगलों के

(१) टॉड: जिल्द २, पृष्ठ ५०७।

पक्ष से लड़े थे और सब ने बड़ी वीरता के काम किये थे। दुर्जनशालजी के समय में यहाँ के रावत छीतरसिंहजी थे। सम्भवतः गूगेर के ठाकुर बलभद्रसिंह के बहकाने से इन्होंने कोटा नरेश की आज्ञा को भंग करना शुरू कर दिया और जब ताकीद की गई तो अपने स्वामी से ही लड़ने को तैयार होगये। उनका ऐसा रुख देख कर दुर्जनशालजी ने उन का दमन करने के लिये सेना रवाना की, परन्तु घाटी के दुर्ग की दृढ़ता और दुर्गमता के कारण कोटा की सेना को हार खानी पड़ी। तब महाराव दुर्जनशालजी स्वयम् एक बड़ी सेना लेकर घाटी पहुँचे और लड़ाई शुरू की। राव छीतरसिंहजी एक दिन तक तो अपने दुर्ग की रक्षा करते रहे, परन्तु दुर्ग कितना ही दृढ़ और दुर्गम क्यों न हो, आखिर एक ठिकाने का ठाकुर कोटा नरेश का कब तक मुकाबला कर सकता था ? अपनी स्थिति को नाजुक समझ कर छीतरसिंहजी किला छोड़ कर भाग निकले और रामपुरे के राव संग्रामसिंहजी के यहाँ शरण ग्रहण की। राव संग्रामसिंहजी इससे पूर्व कोटा नरेश के विरुद्ध गूगेर की सहायता कर चुके थे, अतः उनका साहस बहुत बढ़ गया था। उन्होंने निर्भीक होकर छीतरसिंहजी को शरण में रक्खा और कोटा नरेश का मुकाबला करने के लिये तैयारी करने लगे।

रामपुरे पर महाराव दुर्जनशालजी का आक्रमण— महाराव दुर्जनशालजी को छीतरसिंहजी के भाग निकलने पर यह आशंका होने लगी कि छीतरसिंहजी और संग्रामसिंहजी दोनों मिल कर किसी अवसर पर कुछ उत्पात न मचादें। ऐसी आशंका करने का विशेष कारण यह था कि राव संग्रामसिंहजी कोटा राज्य की सेना को हराने में गूगेर के सहायक थे। अतः दुर्जनशालजी ने रामपुरे की ओर अपनी सेना का कूँच किया और नगर के निकट पहुँच कर संग्रामसिंहजी

से कहलाया कि छीतरसिंहजी को अपनी शरण से हटा दो। संग्रामसिंहजी ने कहना नहीं माना और दुर्जनशालजी ने रामपुरे के घेरा डाल दिया। शहरपनाह के दरवाजों के फाटक बन्द करके राव संग्रामसिंहजी अपने नगर की वीरतापूर्वक रक्षा करने लगे, परन्तु कुछ अरसे बाद ही उनका प्रयत्न विफल होने लगा। दुर्जनशालजी ने सीढ़ियाँ लगाकर अपने सैनिक नगर में घुसा दिये और हाथियों के द्वारा दरवाजा तुड़वा कर नगर में प्रवेश किया। संग्रामसिंहजी अपने सात सौ सैनिकों के कट मरने के बाद दूसरे दरवाजे से भाग निकले और घाटी के रावत छीतरसिंहजी शेष सेना के साथ दुर्जनशालजी का सामना करते रहे। कुछ समय तक खूब लड़ाई होती रही, परन्तु अन्त में कोटा की सेना ने विपक्षियों को दबालिया और छीतरसिंहजी भी भाग निकले। रामपुरे पर महाराव दुर्जनशालजी ने अपना अधिकार करके अपनी दुहाई फिरादी और बहुतसा सामान लूट कर कोटा ले आये। कहा जाता है कि कोटे में मौलसिरी की ड्यौढ़ी के एक किवाड़ बूँदी का और एक किवाड़ रामपुरे की ड्यौढ़ी का है[1]।

बृजनाथजी और मथुराधीश—महाराव भीमसिंहजी ने बल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण किया था और गढ़ में मन्दिर बनवाकर बृजनाथजी की मूर्ति की उसमें प्रतिष्ठा की थी। उनका नियम था कि जहाँ कहीं लड़ाई में जाते तो अपने इष्टदेव की मूर्ति को अपने साथ ले जाया करते थे। चिनकुलीजखाँ के विरुद्ध लड़ते हुये जब महाराव भीमसिंहजी ने वीरगति प्राप्त की तो उनका हाथी बृजनाथजी की प्रतिमा के साथ निजामुल्मुल्क की लूट में चला गया। हैदराबाद के एक सेठ के माँगने पर चिनकुलीजखाँ ने वह प्रतिमा उसको देदी। सेठ ने एक मन्दिर बनवाया और

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

बृजनाथजी की प्रतिमा को उसमें प्रतिष्ठित कर दिया। राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् महाराव दुर्जनशालजी ने उस प्रतिमा को वापिस कोटे मँगवाने की इच्छा से व्यास द्वारिकादास को हैदराबाद भेजा। सेठ ने बड़ी उदारता के साथ वह प्रतिमा वापिस देदी। जब व्यास द्वारिकादास उसको लेकर वापिस आया तो महाराव दुर्जनशालजी ने अपनी राजधानी से २५ कोस की दूरी पर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रतिमा का स्वागत किया और एक जुलूस के साथ उसको कोटे लाये। जब बृजनाथजी की प्रतिमा लूट में चली गई थी तो मन्दिर खाली रखना अशुभ समझ कर उसमें गिरिधारीजी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करदी गई थी। बृजनाथजी की वापिसी पर गिरिधारीजी की प्रतिमा वहाँ से हटाकर दूसरे मन्दिर में रखदी गई और बृजनाथजी की प्रतिमा अपने स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित की गई। दुर्जनशालजी के समय में ही सम्वत १८०१ में मथुरानाथजी बूँदी से कोटे आये। उस समय दुर्जनशालजी का राजमन्त्री राय द्वारिकादास बड़ा भगवद्भक्त था। यह महाराव रामसिंहजी के शासनकाल से मन्त्री चला आता था। इसने मथुरानाथजी की प्रतिष्ठा के लिये अपनी हवेली भगवद् अर्पण करदी जिसमें अब तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। महाराव दुर्जनशालजी ने मथुराधीश का उसी प्रकार स्वागत किया जैसे किसी नरेश का किया जाता है और इस मन्दिर के खर्च के लिये बारह हजार के गाँव जागीर में प्रदान किये। तब से कोटा बल्लभ-मतानुयायी वैष्णवों का एक मुख्य तीर्थ धाम बन गया[1]।

यात्रा और यज्ञ—सम्वत् १८१२ में महाराव दुर्जनशालजी

---

(१) i ठाकुर लक्ष्मणदान।

ii कागजात सम्वत् १८०१।

द्वारिका की यात्रा करने गये थे और वापिसी पर उन्होंने उत्सव मनाया था। उस समय यात्रा करना साधारण काम नहीं था। विशेषकर एक नरेश के लिये। अपनी राजधानी को सूना छोड़ना और स्वयम् ऐसे प्रदेश में जाना जहाँ कोई निश्चित राजव्यवस्था नहीं थी और लूटमार का दौर-दौरा था, वास्तव में आपत्ति मोल लेना था। तो भी सच्ची भगवद्भक्ति के कारण उन्होंने यह कार्य किया। एक बार उन्होंने दीक्षित बालमुकुन्द से एक साधारण यज्ञ भी करवाया था[1]।

---

(१) कागजात सम्वत् १८०१ व १७९८।

महाराव अजीतसिंहजी

(सम्वत् १८१३–१८१५ विक्रम)

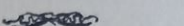

दुर्जनशालजी के देहान्त पर समस्या—देहावसान के समय दुर्जनशालजी के कोई पुत्र नहीं था। उनके छोटे भाई किशनसिंहजी का पहिले ही देहान्त हो चुका था। इसलिये यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि गद्दी पर किसे बिठाया जावे। इस समय दुर्जनशालजी से अत्यन्त निकट बिशनसिंहजी के ज्येष्ठ पौत्र और अन्ते के जागीरदार अजीतसिंहजी थे। सम्वत् १८१२ में अजीतसिंहजी का दूसरा या तीसरा विवाह हुआ था। जिसमें सम्मिलित होने के निमित्त महाराव दुर्जनशालजी अन्ता गये थे[1]। अजीतसिंहजी के दो पुत्र थे, शत्रुशालजी और गुमानसिंहजी। कोटे की गद्दी पर अजीतसिंहजी का अधिकार था, लेकिन उनकी अवस्था उस समय दुर्जनशालजी की विधवा महाराणी राणावतजी से अधिक थी। इसलिये उन्होंने शत्रुशालजी को गोद लेने का प्रस्ताव किया।

अजीतसिंहजी गद्दी पर बैठे—इस समय हिम्मतसिंह झाला फौजदार था। वह नहीं चाहता था कि शत्रुशालजी गद्दी पर बैठें। कारण यह बतलाया गया था कि यह उचित नहीं है कि अजीतसिंहजी अन्ते के जागीरदार बने रहें और उनका पुत्र कोटे का राज्य करे। अतः पहले अजीतसिंहजी को गद्दी मिलनी चाहिये और उसके बाद शत्रुशालजी को। हिम्मतसिंह उस समय इतना शक्तिशाली था कि उसकी इच्छा को उस समय कोई नहीं टाल सकता था। इसलिये

(१) कागजात सम्वत् १८१२।

महाराव अजीतसिंहजी
(१८१३–१८१५ वि०)

फाल्गुण सम्वत् १८१३ को अजीतसिंहजी कोटे की गद्दी पर बैठे और इनके दो पुत्र शत्रुशालजी और गुमानसिंहजी इनके साथ ही कोटे आये और महाराजकुमार कहलाने लगे[१]। गोदनशीनी का प्रश्न तय करने में लगभग आठ मास लग गये। इस अर्से में शासन संचालन विधवा महाराणी ने किया। दुर्जनशालजी के देहान्त के आठ मास बाद फाल्गुण में अजीतसिंहजी गद्दी पर बैठे।

चालीस लाख का नजराना दिया—इस समय कोटा राज्य के प्रति मुगलों का स्थान मराठों ने ग्रहण कर लिया था। पहिले ही लिखा जाचुका है कि सम्वत् १७९६ में कोटा राज्य ने बाजीराव पेशवा की अधीनता स्वीकार करली थी। फिर उसने कोटा राज्य सेन्धिया, होल्कर और पँवारों को संयुक्त जागीर के रूप में देदिया था[२]। सम्वत् १७९८ में कोटा राज्य की मामलत होल्कर, सेन्धिया और पँवार इन तीनों सरदारों में विभक्त होने लग गयी थी। सम्वत् १८०१ में चार सरदारों में अर्थात् मल्हारराव होल्कर, राणोजी सेन्धिया, यशवन्तराव पँवार और तुकोजी पँवार में विभक्त होने लगी। अजीतसिंहजी गद्दी पर बैठे उस समय तो मराठे लोग अपने आपको 'बादशाह' मानने लग गये थे और कोटा राज्य को अपनी माँडलिक जागीर समझते थे। मराठा सरदारों में इस समय सर्वाधिक शक्तिशाली राणोजी सेन्धिया था। जब अजीतसिंहजी उससे पूछे बिना ही कोटे की गद्दी पर बैठ गये तो उसको बड़ा क्रोध आया और सेना सजा कर कोटे पर चढ़

(१) i टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५६१।
ii कविराजा लक्ष्मणदान।
iii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३६५४।
iv कागजात सम्वत् १८१३।

(२) फालके—टिप्पणी १६४।

आया। होल्कर और पँवार भी उसके पीछे पीछे ही आगये। जब चारों मराठे सरदारों की संयुक्त सेनायें अजीतसिंहजी को गद्दी से उतारने के लिये कोटा नगर के पड़ोस में आपड़ीं तो राज्य के लिये एक विकट और विषम समस्या उपस्थित होगई। इस समय महाराणा की सलाह से और अपने मन्त्रियों की अनुमति से महाराव दुर्जनशालजी की विधवा पत्नी ने बड़ी युक्ति का आश्रय लेकर राज्य को बचाया। उन्होंने राणोजी सेन्धिाया के पास राखी भेजी और अजीतसिंहजी को गोद लेकर अपने राजकुल को स्थिर रखने की इजाजत चाही। कोटे की महाराणी और महाराणा उदयपुर की पुत्री की इस प्रार्थना ने सेन्धिया जैसे सरदार के हृदय में भी उच्च भावों का संचार कर दिया। शेष तीन सरदार सेन्धिया की अनुमति के बिना कुछ कर ही नहीं सकते थे। चारों सरदार इस बात पर सहमत होगये कि अजीतसिंहजी को गोद लेने दिया जावे[१], परन्तु मराठे इतनी उदारता नहीं कर सकते थे कि धन का लोभ भी त्याग देते। उन सबने मिलकर यह निश्चित किया कि अजीतसिंहजी से चालीस लाख रुपये नजराने के लिये जावें[२]। नजराने की रकम तय करने के लिये झाला हिम्मतसिंह फौजदार, राय अखयराम और पचौली रामकृष्ण कोटा दरबार की ओर से प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। इन तीन चतुर राजनीतिज्ञों के आग्रह और दाँव पेंच के कारण मराठे चालीस लाख रुपये लेने पर राजी हुये, वरना उनकी माँग शायद और भी ऊँची होती। इस नजराने की चार वार्षिक किस्तें की गईं, वार्षिक खण्डणी इसी में

(१) फालके—जिल्द प्रथम, लेखाङ्क १७९, टिप्पणी १९४।

(२) i उपरोक्त—लेखाङ्क १८०।

ii वंशभास्कर चतुर्थभाग पृष्ठ ३६५५।

मानली गई[1]। अन्तिम किस्त में दो लाख रुपये छूट के दिये गये थे।

मराठों को सैनिक सहायता—सम्वत् १८१३ में बाजीराव पेशवा ने मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव को उत्तर भारत में मराठा राज्य को अधिक विस्तृत और सुदृढ़ करने के लिये भेजा[2]। ये दोनों सरदार जयपुर राज्य के ढूँढार इलाके में पहुँचे और लूट खसोट करने लगे। इस समय महाराजा माधोसिंहजी राज्य करते थे, वे मराठों के तूफान को नहीं रोक सके और जयपुर में यह समय "गर्दिश का वक्त" माना जाने लगा[3]। मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव तथा उनका साथी सुखराम बापू ढूँढार को खूब खूँदते रहे। वहाँ से उन्होंने महाराव अजीतसिंहजी के नाम सहायता के लिये लिखा तो कोटे से घोड़ों के लिये नालें तथा मूछणें आदि भेजी गईं जिसमें ७०००) रु० खर्च हुये[4]। इस अवसर पर और भी सहायता अवश्य भेजी गई होगी।

अजीतसिंहजी का देहान्त—अजीतसिंहजी ने केवल डेढ़ वर्ष राज्य किया और वे निरन्तर आर्थिक संकट की चिन्ता में ही पड़े रहे। इधर राजकोष खाली होता जाता था और उधर मराठों की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। इनका देहान्त सम्वत् १८१५ में हुआ और उनकी राणी ने सहगमन किया। इनके पीछे महाराव शत्रुशालजी गद्दी पर बैठे[5]।

---

(१) i कागजात सम्वत् १८१३।
ii फालके–प्रथम भाग, लेखाङ्क १८०, टिप्पणी १६५।
(२) ग्रांट डफ–हिस्ट्री ऑफ मराठाज, जिल्द २, पृष्ठ १०१।
(३) i ठाकुर फतहसिंह चम्पावत—ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ जयपुर।
ii कर्नल ब्रुक—पोलीटिकल हिस्ट्री ऑफ जयपुर।
(४) कागजात सम्वत १८१३।
(५) कागजात सम्वत् १८१५, बस्ता नं० ५७।

महाराव शत्रुशालजी

(सम्वत् १८१५–१८२१ विक्रम)

गद्दी पर बैठे—महाराव अजीतसिंहजी के तीन पुत्र थे। शत्रुशालजी, गुमानसिंहजी और राजसिंहजी। शत्रुशालजी सब से बड़े थे। दो वर्ष पूर्व ही इनके गद्दी पर बैठने का अवसर आगया था, परन्तु झाला हिम्मतसिंह की नीति के कारण उस समय इनको राज्य नहीं मिला और इनके पिता को राजगद्दी पर बिठा दिया गया। अजीतसिहजी को शासन कार्य में रुचि नहीं थी; अतः हिम्मतसिंह चाहता था कि वे अधिक समय तक राज्य करते रहें जिससे शासन सूत्र झालों के हाथ में बना रहे, परन्तु दुर्दैव ने उसकी नीति और इच्छा को पूरी नहीं होने दिया और सम्वत् १८१५ में अपने पिता की मृत्यु के बाद महाराव शत्रुशालजी गद्दी पर बैठे।

मराठों की स्थिति—मराठों को इस समय रुपये की बहुत आवश्यकता थी। मारवाड़ और जयपुर राज्य में सेन्धिया और होल्कर पिछले पाँच वर्ष से धावे कर रहे थे। मारवाड़ में मराठों को सफलता हो चुकी थी। डीडवाणे के पास दत्ताजी सेन्धिया ने जयपुर की सेना को बुरी तरह हराया था और सन् १७५५ में (सम्वत् १८१२) मारवाड़ तथा जयपुर के नरेशों को मराठों के साथ विवश सन्धि करनी पड़ी थी जिसके अनुसार अजमेर नगर और आस पास का इलाका मराठों के सुपुर्द करना पड़ा था। इन लड़ाइयों में मराठों को बहुत रुपया खर्च करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त इस समय पेशवा होल्कर और रघुनाथ राव को दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये तैयार करना चाहता था।

पेशवा पर पहले ही बहुत कर्ज था और अब इन चढ़ाइयों की तैयारी के लिये उसको और रुपयों की आवश्यकता थी। जिस प्रकार महाराव अजीतसिंहजी की गोदनशीनी स्वीकार करते हुये मराठों ने कोटा राज्य को निचोड़ा था, उसी प्रकार छल, बल और कौशल द्वारा राजपूताने की सम्पूर्ण रियासतों को ये लोग पहले ही निचोड़ चुके थे। सन् १७५७ (सम्वत् १८१४) में पेशवा ने मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव को राजपूत रियासतों से धन एकत्र करने के लिये रवाना किया। अनेक रियासतों ने तात्कालिक आपत्ति टालने के लिये मराठों को भारी खण्डणी, नजराना और जुरमाना देने के वचन दे रक्खे थे, परन्तु राजकोष निरन्तर युद्धों के कारण खाली पड़े थे और कोई अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरी नहीं कर सकते थे। पेशवा की आज्ञा का पालन करने के लिये मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव लगभग छः हजार सेना अपने साथ लेकर राजपूताने की ओर रवाना तो होगये परन्तु धन कहीं नहीं मिला। अतः पेशवा के पास ऋण चुकाने के निमित्त धन भेजना तो दूर रहा, मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव दोनों उल्टे पेशवा से अपनी सेनाओं के निर्वाह के लिये रुपये माँगने लगे। उनकी निर्बलता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि दोनों ने बरवाड़े की गढी को घेर कर जब जयपुर से चालीस लाख रुपये दण्ड के और कुछ इलाका माँगा तो माधोसिंहजी ने इन्कार कर दिया और अपने नगर की तथा साँगानेर आदि स्थानों की रक्षा के लिये तैयारियाँ करने लगे। मराठे तीन मास तक बरवाडे को घेरे रहे और आसपास के गाँवों में लूटमार करके अपने सैनिकों का पेट भरते रहे परन्तु किले पर अधिकार नहीं कर सके। अन्त में माधोसिंहजी से दस लाख रुपये लेकर जयपुर राज्य से निकल गये।

शत्रुशालजी ने दो लाख रुपये टीके के दिये—सम्वत् १८१५ में जनकोजी सेन्धिया ने राजपूताने पर चढ़ाई की। शाहपुरा नरेश से चार लाख का वचन लिया और फिर वर्षा ऋतु होते हुये भी कोटे की ओर कूँच किया। इस समय महाराव अजीतसिंहजी का देहान्त हो चुका था। अतः सेन्धिया ने नये कोटा नरेश से नजराने के रूप में कुछ रुपये लेने का यह अच्छा अवसर देखा। उसी समय मल्हारराव होल्कर भी कोटे आगया। दोनों मराठे सरदार राजधानी में आ जमे और नजराना माँगने लगे। अभी पिछले नजराने की केवल एक किस्त चुकी थी, परन्तु मराठों के सैनिकों को अर्से से वेतन नहीं मिला था; अतः उनको तो येनकेन प्रकारेण रुपये चाहियें थे। दोनों सरदारों ने शत्रुशालजी से दो लाख रुपये टीके का नजराना ले लिया तब दिलासानामा अर्थात् सन्तोषपत्र दिया और कोटा राज्य का पिण्ड छोड़ा[1]।

जयपुर नरेश माधोसिंहजी की कृतघ्नता—शत्रुशालजी को गद्दी पर बैठे थोड़ा ही अर्सा हुआ था कि कोटे को जयपुर का सामना करना पड़ा। जयपुर नरेश ने कोटा राज्य को अपने अधीन बनाने के उद्देश्य से एक भारी सेना भेजी जिसके साथ भारी युद्ध हुआ। इस युद्ध में यदि कोटे का पराजय होजाता तो नहीं कहा जासकता कि राव माधोसिंहजी के वंश का इतिहास आज कैसा होता। इस समय जयपुर की गद्दी पर महाराजा माधोसिंहजी थे। उनको गद्दी पर बिठाने के लिये उदयपुर महाराणा जगतसिंहजी ने जो प्रयत्न किये थे उसमें महाराव दुर्जनशालजी ने निरन्तर साथ दिया था। इस नीति के कारण कोटा राज्य को गहरी क्षति उठानी पड़ी थी। राज-

(१) एस. पी. डी. जिल्द २, संख्या ९४, ९५, ९६, जिल्द २७, सं. २३०–२३६। सरकार—फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, ii, पृष्ठ १६४–९५। फालके—i, लेखाङ्क १९६, २१२।

महाराव शत्रुशालजी
(१८१५–१८२१ वि०)

महल के युद्ध में जयपुर से लड़ते समय दुर्जनशालजी महाराणा उदयपुर से सदैव इस बात पर सहमत थे कि माधोसिंहजी को जयपुर की गद्दी पर बिठाया जावे। इस प्रकार की शर्तें निश्चित होते समय माधोसिंहजी भी उपस्थित रहते होंगे। महराणा जगतसिंहजी और महाराव दुर्जनशालजी के प्रयत्न से माधोसिंहजी जयपुर की गद्दी पर नहीं बैठ सके। उनको जयपुर की गद्दी निस्सन्देह ईश्वरीसिंहजी की आकस्मिक मृत्यु के कारण मिली, परन्तु उदयपुर और कोटे की सहायता से माधोसिंहजी का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और इन दोनों नरेशों के प्रयत्न से ही उनको ठींक का परगना मिला था। ज्योंही वे गद्दी पर बैठे कि बूँदी की स्मृति उनके दिल में कसकने लगी। बहुत सम्भव था कि माधोसिंहजी सम्वत् १८१३ में ही कोटे पर बूँदी छीनने के लिये आक्रमण कर देते, परन्तु उसी वर्ष पेशवा के भाई रघुनाथराव ने अजमेर का किला छीनकर अन्य पार्श्ववर्ती राजपूत रियासतों को अधीन करने की आयोजना की[1] और इसी वर्ष जयपुर ने विवश होकर ग्यारह लाख रुपये प्रति वर्ष मराठों को मामलत देना स्वीकार किया। अजमेर की विजय के बाद राजपूताने पर मराठों का आधिपत्य भली प्रकार जम गया और कोटा राज्य पर आक्रमण करने का माधोसिंहजी का साहस नहीं हुआ।

कोटा और जयपुर के परस्पर संघर्ष का वर्णन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का कुछ उल्लेख किया जावे जिससे यह स्पष्ट होसके कि मुगलों या मराठों की अनुमति के बिना दो हिन्दू राज्यों में युद्ध कैसे होगया?

नादिरशाह के बाद मुहम्मदशाह की दशा—सन्

(१) राजपूताना गजट, जिल्द २, पृष्ठ १८।

१७३९ की ग्रीष्म ऋतु में बीस हजार दिल्ली निवासियों को कत्ल करके और रत्न जटित तख्त ताऊस को लेकर जब नादिरशाह वापिस चला गया तो मुहम्मदशाह के शौर्य और ऐश्वर्य नष्टप्रायः होगये। आठ दिन बाद मुहम्मदशाह ने दरबार किया, अपने नाम के सिक्के फिर जारी किये। अमीरों को खिलअत और इनाम दिये और सब वे ही रस्में कीं जो पहिले के मुगल बादशाह किया करते थे, परन्तु यह सब केवल तमाशा था। देखने वाले जानते थे कि करनाल के युद्ध में प्रधान सेनानायक, कई अमीर और बारह हजार सैनिक मर चुके हैं, थानेश्वर, पानीपत और सोनीपत आदि समृद्ध नगर लुट चुके हैं; शाही कोष और अमीरों के खजाने नादिरशाह को शान्त करने के लिये खाली होगये हैं और पन्द्रह करोड़ रुपये तथा पचास करोड़ का माल नादिरशाह लूट कर लेगया है। इतना ही नहीं नादिरशाह ने जबरदस्ती से अपने पुत्र के साथ दिल्ली की शाहजादी का विवाह करवा लिया है और करनाल के युद्ध में मारे हुये बड़े बड़े अमीरों की स्त्रियों और पुत्रियों का शील हरण किया जा चुका है। ऐसी दशा में मुहम्मदशाह क्या शासन कर सकता था? जो कुछ शक्ति शेष थी उसका उपयोग उसका वजीर करता था। इस समय उसका वजीर कमरुद्दीन एतमादुद्दौला था परन्तु वह भी अपना समय निकाला करता था। जब मालवा या गुजरात से मराठों के आक्रमण की खबर आती थी तो कमरुद्दीन अपने हृदय को शान्त करने के लिये मछली या हिरणों का शिकार करने के लिये या दिल्ली के निकट एक तालाब में कमलों को देखने के लिये चला जाया करता था। मुहम्मदशाह भी इसी प्रकार अपने दिल को ठण्डा किया करता था[1]।

(१) मिरातें वारीदात—पृष्ठ ११७–१८।

अहमदशाह का चरित्र—सन् १७४८ के अप्रैल मास में मुहम्मदशाह का देहान्त होगया और उसका लड़का अहमदशाह शाही तख्त पर बैठा[1]। इस समय मुगल साम्राज्य केवल नामशेष था और मराठों तथा प्रान्तिक सूबेदारों की शक्ति इतनी प्रबल होचुकी थी कि मुहम्मदशाह के बाद कोई असाधारण पुरुषार्थी बादशाह होता तो शायद मुगलों के विलीन वैभव को वापिस लौटा सकता था; परन्तु दैवगति विचित्र है। बिगड़ी बात को और अधिक बिगाड़ने के लिये अहमदशाह तख्त पर बैठा जिसका चरित्र अत्यन्त हीन था और बल तथा पुरुषार्थ कभी कभी किंचित् झलक दिखाने के लिये उसमें प्रगट हुआ करते थे। शासन या सेना संचालन का उसको कुछ अनुभव नहीं था। दो कोस लम्बे चौड़े स्थान में जिसमें अगणित सुन्दर स्त्रियाँ भरी पड़ी थीं, वह अपना अधिकांश समय व्यतीत किया करता था। जब वह जनाने से बाहर आता था तो बच्चों से खेल किया करता था उसने अपने एक ढाई वर्ष के बच्चे को सन् १७५२ में पंजाब का सूबेदार नियत किया था और दूसरे एक वर्ष के बच्चे को उसका नायब सूबेदार। इस शिशु सूबेदार से दीवाने खास में नजर लीगई थी और उसके नायब को खिलत फाखरा भेजा गया था। इसी प्रकार एक वर्ष का बच्चा काश्मीर का सूबेदार नियत किया गया था[2]।

अहमदशाह के सलाहकार—अहमदशाह के दो मुख्य सलाहकार थे। एक उसकी माँ ऊधमबाई और दूसरा जाविदखाँ जो मुहम्मदशाह के जमाने में हरमखाने का एक साधारण सा अफसर था। ऊधमबाई एक सुन्दर वेश्या थी जिसको एक अमीर की लड़की ने बादशाह तक पहुँच करवा कर उसकी अत्यन्त प्रेयसी बना दिया था।

(१) तारीख अहमदशाह ई. और डी., जिल्द ८, पृष्ठ १११।

(२) उपरोक्त—सर्कार: फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द १, पृष्ठ ३२७–३०।

तख्त पर बैठने पर अहमदशाह उसका अत्यधिक सम्मान करने लगा और वह अपने लड़के के नाम पर राज्य करने लगी। ऊधमबाई के निरंकुश व्यवहार से अमीरों में असन्तोष बढ़ने लगा। विशेष कर इसलिये कि वह जाविदखाँ से प्रेम करती थी और वह कई बार हरमखाने में रातें गुजारा करता था। बादशाह का प्रताप इन घटनाओं से कितना क्षीण होगया था, वह इस बात से प्रगट होता है। जब शाही महल के सिपाहियों को एक वर्ष तक वेतन नहीं मिला तो महल के दरवाजे पर उन्होंने एक गधा और एक कुतिया बाँध दी। जब अमीर लोग किले में आते थे तो उनसे कहा जाता था कि पहिले इनसे सलाम कीजिये, यह नवाब बहादुर हैं और यह हजरत ऊधमबाई हैं[1]।

आर्थिक संकट और सैनिक क्षीणता—अब बादशाह की आय इतनी थोड़ी थी कि उसका घरू खर्च भी आसानी से नहीं चल सकता था। अतः सिपाहियों का वेतन तीन साल से नहीं चुकाया जिससे चारों ओर हाहाकार मच गया था। भूखे सिपाही दिल्ली के बाजार में उत्पात मचाया करते थे। कई बार उन्होंने फौजबख्शी पर हमले किये थे और शाही महल के फाटक बन्द कर दिये थे। महलों में बाहर के लोगों का आना जाना बन्द करके उन्होंने अन्दर लोगों की बड़ी दुर्दशा कर दी थी। जब अमीरखाँ फौजबख्शी का देहान्त होगया तो भूखे सिपाहियों ने जिनको अरसे से अपनी तनख्वाह नहीं मिली थी, उसके दरवाजे को घेर लिया और उसकी लाश को नहीं उठने दिया। अन्त में जब सब की तनख्वाह चुकादी गई तब अमीरखाँ का शव दफनाया जासका[2]। यह स्थिति इतनी

(१) तजकिरा शाकिर खाँ (हस्त लिखित खुदाबख्श पुस्तकालय पटना में)।
(२) सर्कार—फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द १, पृष्ठ ३४३–४६।

शोचनीय होगई कि शाही तोपखाने के शस्त्र, गलीचे, पुस्तकें, रसोई के बर्तन, बाजे आदि पदार्थों की सूची बनाई गई और ये सब बाजार में बेचे गये और जो कुछ रुपया मिला, उससे सिपाहियों का वेतन चुकाया गया। सैनिक लोग जबरदस्ती से वजीर, अमीर और साहूकारों की दूकानों से बहुमूल्य चीजें उठा उठा कर लेजाने लगे और बाजार में बेचने लगे। इस स्थिति को अहमदशाह देखता था और रोता था। पर बेचारा करता क्या[1] ?

बादशाह और वजीर में लड़ाई—इस समय दिल्ली दरबार में सफदरजंग नामक वजीर बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था। वास्तव में दिल्ली में जो कुछ बात बनी हुई थी उसका सर्व श्रेय सफदरजंग को ही था। सफदरजंग ने अपनी आमदनी का साधन जागीर द्वारा निश्चित् कर रक्खा था। येन केन प्रकारेण वह कुछ सैनिक भी रखता था और अपने बुद्धि बल द्वारा उसने माधोसिंह आदि राजपूत राजाओं पर भी कुछ प्रभाव जमा रक्खा था। ऐसा चतुर वजीर असहाय अहमदशाह का क्या आदर कर सकता था ? क्योंकि उसके पास न बुद्धि थी, न बल था न धन। अतः अहमदशाह सफदरजंग से द्वेष करने लगा और उसको अपने पद से हटाने का प्रयत्न करने लगा। बादशाह ने सफदरजंग से छुटकारा पाने के लिये षड़यन्त्र रचा। उसने अपनी सहायता के लिये मराठों को आमन्त्रित किया। इधर सफदरजंग ने सूरजमल जाट से दिल्ली लुटवा दी। तब बादशाह और वजीर में लड़ाई छिड़ गई। इसमें शाही सेना का वेतन चढ़ गया और बादशाह के ही नहीं, ऊधमबाई के भी सब जवाहिरात बिक गये[2]।

माधोसिंहजी ने सन्धि करवाई—तब बादशाह ने अपनी

(१) शकिर खाँ : तजकिरा, पृष्ठ ३४।
(२) सरकार : फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर जिल्द १, चेप्टर २।

सहायता के लिये जयपुर के महाराजा माधोसिंहजी को बुलाया। माधोसिंहजी ने इस विपिन्न अवस्था में भी बादशाह का साथ दिया। वे बहुत बड़ी सेना लेकर दिल्ली की ओर चले। अपनी सेना के खर्च का प्रबन्ध भी उन्होंने स्वयम् ही कर लिया। दिल्ली पहुँच कर वे वजीर से मिले और दोनों एक ही हाथी पर बैठ कर पहिले ऊधमबाई से और फिर बादशाह से मिलने गये। बादशाह दीवाने खास के फाटक तक पैदल उनका स्वागत करने आया। दूसरे दिन अहमदशाह और माधोसिंहजी ने एकान्त में बात चीत की। बादशाह ने बड़ी नम्रतापूर्वक कहा कि इस नाजुक समय में आप साम्राज्य की रक्षा करो। वरना इसका नामोनिशान मिट जायगा[१]। माधोसिंहजी ने बादशाह को आश्वासन दिया और सूरजमल से मिल कर सन्धि की बात चीत की। अन्त में उन्होंने सफदरजंग से बादशाह की सन्धि करवादी। सफदरजंग अवध में जाकर रहने लगा। बादशाह के पास जो एकमात्र योग्य अमीर था, वह भी दिल्ली से चला गया।

माधोसिंहजी को रणथम्भौर मिला—रणथम्भौर पर तीन पीढ़ी से जयपुर का दाँत लगा हुआ था। रणथम्भौर सूबा अजमेर का एक सरकार था और वहाँ पर कुछ सैनिकों के साथ एक फौजदार रहता था। सवाई जयसिंहजी ने रणथम्भौर के आस पास के कुछ इलाकों को इजारे पर लेलिया था। परन्तु रणथम्भौर का फौजदार अब भी अपने आपको मुगलों का मातहत मानता था। ईश्वरीसिंहजी की भी बड़ी इच्छा थी कि रणथम्भौर उनके हाथ में आजावे। इसलिये इस विषय में उन्होंने मुहम्मदशाह से कई बार प्रार्थना भी की थी। यों तो मुहम्मदशाह को न तो रणथम्भौर से कोई आमदनी थी और

(१) i एस. पी. डी., २७ वाँ, पृष्ठ ८३।
ii तारीख अहमदशाही।

न उसमें इतनी शक्ति थी कि रणथम्भौर का वह कोई उपयोग कर सके, और यदि वहाँ का फौजदार बागी हो जावे तो उसका दमन कर सके तो भी वह शान का बहुत भूखा था। इसलिये उसने रणथम्भौर ईश्वरी-सिंहजी को नहीं दिया। ईश्वरीसिंहजी चाहते तो बलपूर्वक इस किले को ले सकते थे परन्तु वंशानुगत संस्कारों के कारण शाही इलाके पर आक्रमण करने का उनका साहस नहीं होता था। फिर भी रणथम्भौर के विषय में वे मन में मुहम्मदशाह से अप्रसन्न रहा करते थे। यही कारण था कि मानूपुर की लड़ाई में वे दिल से नहीं लड़े और रणक्षेत्र छोड़ कर भाग आये। अब शाही घराने की स्थिति और भी क्षीण हो चुकी थी। ऐसे संकट के समय में बहुत बड़ी सेना लेकर निःस्वार्थ भाव से माधोसिंहजी अहमदशाह की रक्षा करने के लिये आये थे और बड़ी युक्ति से उन्होंने सन्धि करवा कर बादशाह की आबरू रक्खी थी। अतः बादशाह का कृतज्ञ होना स्वाभाविक बात थी। जब माधोसिंहजी दिल्ली से रवाना होने लगे तो अहमदशाह ने उनको रणथम्भौर का फरमान देदिया[1]।

मल्हारराव होल्कर ने शाही लश्कर को लूटा—एक बार बादशाह और फौजबख्शी में लड़ाई होगई। शाही लश्कर सिकन्दराबाद पहुँचा तो मल्हारराव होल्कर ने उस पर आक्रमण कर दिया। शाही हरमखाने की कितनी ही स्त्रियों के रथ लूट लिये गये और इनमें से कितनी ही स्त्रियों के साथ सैनिकों ने बलात्कार किया[2]।

बादशाह पर मराठों की माँग—इमादुद्दोला ने मराठों को बहुत बड़ी धनराशि देने का वचन देकर उन बेगमों को कैद से छुड़ाया; परन्तु उसके सामने यह समस्या खड़ी होगई कि मराठों की माँग किस

(१) सरकार: फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द १, पृष्ठ ५०१—०४।
(२) तारीख अहमदशाही, पृष्ठ १३१–३४।

प्रकार पूरी की जावे[1]। तब नगरनिवासियों का धन हरण करके नो लाख रुपये नकद दिये गये और साढ़े सतरह लाख रुपयों की हुंडियाँ दीगईं। फिर भी इमाद से पहिली किस्त अदा न होसकी। अक्टूबर सन् १७५४ में मराठों के वकील ने दिल्ली से लिखा था कि "शेष साढ़े तेरह लाख रुपये के लिये वजीर से नित्य तकाजा किया जाता है, किन्तु बादशाह या वजीर के पास कुछ रुपया नहीं है और उनके सिपाही भूखों मर रहे हैं। नित्य छुरी कटारियाँ चल जाती हैं। फिर भी हम रुपये माँगते हैं। विवश होकर वजीर चाहता है कि दिल्ली के आसपास का इलाका जिसकी आमदनी से बादशाह और वजीर अपना निर्वाह करते हैं, हम साढ़े तेरह लाख रुपये के बदले में रुपया चुके तब तक अपने अधिकार में करलें[2]"।

दिल्ली निवासियों का धनहरण—मराठों को चालीस लाख रुपया देने के लिये इमादुल्मुल्क ने ऊधमबाई के भाई बहिन और नगर निवासियों के साथ बड़ी नृशंसता का व्यवहार किया। ऊधमबाई के भाई बहिन की विपुल सम्पत्ति और जागीर जब्त करली और गड़े हुये धन का पता लगाने के लिये स्त्रियों के साथ बड़े अत्याचार किये। इसी प्रकार भूतपूर्व वजीर के साथ दुर्व्यवहार किया गया। फिर हर एक मालदार आदमी को अपने घर में कैद करके उसका धन छीना गया। बहुत से लोगों के साथ मारपीट की गई। सारे नगर में हाहाकार मच गया। अमीरों के बाद गरीबों का रक्त शोषण किया गया और प्रत्येक घर से जितना रुपया मिल सका, लिया गया। इतने पर भी मराठों की माँग पूरी करने के लिये और सैनिकों की चढ़ी हुई तनख्वाह चुकाने के लिये यथेष्ट धन इकट्ठा नहीं होसका। तब लोगों को और लूटा गया

(१) एस. पी. डी., जि० २१, सं० ६०, २७, ९०।
(२) एस. पी. डी., जि० २७, सं० ८९–९०।

जिससे बादशाह का सम्मान बिल्कुल जाता रहा और सारे नगर में अराजकता फैल गई[1]।

शाही परिवार की दुर्दशा—इस समय बादशाह और उसके परिवार की बड़ी दयनीय दशा थी। एक ओर शाही कोष खाली पड़ा हुआ था और दूसरी ओर मराठों की दुर्निवार्य माँग थी। इस विपत्ति के कारण बादशाह आलमगीर द्वितीय नैराश्य और सन्ताप में ही डूबा रहता था। उसकी दुर्दशा, का नग्न चित्र भी उसको चारों ओर दिखाई देता था। अभी उसको तख्त पर बैठे हुये केवल छः सप्ताह हुये थे। इसी अर्से में निर्धनता ने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि किले से जामा मसजिद को ईद की नमाज पढ़ने को जाने के लिये उसके पास कोई सवारी नहीं थी। महल के सब भण्डार खाली पड़े थे। तीन वर्ष से सैनिकों को वेतन नहीं मिला था। रिसाले के घोड़े बिक चुके थे। पैदलों के शरीर पर कपड़े नहीं थे। बादशाह के खास हाथी और घोड़ों को भी दाना घास नहीं मिलता था। अतः जब बादशाह बाहर जाता था तो उसके साथ कोई नहीं जाया करते थे। यहाँ तक कि बादशाह के निशानबरदार का भी पता नहीं चलता था। जब आलमगीर द्वितीय ने अपना जन्म दिन मनाया तो उसकी विपन्नावस्था का भयंकर चित्र लोगों के सामने उपस्थित हुआ। रत्नजटित अनमोल मयूरासन के स्थान में एक काष्ठ निर्मित चौकी थी जिस पर हीरे और जवाहिरात के चित्रमात्र थे। दीवान खास में इनेगिने नौकर थे। एक दो अमीरों के सिवाय जो दिल्ली के निवासी थे, न कोई अमीर था न कोई राजा। बादशाह स्वयम् मुगलों के विलीन वैभव का एक वीभत्स खँडहर प्रतीत होता था। एक बार कई दिन की निरन्तर भूख से पीड़ित

(१) सरकार: फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर जिल्द २, पृष्ठ ३१–३६।

होकर शाहजादियाँ परदा तोड़ कर शहर में आने लगीं जिनको बड़ी कठिनाई से रोका गया[1]।

दिल्ली में अहमदशाह अब्दाली का आतंक—इसी समय दिल्ली के पास नजीराबाद में अहमदशाह अब्दाली ने अपनी सेना का पड़ाव डाला। नादिरशाह के भीषण नरसंहार को स्मरण करके नगर निवासी और प्रधान राजकर्मचारी त्रस्त होगये। कुछ राजकर्मचारियों ने एकत्र होकर अब्दाली के नाम का खुतबा पढ़वा दिया। असहाय आलमगीर ने इस प्रकार अपनी दुर्दशा देख कर शाही तख्त छोड़ दिया और शाही रंगमहल तथा ख्वाबगाह छोड़ कर वह शाहबुर्ज में जारहा। दो दिन बाद बेचारे को यहाँ से भी निकाल कर एक साधारण स्थान में डाल दिया[2]। इसके बाद ही अहमदशाह ने जुलूस के सहित दिल्ली में प्रवेश किया। बाजार की सब दुकानें बन्द करवादी गईं। दोनों ओर लोगों को अपने मकान की खिड़कियों में से देखने की भी मनाई कर दी गई। बाजार में लोगों का घूमना बन्द किया गया। दोनों ओर अहमदशाह के सैनिक पंक्तियाँ बना कर खड़े हुये। अहमदशाह अब्दाली हाथी पर बैठ कर बाजार में घुसा। उसकी स्त्रियाँ ऊँट और घोड़ों पर बैठी हुईं उसके साथ आईं। अब्दाली की इच्छानुसार आलमगीर द्वितीय ने उसका स्वागत किया। दोनों बादशाह किले में दाखिल हुये। अहमदशाह की स्त्रियाँ शाही महलों में रहने लगी। उसके सैनिकों ने दिल्ली में खूब लूटमार की और एक बाजार को आग लगा कर जला दिया। दूसरे दिन दीवान आम में दरबार हुआ जिसमें दोनों बादशाह

---

(१) तारीख आलमगीर सानी, पृष्ठ १९०।

(२) सरकार: फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द २, पृष्ठ ९६।

पास पास बैठे[1]।

नगर निवासियों का धनहरण—दिल्ली से अधिक से अधिक धनराशि प्राप्त करने के लिये राजकर्मचारी और नगरनिवासियों के साथ घोर नृशंसता का व्यवहार किया। इन्तिजामखाँ वजीर से दो करोड़ रुपये माँगे और जब उसने असमर्थता प्रगट की तो उसको काठ में रखने की धमकी दीगई। अपने प्राण बचाने के लिये उसने कह दिया कि मेरी माता शोलापुरी बेगम को मेरे पिता के गड़े हुये धन का पता है। यह वृद्ध महिला एक वजीर की पतोहू, दूसरे की विधवा पत्नी और तीसरे की माता थी। इसको घसीट कर अहमदशाह के सामने लाया गया और धमकाया गया कि यदि गुप्तनिधि न बतला दी जावेगी तो उसके हाथों में लोहे की खूँटियाँ ठोकी जावेंगी। बेचारी सुनते ही अचेत होगई और जब उसकी मूर्च्छा हटी तो उसने गड़ा हुआ धन बतलाया। सौ आदमियों के खोदने पर सौलह लाख रुपये नकद और अनमोल जवाहिरात निकले। तब और अधिक तलाश कीगई। प्रतिष्ठित महिलाओं को नंगी करके उनके साथ क्रूर व्यवहार किया गया। इसी प्रकार अन्य कई अमीरों के घरों की तलाशी लीगई और गड़ा हुआ धन खोदा गया। नगरनिवासियों के साथ भी घोर क्रूरता की गई। सम्पूर्ण नगर को कई भागों में विभक्त करके प्रत्येक भाग कुछ सैनिकों के सुपुर्द कर दिया गया जिन्होंने लोगों को रोमाञ्चकारी यातनायें दे देकर विपुल धनराशि एकत्र की। अब्दाली केवल रुपया या मोहरें चाहता था अतः नृशंसताओं से बचने के लिये लोगों ने आठ रुपये तोला सोना बेचा और उसकी इच्छा पूरी की। इतने पर भी लोगों के मकान लूटे गये और स्त्री तथा बच्चों तक को उत्पीड़ित किया गया। कितने ही पुरुषों की हत्या हुई और

(१) सरकार : फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द २, पृष्ठ ६६–९८।

कितनी ही स्त्रियों के साथ बलात्कार। सैकड़ों स्त्रियाँ स्वयम् छुरे भोंक कर या पानी में डूब कर मर गईं। धनहरण के अतिरिक्त अहमदशाह अब्दाली को जहाँ कहीं सुन्दर हिन्दू युवती का पता लगता था उसी को अपने यहाँ पकड़वा मँगवाता था। उसके पुत्र तीमूरशाह के साथ आलमगीर की लड़की जहूरा बेगम की जबरदस्ती शादी भी हुई[1]।

लूट कर अब्दाली वापिस गया—(१७५७) अनेक रम्य नगरों को इस प्रकार उजाड़ कर तथा असंख्य आबाल वृद्ध नरनारियों को मार कर अहमदशाह अब्दाली ने स्वदेश लौटने की तैयारी की। अपने साथ वह मुहम्मदशाह की षोड़श वर्षीया कुमारी शाहजादी हजरत बेगम को जबरदस्ती लेगया। इस बेचारी ने आलमगीर द्वितीय के साथ विवाह करने से इन्कार करके अनेक यातनाएँ सही थीं। परन्तु अब उसे अब्दाली की कामवासना पर बलिदान होना पड़ा, जो उसका बाबा प्रतीत होता था, जिसके दोनों कान सड़ रहे थे, और नाक पर कोढ़ चू रहा था। उसके साथ मुहम्मदशाह की दो बेगमों को, अहमदशाह (दिल्ली) की एक शाहजादी को, और अन्य कई शाही परिवार की युवती महिलाओं को भी जाना पड़ा। इनके अतिरिक्त लगभग चार सौ दासियों को भी अब्दाली ने अपने साथ लिया[2]। अब्दाली अपने साथ लगभग नौ करोड़ रुपये नकद और अपरिमित सामान लूट कर लेगया था। लूट के माल का अनुमान इससे हो सकता है कि वह अढ़ाईस हजार ऊँट, हाथी, खच्चर और गाड़ियों पर लदा हुआ था। इसके अतिरिक्त बीस हजार घोड़े भी लदे हुये थे और घुड़सवार सब पैदल गये थे।

(१) एस. पी. डी., जि० २१, सं० १०४।
सरकार : फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जिल्द २, पृष्ठ १०२।
(२) i एस. पी. डी., जि० २१, सं० ११८, २८, २७, १५२।
ii टॉड : राजस्थान, जिल्द १, पृष्ठ ६३।

मुहम्मदशाह की बेगमों का सामान इससे अलग था और दो सौ ऊँटों पर लदा हुआ था[1]।

आलमगीर को उसके वजीर ने मारडाला—अब्दाली के जाते ही बादशाह के वजीर इमाद और अब्दाली के प्रतिनिधि नजीब में अनबन रहने लगी। नजीब सब शक्ति अपने हाथ में रखना चाहता था और इमाद अपने हाथ में। अपनी इष्टपूर्ति के लिये नजीब दत्ताजी सेंधिया से मिला जो सन् १७५९ में पंजाब पर पुनः अधिकार करके दिल्ली आया था। परन्तु सेंधिया से नजीब का मेल नहीं हो सका। तब दत्ताजी सेंधिया ने इमाद को अपने पक्ष की ओर आमन्त्रित किया। इमाद यह चाहता ही था, अतः वह सेंधिया से मिलने के लिये दिल्ली से खाना होने की तैयारी करने लगा। उस समय सेंधिया ने सुखरथाल का घेरा डाल रक्खा था जो नजीब का किला था। प्रस्थान करते समय वजीर ने सोचा कि यदि आलमगीर दिल्ली में रहा, और अब्दाली ने या नजीब ने पुनः दिल्ली पर अधिकार कर लिया तो बादशाह का अनुचित उपयोग किया जावेगा। अतः प्रस्थान करते समय उसने आलमगीर को छल से मरवा कर नदी तट पर फिंकवा दिया और मशहूर कर दिया कि बादशाह फिसल कर मर गया।

(१) एस. पी. डी., जि० २, सं० ७१।

मराठों की शक्ति का विस्तार

मराठों का उत्थान--जिस समय मुगल शक्ति का इस प्रकार क्षय होचुका था तो मराठों की शक्ति अत्यन्त प्रबल और विस्तृत होगई थी। अटक से कटक तक और सम्पूर्ण दक्षिण देश में मराठों का दौर दौरा था। कहीं उनकी सत्ता जम गई थी और कहीं उनका आतंक। लेकिन देश का कोई भाग ऐसा नहीं था जिसको मराठों के घोड़ों ने नहीं खूँदा हो।

राजपूताने में मराठे—राजपूताने की प्रत्येक रियासत ने मराठों की अधीनता स्वीकार करली थी। जयपुर के एक नरेश ने उनसे त्रस्त होकर विषपान कर लिया था और दूसरे ने विवश होकर उनको विपुल धनराशि नजर की थी। हिन्दुआँ सूरज, मेवाड़ के महाराणा मराठों को खण्डणी देते थे। बूँदी के पुराने राजवंश की कोटा नरेश ने मराठों की सहायता से ही रक्षा की थी। कोटे से मराठे चालीस लाख रुपये दण्ड के और फिर दो लाख रुपये नजराने के माँग चुके थे।

बंगाल, बिहार आदि—बंगाल और बिहार के नवाब मराठों के धावों से तंग आकर उनको चौथ देने लग गये थे। रूहेलों से अभी मराठों का संघर्ष जारी था। उनसे लड़ते हुये मराठों का बड़ा सरदार दत्ताजी सेंधिया मारा भी गया था। परन्तु मराठे हार कर बैठने वाले नहीं थे। वे लगातार बार बार रूहेलखण्ड पर आक्रमण करते थे जिससे नजीबखाँ विजयी होकर भी परेशान था।

दिल्ली—इमाद ने मराठों से शाही बेगमों को छोड़ने के एवज में चालीस लाख रुपये देने का वादा किया था इसलिये नगरनिवासियों

पर और शाही परिवार पर जो तबाही आई, उसका पहले ही जिक्र किया जा चुका है। सन् १७५८ में मराठों ने दिल्ली पर आक्रमण किया। नजीबखाँ नगर को छोड़ भागा और नगरनिवासियों को घोर यातनायें सहनी पड़ीं। शाही महल और किला मराठों की तोपों के गोलों से जगह जगह गिर गया। सन् १७६० में सदाशिवराव भाऊ ने दिल्ली पर आक्रमण करके कब्जा कर लिया। उसके सिपाही शाही महल में और हरमखाने में जा घुसे और बहुत लूटमार हुई। दीवाने खास की चांदी की छत को गला कर भाऊ ने लगभग नौ लाख रुपये प्राप्त किये। इस प्रकार मराठों ने दिल्ली की रही सही श्री और कीर्ति को भी नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

पंजाब—सन् १७५६ में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब को जीत कर लाहौर में अपना सूबेदार नियत किया। अहमदशाह अब्दाली के वापिस लौटते ही उसके सूबेदार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी डेढ़ साल तक ज्यों त्यों वह अपना शासन निभाता रहा। सन् १७५८ में मराठों ने पंजाब पर आक्रमण किया। पहिले सरहिन्द और फिर लाहौर पर अपना अधिकार करके लाहौर में अपना सूबेदार नियत कर दिया। लगभग एक वर्ष तक पंजाब पर मराठों का मुख्यतः सेंधियाओं का शासन रहा।

इस प्रकार सन् १७५८ के लगभग भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक भाग में मराठों का राज होगया। अब भारतवर्ष भर में मराठों का कुछ सामना करने वाला कोई था तो वह केवल हैदराबाद का निजाम था। सन् १७६० के आरम्भ में पेशवा और निजाम में लड़ाई हुई और उसने मराठों को पन्द्रह लाख रुपये प्रतिवर्ष चौथ के और पैंतालीस लाख वार्षिक आय का इलाका देकर अपने प्राण बचाये। इस

समय ऐसा मालूम होता था कि मराठों की शक्ति भारतवर्ष में अप्रतिद्वन्द्व है और उनका शासन निष्कण्टक।

उत्तर भारत से मराठों का हटना—सन् १७५९ के अन्त में अहमदशाह अब्दाली ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की और पंजाब से मराठों को भगा दिया। दो सप्ताह बाद ही दक्षिण में खबरें पहुँचने लगीं कि दत्ताजी सेंधिया एक लड़ाई में मारा गया और जनकोजी भाग कर राजपूताने की ओर चला गया। इस समाचार से पेशवा को घोर आघात पहुँचा। उत्तर भारत से मराठों का इस प्रकार हटना उनका घोर ह्रास था। अब उसके सामने विकट समस्या थी कि पुनः किस प्रकार उत्तर भारत में मराठों का आधिपत्य स्थापित किया जावे।

पानीपत की लड़ाई—सोच विचार कर पेशवा ने सदाशिव राव भाऊ की अध्यक्षता में जो बाजीराव पेशवा का भतीजा था, एक बहुत बड़ी सेना उत्तर भारत की पुनर्विजय के निमित्त रवाना की। भाऊ के साथ बालाजी बाजीराव का पुत्र विश्वासराव भी भेजा गया जो उस समय केवल १७ वर्ष का था। भाऊ की सेना में बाईस हजार मराठे सैनिक थे। इसके अतिरिक्त आठ हजार सैनिक इब्राहीमखाँ गार्दी के साथ थे जो भाऊ के साथ रवाना किया गया था। सेना के साथ आठ हजार तोपें थीं और आठ सौ मन बारूद, जो वास्तव में इस महान् कार्य के लिये पर्याप्त नहीं थे। मालवा प्रान्त में होता हुआ भाऊ उत्तर की ओर बढ़ा। जौलाई मास में भाऊ ने दिल्ली पर आक्रमण किया। किले में बहुत कम सिपाही थे। थोड़ी देर तुर्कों ने और दुर्रानियों ने मराठों का सामना किया। इस के पश्चात् मराठे किले में घुस पड़े। दीवान खास, रंगमहल और मोतीमहल को लूटा और जो हाथ पड़ा, उठा कर निकल गये। भाऊ ने दीवान खास की छत को

खुदवाया और उसमें जो चाँदी सोना तथा जवाहिरात निकले, उससे अपने सैनिकों का वेतन चुकाया। दिल्ली विजय से भाऊ को कुछ लाभ नहीं हुआ। छत खुदवाने से जो उसको लगभग नौ लाख रुपये का चाँदी सोना मिला, उससे उसकी विपुल सेना का क्या काम चल सकता था? उधर अहमदशाह अब्दाली ने पानीपत के पास अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया और सदाशिवराव भाऊ का सामना करने की प्रतीक्षा करने लगा। भाऊ बढ़ता हुआ पानीपत पहुँचा और शत्रुसेना से कुछ दूर उसने भी अपनी सेना का पड़ाव डाला। नजीबखाँ रुहेला के इलाकों से अब्दाली को जो रसद पहुँचाई जा रही थी, उसको रोकने का भाऊ ने प्रयत्न किया। नवम्बर सन् १७६० में दोनों सेनायें कई दिवस तक इस प्रकार आमने सामने डेरे डाले पड़ी रहीं। अहमदशाह अब्दाली रणचातुरी के साथ मराठा लश्कर की गति और विधि को सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा था। वह जानता था कि विस्तृत मराठा फौज में रसद की कमी के कारण शीघ्र ही विषम स्थिति उपस्थित हो जावेगी। मराठे समझते थे कि अहमदशाह अब्दाली उन पर आक्रमण करने से डरता है और इसीलिये चुप है। मराठे सवार अहमदशाह अब्दाली के चारों ओर मँडराया करते थे और अवसर पाकर इक्के दुक्के सिपाहियों को मार कर प्रसन्न हुआ करते थे। नजीबखाँ की मदद से अब्दाली को तो अवश्य रसद मिलती रही, परन्तु मराठा लश्कर तक किसी की पहुँच नहीं हो सकती थी। नजीबखाँ के लोगों ने मराठा लश्कर के सब रास्ते बन्द कर दिये थे। मराठों की एक दूसरी सेना ने रुहेलखण्ड और अवध में हमले करके इस स्थिति का निवारण करने का प्रयत्न किया परन्तु उनको सफलता नहीं हुई। मराठों की मदद के लिये जो खजाना जा रहा था, उसको भी मुसलमानों ने लूट लिया। मराठों की सेना में अन्न का घोर अभाव होगया और सैनिक तथा

सवारियाँ भूख से उत्पीड़ित होकर मरने लगीं। इस प्रकार की संकटमय अवस्था को देख कर भाऊ ने चाहा कि अब्दाली से सन्धि कर ली जावे। परन्तु उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। अन्त में १३ जनवरी सन् १७६१ को मराठों ने विवश होकर युद्ध करने का निश्चय किया और दूसरे दिन वे रणाङ्गण में जा डटे। अहमदशाह के सैनिक अधिक सधे हुये थे, वश में थे और स्वस्थ तथा सन्तुष्ट थे। इधर मराठा सैनिकों को कई दिन से भरपेट भोजन भी नहीं मिला था। फिर भी घोर युद्ध हुआ। दोनों पक्ष अद्भुत वीरता के साथ लड़े। लगभग दो बजे विश्वासराव के गोली लगी और वह तत्काल धराशायी होगया। इससे सदाशिवराव भाऊ और भी अधिक आवेश और प्राणपण से लड़ा। उसके तीन घोड़े लड़ते लड़ते मर गये। उसके कई घाव लगे और अन्त में अपनी कटी हुई सेना में एक निराश और श्रान्त सिंह की भाँति घूमता हुआ कई मुसलमान सैनिकों को मारने के बाद स्वयम् मारा गया। मल्हारराव होल्कर और जनकोजी सेंधिया फिर भी लड़ते रहे। सायंकाल होते होते होल्कर रणक्षेत्र छोड़ भागा। जनकोजी सेंधिया के गहरा घाव लगा। जसवन्तराव ने वीरगति प्राप्त की। और अनेक अन्य वीर मराठे सरदारों ने प्राणों की आहुतियाँ दीं। नायकहीन मराठा सेना खेत छोड़ भागी। अभी अँधेरा नहीं हुआ था। अतः विजयी मुसलमानों ने निर्दयतापूर्वक उनका पीछा किया और जो मिला, उसको मार डाला। दूसरे दिन प्रातःकाल अट्ठाईस हजार हिन्दू सैनिक रणक्षेत्र में पड़े हुये दिखाई दिये। हजारों यूँ ही ठण्ड से मर गये थे और लगभग नौ हजार हिन्दू सैनिक या सेवक जो इधर उधर छिपे हुये थे, अहमदशाह के हुक्म से मार डाले गये।

मराठों की पराजय का परिणाम—पानीपत में मराठों की पराजय का हाल सुन कर प्रायः सब राजपूत रियासतें उनके विरुद्ध

होगईं । राजपूताना और मालवा के बीच में जो राजपूत रियासतें थीं, वे सब स्वतन्त्र होगईं। कोटा नरेश के एक राठौड़ सेनानायक ने गागरोण के किले में से मराठा अफसरों को मार भगाया। महाराणा मेवाड़ ने मराठों को चौथ देने से इन्कार कर दिया। जयपुर नरेश माधोसिंहजी राजपूताने से मराठों को मार भगाने का प्रयत्न करने लगे। पेशवा पराजय के आघात से पागल होकर थोड़े दिन बाद ही मर गया। अब्दाली स्वदेश लौट गया। जाते समय शाहआलम द्वितीय को उसने दिल्ली का बादशाह मान लिया और नजीबखाँ रुहेले को अपना प्रतिनिधि तथा दिल्ली के बादशाह का प्रधान सचिव बना गया। वास्तव में नजीबखाँ ही दिल्ली का अब कर्ता धर्ता बन गया। शाहआलम द्वितीय कितने ही साल तक पूर्व में भटकता रहा और नजीबखाँ शाहआलम द्वितीय के नाम पर शासन करता रहा। लगभग १० वर्ष तक सैयद भाइयों की भाँति उसने दिल्ली में शासन किया। इससे उसकी स्थिति बहुत प्रबल होगई, परन्तु उसको इतना कभी साहस नहीं हुआ कि वह राजपूताना या अन्य प्रान्तों पर आक्रमण करके उनको अधिकृत करता। उसने केवल रुहेलखण्ड पर और दिल्ली पर ही शासन किया। इस प्रकार की राजनैतिक स्थिति में राजपूताने की रियासतों पर न मराठों का पर्याप्त नियन्त्रण था और न मुसलमानों का।

माधोसिंहजी का प्रयत्न—मराठों के पराजय का समाचार सुनते ही माधोसिंहजी उनको राजपूताने से भी उखाड़ने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने नजीबखाँ, याकूबअली और शाहआलम द्वितीय के पास अपने प्रतिनिधि भेजे और मराठों के विरुद्ध एक संघ संगठित करने का प्रस्ताव किया। साथ ही उन्होंने शोपुर, बूँदी, कोटा और करौली के नरेशों को भी सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया।

यह निश्चय किया गया कि सब नरेश एक स्थान पर एकत्र हों और मराठों के विरुद्ध चढ़ाई करने की तैयारी की जावे[1]।

कोटा नरेश माधोसिंह जी से नहीं मिले—महाराव शत्रुशालजी ने माधोसिंहजी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और मराठों के विरुद्ध आयोजन में सिम्मलित नहीं हुये। इसके दो कारण थे। मल्हारराव होल्कर इससे पहिले ही बीस दिन तक गागरोण के किले पर घेरा डालकर और गोलों की वर्षा करके १७६१ के जून मास में वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर चुका था। राजपूताना और मालवा के बीच का प्रदेश जो चन्द्रावत राजपूतों ने मराठों की हार के बाद जीत लिया था, उसको भी होल्कर ने वापिस छीन लिया था। इन घटनाओं के कारण शत्रुशालजी मराठों के विरुद्ध खड़े होने का साहस नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त शत्रुशालजी यह भी जानते थे कि माधोसिंहजी का उद्देश्य मराठों को निकाल भगाने का नहीं है बल्कि राजपूताने में अपना आधिपत्य जमाना है। माधोसिंहजी ने जिस आतुरता के साथ रणथम्भौर दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया था और अब अपने अर्द्ध स्वतन्त्र सामन्तों पर चढ़ाई करने की जो तैयारियाँ कर रहे थे, इसी से प्रगट हो रहा था कि माधोसिंहजी का वास्तिविक उद्देश्य क्या है?

रणथम्भौर जयपुर के हाथ आया—सम्वत् १८१६ में मराठों ने रणथम्भौर के किले के घेरा डाला और यह ही कोटा और जयपुर के भावी विग्रह का कारण बना। अहमदशाह सम्वत् १८११ में यह किला माधोसिंहजी को दे चुका था, परन्तु यह केवल कानूनी कार्रवाई थी। उस समय तक रणथम्भौर मुसलमान फौजदार के हाथ में ही था। इस किले का हाडों के साथ पुराना सम्बन्ध था। सम्वत्

(१) एस. पी. डी. जिल्द २९, सं० ८१, २१, ९१।

१६२४ में अकबर ने बूँदी के राव सुर्जन से एक ऐसा अहदनामा करके इसको अपने कब्जे में किया था जिसके कारण बूँदी को मुगल दरबार में ऐसा सम्मान् प्राप्त होगया था जो किसी अन्य राजा को नहीं था। तब से निरन्तर यह किला मुसलामनों के हाथ में चला आरहा था, परन्तु अब मुसलमानों की शक्ति अत्यन्त क्षीण होचुकी थी। अधिकांश राजपूत रियासतें मराठों को मामलत देने लग गईं थीं और अजमेर भी मराठों ने छीन लिया था। अतः राजपूताने से मुगलों के प्रभाव को बिल्कुल नष्ट करने के लिये मराठों ने रणथम्भौर पर भी कब्जा करना चाहा। उस समय रणथम्भौर में एक मुगल फौजदार रहता था। मुगल साम्राज्य का क्षय देखकर सम्भव है कि यह एक छोटी सी मुसलमान रियासत स्थापित करने का स्वप्न देख रहा हो। सम्भवतः इसी कारण अब तक माधोसिंहजी का इस पर कब्जा नहीं हुआ था। इसने मराठों को कई मास तक रोका, परन्तु मराठों की युद्ध नीति बहुत कुशल थी, वे स्वयम् न थक कर विपक्ष को थकाया करते थे। उनकी इस विधि से रणथम्भौर का नवाब आखिरकार घबरा गया और उसने बूँदी के रावराजा उम्मेदसिंहजी को सहायता के लिये लिख भेजा। ऊम्मेदसिंहजी को बूँदी की गद्दी पर बैठे हुये अभी अधिक समय नहीं हुआ था और राज्य पर अपना शासन अभी वे भलीभाँति जमा भी नहीं पाये थे। अतः उन्होंने सहायता देने में आनाकानी की। तब नवाब ने विवश होकर जयपुर के महाराजा माधोसिंहजी को लिखा और बातचीत होकर यह निश्चय हुआ कि किला महाराजा माधोसिंहजी के सुपुर्द कर दिया जावे[१]।

(१) i टॉडः राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५६२।
ii नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १५, अंक २, पृष्ठ १६७–६८।
iii वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३६६४–६५।

मराठे अर्से से लड़ते लड़ते परिश्रान्त हो चुके थे और अब उनको नये ताजा सैनिकों का सामना करना पड़ता। अतः वे हार कर भाग गये।

सरकार रणथम्भौर के अन्तर्गत राज्य—इस किले के आधीन ८३ महल थे। कई एक रजवाड़ों का भी इससे सम्बन्ध था। इसमें बूँदी और कोटा के राज्य मुख्य थे। रणथम्भौर सूबा अजमेर का एक सरकार था और कोटा राज्य के कई परगने इसके सुपुर्द थे। इन परगनों की मामलत भी सरकार गढ़ रणथम्भौर के द्वारा अजमेर भेजी जाती थी। रणथम्भौर के फौजदार की कोटे के प्रति लगभग वही हैसियत थी, जो आजकल पोलिटिकल एजेन्ट की है। परन्तु यह उसी समय तक रही जब तक मुगलों की शक्ति क्षीण नहीं हुई। औरंगजेब की मृत्यु के बाद यह सम्बन्ध शिथिल होने लगा और मुहम्मदशाह के जमाने में यह केवल नाममात्र का रह गया। सम्वत् १८०० के बाद कोटा राज्य के कई परगने, कहने को, सरकार गढ़ रणथम्भौर के सुपुर्द थे, लेकिन यह केवल बात ही बात थी। न अब मुगलों को कोई मामलत दी जाती थी और न कोई मातहती का प्रश्न था। कोटा राज्य ने इस समय मराठों की मातहती स्वीकार कर ली थी।

माधोसिंहजी कोटा को अधीन करना चाहते थे—जब महाराजा माधोसिंहजी का रणथम्भौर पर कब्जा होगया तो उन्होंने सोचा कि अब कोटा और बूँदी को उसी प्रकार जयपुर की मातहती स्वीकार करनी चाहिये जैसे वे रणथम्भौर के अधीन थे। वास्तव में कोटा और बूँदी रणथम्भौर की मातहती नहीं करते थे। मातहती मुगल सम्राट् की की जाती थी। इस समय मुगल सम्राट् का केवल नामशेष रह गया था। अतः इन दोनों राज्यों ने रणथम्भौर के फौजदार की आज्ञा मानना भी बन्द कर दिया था और न फौजदार ही

इनको आज्ञा देने का साहस करता था। फौजदार की स्थिति का इसी से पता चलता है कि जब रणथम्भौर के किले को मराठों ने घेरा तो उसने बूँदी के रावराजा उम्मेदसिंहजी से सहायता की याचना की थी[1]। यह सब कुछ होते हुये भी महाराजा माधोसिंहजी कोटा और बूँदी पर अपना सिक्का जमाना ही चाहते थे। वास्तव में कोटा और जयपुर में वैमनस्य तीन पीढ़ी से चला आता था और ऐसा प्रतीत होता है कि घरेलू साम्पत्तिक संकटों से घिरे हुये भी माधोसिंहजी को उनके सलाहकार कोटे के साथ खटपट करते रहने की ही सलाह दिया करते थे। इसके अतिरिक्त इस वैमनस्य के बढ़ने का एक कारण यह भी हुआ। रणथम्भौर के आसपास इन्द्रगढ़, खातौली, आदि जो छोटे छोटे हाड़ाओं के राज्य थे, वे मुगलों के ठिकाने थे और सरकार गढ़ रणथम्भौर के द्वारा दिल्ली सम्राट् को कर दिया करते थे। महाराजा सवाई जयसिंहजी ने बादशाह मुहम्मदशाह से रणथम्भौर दुर्ग का इलाका इजारे पर लेलिया था और कोटरियों से वे कर वसूल किया करते थे। कोटरियों के सरदार सवाई जयसिंहजी को बादशाह का इजारेदार मानते थे और इसलिये कर देने में वे आपत्ति नहीं करते थे। जब रणथम्भौर का किला जयपुर के हाथ आया तो महाराजा माधोसिंहजी ने इन सरदारों से पूर्ववत् कर लेना चाहा। इस पर हाड़ा लोग तैयार नहीं हुये। सब मिलकर महाराव शत्रुशालजी के पास आये और कहा कि हम सब लोग आपकी मातहती करने के लिये तैयार हैं। आप हमारी जयपुर से रक्षा कीजिये। महाराव शत्रुशालजी ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपने मुसाहिब राय अखयरामजी, खेड़ली के महाराजा बख्तसिंहजी और साँगोद के महाराजा

(१) i काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १५, अंक २, पृष्ठ १६७।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

नाथसिंहजी को इन सरदारों के साथ शर्तें तय करने के लिये नियुक्त किया। शर्त यह ठहरी कि इन्द्रगढ़, खातौली आदि सरदार कोटे को नालबन्दी देंगे और कोटा उनकी रक्षा करेगा[1]।

जयपुर की सेना की कोटा राज्य पर चढ़ाई और उणियारा तथा लाखेरी पर अधिकार—उपरोक्त कारणों से कोटा और जयपुर का पारस्परिक द्वेष बढ़ता ही गया और आखिर सम्वत् १८१७ में महाराजा माधोसिंहजी ने एक प्रबल सेना के साथ कोटे के विरुद्ध कूँच की। इस सेना का नायक उनका मुसाहिब राजसिंह घुरचड़ा बनाया गया था। साथ में रामगढ़ के ठाकुर हमीरसिंह, ईसरदा के ठाकुर अजीतसिंह, पलानहेड़े के ठाकुर भवानीसिंह, सेवे के ठाकुर श्यामसिंह खँगारोत, तथा मछेरी, वाटको और अचरोल आदि ठिकानों के ठाकुर थे। इस सेना ने पहिले उणियारा पर आक्रमण किया। यहाँ का ठाकुर कुछ अर्से से राजनैतिक परिस्थित का लाभ उठा कर जयपुर के महाराजा की उपेक्षा करने लग गया था। जयपुर की सेना ने बात की बात में उणियारा पर अपना कब्जा कर लिया और वहाँ के ठाकुर ने जयपुर की आधीनता स्वीकार कर ली[2]। उणियारा को विजय करने के बाद जयपुर नरेश वापिस चले गये और उनकी सेना लाखेरी पहुँची। इस स्थान पर मराठों ने पहिले से ही कब्जा करके अपना हाकिम नियत कर रक्खा था। माधोसिंहजी की सेना ने उसको मार भगाया और वहाँ पर जयपुर का आधिपत्य स्थापित कर दिया।

पाली घाट पार किया—इस विजय से सेनानायक का साहस और भी बढ़ गया और वह चम्बल को पार करने के लिये उधर की ओर मुड़ा, जहाँ पर चम्बल और पार्वती दोनों नदियाँ मिलती हैं।

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३६९७।

यह स्थान पालीघाट कहलाता है और ढीपरी, इलाका इन्द्रगढ़ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर है। कोटा राज्य पर आक्रमण करने वाली जयपुर सेना के लिये सैनिक दृष्टि से यह स्थान चम्बल को पार करने के लिये सर्वोत्तम था। पालीघाट की रक्षा करने का कार्य उस समय सुलतानपुर के हाड़ा जागीरदार के सुपुर्द था। जब उसने सुना कि जयपुर की सेना कोटा राज्य में घुसी हुई आरही है तो यह अनुभव करते हुये भी कि वह अपने अल्प सामर्थ्य के साथ जयपुर की प्रबल सेना का सामना नहीं कर सकता, मुकाबिला करने को तैयार होगया और बड़ी वीरता के साथ लड़ कर उसने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। इसके बाद जयपुर की सेना कोटे की ओर आगे बढ़ती रही[1]।

कोटे की सेना की कूँच—इधर जब कोटे में खबर पहुँची कि पालीघाट पार करके सेना बढ़ी चली आरही है तो उसका मुकाबिला करने की तैयारियाँ की जाने लगीं। कोटे की सेना के साथ कोटा राज्य के समस्त छोटे बड़े जागीरदार थे और सेना का संचालन तथा नेतृत्व राय अखयराम और झाला जालिमसिंह के सुपुर्द था। महाराव शत्रुशालजी भी सेना के साथ जाना चाहते थे, लेकिन उनके सरदारों ने कहा कि जब जयपुर की सेना के साथ महाराजा माधोसिंहजी नहीं हैं तो उसके मुकाबिले के लिये जाने वाली सेना के साथ आपका जाना योग्य नहीं है। कोटे की सेना रवाना हुई और दोनों सेनाओं का निजामत माँगरोल में भटवाड़े के पास मुकाबिला हुआ। कहा जाता है कि कोटे की सेना में केवल पन्द्रह हजार सवार थे और जयपुर की सेना में साठ हजार के लगभग थे। इस स्थिति से राय अखयराम और झाला जालिमसिंह बहुत चिन्तित हुये और सोच विचार कर यह

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

निश्चित किया कि मल्हारराव होल्कर की सहायता लेनी चाहिये[1]।

जब माधोसिंहजी की सेना कोटे की ओर बढ़ रही थी तो मल्हारराव होल्कर पास के इलाके में पड़ाव डाले पड़ा था और उसके पास सेना भी काफी थी। जालिमसिंह ने उससे सैनिक सहायता चाही और चार लाख रुपये देने का वचन दिया। मल्हारराव होल्कर इससे पहिले ही जयपुर और कोटा दोनों से सन्धि कर चुका था, इसलिये दोनों में से किसी का पक्ष ग्रहण करना वह उचित नहीं समझता था। साथ ही यह बात अवश्य थी कि महाराजा माधोसिंहजी ने कुछ अर्से से होल्कर को निश्चित मामलत देना बन्द कर रक्खा था और टालटूल कर रहे थे। मल्हारराव होल्कर ने जालिमसिंह को केवल इस रूप में सहायता देने का वचन दिया कि मैं रणभूमि के निकट अपनी सेना का पड़ाव डाले रहूँगा और देखता रहूँगा कि युद्ध की गति कैसी है? यदि जयपुर की सेना हारने लगेगी तो उनके डेरों को लूटूँगा। इससे कोटा की सेना को बड़ी सहायता मिली। मराठे जयपुर के विरुद्ध चाहे लड़े नहीं, लेकिन उनको यह आशंका अवश्य बनी रही कि होल्कर कोटे की सहायता करेगा[2]।

भटवाड़े के मैदान में युद्ध आरम्भ हुआ:—आरम्भ में जयपुर के तोपखाने से कोटे के ७०० सैनिक मारे गये और जालिमसिंह को विपरीत चिन्ह दिखाई देने लगे। उसी क्षण कोयला, पलायथा, साँगोद, बमूल्या आदि ठिकानों के जागीरदारों ने एकत्र

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३६९६।
ii टॉड राजस्थान जिल्द २, पृष्ठ ५६२–६३।
iii एस. पी. डी. जि० २१, सं० ९४; जि० २९, सं० २७।

होकर निश्चय किया कि जय हो या पराजय, रणभूमि को नहीं छोड़ना चाहिये। लड़ाई फिर अधिक उत्साह के साथ आरम्भ हुई और दोनों पक्ष के लगभग १२०० सवार मारे गये। दूसरी बार कोटे के सैनिकों ने धावा किया तो जयपुर की सेना के पैर उखड़ गये और मैदान छोड़कर सेना पीछी भागने लगी। भागते हुये इसको एक छोटी सी नदी सूकनी नामक पार करनी थी, उसमें इस समय पानी नहीं था और कीचड़ से भरी हुई थी। इसमें सैकड़ों घोड़े फँस गये। कोटे की सेना ने इनका पीछा किया और इनका बहुत सा असबाब लूट लिया। जयपुर की सेना भागती रही और कोटे की सेना ने उसका पीछा करना जारी रक्खा। पांच मील की दूरी पर खेरदा नामक गाँव के पास जयपुर की सेना को फिर एक नाला पार करना पड़ा और वहाँ फिर गहरा नुकसान उठाया। इधर मल्हारराव होल्कर ने जयपुर के डेरे लूटने शुरू कर दिये। लगभग दश मील तक जयपुर की सेना का पीछा करके कोटे की सेना वापिस फिरी और १७ हाथी, १८०० घोड़े, ७३ तोपें और एक पचरंग निशान लूट कर कोटे लाई। महाराव शत्रुशालजी ने विजयी सेना का बड़ा स्वागत किया। इस युद्ध में जयपुर के कितने ही सरदार मारे गये, जिनमें पलान हेड़े के ठाकुर भवानीसिंह, सरसा के ठाकुर अजीतसिंह, और सेवे के ठाकुर श्यामसिंह खँगारोत मुख्य थे। मछेरी, ईसरदा, अचरोल, बारौली, आदि ठिकानों के ठाकुर भी लड़ाई में सम्मिलित थे। परन्तु उन्होंने खेत छोड़ दिया और भाग निकले। बूँदी से भी सेना भेजी गई थी, परन्तु वह लड़ी नहीं और युद्ध का दृश्य देखती रही[1]। भटवाड़े के पराजय के बाद जयपुर ने फिर कोटा राज्य से कर माँगने का कभी साहस नहीं किया।

(१) i ठाकुर लक्ष्मणदान।
ii टॉडः राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५६३।

जयपुर के तीन नरेशों ने अर्थात् सवाई जयसिंहजी, ईश्वरीसिंहजी और माधोसिंहजी ने कोटा राज्य से द्वेष किया, अन्तिम दो नरेशों ने तो आक्रमण भी किये, परन्तु कोटा सदैव विजयी रहा।

राय अखयराम, झाला जालिमसिंह और धाभाई जसकरण विजयी होकर मल्हारराव होल्कर को साथ लेकर कोटे पहुँचे। लूट का असबाब हाथी, घोड़े और निशान आदि महाराव शत्रुशालजी के सामने प्रदर्शित किया गया। उस समय विजयी सैनिकों का सत्कार किया गया और बड़े बड़े सरदारों को एक एक घोड़ा बख्शा गया। जो सरदार मारे गये थे, उनके पुत्रों को घोड़ा भेंट देकर सम्मानित किया गया। इस लड़ाई में निम्न लिखित सरदार मारे गये थे :—

आप नाथसिंहजी राजगढ़, अमानसिंहजी हाड़ा नौटाणा, चाँदसिंहजी सीसोदिया, गुलाबसिंहजी सोलंकी, इन्द्रसिंहजी मोतीकुआ, शेरसिंहजी राठौड़, फतेहसिंहजी पूर्विया।

निम्न लिखित सरदार लड़ाई में सम्मिलित हुये थे और विजयी होकर वापिस लौटे थे :—

आप रूपसिंहजी पलायथा, ठाकुर शिवसिंहजी ऊमरी भदौड़ा, राव विजयसिंहजी ऊमरी भदौड़ा, ठाकुर बख्तसिंहजी नरूका सीसवाली, ठाकुर हिम्मतसिंहजी नरूका माँगरोल, ठाकुर चाँदसिंहजी रामलोत हाड़ा सारथल, ठाकुर जोधसिंहजी रामलोत मोखमपुरा, भीमसिंहजी राजावत नरूका बाड़ौली, मंगलसिंहजी रेलावण, हरीसिंहजी सीसोदिया ऊमरी भदौड़ा, अजीतसिंहजी राठौड़ अकावद, गुमानसिंहजी नागदा। इनमें राजगढ़, पलायथा, रेलावण और नागदा के जागीरदार कोटे के भाई थे[1]।

यह लड़ाई अगहन शुक्ला चतुर्थी सम्वत् १८१८ को हुई थी

(१) कागजात सम्वत् १८१८ और १८१९।

और इसमें केवल सेना के जाने और आने में ३,५५,०००) रुपये खर्च हुये थे[1]। इस लड़ाई में विजयी होकर जब झाला जालिमसिंह आये तो उनकी ख्याति और प्रभाव बहुत बढ़ गया। उस समय जालिमसिंह की अवस्था केवल २१ वर्ष की थी, परन्तु वीरता, कुशलता और नीतिज्ञता में वे अप्रतिम थे। विजय का सम्पूर्ण श्रेय जालिमसिंह को दिया गया। उनकी कीर्ति गीतों में गाई जाने लगी और इस घटना के बाद कोटा राज्य में वे प्रमुख व्यक्ति बन गये।

मराठा दफ्तरों के पत्रों के आधार पर सर जादुनाथ सरकार ने लिखा है[2] कि भटवाड़े की लड़ाई वास्तव में होल्कर और माधोसिंहजी की सेना में हुई थी। माधोसिंहजी का मुख्य उद्देश्य भी मराठों से स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। कोटे का सम्बन्ध इससे यह था कि माधोसिंहजी की सेना कोटा राज्य में घुसी चली आती थी। अतः अखयराम पचौली के नेतृत्व में कोटे की ३,००० सेना मल्हारराव के साथ होगई, परन्तु माधोसिंहजी के पराजय का श्रेय मुख्यतः मराठों को है। सरकार के कथन का आधार केवल मराठों के पत्रों पर है जो स्वयंश्लाघा के कारण अपने ही काम को मुख्य मानते हैं। कोटा राज्य के सरकारी कागजात से, ठाकुर लक्ष्मणदान के इतिहास से तथा अत्यन्त प्रचलित किंवदन्तियों से यह सिद्ध है कि भटवाड़े की लड़ाई कोटा और जयपुर में हुई थी, जालिमसिंहजी ने इसमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी और कोटा राज्य के कई सरदार इस युद्ध में मारे गये थे।

कोटा और मराठे—मराठों की नीति मुगलों की नीति के समान स्थिर नहीं थी। जिन राज्यों ने उनकी अधीनता स्वीकार करली थी, उनमें भी अकारण लूटमार करते हुये ये नहीं हिचकते थे। आर्थिक माँग उनकी पूरी होती ही नहीं थी। मामलत के अतिरिक्त नजराणा

(१) कागजात सम्वत् १८१८ और १८१६।
(२) फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, जि० २, पृष्ठ ५०६–७।

और जुर्माना वसूल करने का वे अवसर देखा करते थे। जो राज्य उनका सामना करता था, उस पर टीड्डी दल के समान टूट पड़ते थे और गाँवों तथा खेतों को तबाह कर डालते थे।

शत्रुशालजी के शासन में कोटा मराठों की गति और नीति का केन्द्र बन चुका था[1]। यह राज्य होल्कर और सेन्धिया के राज्यों से सटा हुआ था। मालवे से दिल्ली को कूँच करते हुये यह मराठों के रास्ते में पड़ता था। अतः कोटे के विरुद्ध सेना संचालन करना मराठों के लिये सब से आसान था। इस परिस्थिति को हिम्मतसिंह झाला खूब समझता था। अतः उसने सदैव साम तथा दाम का उपयोग किया। यह नीति कोटा राज्य के लिये हितकर सिद्ध हुई। जयपुर तथा उदयपुर ने मराठों के चंगुल से निकलने का प्रयत्न किया था जिसके फलस्वरूप इन दोनों राज्यों को घोर क्षति झेलनी पड़ी और आधी शताब्दी तक अपनी स्थिति को नहीं सँभाल सके।

कोटा और होल्कर—सम्वत् १८१५ में मल्हारराव होल्कर ने या शायद उसकी सेना के किसी भाग ने सुकेत की गढ़ी को आ घेरा[2]। इसकी रक्षा के लिये कोटे से आदमी भेजे गये। ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने होल्कर को समझा बुझा कर वापिस मोड़ दिया। इस काम में कोटे के ८०००) रुपये खर्च हुये। सम्वत् १८१७ में मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य में होकर गुजरा तब महाराव शत्रुशालजी ने अपने प्रधान राय अखयराम को उसके लश्कर में भेजा। अखयराम ने होल्कर की नजर की और उसकी सेना की बड़ी खातिर की[3]।

---

(१) शिंदेशाही इतिहासांची साधने, प्रथम भाग, पृष्ठ ६।

(२) कागजात सम्वत् १८१५, बस्ता नं० ५७।

(३) कागजात सम्वत् १८१६ से १८२० तक, बस्ता नं० ५८।

सम्वत् १८१७ के आषाढ़ मास में होल्कर फिर दिल्ली की तरफ से आया और निमाणा के पास डेरा लगाया। वहाँ कोटे की ओर से राय अखयराम को भेजा गया और ५१,०००) रुपये होल्कर को दिये। उसी वर्ष फिर उज्जैन की ओर से होल्कर आया और इस अवसर पर भी राय अखयराम ने उसके डेरे पर जाकर १४,०००) रुपये नजर किये। इस प्रकार दो वर्ष में चार बार कोटा राज्य को मल्हारराव होल्कर की मेहमानी करनी पड़ी और विपुल धन देना पड़ा।

उम्मेदसिंहजी की उदासीनता—महाराव शत्रुशालजी को इस बात पर क्रोध आया कि जिन उम्मेदसिंहजी को कोटे ने होल्कर की सहायता से बूँदी की गद्दी पर बिठाया, उनकी सेना भटवाड़े में कोटा और जयपुर का संघर्ष केवल दर्शक की भाँति देखती रही। वास्तव में उम्मेदसिंहजी माधोसिंहजी से इस समय कोई विग्रह नहीं करना चाहते थे। भटवाड़े में उन्होंने अपनी सेना इस अभिप्राय से भेजी थी कि कोटा और जयपुर दोनों उसको अपनी सहायतार्थ आई हुई मानते रहें। महाराव शत्रुशालजी इस कूट नीति को समझ गये और बूँदी से बदला लेने का अवसर तकने लगे। थोड़े दिन बाद ही उनको बदला लेने का मौका मिल गया।

उम्मेदसिंहजी ने मारवाड़ नरेश को सहायता दी (सम्वत् १८१८)—मालवा विजय करते समय जियाजीराव सेंधिया के साथ जो मारवाड़ नरेश ने बर्ताव किया था, उसका बदला लेने के निमित्त माधवराव सेंधिया तथा केदारजी सेंधिया ने अपनी सेना के साथ जोधपुर राज्य पर चढ़ाई की। महाराजा अभयसिंहजी ने बूँदी के रावराजा उम्मेदसिंहजी को सहायता के लिये निमन्त्रित किया। इससे कुछ वर्ष पूर्व जब उम्मेदसिंहजी राज्य भ्रष्ट होकर इधर उधर घूम रहे थे, तब पुष्कर

तीर्थ में उनकी महाराजा अभयसिंहजी से भेंट हुई थी और मारवाड़ के एक जागीरदार ने अभयसिंहजी की प्रेरणा से अपनी पुत्री का विवाह भी उम्मेदसिंहजी के साथ कर दिया था। तब से उम्मेदसिंहजी और अभयसिंहजी में घनिष्ठ प्रेम था। इसलिये अभयसिंहजी के रणनिमन्त्रण को स्वीकार करके उम्मेदसिंहजी सेना के सहित जोधपुर पहुँचे। महाराजा अभयसिंहजी ने सोच विचार कर मराठों से लड़ना उचित नहीं समझा और आठ लाख रुपये देकर सन्धि करली। महाराव शत्रुशालजी के लिये बूँदी से बदला लेने का इस घटना ने एक अच्छा अवसर प्रस्तुत कर दिया[1]।

सेंधिया और शत्रुशालजी की बूँदी पर चढ़ाई— (सम्वत् १८१९) कोटा नरेश ने अखयराम कायस्थ को इन मराठा सरदारों के पास भेजा[2]। उसके साथ अपना लड़का केशवराय और राज का रिसाला था। मोजाद नामक गाँव के पास अखयराम महादजी सेंधिया से मिला और उसको बूँदी के विरुद्ध यह कह कर उकसाया कि रावराजा उम्मेदसिंहजी ने मराठों के विरुद्ध जोधपुर की सहायता करके बड़ा अपराध किया है। इसका बूँदी नरेश को दण्ड मिलना चाहिये। अखयराम ने यह भी वचन दिया कि यदि सेंधिया बूँदी पर आक्रमण करेगा, तो कोटा नरेश उसकी सहायता करेंगे[3]। दोनों सेंधिया सरदारों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपनी सेना बूँदी की ओर बढ़ाई। इधर अखयराम ने सब वृतान्त लिख कर महाराव शत्रुशालजी के पास भेजा। पत्र पाते ही महाराव शत्रुशालजी अपनी सेना लेकर इलाके को

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३७०५।
(२) कागजात सम्वत् १८१८।
(३) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३७०६।

दबाते हुये बूँदी की ओर बढ़ने लगे। महादजी सेंधिया, केदारजी सेंधिया तथा शत्रुशालजी की सम्मिलित सेना ने बूँदी को घेर लिया और लड़ाई होने लगी। जब उम्मेदसिंहजी ने देखा कि विजय की कोई आशा नहीं है तो उन्होंने सन्धि का प्रस्ताव किया जिसको मराठा सरदारों ने स्वीकार कर लिया और लड़ाई बन्द होगई[1]। महाराव शत्रुशालजी पौष शुक्ला पंचमी से माघ शुक्ला चतुर्दशी तक अर्थात् ४० दिन सेंधिया के साथ रहे। बूँदी से सन्धि होजाने के पश्चात् महादजी सेंधिया ने महाराव शत्रुशालजी को १७,१२०) रुपये सैनिक खर्च के दिये[2]।

मराठों की आर्थिक माँग कभी पूरी नहीं होती थी— सम्वत् १८१३ में पिछली मामलत का हिसाब करके हिम्मतसिंह झाला ने ५७ लाख रुपये देने स्वीकार किये थे। इसकी वार्षिक किस्तें करली थीं। इन किस्तों के अतिरिक्त सम्वत् १८१८ और १८१९ में मल्हार राव होल्कर को कई लाख रुपये दिये गये थे। सम्वत् १८१८ में १,५२,००० रुपये नजराने के अलग दिये गये थे। उसी वर्ष मल्हार राव होल्कर और महादजी सेंधिया ने कोटे से १,८०,०००) रुपये

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३७१०।

सूरजमल ने जो सन्धि का वृत्तान्त लिखा है वह तत्कालीन परिस्थिति की दृष्टि से विश्वसनीय नहीं है। यह कल्पना नहीं की जासकती कि विजयी सेन्धिया उम्मेदसिंहजी की चाटुकारी करता और अपने सहायक महाराव शत्रुशालजी की निन्दा करता।

(२) कागजात सम्वत् १८१९।

इन्द्राज इस प्रकार है :—

श्री दीवानजी फौज लेर बूँदी पधारया, वा सूबेदार केदारजी सेन्धिया वा महादजी सेन्धिया की फौज लार सो खर्च १७,१२०) रुपया मजमानी का आया। महादजी सेन्धिया की तरफ सूँ। पोष बदी ५ सूँ, माह सुदी १४ संवत् १८१९, रोज ४० का।

बूँदी के मोरचों की बाबत लिये। दुर्जनशालजी ने उम्मेदसिंहजी को गद्दी पर बिठाया तब से यह रकम बाकी चली आती थी। जब कभी कोटा राज्य के आसपास किसी मराठा सरदार की फौज आ पड़ती थी तो सदैव यह चिन्ता होती थी कि राज्य पर आक्रमण होने वाला है। इसलिये राज्य के मुसाहिब या दूसरे विश्वसनीय प्रतिनिधि इनके डेरों पर भेजे जाते थे और विपुल धन देकर मराठा सरदारों को सन्तुष्ट किया जाता था। अखयराम, उसका लड़का केशवराम तथा ठाकुर किशनदास इस कार्य के लिये शोपुर और सपाड़ की तरफ कई बार भेजे गये थे[1]।

मराठों की लूटमार—इतने पर भी मराठों के आक्रमण का भय बना ही रहता था। कभी सेंधिया और कभी होल्कर की फौज और कभी उनके दस्ते सीमान्त गाँवों में लूटमार कर लिया करते थे। एक बार मराठों ने सुकेत की गढ़ी को आ घेरा था। यही कारण था कि गागरोण के किले पर विशेष जाब्ता नियुक्त किया गया था और भट्ट कुशलराम को उसका हाकिम तथा किलेदार बनाया गया था[2]। राज्य रक्षा की दृष्टि से ही कोट और किले की मरम्मत करवाई गई थी। इसी समय किशोरपुरे का कोट, तालाब का कोट और पायगाँ की तरफ का कोट सुदृढ़ किया गया था[3]।

मराठों को सन्तुष्ट करने के लिये नये कर लगाये गये—मराठों को प्रतिवर्ष लाखों रुपये देने के लिये, कोट और किलों की मरम्मत करवाने के लिये तथा अपनी सेना को सदैव सुसज्जित और सन्नद्ध रखने के लिये कोटा राज्य की मालगुजारी से जो आमदनी

(१) कागजात सम्वत् १८१८।
(२) कागजात सम्वत् १८१५, बस्ता नं० ५७।
(३) कागजात सम्वत् १८१६, बस्ता नं० ५८।

होती थी, वह पर्याप्त नहीं थी। इसलिये कई कर नये जारी किये गये। यों तो पूर्वकाल में भी इस प्रकार के कर वसूल किये जाते थे, परन्तु मराठों के कारण इन करों की मात्रा और संख्या और भी बढ़ानी पड़ी और इनकी वसूली में सख्ती की जाने लगी। जागीरदारों से भी कुछ नये कर लिये जाने लगे। सम्वत् १८१५ में मराठों की माँग को पूरा करने के लिये समस्त जागीरदारों से चौथान नामक कर वसूल किया गया[1]। इसी वर्ष राज के समस्त परगनों के कानूगोयान की कानूगोई जब्त करके 'पेशकशी' ली गई थी। यह कर भी दक्षिणियों की माँग को पूरा करने के लिये ही संग्रह किया गया था[2]। मुगलों की शक्ति अब नष्ट हो चुकी थी। इसलिये कानूगोयान से 'पेशकशी' ली गई थी। वास्तव में यह बात उचित भी थी। मुगलों का पतन हो चुकने के कारण एक दृष्टि से इन लोगों की सनदें रद्द हो चुकी थीं। अतः पेशकशी नामक कर लेकर इनको बहाल किया था। इस प्रकार का नजराना कानूगोई का फरमान हासिल करते समय मुगलों के दरबार में भी जमा करना पड़ता था।

सम्वत् १८१६ में कोटा नगर के ऊपर मराठों ने 'घोड़ी बराड़' नामक कर लगाया था और इस की रकम ६,८०००) रुपये निश्चित की गई। मराठों की माँगों के कारण राजकोष पहिले ही खाली था। इसलिये यह रुपया नगर निवासियों से संग्रह किया गया। संग्रह करने की विधि यह थी। नगर के महाजन, तुरके बोहरे, ब्राह्मण आदि जातियों की जुदी जुदी पंचायतों की सूची तैयार की गई थी और प्रत्येक पंचायत को जितना कर देना चाहिये, यह राज्य कर्मचारियों ने ही निश्चित

(१) कागजात सम्वत् १८१५, बस्ता नं० ५७।
(२) उपरोक्त।

कर दिया था। उपजातियों की पंचायतों से भी अलग अलग कर वसूल किया गया था। उस समय एक शाह रतनलाल की विधवा पत्नी बड़ी सम्पन्न स्त्री थी, उससे विशेष कर लिया था[1]। बीघोड़ी और जामदारी नामक कर भी इस समय खास सख्ती के साथ वसूल किये जाते थे। इन करों से जागीर के गाँव को भी मुक्त नहीं किया जाता था। बीघोड़ी प्रति बीघा चार आना और जामदारी प्रति घर अर्थात् प्रति कुटुम्ब १) रुपया ली जाती थी। यह अन्तिम कर केवल कृषकों से ही नहीं, अन्य लोगों से भी वसूल किया जाता था। पलायथा, राजगढ़, डाबरी, नागदा और सोरसन के जागीरदारों के गाँवों को कुछ माफी दी गई थी। ये सब जागीरें परगने पलायथे के अन्तर्गत थीं। उस समय परगना पलायथे में कुल ८७ गाँव थे जिनमें ७४ गाँव उपरोक्त सरदारों की जागीर में थे और २१ गाँव केवल पलायथे के आप रूप सिंहजी की जागीर में[2]। सम्वत् १८१८ में एक ऐसी सूची तैयार करवाई गई थी जिसमें गत तीन पुश्तों में दी हुई माफियों का इन्द्राज था[3]। सम्भव है कि इस सूची का उद्देश्य भी आर्थिक संकट के कारण कुछ आमदनी बढ़ाने का हो।

मुख्य राज्यकर्मचारी—महाराव शत्रुशालजी के समय में अखयराम कायस्थ मुसाहिब आला अर्थात् राज्य का प्रधान था। यह कुशल प्रबन्धक था और चतुर सैनिक भी। मराठों से सन्धि या सलाह

(१) कागजात सम्वत् १८१७, बस्ता नं०५८।

(२) इन गाँवों के नाम ये हैं :—
पलायथा, अमलसरा, थामखेड़ा, नयागाँव, जागणहेड़ी, बड़ागाँव, बालदड़ा, मकड़ावद, रुमी, लदवाड़ा, आमली, काँगुण्याँ, आँकेड़ी, ककरावदा, टीमली, तीखोद, धाकड़खेड़ी, रामपुरा, हणुत्या और दो माजर।

(३) कागजात सम्वत् १८१८।

की जो भी बातें होती थीं, उसके लिये इसी को नियुक्त किया जाता था। इसका लड़का केशवराय भी अपने पिता की भाँति निपुण और कुशल था। उसको भी एक बार मराठों से बातचीत करने के लिये भेजा गया था। भटवाड़े के विजय के बाद झाला जालिमसिंह का प्रभाव भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगा, शासननीति का संचालन उसी के हाथ से होने लगा, और सेना का नायकत्व उसी के सुपुर्द होगया। भटवाड़े की विजय ने उसको कोटा राज्य में ही नहीं, किन्तु अन्य निकटवर्ती राज्यों में भी प्रसिद्ध कर दिया था। अतः वह समझने लगा था कि कोटा राज्य का अस्तित्व उसी के कारण बच सका है। कोटा नरेश भी उसकी सहायता को अत्यन्त आवश्यक मानने लगे और आगामी पचास वर्ष तक वह राजपूताने में अग्रगण्य व्यक्ति बना रहा।

शत्रुशालजी का देहान्त—शत्रुशालजी ने केवल ६ वर्ष के लगभग राज्य किया। पानीपत का युद्ध और भटवाड़े का युद्ध उनके शासनकाल की मुख्य घटनायें हैं। पानीपत का संग्राम सार्वदेशिक दृष्टि से और भटवाड़े का युद्ध कोटा तथा जयपुर राज्य की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण घटनायें हैं। इनके समय में कोटा राज्य जयपुर के भय से मुक्त हुआ, परन्तु मराठा-पंक में और अधिक धँस गया। इनके ही समय में जालिमसिंह का उदय हुआ ओर कोटा राज्य के इतिहास में एक विशेष परिवर्तन का सूत्रपात हुआ।

महाराव गुमानसिंहजी

(सम्वत् १८२१–२७)

राजनैतिक समस्या—महाराव शत्रुशालजी के कोई पुत्र नहीं था। अतः उनके देहान्त के पश्चात् उनके छोटे भाई गुमानसिंहजी राजगद्दी पर बैठे। गुमानसिंहजी इस समय नवयुवक थे परन्तु बुद्धि तथा पराक्रम से सम्पन्न थे। उनका फौजदार झाला जालिमसिंह भी उनकी भाँति नवयुवक ही था। परन्तु वह अपने पराक्रम तथा नीति नैपुण्य का परिचय भटवाड़े की रणभूमि में दे चुका था जिससे समस्त राजस्थान में उसकी ख्याति होरही थी।

मराठों की स्थिति—पानीपत के प्रलयंकर पराजय से पेशवाओं का बल क्षीण होगया। सेंधिया, होल्कर, गायकवाड़ और भोंसले सरदार प्रायः स्वतन्त्र होकर अपनी अपनी शक्तियों को पुष्ट तथा राज्यों को विस्तृत करने में लग गये। इस प्रकार मराठों का संगठन शिथिल होजाने पर भी राजपूताना तथा मध्य भारत के छोटे छोटे राजपूत राज्य मराठों के आतंक से विमुक्त नहीं हो पाये। अहमदशाह अब्दाली ने मराठों को हरा अवश्य दिया था, परन्तु फिर भी वह उनके आकस्मिक उत्थान से डरता था, अतः विजयी होकर भी वह भारतवर्ष में नहीं ठहरा और अपना प्रतिनिधि छोड़ कर स्वदेश चला गया। उसके प्रतिनिधि नजीबखाँ रोहिले में इतनी शक्ति नहीं थी कि विलीन मुसलमान वैभव को किसी अंश में भी पुनर्जीवित करे। तृतीय पेशवा बालाजी बाजीराव पानीपत के घोर आघात से विक्षिप्त होकर मर गया था और माधवराय अब उसकी गद्दी पर बैठ गया था। पेशवाओं का बल और

महाराव गुमानसिंहजी
(१८२१–१८२७ वि०)

वैभव संदेव के लिये विदा होगया। पारिवारिक कलह, ईर्ष्या और द्वेष उनकी अवशिष्ट शक्ति को भी क्षीण और विदीर्ण करने लगे थे। परन्तु पेशवाओं का ह्रास मराठों का ह्रास नहीं था। पानीपत के धक्के से सँभल कर मराठे सरदार शीघ्र ही बल संचय करने लग गये। उनकी इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति से राजपूताने की किसी भी रियासत को इतना भय नहीं था, जितना कोटा राज्य को। इस राज्य की सीमा उस समय भी एक ओर होल्कर के राज्य से और दूसरी ओर सेंधिया के राज्य से मिली हुई थी। इसलिये इन दोनों सरदारों का कोटा राज्य पर निरन्तर दबाव बना रहता था।

कोटा राज्य में मराठे जागीरदार—मामलत की वसूली तथा अन्य राजनैतिक कार्य के लिये मराठा सरदारों का वकील कोटे में रहा करता था। इसी के द्वारा मराठा सरदार बूँदी राज्य से भी पत्रव्यवहार करते थे। इस वकील को कोटा नरेश ने स्वतः जागीर दे रक्खी थी। इसके अतिरिक्त सेंधिया तथा होल्कर कभी कभी अपने कृपापात्र मराठों को या पण्डितों को कोटे भेज दिया करते थे और कोटा राज्य में जागीर दिलवा देते थे। ऐसी जागीर की आमदनी वार्षिक मामलत में मुजरा देदी जाती थी। इस विधि से दक्षिणी पण्डित कितने ही कोटा राज्य में जागीरदार बन गये थे। सम्वत् १८३९ में ७१ गाँव इस प्रकार दक्षिणी पण्डितों को जागीर में मिले हुये थे और इन सब की वार्षिक आय एक लाख अट्ठाईस हजार रुपये थी। ये गाँव ३९ जागीरदारों में विभक्त थे। मराठे जागीरदार राज की कोई नौकरी नहीं करते थे[1]। इस प्रकार कोटा राज्य में दक्षिणियों की बलवृद्धि जालिम सिंह को बहुत अखरती थी, परन्तु मराठों की शक्ति दुर्निवार्य थी

(१) जमाबन्दी सम्वत् १८३९।

और जालिमसिंह को विवश होकर इस प्रकार जागीरें देनी पड़ती थीं[1]।

जालिमसिंह की आवश्यकता—होल्कर और सेंधिया की फौजें राजपूताने को प्रायः खूँदा ही करती थीं। कोटा राज्य ने हमेशा लड़ाई को टाला, परन्तु अन्य राज्यों पर आक्रमण करते हुये भी मराठों की सेनायें प्रायः कोटा राज्य में होकर जाया करती थीं, और उनके आदर सत्कार में तथा रसद में बहुत खर्च करना पड़ता था। इस प्रकार गुमानसिंहजी को एक तरफ मराठा सरदारों से भय था और दूसरी ओर जयपुर के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करने की चिन्ता थी। इस प्रकार की विषय समस्याओं को हल करने में झाला जालिम सिंह अत्यन्त निपुण था, परन्तु गुमानसिंहजी के गद्दी पर बैठते ही उसकी जालिमसिंह से खटपट हो गई।

---

(१) देखो—लेख संख्या २८० (शिंदेशाही इतिहासांची साधनें, भाग प्रथम)

श्रीरामजी

सम्वत् १८२२ आषाढ़ सुदी १०

सिका नकल

सिद्ध श्री सर्व ओपमा लायक ठाकुर राज श्री जालिमसिंहजी वा पुण्डरीक व्यासजी श्री गोपालरामजी जोग लिखाई तंक सूबेदार राज श्री केदारराव सिंधे वा पटेल राज श्री माधवराव सिंधे केन बंचा। अठा का समाचार भला छे। राज का सदा भला चाहिजे जी। अपरंच पंडत धरमराव तमा जी कूँ रू० २०००) बरखासन श्रीमन्त राजेश्री पंत प्रधानजी ने कर दिया। सो साल गुदस्ता का रु० पहुँचा नहीं। इस तरह जाहरवी तिसे राज ने लिखाँ छाँ सो साल गुदस्ता का रुपया दो ही हजार पहुँचाई रसीद हजूर भेज दीज्यो। आगे सूँ साल मजकूर में दो ही हजार को गांव वसूली पंडत मजकूर को दीज्यो। यां की फेर नालस न आव। सो कीज्यो। जाणी जे च ९ मोहर्रम सू तिसन मया व अलफ मिती अषाढ सुदी १० सम्वत् १८२२ मुकाम उरमाल प्रान्त कोट। मोरतब सुद।

इसके कारण :—

(१) कर्नल टॉड इस खटपट का एक ऐसा कारण बताते हैं, जिस पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। वे लिखते हैं कि गुमानसिंहजी और जालिमसिंह दोनों एक ही स्त्री से प्रेम करते थे, जिसके कारण गुमानसिंहजी ने क्रुद्ध होकर जालिमसिंह को अधिकार हीन कर दिया और राज्य से निकाल दिया[1]। इस समय जालिमसिंह और गुमानसिंहजी दोनों ही युवक थे, और उनके सम्बन्ध में इस प्रकार की बात की कल्पना करना सम्भावना के क्षेत्र से बाहर तो नहीं है, परन्तु राजपूताने की तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर विचार करने से यह बात विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती, विशेषकर इसलिये कि ठाकुर लक्ष्मणदान इसका दूसरा कारण बतलाते हैं।

(२) जालिमसिंह की बहिन का विवाह गुमानसिंहजी के साथ हुआ था। अतः जालिमसिंह केवल फौजदार और भटवाड़ा का विजेता ही नहीं, परन्तु राजपरिवार का निकट सम्बन्धी भी था। यही कारण था कि वह इस समय राज्य में सर्वेसर्वा था। यह स्वाभाविक बात थी कि उसकी शक्ति को इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई देख कर हाड़ा जागीरदार बहुत क्षुब्ध होते और अपने भविष्य के लिये चिन्तित रहते। जालिमसिंह को उनका रुख सहन नहीं होता था। इसलिये वह भी इन लोगों की शक्ति को क्षीण करने का अवसर कभी नहीं चूकता था। कई जागीरदारों की जागीरें उसने कम कर दी थीं, कितनों ही की नौकरी बढ़ा दी थी और कितनों ही की ताजीम आदि इज्जत में हेर फेर कर दिया था। यहाँ तक कि लालाहेड़ा के सोलंकी जागीरदार तथा तारज के हाड़ा जागीरदारों को निकाल कर उनकी जागीरें खालसे करली थीं।

---

(१) टॉड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५६६।

जालिमसिंह को कोटे से निकाल दिया—इसलिये सब जागीरदारों ने संगठित होकर कोटा नरेश से जालिमसिंह की शिकायत की। उधर जालिमसिंह भी अपने आप को सर्व प्रकार कर्ताधर्ता समझ कर महाराव गुमानसिंहजी की आज्ञाओं का यथोचित पालन नहीं किया करता था। इसलिये गुमानसिंहजी ने जालिमसिंह को फौजदारी के पद से हटा कर राज्य से विदा कर दिया।

भोपतसिंहजी और स्वरूपसिंहजी का मन्त्रीत्व—झाला जालिमसिंह के बाद ठाकुर भोपतसिंह भाँकरोत को फौजदार नियुक्त किया। यह बाँसीहेड़ा का जागीरदार था और गुमानसिंहजी का सगा मामा था। भोपतसिंह इस पद पर थोड़े ही दिन रह पाया। एक तरफ मराठों की बढ़ती हुई माँग का तथा दूसरी ओर जयपुर के आक्रमण का निवारण करने में यह यथोचित निपुणता नहीं बतला सका। अतः भूतपूर्व महाराव अजीतसिंहजी के छोटे भाई बख्तसिंहजी के पुत्र स्वरूपसिंहजी को यह पद दिया गया। ये इटावे के जागीरदार थे। ये भी उस समय की विषम स्थिति को नहीं सँभाल सके और महाराव गुमानसिंहजी पुनः जालिमसिंह को बुलाने का विचार करने लगे[1]।

जालिमसिंह मेवाड़ के कलह में शामिल हुआ—कोटे से नौकरी छोड़ कर झाला जालिमसिंह ने महाराणा उदयपुर के यहाँ नौकरी करली[2]। इस समय महाराणा बड़ी विपत्ति में थे। समस्त जागीरदार उनके विरुद्ध थे। सलूम्बर, बिजोलिया, बदनोर, आमेट, घाणेराव और कानोड़ के अतिरिक्त सब जागीरदार महाराणा के घोर

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) i टॉड राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५६६।
ii राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९६०,
iii ठाकुर लक्ष्मणदान।

विरोधी बन चुके थे। उनका संगठन इतना दृढ़ होगया था कि कुम्भल गढ़ में उन लोगों ने रतनसिंह को महाराणा घोषित कर दिया था। जालिमसिंह की नीतिनिपुणता की ख्याति इस समय समस्त राजस्थान में फैल चुकी थी। अतः महाराणा ने उनका सहर्ष स्वागत किया और समझा कि उनके द्वारा मेवाड़ के जागीरदारों का पक्ष निर्बल हो सकेगा। महाराणा ने जालिमसिंह को चीताखेड़े की जागीर और राजराणा की उपाधि दी। जागीरदारों की शक्ति क्षीण करने में जालिम-सिंह संलग्न होगया। जालिमसिंह के प्रयत्न से देलवाड़ा के झाला राघवदेव ने और शाहपुरे के उम्मेदसिंहजी ने महाराणा का पक्ष ग्रहण किया, जिससे महाराणा का पक्ष कुछ मजबूत हुआ। जब विरोधी जागीरदारों ने माधवराव सेंधिया की सहायता प्राप्त करके अपने पक्ष को प्रबल किया तो जालिमसिंह ने पेशवा से सैनिक सहायता लेकर अपनी शक्ति को बढ़ाया।

और लड़ता हुआ घायल होकर मराठों द्वारा गिरफ्तार हुआ—सन्धि की बात असफल होजाने के बाद उज्जैन के निकट क्षिप्रा नदी के किनारे पर दोनों पक्षों में घोर संग्राम हुआ जिसमें महा-राणा का पराजय हुआ। इस युद्ध में झाला जालिमसिंह घायल होकर घोड़े से गिर गया और गिरफ्तार होगया। एक मराठे मित्र ने साठ हजार रुपये देकर उसको छुड़ाया[1]। इस मराठा सरदार का नाम इँगले था। कहा जाता है कि कोटे वापिस आने पर जालिमसिंह ने इस मराठा सरदार को सन्मानपूर्वक अपने पास रक्खा और उसकी

(१) i टॉड राजस्थान, प्रथम भाग, पृष्ठ ५००।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३७३८–४६।
iii वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ १५५६–५८।

मृत्यु के बाद उसका एक स्मारक बनवाया[1]।

गुमानसिंहजी ने ज़ालिमसिंह को वापिस बुलाया—इसी समय महाराव गुमानसिंहजी ने मराठों के वकील लालाजी बल्लाल को जालिमसिंह के पास भेजा। उज्जैन के पराजय के कारण उदयपुर की स्थिति डावाँडोल थी और विजयी माधवराव सेंधिया की सेनायें मेवाड़ राज्य को चारों ओर से खूँद रही थीं। ऐसी दशा में जालिमसिंह को उदयपुर में न स्वागत की आशा थी और न स्वयम् उसको क्षीयमाण राज्य का पक्ष ग्रहण करने की उमंग थी। जब लालाजी बल्लाल ने महाराव गुमानसिंहजी की ओर से जालिमसिंह से वापिस कोटे लौटने के लिये कहा तो उसने यह प्रस्ताव तत्काल स्वीकार कर लिया[2]।

वकानी और सुकेत को मराठों ने घेरा—जब झाला जालिम सिंह वापस आया तो कोटा राज्य विषम स्थिति में पड़ा हुआ था। मराठों की सेना दक्षिण की तरफ से कोटे की ओर बढ़ती आरही थी और वकानी के किले के घेरा डाल रक्खा था। इस किले का किलेदार ठाकुर माधवसिंह हाड़ा था जो हणूँत्या का जागीरदार था। इसने चारसौ राजपूतों के साथ लम्बे अर्से तक इस किले की अपूर्व वीरता के साथ रक्षा की। मराठे लोग बार बार हमला करते थे लेकिन किला तोड़ कर अन्दर घुसने का साहस नहीं होता था, जब मराठे लोग हाथी के धक्के से दरवाजे के किवाड़ों को तुड़वाने का प्रयास करने लगे तो माधवसिंह अधिक चिन्तित हुआ और दरवाजे पर चढ़ कर नंगी तलवार हाथ में लेकर हाथी के ऊपर टूट पड़ा। स्वयम् तो मारा ही गया,

(१) यह मि० सदाशिव राव इँगले का कथन है जो अपने को उस सरदार का वंशज बतलाते हैं।

(२) i टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५६८।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

परन्तु उसके अपूर्व साहस और वीरत्व के प्रदर्शन से मराठों की सेना त्रस्त होगई और घेरा उठा कर वहाँ से भाग निकली। फिर सुकेत की गढ़ी के घेरा जा डाला। इस गढ़ी का किलेदार करणीदान नामक चारण था जिसके पास दुर्ग रक्षा के निमित्त दो सौ राजपूत थे। कुछ समय तक ये लोग दुर्ग की रक्षा करते रहे, परन्तु जब स्थिति निराशा जनक प्रतीत होने लगी तो दरवाजा खोल कर सब शूरवीर अपने नायक के साथ बाहर निकले और खूब लड़ाई हुई। इसमें किलेदार और उसके अधिकांश सैनिक मारे गये और सुकेत पर मराठों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके बाद मराठे लोग कोटा राज्य में और आगे बढ़ने का विचार करने लगे। उस समय महाराव गुमान-सिंहजी मराठों का सामना नहीं कर सकते थे और सुलह करने के लिये आतुर थे। इस समय उनको झाला जालिमसिंह की याद आई। इसलिये इधर तो सुलह की बातचीत करने के लिये ठाकुर भोपतसिंह भाँकरोत को मराठों के केम्प में भेजा और उधर जालिमसिंह को कोटे वापिस लाने के लिये पण्डित लालाजी बल्लाल को रवाना किया।

जालिमसिंह ने सन्धि करवाई—भोपतसिंह भाँकरोत अर्से तक मराठों के केम्प में रहा परन्तु सन्धि की बातचीत सफलतापूर्वक नहीं कर सका और निराश होकर कोटे वापिस आगया। इसी अर्से में झाला जालिमसिंह कोटे में वापिस आया। महाराव गुमानसिंहजी ने उसको अपना प्रतिनिधि बना कर और सुलह की बातचीत के पूरे अधिकार देकर मराठों के पास भेजा। उसने मराठा सरदारों से सन्धि की बातचीत पक्की कर ली और उनकी सेनाओं को कोटा राज्य से कूँच करवा दिया[1]। इस प्रकार संकट निवारण में सहायता करने के कारण महाराव गुमानसिंहजी जालिमसिंह पर पूर्ववत् विश्वास करने

(१) टॉडः राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५६९।

लगे। उसको अपनी पैतृक जागीर नान्ता वापिस दे दी और फौजदार के पद पर नियुक्त कर दिया। तो भी महाराजा स्वरूपसिंह को अपने पद से नहीं हटाया गया। वे भी झाला जालिमसिंह के साथ राजप्रबन्ध का कार्य करते रहे[1]।

माधोसिंहजी का इरादा—भटवाड़े के पराजय के बाद भी जयपुर के महाराजा माधोसिंहजी ने कोटरियात पर कब्जा जमाने का इरादा नहीं छोड़ा। इटावा और ढीपरी के पास जहाँ कोटा राज्य की सीमा जयपुर राज्य से मिली हुई है, जयपुर की सेना प्रायः पड़ाव डाले रहती थी और कोटा राज्य में प्रवेश करने का अवसर देखा करती थी। इधर कोटा राज्य की सेना भी चम्बल के इस पार इटावा और ढीपरी के पास डेरे डाले रहती थी। यह स्थिति सम्वत् १८२३ से सम्वत् १८२५ तक रही। इस फौज का नायकत्व और प्रबन्ध धाभाई जसकरण और पचौली रामकृष्ण के सुपुर्द था। इसमें कोटे के कई जागीरदार भी सम्मिलित थे। इन जागीरदारों के नाम जो परवाने भेजे जाते थे, वे इस धाभाई और पचौली के द्वारा भेजे जाते थे। दोनों सेनाओं में कभी मुठभेड़ होने का अवसर नहीं आया। दोनों पक्ष एक दूसरे की गति का निरीक्षण करते रहते थे। जब वर्षा होने लगती थी और सैन्य संचालन असम्भव हो जाता था तो फौज को सीख देदी जाती थी, परन्तु गोला बारूद आदि ढीपरी में ही शाह नेमीचन्द के सुपुर्द कर दिया जाता था[2]।

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

पूर्व पद प्राप्ति की सूचना जालिमसिंह ने सब मराठा सरदारों को भेजी थी होल्कर राज्य के फॉरेन और पोलिटिकल विभाग के पुस्तकालय में इस विषय का जालिमसिंह का एक पत्र अहल्याबाई के नाम भेजा हुआ सुरक्षित है।

(२) तालीक सम्वत् १८२३–१८२४–१८२५।

कोटरियात का मराठों को कर—इस प्रकार निरन्तर प्रयास करने पर भी जयपुर नरेश न कोटे से किसी प्रकार का कर लेसके और न कोटरियात की नालबन्दी ही वसूल कर सके। कोटरियाँ सब पहिले ही कोटा राज्य का आधिपत्य स्वीकार कर चुकी थीं। अतः कोटा राज्य इनसे अब कर वसूल करने लगा जिसका कुछ अंश कोटे की ओर से मराठों को दिया जाने लगा[1]।

गुमानसिंहजी ने नाथद्वारे की यात्रा की—महाराव गुमानसिंहजी भी अपने पूर्वजों की भाँति भगवद्भक्त और वैष्णव थे और प्रायः नाथद्वारे की यात्रा करने के लिये जाया करते थे। सम्वत् १८२३ में उन्होंने नाथद्वारे की यात्रा की थी। कार्तिक सुदी ३ के दिन वे कोटे से रवाना हुये थे और कार्तिक सुदी १० के दिन श्रीनाथद्वारा पहुँचे थे। रास्ते में माँगली, बाक, उरड़ा की नदी, साढ़ावास और पीपल्या में मुकाम किये थे। किला और राज का प्रबन्ध करने के लिये कोटे में धाभाई स्वरूपसिंहजी, मामाजी भोपतसिंहजी, चौधरी गोपालदासजी और कुँवर उम्मेदसिंहजी को नियुक्त किया था[2]। प्रायः हर एक मुकाम से कोटे के लिये हुक्म जारी हुआ करते थे और महाराज कुँवार उम्मेदसिंहजी को तथा अन्य अधिकारियों को दरबार की ओर से पत्र लिखे जाते थे। कुँवर उम्मेदसिंहजी की अवस्था उस समय केवल सात वर्ष की थी[3]। उस समय इनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था और महाराव गुमानसिंहजी को इनको शिक्षित बनाने ही की नहीं, किन्तु ईश्वरभक्त और मातृभक्त बनाने की भी चिन्ता रहती थी। इस

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) तालीक सम्वत् १८२३।

(३) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५६९।

विषय में बाक के मुकाम से उनको पत्र भी लिखा गया था[1]। ऐसी बाल्यावस्था में भी आशा की जाती थी कि वे किले की रक्षा करें और भगवान् की सेवा पूजा में किसी प्रकार की त्रुटि न करें[2]। नाथद्वारे में दर्शन करते समय गुमानसिंहजी ने तीन गाँव भेंट किये।

यात्रा का दूसरा उद्देश्य—इस यात्रा का उद्देश्य श्रीनाथजी के दर्शन के अतिरिक्त एक और भी था। पानीपत के पराजय के पश्चात् भी मराठों की शक्ति इतनी क्षीण नहीं हो पाई थी कि उनके अधिकृत राजपूत राज्य उनके विरुद्ध सिर उठा सकें। इसलिये कोटे को मराठों के कारण निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी। जालिमसिंह ने समझौता करके उनकी सेनाओं को कोटा राज्य से हटवा दिया था, परन्तु तो भी उनकी माँगें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थीं जिसके कारण कोटा राज्य बड़ा तंग था। इस समय मराठों की सेनायें राजपूताने की अन्य रियासतों को भी खूँदती फिरती थीं और सर्वत्र प्रायः ऐसी दशा थी जैसी कोटे की। अतः महाराव गुमानसिंहजी ने नाथद्वारे में दर्शन करने के साथ साथ महाराणा अरिसिंहजी उदयपुर को और महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर को बुलाया। महाराणा उदयपुर चाहते थे कि महाराव गुमानसिंहजी पहिले उदयपुर जावें और फिर वहाँ से दोनों नाथद्वारे पहुँचे, परन्तु महाराव गुमानसिंहजी ने अपने निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं किया। महाराव गुमानसिंहजी के नाथद्वारा पहुँचने से पहिले ही मारवाड़ के महाराजा विजयसिंहजी वहाँ आगये थे। उन्होंने

---

(१) तालीक सम्वत् १८२३–पत्र काती सुद ४ बुधवार।

(२) उपरोक्त, पत्र काती सुद ११।

तालीक सम्वत् १८२३।

गाँवों के नाम ये हैं: — (१) धानोदा परगना बरसाना, (२) तेजगढ़ परगना माँगरोल, (३) शाहाबाद परगना माँगरोल।

एक मील आकर महाराव गुमानसिंहजी का स्वागत किया। दो दिन बाद महाराणा अरिसिंहजी भी आ पहुँचे। उनका महाराव गुमानसिंहजी ने और महाराजा विजयसिंहजी ने लगभग एक मील जाकर स्वागत किया। इसके बाद शिष्टाचार स्वरूप महाराणा मेवाड़ भी इन दोनों के डेरों पर मिलने गये। नाथद्वारे में तीनों नरेशों ने मराठों के विषय में परामर्श किया[1]। इसका पता नहीं चलता कि क्या निश्चय हुआ था ?

कोटा राजकुमारी का जोधपुर राजकुमार के साथ विवाह—नाथद्वारे की मुलाकात के बाद कोटा और जोधपुर में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होगया जिसके फलस्वरूप जोधपुर के महाराजकुमार फतेहसिंह सम्वत् १८२५ में कोटे की राजकुमारी विचित्रकुँवर बाई को ब्याहने आये और आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन यह विवाह हुआ। विचित्र कुँवर बाई महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय की लड़की की लड़की थीं और महाराव दुर्जनशालजी की पुत्री थीं।

गुमानसिंहजी का पारिवारिक स्नेह—गुमानसिंहजी जितने ईश्वर भक्त थे उतने ही मातृभक्त थे। इनकी एक माता राणावत और दूसरी भाँकरोत थीं[2]। राणावत माँ महाराव दुर्जनशालजी की वही धर्मपत्नी थीं, जिन्होंने जग मन्दिर बनवाया था। भाँकरोत माँ के भाई भोपतसिंह ने कुछ अर्से तक राजमन्त्री का कार्य किया था और मराठों के साथ सन्धि की बातचीत की थी। गुमानसिंहजी के तीन भावजें थीं। राजावतजी, चन्द्रावतजी और कछवाहीजी। गुमानसिंहजी महाराव शत्रुशालजी के टीके बैठे थे, इसलिये अपनी भावजों को माता मानते थे, और पत्रव्यवहार में इनको माता शब्द द्वारा सम्बोधित करते

(१) तालीक सम्वत् १८२३।

(२) यों तो ये गुमानसिंहजी की मातामही हुईं, परन्तु इनको मा ही लिखा जाता था।

थे। सुरक्षित पत्रों के अध्ययन से ऐसा जान पड़ता है कि महाराव गुमानसिंहजी कछवाहीजी का विशेष सम्मान करते थे। यह निश्चय नहीं है कि इन तीनों महिलाओं में महाराव शत्रुशालजी की पाटराणी कौन सी थीं, परन्तु पत्रव्यवहार से अनुमान होता है कि शायद कछवाहीजी ही माहराणी हों। यह निश्चय है कि कछवाहीजी जयपुर की लड़की नहीं थीं। वे जयपुर राज्यान्तर्गत किसी कछवाहा ठिकाने की लड़की होंगी। उन्होंने अपने एक पत्र में गुमानसिंहजी को लिखा था कि जयपुर नरेश से नाथद्वारे में मिलकर मराठों को जो मामलत कोटे की तरफ से दी जाती है, उसका निर्णय अवश्य कर लिया जावे। जब महाराव गुमानसिंहजी नाथद्वारे यात्रार्थ तथा मुख्य नरेशों के साथ परामर्शार्थ गये थे तो कछवाहीजी के साथ उनका कई बार पत्रव्यवहार हुआ था। इन पत्रों से विदित होता है कि पर्दे में रहते हुये भी यह महिला प्रबन्ध समस्याओं को तथा राजनैतिक स्थिति को भलीभाँति समझती थीं और महाराव गुमानसिंहजी को ऐसे विषयों पर सलाह दिया करती थीं। तीनों नरेशों से बात ठीक होजाने पर महाराव गुमानसिंहजी ने इस विषय का समाचार सर्वप्रथम अपनी माता कछवाहीजी को ही भेजा था[1]।

इतना होते हुये भी ऐसा जान पड़ता है कि कछवाहीजी महाराव गुमानसिंहजी से कुछ अप्रसन्न रहती थीं[2]। महाराव शत्रुशालजी का देहान्त होते ही वे हिन्दुओं की पुरातन रीति के अनुसार अपने पीहर चली गईं थीं और फिर महाराव गुमानसिंहजी के बार बार लिखने पर भी वे वापिसी की तिथि निश्चित नहीं करती थीं। दोनों

(१) तालीक सम्वत् १८२३।

(२) उपरोक्त।

पक्ष का पत्र-व्यवहार उच्च कोटि की शिष्टता, आदर और मर्यादा से भरा हुआ है, परन्तु महाराव गुमानसिंहजी के पत्रों से स्पष्ट प्रगट होता है कि वे कछवाहीजी की अप्रसन्नता को समझते थे और अनुभव करते थे[1]। इतने पर भी गुमानसिंहजी का अपनी भावज से सलाह लेना और उनका सहर्ष तथा सरुचि सलाह देना पारिवारिक शिष्टता का अत्यन्त ऊँचा आदर्श है।

उनका पत्नी-प्रेम—महाराव गुमानसिंहजी के एक ही धर्म पत्नी थीं जो बाघेला थीं। गुमानसिंहजी का व्यक्तिगत जीवन बड़ा पवित्र और शुद्ध था। बाघेलीजी के नाम उनका भेजा हुआ पत्र सुरक्षित है, वह इस बात का प्रमाण है कि महाराव गुमानसिंहजी अपनी महाराणी का कितना सन्मान करते थे[2]।

गुमानसिंहजी का देहान्त और उनका कार्य—गुमानसिंहजी को राज करते हुये पूरे सात वर्ष भी न होने पाये थे कि सम्वत् १८२७ में उनका देहान्त होगया। इस अल्प शासनकाल में गुमानसिंहजी ने कई शासन सम्बन्धी तथा राजनैतिक कठिनाइयों का साहस और सफलतापूर्वक सामना किया। राजसिंहासन पर बैठते ही तो उनको जयपुर के आक्रमणों को रोकने के लिये ढीपरी के पास सेना रखने का प्रबन्ध करना पड़ा। जब यह विपत्ति हटी तो मराठों के आक्रमणों ने घोर समस्या उपस्थित करदी। इसी समय जालिमसिंह को मन्त्री पद से हटा देने के कारण राज्य प्रबन्ध में कठिनाइयाँ आने लगीं एवम् आभ्यन्तर और वाह्य चिन्ताओं से ग्रस्त होकर भी गुमानसिंहजी ने अपने राज्य की नौका को डूबने नहीं दिया और जालिमसिंह को वापिस बुलाकर बड़ी योग्यता से स्थिति को सँभाल लिया।

(१) तालीक सम्वत् १८२३।
(२) उपरोक्त।

जालिमसिंह को दुबारा फौजदार बने थोड़ा ही अर्सा हुआ था कि महाराव गुमानसिंहजी बीमार होगये। चिकित्सा आरम्भ हुई, परन्तु उनकी दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गई और उनके बचने की कोई आशा न रही। तब स्वभावतः ही गुमानसिंहजी को अपने राज्य के भविष्य के विषय में चिन्ता हुई। उस समय महाराजकुमार उम्मेदसिंहजी केवल दश वर्ष के थे। मराठों के आक्रमण का रातदिन भय रहता था। अभी हाल छः लाख रुपये के वादे पर मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य से निकला था। अतः राज्य को घोर साम्पत्तिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में महाराव गुमानसिंहजी अपने राज्य तथा पुत्र की रक्षा का भार जालिमसिंह के सिवाय और किस पर डाल सकते थे। जालिमसिंह भटवाड़े के मैदान में कोटा राज्य का मस्तक ऊँचा करके जयपुर नरेश के आक्रमणों को विफल बना चुके थे। मल्हारराव होल्कर पर भी उसका कुछ प्रभाव था। इन तमाम बातों को सोच कर गुमानसिंहजी ने अपने सब सरदारों को एकत्र करके उनको अपनी इच्छा सुनाकर बड़ी गम्भीरता के साथ अपने कुँवर उम्मेदसिंहजी को जालिमसिंह की गोद में बिठाया और उनसे राज्य की रक्षा करने का वचन लिया। इसके बाद माघ शुक्ला प्रतिपदा, सम्वत् १८२७ को गुमानसिंहजी का देहान्त होगया[1]। जालिमसिंह अब न केवल फौजदार किन्तु राज और राजा दोनों के पूर्णरूपेण संरक्षक बन गये।

(१) कागजात सम्वत् १८२७।

झाला जालिमसिंहजी

महाराव उम्मेदसिंहजी

(सम्वत् १८२७–१८७६ विक्रम्)

जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा बनगया—महाराव उम्मेदसिंहजी गद्दी पर बैठते समय लगभग दश वर्ष के थे। महाराव गुमानसिंहजी ने जालिमसिंह को राज्य का और उम्मेदसिंहजी का संरक्षक बनाया था। इसके अतिरिक्त वह उम्मेदसिंहजी का मामा भी था। इसलिये अब जालिमसिंह कोटे का सर्वेसर्वा बन गया।

उसकी योग्यता—जालिमसिंह बड़ा महत्वाकांक्षी था। शीघ्रातिशीघ्र वह राजपूताने में चमकना चाहता था। वह जितना साहसी और पराक्रमी था उतना ही चतुर था, और जितना कूटनीतिज्ञ था उतना ही षड़यन्त्री। अतः उसको अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। वह लोगों के इरादों को बहुत जल्दी भाँप जाता था। विपक्षियों के षड्यन्त्रों की तह में आसानी से प्रवेश कर सकता था और बात की बात में उनके प्रयत्नों को विफल कर देता था। वह स्वयम् बड़ा सफल षड्यन्त्रकारी था।

स्वरूपसिंहजी के विरुद्ध उसका षड्यन्त्र—जब उसने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया तो मालगुजारी, खजाना और जकात आदि का प्रबन्ध महाराजा स्वरूपसिंहजी के अधीन था[1]। जालिमसिंह को यह बात सहन नहीं होसकती थी। वह सम्पूर्ण शासनशक्ति को स्वयम् अपने हाथ में केन्द्रीभूत करना चाहता था। साथ ही वह इस बात

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७१।

को भी अनुभव करता था कि स्वरूपसिंहजी राजपरिवार के नजदीकी भाई हैं, इसलिये शक्तिशाली पुरुष हैं। इसलिये जालिमसिंह ने उनका अन्त करने के लिये एक षड्यन्त्र रचा। उसने राजमाता से गुप्तरूपेण यह कहलवाया कि स्वरूपसिंहजी स्वयम् गद्दी पर बैठना चाहते थे। अतः महाराव गुमानसिंहजी को उन्होंने विष देकर मारा है। बात वास्तव में यह थी कि जब महाराव गुमानसिंहजी को उपदंश रोग हुआ, तो जालिमसिंह ने राजवैद्य से मिल कर उनके फोड़ों पर जहर की पट्टी बँधवा दी थी और इसी से उनका प्राणान्त हुआ था[1]। राजमाता ने जालिमसिंह के कथन पर विश्वास कर लिया और चाहा कि महाराजा स्वरूपसिंहजी को किसी प्रकार मार दिया जावे। तब स्वरूपसिंहजी के बध के लिये जालिमसिंह ने अनेक लोभ देकर धाभाई जसकरण को तैयार किया[2]।

स्वरूपसिंहजी को छल से मरवा दिया—जालिमसिंह ने महाराजा स्वरूपसिंहजी से कहलाया कि एक आवश्यक कार्य है, कल प्रातःकाल बृजविलास बाग में मुझ से मिलो। दूसरे दिन फाल्गुन शुक्ला ३, सम्वत् १८२९[3] को प्रातःकाल जालिमसिंह नान्ता चला गया। महाराजा स्वरूपसिंहजी बृजविलास में गये तो वहाँ धाभाई जसकरण मिला। धाभाई ने महाराजा से महल के ऊपर के हिस्से में जाने का आग्रह किया। ज्योंही स्वरूपसिंहजी ऊपर छतरी में पहुँचे, जसकरण धाभाई ने उन पर पेशकब्ज का वार किया। स्वरूपसिंहजी ने मरते मरते जसकरण पर तलवार का वार किया, लेकिन धाभाई बच गया

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३८१६–१७।

(२) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३८१७।
ii टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७१।

(३) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

महाराव उम्मेदसिंहजी

(१८२७–१८७६ वि०)

और तलवार छतरी के स्तम्भ पर पड़ी। यह निशान ठाकुर लक्ष्मणदान ने देखा था[1]। जब यह खबर जालिमसिंह को मालूम हुई तो उसने अत्यन्त शोक प्रगट किया और धाभाई जसकरण को कारावास में डाल दिया।

हत्यारे को युक्ति से निकाल दिया—अब जालिमसिंह ने महाराव उम्मेदसिंहजी से कहा कि जसकरण धाभाई राजद्रोही है। इसने आपके काका महाराजा स्वरूपसिंहजी को मारा है और अब मुझ से कहता है कि उम्मेदसिंह नाबालिग और अयोग्य है। अतः इसको मार कर दूसरे को गद्दी पर बिठादें। इस बात पर महाराव उम्मेदसिंहजी को बड़ा क्रोध आया और वे धाभाई जसकरण को मार डालने का विचार करने लगे[2]।

यह स्थिति देख कर जालिमसिंह ने जसकरण से कहलाया कि नरेश बुद्धिहीन बालक हैं और लोगों के बहकाने पर तुमको मार डालने का विचार कर रहे हैं। अतः तुम कोटा छोड़ कर भाग जाओ। हम महारावजी का कोप निवारण करने का प्रयत्न करेंगे और अवसर पाकर तुमको कोटा राज्य में वापिस बुला लेंगे[3]। धाभाई जसकरण को विवश होकर कोटा छोड़ना पड़ा और जयपुर राज्य में दुःख और दारिद्र्य के साथ अपना जीवन काटना पड़ा[4]।

---

(१) i ठाकुर लक्ष्मणदान।
ii टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७१।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३८१८।

(३) उपरोक्त।

(४) i टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७१।
ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

जालिमसिंह की कूट नीति—इस हत्या के लिये जालिमसिंह ने बड़ी चतुराई के साथ कपट जाल फैलाया था। उसने ऐसी रचना रची थी कि उम्मेदसिंहजी समझे कि जसकरण उनके भय से भाग गया है और गुमानसिंहजी की विधवा पत्नी समझीं कि महाराजा स्वरूपसिंहजी को गुमानसिंहजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये मरवाया गया है। किसी को यह कहने का तो साहस नहीं होता था कि स्वरूप सिंहजी की हत्या और जसकरण का देशनिर्वासन जालिमसिंह का कर्म है, परन्तु साथ ही किसी को इस बात का भी सन्देह नहीं था कि इन दुष्कृत्यों का विधाता जालिमसिंह है[1]।

जालिमसिंह ने गढ़ में हवेली बनवाई—महाराजा स्वरूपसिंहजी के मरने पर शासन की सम्पूर्ण शक्ति जालिमसिंह के हाथ में आगई। अब वह फौजदार, दीवान, न्यायाधीश, सेनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष सब कुछ होगया। इस प्रकार सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में रखते हुये भी जालिमसिंह कभी सुख की नींद नहीं सो सकता था। नान्ते में अपने रहने के लिये उसने एक विशाल महल पहिले ही बनवा लिया था, परन्तु उसमें भी वह अपने आपको सुरक्षित नहीं मानता था। अतः वह गढ़ के अन्दर हवेली बनवाकर वहाँ रहने लगा। यहाँ रहने से उसका एक अभिप्राय यह था कि रात दिन नरेश से सम्पर्क रहे और उनके पास आने जाने वालों की गति विधि का भी सम्यक् निरीक्षण हो सके। थोड़े अर्से बाद जब जालिमसिंह का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत होगया और उसके पास आने जाने वालों की संख्या बढ़ने लगी, तथा अपने अनेक कार्यों को तथा कार्य प्रणाली को युवा नरेश से छिपाये रखना वह आवश्यक समझने लगा तो उसने सूरजपोल के पास एक दूसरी हवेली बनवाई।

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७२।

आटोण पर सेना चढ़ाई—जालिमसिंह की बढ़ती हुई शक्ति और विशेष कर महाराजा स्वरूपसिंहजी की हत्या के कारण सब हाड़ा सरदार उससे घोर द्वेष करने लगे। अनेक सरदार त्रस्त होकर कोटा राज्य को छोड़, बूँदी, जयपुर और जोधपुर आदि राज्यों में चले गये। जालिमसिंह ने सम्पूर्ण राज्यों में कहला भेजा कि जो जागीरदार कोटा छोड़ कर निकल रहे हैं, वे राजद्रोही हैं और विश्वास के योग्य नहीं हैं। जालिमसिंह के कथन पर तो अन्य नरेशों को विश्वास नहीं होता था, परन्तु उसकी कुटिल नीति और विपुल शक्ति का सब पर आतंक था। इसलिये कोई इस बात का साहस नहीं कर सकता था कि उसके निकाले हुये सरदारों को आश्रय दे[1]। असन्तुष्ट हाड़ा सरदारों के नेता आटोण के महाराजा देवसिंहजी थे, जिनकी जागीर उस समय एक लाख के लगभग थी। महाराजा स्वरूपसिंहजी देवसिंहजी के नजदीकी भाई थे। अतः अपनी शक्ति को परिमित जानते हुये भी देवसिंहजी जालिमसिंह से बदला लेने की तदबीर सोचा करते थे। जालिमसिंह से यह बात कब छिपी रह सकती थी? उसका गुप्तचर विभाग अत्यन्त सुव्यवस्थित और सुशासित था। देवसिंहजी बदले की कुछ भी तैयारी नहीं करने पाये थे कि जालिमसिंह ने हुक्म दे दिया कि आटोण के खिलाफ फौज रवाना की जावे। महाराव उम्मेदसिंहजी इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि राज के भाई के विरुद्ध सेना संचालन किया जावे, परन्तु साथ ही वे खुले रूप से जालिमसिंह का विरोध करने से भी हिचकते थे। तथापि साहस करके उन्होंने सेना को हुक्म दिया कि आटोण पर चढ़ाई न करे[2]।

मूसाकाल्पी की सहायता लीगई—जालिमसिंह इस समय

---

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७३।

(२) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

इतना शक्तिशाली हो चुका था कि चाहता तो राज सेना से महाराव उम्मेदसिंहजी की आज्ञा की अवहेलना करवा सकता था, परन्तु वह नरेश के साथ प्रगटरूपेण विरोध नहीं करना चाहता था। उसकी हमेशा यह नीति थी कि जो कुछ काम किया जावे, नरेश के नाम पर किया जावे; परन्तु नरेश को इतना निर्बल बना दिया जावे कि वह उसकी सलाह को न टाल सके। उस समय जालिमसिंह ने उम्मेदसिंहजी के हुक्म का विरोध नहीं किया, परन्तु एक वर्ष बाद मराठों के एक अँग्रेज फौजी अफसर मूसाकाल्पी को बुलाया और आटोण के खिलाफ रवाना कर दिया[1]। इसने आटोण के घेरा जा डाला और गोला बारी करना आरम्भ किया। उसी समय जालिमसिंह ने कोटे से भी सेना भेजदी, जिसके सेनानायक गेंता के महाराजा बैजनाथसिंहजी बनाये गये। मूसाकाल्पी और महाराजा गेंता कई दिन तक आटोण के घेरा डाले रहे। देवसिंहजी अपूर्व साहस और वीरत्व के साथ लड़ते रहे। ऐसी किंवदन्ति है कि एक दिन गेंता के महाराजा बैजनाथसिंहजी फौज के डेरों में प्रातः काल पाटे पर बैठे हुये दातुन कर रहे थे कि किले से एक भंगी ने उनको देखा। उसने निशाना लगा कर गोली चलाई जिससे उनका तत्काल देहान्त होगया। आटोण में इनका स्मारक बना हुआ है।

---

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

इस अफसर का नाम ठाकुर लक्ष्मणदान ने मूसामदत लिखा है और राज के दफ्तर में इसका नाम मूसाकाल्पी है। ऐसा मालूम होता है कि मूसाकाल्पी और उसका एक दूसरा साथी अँग्रेज अफसर जो बादलबेग के नाम से प्रसिद्ध था, आटोण के झगड़े के बाद कोटा राज्य में नौकर रख लिये गये थे। कर्नल टॉड को भी इस अफसर के नाम का ठीक ठीक पता नहीं था। उसने भी इसको मूसामदत ही लिखा है। इस फिरंगी अफसर के पास बहुत अच्छा तोपखाना था जो उस समय प्रसिद्ध था।

देवसिंहजी ने किला खाली कर दिया—मूसाकाल्पी ने गोलाबारी जारी रक्खी। आखिर देवसिंहजी कहाँ तक लड़ते? उन्होंने सन्धि की बात शुरू की। मूसाकाल्पी इस बात पर राजी होगया कि देवसिंहजी अपने परिवार को लेकर निकल जायँ और किला जालिमसिंह के सुपुर्द करदें। विवश होकर देवसिंहजी ने यह शर्त मानली और अपनी वंशपरम्परागत भूमि को छोड़ कर निकल गये[1]। आश्रय की खोज में बहुत अर्से तक इधर उधर मारे मारे फिरे, परन्तु झाला के विरोधी को शरण देने का किसको साहस हो सकता था?

सेंधिया की शरण ली—अन्त में सेंधिया ने उनको अपने राज्य में छोटी सी जागीर देकर रक्खा। फिर सेंधिया के कहने पर जालिमसिंह ने सात गाँव सहित उनको बमूल्या की जागीर दी जिसकी आय दस हजार थी[2]।

अन्य जागीरदारों के साथ व्यवहार—महाराजा स्वरूपसिंहजी के कोई पुत्र नहीं था। उनके दो भाई थे, अमरसिंहजी और दलेलसिंहजी। जालिमसिंह के दुष्कृत्यों से खिन्न और सन्तप्त होकर ये दोनों अपने

---

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

(२) कागजात सम्वत् १८३८।

ठाकुर लक्ष्मणदानजी लिखते हैं कि देवसिंहजी का ग्वालियर में देहान्त हुआ। उस समय उनके पुत्र जोरावरसिंहजी की अवस्था २७ वर्ष की थी। सेंधिया ने इनको सान्त्वना दी, मातमी का सरोपाव दिया और जालिमसिंह के नाम पत्र लिखा कि जोरावरसिंह को वापिस कोटा राज्य में बुलाया जावे। जालिमसिंह को सेंधिया का आदेश स्वीकार करना पड़ा। उसने जोरावरसिंह को वापिस बुला लिया और बमूल्या की जागीर दी। कर्नल टॉड का कहना है कि जोरावरसिंह ने अपने पिता के देहान्त के बाद जालिमसिंह से क्षमा चाही जो झाला ने स्वीकार कर ली और उनको बमूल्या की जागीर दी।

घर छोड़ इधर उधर लूटमार करने लगे। तब जालिमसिंह ने इन दोनों भाइयों को सान्त्वना दी और अपने पास बुलाया। अमरसिंहजी को महाराजा स्वरूपसिंहजी के गाँवों में से खेड़ली वापिस दी। दलेलसिंहजी को नियाणी का गाँव दिया। अन्य जागीरदार जो वापिस आये, उनको भी अपनी पिछली जागीरों के कुछ अंश देकर पुनः बसा लिया। इनमें महाराजा चैनसिंहजी सोरखण्ड वालों के पोते फतेहसिंहजी मुख्य थे। इनकी पैतृक जागीर तीस हजार की थी, परन्तु अब केवल दो हजार की जागीर दीगई[1]।

टीका दौर—(१८३६) अपनी शक्ति को अधिक प्रबल और सुदृढ़ करने के लिये जालिमसिंह ने एक युक्ति सोची। भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा थी कि राज्याभिषेक के बाद नवाभिषिक्त राजा दिग्विजय के लिये प्रयाण करे क्योंकि पार्श्ववर्ती राजाओं को अपने अधीन करना पराक्रमी राजा का धर्म समझा जाता था। इस परम्परागत राजनीति का आश्रय लेकर जालिमसिंह ने उम्मेदसिंहजी को भी एक प्रकार से दिग्विजय के लिये तैयार किया। जालिमसिंह समझता था कि कोटा नरेश के लिये दिग्विजय शब्द का प्रयोग करना एक प्रकार का उपहास होगा। इसलिये उसने इस विजय प्रयाण का नाम 'टीका दौर' रक्खा। यह वास्तव में जालिमसिंह की बड़ी चाल थी। कोटा राज्य के निकटवर्ती छोटे छोटे राज्य और ठिकानों को अधिकृत करके वह अपने आपको बड़ा विजेता घोषित करना चाहता था और साथ ही राज्य का विस्तार करके कोटा नरेश के धन्यवाद का पात्र बनना चाहता था। राज्य के असन्तुष्ट भाइयों का मुँह बन्द करने के लिये भी यह अच्छा साधन था।

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

शाहाबाद विजय—' टीका दौर ' में जालिमसिंह का मुख्य कार्य शाहाबाद की विजय है। उस समय शाहाबाद मेघसिंह के अधिकार में था। यह मेघराज खाँडेराव का पुत्र था। शाहाबाद को खाँडेराव से ही महाराव भीमसिंहजी ने छीन लिया था, परन्तु दुर्गमता के कारण यह इलाका अर्जुनसिंहजी के शासनकाल में फिर उसने अधिकृत कर लिया था। अब मेघसिंह का राज्य भँवरगढ़ तक फैला हुआ था[1]। उसके राज्य में अधिकांश जंगली इलाका था और राज्य की आमदनी भी थोड़ी थी। इसलिये किले में केवल ३०० आदमी रहते थे। जालिमसिंह ने अपनी कूटनीति के द्वारा इनमें से लगभग २०० सिपाहियों को अपनी ओर मिला लिया और मौका देख कर किले पर आक्रमण कर दिया। कोटे की सेना का नायक बडोरा का जमादार अनवरखाँ था। किले पर बड़ी लड़ाई हुई, परन्तु मेघसिंह कोटे की सेना से क्या लड़ सकता था ? बड़ी वीरता और साहस के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया। इसी समय जालिमसिंह वहाँ पहुँच गया और चैत्र सुदी ९ सम्वत् १८३६ को किले में महाराव उम्मेदसिंहजी की दुहाई फेर दी[2]। किले पर अधिकार स्थापित कर लेने के बाद जालिमसिंह ने जमादार अनवरखाँ को केलवाड़ा जागीर में दिया और हुक्म दिया कि वह वहीं रह कर शाहाबाद की भी निगरानी करता रहे[3]।

शोपुर-बड़ौदे पर चढ़ाई—सम्वत् १८३७ में महाराव उम्मेद सिंहजी सपाड़ की तरफ मुल्कगीरी के लिये रवाना हुये। ऐसा मालूम होता है कि यह शोपुर-बड़ौदे को जीतने के लिये चढ़ाई की गई थी।

---

(१) पं० रामकरण कृत ' अहवाल रियासत कोटा ' पृष्ठ १३५।

(२) कागजात सम्वत १८३६। कोटड़ी के दफ्तर में इस विजय की तिथि पौष शुक्ला ७ सम्वत् १८४७ दी है।

(३) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

इस समय कोटे की सेना के साथ इन्द्रगढ़, गैंता, खातौली, नीमोला आदि कोटरियों के सरदार ही नहीं बल्कि पाटण के महाराजा, बरड़ा के ठाकुर, खिलचीपुर के राजा तथा राजगढ़ के रावत भी अपने अपने जागीरदारों को साथ लेकर नौकरी देने आये थे[1]।

जयपुर का आक्रमण—सम्वत् १८३७ से १८३९ तक जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी कोटरियात पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करते रहे। उनके आक्रमण को रोकने के लिये सम्वत् १८३७ में बामणगांव समधी की तरफ[2] पण्डित नहनाजी तथा भाणेज जगतसिंह जी सेनानायक बना कर रवाना किये गये[3]। इस सेना ने उस समय आक्रमण को रोक दिया परन्तु प्रतापसिंहजी ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा और झगड़ा जारी रक्खा। अतः सम्वत् १८३९ में जालिमसिंह ने एक बड़ी सेना भेजी और उसके साथ राज्य के बड़े बड़े जागीरदार तथा सरदार रवाना किये। इन सरदारों में इन्द्रगढ़ के महाराजा सन्मानसिंहजी, खातौली के महाराजा जोरावरसिंहजी, करवाड़ के समरथसिंहजी, गैंता के नाथसिंहजी, पीपल्दा के भारतसिंहजी और बलवन के भारतसिंहजी मुख्य थे। इन सब के साथ अपना अपना जाब्ता था। इस फौज के भी नायक पण्डित नहनाजी और भाणेज जगतसिंहजी थे। यह स्मरण रखने की बात है कि इन्द्रगढ़ जैसे बड़े सरदार फौज के साथ रहते हुये भी पण्डित नहनाजी और जगतसिंहजी को सेना का नायकत्व दिया गया था। इनके साथ रोजनदार, सरबन्दी के सवार, पैदल, तोपखाना और दरबार का रिसाला भेजा गया था[4]। इस सेना को पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

---

(१) कागजात सम्वत् १८३७,
(२) ये दोनों गांव इन्द्रगढ़ की तरफ बूँदी की सीमा पर जयपुर राज्य की सीमा के निकट स्थित हैं।
(३) उपरोक्त बस्ता नं० ६४।
(४) कागजात सं. १८३७ बस्ता नं० ६४, तथा कागजात सं. १८३९, बस्ता नं० ६४।

पिण्डारे—इसी समय पिण्डारों ने उपद्रव मचाना शुरू कर दिया था। मौका पाकर वे लोग राज में घुस पड़ते थे और लूटमार करके प्रजा को उत्पीड़ित किया करते थे। कोई भी गाँव उनसे सुरक्षित नहीं था। जागीरों के मुख्य गाँवों में भी वे लोग घुस पड़ते थे। प्रत्येक बड़े बड़े गाँव में किसी ऊँचे स्थान से लोग पिण्डारों के घोड़ों की गर्द को धड़कते हुये हृदय से देखा करते थे। उनके उत्पातकारी आगमन की सूचना ढोल या नक्कारे द्वारा घोषित की जाती थी। इसको सुनते ही लोग अपने रुपये पैसे या जेवर तथा बालबच्चों को साथ लेकर इधर उधर भाग जाया करते थे। जागीरों के गाँव में किले में घुस कर प्राणों की रक्षा किया करते थे। पिण्डारे लोग किसी गाँव में अधिक समय तक नहीं ठहरते थे। वे आँधी की तरह आते थे और आँधी की तरह ही चले जाते थे। इसलिये राजपूत लोग युद्ध में भी उनको नहीं हरा सकते थे। राजपूत राज्यों के लिये पिण्डारों का उत्पात वास्तव में एक विषम समस्या थी।

जालिमसिंह ने उनको भगाया—कोटा राज्य को भी इन लोगों ने खूब खूँदा था। जालिमसिंह शाहाबाद और आटोण को विजय कर सकता था, परन्तु पिंडारों से वह भी घबराता था। सम्वत् १८३० में कोटा राज्य के दक्षिणी भाग में पिण्डारों ने बहुत लूटमार की और वहीं अपना पड़ाव डाल दिया। इसलिये भट्ट दयानाथ के नायकत्व में जालिमसिंह ने सेना भेजी, जिसने गागरोण के पास जाकर पिंडारों को खदेड़ा और वे भाग गये[1]।

फिर मित्रता की—पिण्डारे लोग कभी जम कर युद्ध नहीं करते थे। इसलिये उनके भाग जाने से बार बार उपस्थित होने वाले

(१) कागजात सम्वत् १८३०।

संकट का वास्तविक निवारण नहीं हुआ। अन्त में तंग आकर जालिम-सिंह को पिण्डारों से मैत्री स्थापित करनी पड़ी। कपूरखाँ और मीरखाँ दोनों से दोस्ती की और मीरखाँ को शेरगढ़ में रहने के लिये स्थान दिया। मीरखाँ इधर उधर लूटमार करके शेरगढ़ में आजाया करता था। यहाँ किले में उसका परिवार बिल्कुल सुरक्षित था। मीरखाँ के साथ मैत्री स्थापित करने में जालिमसिंह की एक गहरी चाल थी। मीरखाँ पिण्डारों का सरदार था। इसलिये कोटा राज्य पिण्डारों के धावों से तो बचा ही रहता था, परन्तु इसके अतिरिक्त इस मैत्री से जालिमसिंह को एक दूसरा भी लाभ था। होल्कर कोटे पर कई बार आक्रमण कर चुका था। अतः जालिमसिंह को सदैव उसका भय बना रहता था। इसलिये जालिमसिंह ने मीरखाँ को शेरगढ़ में बसाया। मीरखाँ को रहने के लिये सुरक्षित स्थान मिल गया और जालिमसिंह को होल्कर के खिलाफ खड़ा करने के लिये एक पिण्डारा सरदार[1]।

जीवाजी अप्पा की कोटे पर चढ़ाई—मराठे सरदारों के साथ शान्ति सम्बन्ध रखना जालिमसिंह के लिये सबसे बड़ी राजनैतिक समस्या थी। इस समय सम्पूर्ण राजपूताना पिण्डारों और मराठों के तूफान से तबाह होता जाता था। इस तूफान में खड़े रहने की कोटे में शक्ति नहीं थी। इसलिये जालिमसिंह साम, दाम और भेद से काम लिया करता था। वह कई मराठा सरदारों को मामलत देता था, कई को सैनिक सहायता देता था और कई के साथ जैसे तैसे स्नेह व्यवहार बनाये रखता था। सम्वत् १८३४ में जीवाजी अप्पा नामक मराठा सरदार की फौज झम्पायता की घाटी तक आ पहुँची, और जालिमसिंह

---

(१) i टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९७।

ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

को यह भय हुआ कि कहीं कोटे में न घुस पड़े। इसलिये पण्डित ताँत्या, बख्शी शिवलाल और बख्शी अखयराम को अप्पा से मिलने भेजा[1]। इन्होंने जीवाजी अप्पा को समझा बुझा कर कोटे की सीमा में नहीं घुसने दिया और राज्य को उत्पात से बचाया। ऐसा मालूम होता है कि जीवाजी अप्पा को कुछ रुपये देकर सम्मानित किया गया और उसके साथ राजनैतिक मैत्री भी स्थापित की गई। सम्वत् १८३६ में जीवाजी अप्पा का देहान्त हुआ और उसका पुत्र जनकोजी अप्पा उसके टीके बैठा। उस समय कोटे की ओर से टीके का दस्तूर भेजा गया, जिसमें हाथी, घोड़े, सरपेंच तथा बहुमूल्य वस्त्र भेजे गये। इस दस्तूर में जो कपड़े भेजे गये उनके नामों से पता लगता है कि उस समय भारतवर्ष में कैसे और कहाँ कपड़े बनते थे। कपड़ों के नाम ये हैं :—

रामपुर का चीरा, फर्रुखशाही शोशबन्दी, जरी का कुर्ता, अहमदाबादी फाँटा, कटारदार मसरू, कीमखाब, बनारस का फाँटा, कुतनी का थान, और महमूदी सफेद[2]।

पुनः मराठों की चढ़ाई—इसी वर्ष इन्द्रगढ़, खातौली, करवाड़ और पीपल्दे की तरफ तथा शोपुर की ओर मराठों ने खूब लूटमार की। ये स्थान कोटे के अधीन थे। इसलिये कोटे की तरफ से पण्डित ताँत्या जी को फौज लेकर भेजा गया। पण्डित ताँत्याजी लड़ा नहीं और न लड़ सकता था क्योंकि मराठों का सामना करना हितकर नहीं था। अतः साम और दाम द्वारा उसने मराठों को वापिस किया[3]।

---

(१) कागजात सम्वत् १८३४।

(२) कागजात सम्वत् १८३६।

(३) उपरोक्त।

नरहरराव की सेना की चढ़ाई—सम्वत् १८४१ में नरहरराव पण्डित की फौज कोटा नगर के अत्यन्त निकट आपहुँची। नरहरराव पण्डित एक दक्षिणी सरदार था। इसकी सेना इधर उधर लूटमार करती फिरती थी। जो सेना कोटे के निकट आपहुँची थी, उसके साथ यह नहीं था। उस समय यह मैसूर में था। तो भी जालिमसिंह ने इस सेना का मुकाबिला नहीं किया और पन्द्रह हजार रुपये नकद देकर पिण्ड छुड़वाया[1]।

खाँडेराव को सन्तुष्ट किया—सम्वत् १८४२ में खाँडेराव लूट खसोट करता हुआ खींचीवाड़ में आपहुँचा और जालिमसिंह से अपनी मदद के लिये फौज माँगी। ऐसा अनुमान होता है कि राघवगढ़ आदि राज्यों ने खाँडेराव को सन्तुष्ट कर खण्डणी समय पर नहीं भेजी थी। इसलिये वह इन परगनों को खूँदता फिरता था। जालिमसिंह ने अपनी नीति के अनुसार इस सरदार को भी सन्तुष्ट करने के लिये भट्ट दयानाथजी और पचौली अखयराम को भेजा। मालूम होता है कि इस भट्ट ने राजनैतिक प्रपञ्चों के द्वारा या रुपया देकर खांडेराव को कोटे की सीमा से वापिस फेर दिया[2]।

होल्कर की खुशामद—तुकोजी होल्कर को भी इसी प्रकार समम समय पर रुपये देकर सन्तुष्ट करना पड़ता था। जालिमसिंह इस सरदार के नाम बड़ी चापलूसी और चालाकी से भरे हुये पत्र लिखा करता था। एक पत्र में जालिमसिंह ने लिखा था कि "यो राज आपको ही छै और यहाँ बड़ो हुक्म आपको ही छै"। जब होल्कर के आदमी मामलत की ताकीद के लिये या दूसरे काम के लिये कोटे में आते थे

(१) कागजात सम्वत् १८४१।

(२) कागजात सम्वत् १८४२।

तो उनके आतिथ्य सत्कार में खूब रुपया खर्च किया जाता था। सम्वत् १८३९ में जब तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर का विवाह हुआ तो कोटे की तरफ से सात हजार रुपये न्यौते के भेजे गये थे[1]।

अन्य मराठा सरदारों को मामलत—शिवाजी विट्ठल और शिवाजी बापू को भी कोटे से मामलत दी जाती थी। शिवाजी विट्ठल को उम्मेदगढ़ की मामलत के सम्वत् १८३६ में सैंतीस हजार रुपये तथा पण्डित शिवाजी बापू को उसी साल खींचियों की बमोरी की मामलत के तीन हजार रुपये दिये थे[2]।

बेगूँ को बचाया—एक बार पारस्परिक द्वेष के कारण महाराणा मेवाड़ ने सेंधिया को बेगूँ पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। सेंधिया के लिये इससे अधिक अनुकूल अवसर क्या हो सकता था? उसने बेगूँ को घेर लिया और बहुत दिन तक घेरा जारी रहा। गढ़ के खण्ड गिरने लगे और रक्षा की कोई आशा नहीं रही। बेगूँ और कोटे में सम्बन्ध था। राजगद्दी पर बैठते ही सम्वत् १८२७ में उम्मेदसिंहजी का बेगूँ विवाह हुआ था[3]। इसलिये महाराव उम्मेदसिंहजी को बड़ी चिन्ता हुई। ऐसी स्थिति देख कर जालिमसिंह बीच में पड़ा और कोटा राज्य के कोष से छः लाख रुपये देकर बेगूँ को बचाया। इतना धन लेकर भी सेंधिया ने बेगूँ के दो परगने सिंगोली और रतनगढ़ अपने राज्य में मिला लिये[4]।

शाहबाद की मामलत निश्चित हुई—शाहाबाद का किला जालिमसिंह ने सेंधिया की अनुमति लिये बिना ही फतेह कर लिया था।

---

(१) कागजात सम्वत् १८३९ तथा तालीक उसी साल की।
(२) कागजात सम्वत् १८३६।
(३) कागजात सम्वत् १८२७।
(४) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३८१९।

शायद मेघसिंह सेंधिया को मामलत देता था। अतः विजय के बाद ही सेंधिया ने ऐतराज उठाया कि उसकी आज्ञा के बिना किला क्यों फतेह कर लिया गया? उसको सन्तुष्ट करने के लिये पण्डित लालाजी बल्लाल और जोशी देवकरण को ग्वालियर भेजा गया। दोनों के द्वारा निश्चित हुआ कि शाहबाद की मामलत के प्रति वर्ष ३०,०००) रुपये दिये जावें[1]।

खण्डणी का विभाग—कोटा राज्य उस समय कई लाख रुपये सालाना मराठों को कर देता था। यह कर अपने वकील के द्वारा सेंधिया वसूल करता था, परन्तु सारा कर सेंधिया के नहीं रहता था। पारस्परिक सन्धि के अनुकूल यह पहले (१) सेंधिया, होल्कर और पँवार में फिर (२) सेंधिया, होल्कर और दो पँवारों में, उसके बाद (३) सेंधिया, होल्कर और तीन पँवारों में, तदनन्तर (४) सेंधिया, होल्कर, तीन पँवारों, पेशवा, और रामचन्द्र पण्डित में, और पुनः (५) सेंधिया, होल्कर, और पँवार में विभक्त करली जाती थी। सेंधिया और होल्कर का हिस्सा बराबर था।

अँग्रेजों से प्रथम सम्पर्क—सम्वत् १८६१ में अँग्रेजी सेना ने कोटा राज्य में प्रथम बार प्रवेश किया और जालिमसिंह का अँग्रेजों से प्रथम सम्पर्क हुआ। इस समय अँग्रेज दक्षिणी और पूर्वी भारत में अपना आधिपत्य स्थापित कर चुके थे और राजपूताना तथा पंजाब ही उनके राजनैतिक प्रभाव से बचे हुये थे। अतः कोटा राज्य में अँग्रेजी सेना के प्रथम प्रवेश का वर्णन करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अँग्रेजों के उदय का संक्षिप्त वृत्त दिया जावे।

भारत में पुर्त्तगालियों का आगमन—१५ वीं शताब्दी

---

(१) कागजात सम्वत् १८३६।

में इधर भारतवर्ष ही नहीं सम्पूर्ण एशिया तो पुरातन रूढ़ियों और परम्पराओं में डूबा हुआ या तो पारस्परिक युद्धों में रक्त बहाया करता था या भगवद्भक्ति के उन्माद में नृत्य किया करता था; परन्तु उधर स्पेन और पोर्तुगाल अरब लोगों के व्यापार को हस्तगत करने के लिये भारतवर्ष को पहुँचने का समुद्री मार्ग ढूँढने में प्राणपण से चेष्टा कर रहे थे। सन् १४९८ में आखिरकार वास्कोडागामा नामक एक पोर्तुगाली वीर नाविक दक्षिण भारत के तट पर कालीकट में आपहुँचा। यूरूप को भारत में आने का समुद्री मार्ग मिल गया। इससे छः वर्ष पूर्व कोलम्बस ने अमेरिका के तट पर स्पेन का झण्डा जा गाड़ा था। भारतवर्ष, ईरान, अफ्रीका और अमेरिका के साथ व्यापार करने से यूरूप के देश मालामाल होने लगे, उनके लिये उन्नति का नया मार्ग खुल गया। उनका ज्ञान, साहस और अनुभव विस्तृत होने लगा। जगत विजय के प्रथम सोपान पर वे चढ़ गये। भारतवर्ष के दक्षिणी तट पर पोर्तुगालियों ने एक इलाका भी अपने अधिकार में कर लिया और शनैः शनैः साम्राज्य विस्तार की वे लोग योजना करने लगे।

डच, अँग्रेज और फ्रान्सीसी लोगों का आगमन—पोर्तुगालियों ने लगभग एक सौ वर्ष तक भारत के साथ व्यापार किया और इसके कुछ भाग पर राज्य किया। १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में डच और अँग्रेज व्यापारिक लाभ से आकर्षित होकर इस नये क्षेत्र में उतरे। पोर्तुगाली लोगों ने उनको रोकने का प्रयास किया परन्तु नहीं रोक सके। अँग्रेज और डच दोनों ने भारतीय तट पर अपनी अपनी व्यापारिक कोठियाँ बनाईं और खूब लाभ उठाया। अँग्रेजों के व्यापारिक संघ ने जिसका नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी था, और जिसको अँग्रेजी राजा ने भारतवर्ष के साथ व्यापार करने का एकाधिकार

देदिया था, सन् १६३९ में मदरास और १६९० में कलकत्ता बसाया। सन् १६६१ में बम्बई भी उसको मिल गया। अँग्रेज राजा के प्रतिनिधि ने जहाँगीर से मिलकर अपने देशवासियों के लिये बहुत सी व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करलीं। सन् १६६४ में फ्रान्सीसियों के व्यापारिक संघ का निर्माण हुआ जिसने सन् १६८३ में पाँडिचरी बसाया और सन् १६७३ में चन्द्रनगर पर अपना अधिकार कर लिया।

अँग्रेजों ने डच और फ्रांसीसियों को दबा दिया— १८ वीं शताब्दी में भारतवर्ष में भारतीय व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करने के लिये इन यूरोपियन जातियों का पारस्परिक संघर्ष हुआ। पोर्तुगाली पहिले ही दब गये थे। उनके हाथ में थोड़ासा इलाका रह गया था और उनका व्यापार नष्ट हो चुका था। डच लोगों ने भी अँग्रेजों का भारतवर्ष में अधिक सामना नहीं किया। फ्रान्सीसियों ने सन् १७४४ से १७६१ तक तीन बार लड़ाई लड़ी, परन्तु अन्त में वे भी हार गये और केवल पाँडेचरी और चन्द्रनगर उनके अधिकार में रह गये। अब अँग्रेजों को किसी यूरोपियन जाति का खटका नहीं रहा।

अँग्रेजों ने भारत में अपना राज्य स्थापित किया— अँग्रेजों ने सन् १७५८ में बँगाल के नवाब को और १७६४ में अवध के नवाब, दिल्ली के शाहजादे और बंगाल के दूसरे नवाब को हरा कर कलकत्ते से प्रयाग तक अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। दिल्ली सम्राट् ने विधिपूर्वक बिहार और बंगाल इनके सुपुर्द कर दिये और इनसे पचीस लाख रुपये प्रति वर्ष पेन्शन लेकर अपना गुजर करने लगा। शनैः शनैः अवध का नवाब और भी निर्बल होने लगा और अँग्रेजों का प्रभाव बढ़ने लगा। सन् १८०३ में अवध के नवाब ने पूर्णरूप से अँग्रेजों की अधीनता स्वीकार करली। इसी वर्ष अँग्रेजों ने आक्रमण करके दिल्ली और आगरा पर अपना कब्जा कर लिया। दक्षिण में

कर्नाटक और ट्रावनकोर पर ये लोग पहिले ही अधिकार जमा चुके थे। सन् १८०५ में टीपू सुलतान को युद्ध में मार कर मैसूर का राज्य पुनः प्राचीन हिन्दू राजवंश के एक उत्तराधिकारी को दे दिया और उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवा ली। पेशवा परिवार की घरेलू लड़ाई के कारण सन् १७७६ में अँग्रेजों को मराठों से लड़ने का प्रथम अवसर मिला जिसमें इनकी धाक जम गई फिर सन् १८०३ में पेशवा, सेंधिया और भोंसला को हरा कर अपनी अधीनता स्वीकार करवाली। एवम् सन् १८०५ में कलकत्ते से दिल्ली तक और ग्वालियर से कर्नाटक तक अँग्रेजों का प्रभाव जम गया। जिनने इनकी अधीनता स्वीकार करली थी वे कम्पनी की आज्ञा के बिना अन्य किसी रईस से न लड़ाई कर सकते थे न सन्धि। इनको अपनी रक्षा के लिये फौजखर्च भी देना पड़ता था। इस समय मुसलमान रईस सब अँग्रेजों के मातहत बन चुके थे। राजपूत इस समय मराठों के मातहत थे, अतः अँग्रेजों ने उनको अभी छोड़ रक्खा था। मराठों में केवल होल्कर ने अँग्रेजों की अधीनता का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था। अतः सन् १८०४ में उसको दबाने के वास्ते बड़ी सैनिक तैयारी कीगई।

होल्कर से अँग्रेजों का युद्ध—दिल्ली के विजेता लार्ड लेक को उत्तर की ओर से और आर्थर वेलेजली को दक्षिण की ओर से होल्कर के विरुद्ध कूँच करने का आदेश हुआ। वर्षाऋतु आरम्भ होने वाली थी, अतः लेक कानपुर चला गया और कर्नल मानसून को उसने हुक्म दिया कि होल्कर को रोके रक्खे। मानसून की मातहती में सिपाहियों की तीन "बेटेलियन" और बहुत सा रिसाला था। उसके साथ कप्तान लूकन भी था।

जालिमसिंह ने अँग्रेजों को सहायता दी—जब कर्नल

मानसून अपनी सेना के साथ होल्कर के विरुद्ध रवाना हुआ और कोटा राज्य में होकर गुजरा तो जालिमसिंह ने उसकी सहायता के लिये एक सेना दी। इस सेना के नायक पलायथे के आप अमरसिंह-जी थे। जब मानसून होल्कर के राज्य की सीमा पर पहुँचा तो होल्कर ने उसका सामना नहीं किया। इससे मानसून का हौसला और भी बढ़ा। वह होल्कर के राज्य में घुसता ही गया। उस समय होल्कर प्रतापगढ़ में था। इधर मानसून गरोठ तक पहुँच गया। जब होल्कर ने सुना कि अँग्रेजी सेना आरही है तो वह मन्दसौर की ओर बढ़ा और चम्बल नदी को आवरा की थाग पर पार करके गरोठ की ओर आया। इस समय कर्नल मानसून और होल्कर में ५० मील का अन्तर था। कर्नल मानसून को इस समय भी पता नहीं था कि होल्कर किधर है और क्या कर रहा है। इसलिये वह गरोठ से चँदवासे की ओर बढ़ने लगा। यहाँ पर उसे पता लगा कि होल्कर बड़ी तेजी के साथ बढ़ता चला आरहा है और उसके साथ बहुत बड़ी फौज है। इस समाचार से मानसून घबरा गया और उसने आयोजन किया कि मुकन्दरा की घाटी में पहुँच कर अपनी सेना की रक्षा की जावे।

कोटा राज्य की सेना ने मानसून को बचाया—हटते समय अमरसिंहजी को तथा कप्तान लूकन को पीछे छोड़ आया और दोनों सेनानायकों को हुक्म दे आया कि होल्कर को रोकना ताकि मैं सुरक्षित रूप से मुकन्दरा की नाल तक पहुँच सकूँ। मानसून पीछा मुकन्दरा की ओर रवाना हुआ और कोटे की सेना के नायक तथा कप्तान लूकन साहसपूर्वक चँदवासे के पास डटे रहे। इतने में ही होल्कर की सेना आ पहुँची।

होल्कर की सेना का कोटे की सेना पर आक्रमण—होल्कर की सेना दो भागों में विभक्त थी। एक भाग का सेनानायक

खान बंगस था और दूसरे का हरनाथ दादा। खान बंगस ने कोटा की सेना पर आक्रमण किया। आप अमरसिंहजी ने वीरता से सामना किया। इन्होंने अपनी सेना को अमझर नदी के उत्तर की ओर पीपल्या नामक गाँव के पास जमाया था। उनकी सेना एक ऊँचाई पर स्थित थी, जहाँ से ढाल नदी की ओर था। होल्कर की फौज की कोटे की सेना के साथ मुठभेड़ हुई और कुछ देर तक दोनों ओर से वीरता का अच्छा प्रदर्शन हुआ। होल्कर के १,००० सैनिकों ने कोटे की सेना को घेर लिया और आप अमरसिंहजी की स्थिति अत्यन्त नाजुक होगई। उनके साथ केवल रिसाला था। हाथी या तोपखाना नहीं था। वे घोड़े पर बैठे हुये और तलवार चलाते हुये बंगस के हाथी तक पहुँच गये और उससे भिड़ने ही वाले थे कि उनके माथे में और छाती में तलवार के घाव लगे, जिससे आहत होकर वे जमीन पर गिर पड़े और थोड़ी देर में उनका देहान्त होगया। कोयला के आप अमरसिंहजी भी इस सेना के साथ थे। वे भी वीरता-पूर्वक लड़ते रहे और अन्त में अनेक घावों से घायल होकर उन्होंने रणक्षेत्र छोड़ा। कोटे के लगभग चार सौ पचास आदमी इस मैदान में मारे गये और कुछ लोग कैद कर लिये गये। इन लोगों में कोटे का फौजबख्शी भी था। बहुत सम्भव है कि यह अखयराम पचौली हो[१]।

आप अमरसिंहजी का स्मारक—पीपल्या गाँव में आप अमरसिंहजी के वंशज् पलायथे के रावबहादुर आप अमरसिंहजी ने दरबार में अर्ज करके उनका स्मारक बनाया है जिस पर इस विषय

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ७८४–८५।
iii भवानी शंकर की डायरी—खुदाबख्श।
iv भागवत—भवानीशंकर बख्शी यांची रोजनिशीं, भाग ५, पृष्ठ ११०।

का शिलालेख भी है। इस स्मारक के लिये होल्कर दरबार ने लगभग दो बीघा जमीन पलायथे को माफी में देकर इस बात का परिचय दिया है[1] कि वीरता शत्रुओं की भी स्तुत्य और प्रशंसनीय है। मानसून ने अदूरदर्शिता से मालवे में घुस कर ऐसी भूल की थी कि यदि आप अमरसिंहजी आत्म-बलिदान करके होल्कर की सेना को नहीं रोकते तो मानसून और उसकी सेना का सर्वांश नाश होजाता और अँग्रेजों की घोर अपकीर्ति होती। इसी कारण कम्पनी सरकार ने आप अमरसिंहजी की सेवा को बहुत महत्त्व पूर्ण समझा था और गवर्नर जनरल आदि उच्च अधिकारी मानसून के पलायन की चर्चा करते हुये अमरसिंहजी की दृढ़ता और वीरता का भी उल्लेख किया करते थे। इस घटना के अट्ठाइस वर्ष बाद जब महाराव रामसिंहजी अजमेर में दरबार के अवसर पर गवर्नर जनरल लार्ड बेन्टिङ्क से मिले तो उसने पूछा था कि होल्कर की सेना से लड़ते हुये मारे जाने वाले अमरसिंह का पुत्र कौन है[2] ?

कप्तान लूकन भी मारा गया—लूकन भी बड़ी वीरता से लड़ा, परन्तु अन्त में हरनाथ दादा ने उसको चारों ओर से घेर लिया और वह मारा गया[3]। पीपल्या गाँव के पास एक महुवे का वृक्ष है जो लूकन साहिब का जुझार कहलाता है। कर्नल टॉड ने यह वृक्ष देखा था और वह इस समय भी विद्यमान् है। जिस समय यह क्षेत्र कर्नल टॉड ने देखा तो आप अमरसिंहजी जिस स्थान पर वीरगति को प्राप्त

(१) i टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ७८४–८५।
ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
iii वेडिङ्गटन—इण्डियन इण्डिका, डिस्पेचेज ऑफ लोर्ड लेक।
(२) कागजात सम्वत् १८८८।
(३) वास्तव में लूकन मारा नहीं गया। उसको होल्कर ने कैद कर लिया था (ओवन–वेलेजली के डिस्पेचेज् पृष्ठ ४७७)

हुये थे, वहाँ पर एक सशस्त्र घुड़सवार की मूर्त्ति थी[1]।

मानसून भाग कर कोटा आया—लूकन और आप अमरसिंहजी दोनों इस प्रकार धराशायी हुये, परन्तु इनके आत्म-त्याग से कर्नल मानसून सुरक्षित रूप से मुकन्दरा की घाटी में पहुँच गया। होल्कर की विजयी सेना ने शीघ्रता के साथ उसका पीछा किया। यदि मानसून में साहस होता तो वह इस घाटी में डटा रहता और होल्कर की सेना को वापिस मोड़ देता। उसके सैनिक बार बार उससे युद्ध करने के लिये कहते थे, परन्तु उस पर यशवन्तराव होल्कर का इतना आतंक बैठ गया था कि उसके पाँव नहीं जमते थे। उसने मुकन्दरा की घाटी को छोड़ दिया और भागता हुआ कोटे की तरफ बढ़ा। जब वह कोटे के निकट आया और उसने अपनी सेना के लिये शरण चाही तो जालिमसिंह ने उसको शहर के अन्दर नहीं घुसने दिया और कहला दिया कि इस प्रकार बिगड़ी हुई और भागी हुई सेना को मैं अपने सैनिकों से नहीं मिलने देना चाहता। जालिमसिंह ने साथ ही यह भी कह दिया कि तुम रसद ले सकते हो और यदि आवश्यकता हुई तो तुमको होल्कर से बचाने के लिये मैं अपनी सम्पूर्ण सैनिक शक्ति का उपयोग कर सकता हूँ[2]।

और अन्त में उसने लार्ड लेक को अपनी विपद कहानी सुनाई—मानसून भागता रहा। चम्बल नदी को पार कर वह बूँदी पहुँचा। इस प्रकार भागते भागते उसके सैनिक कुछ मर गये, कुछ बीमार होगये, और कुछ छोड़ कर चले गये। अन्त में उसने लगभग अकेले ही अपने पराजय का हाल लार्ड लेक को दिल्ली में सुनाया। अपनी कायरता को छिपाने के लिये उसने लार्ड लेक से कहा कि झाला

(१) टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ७८४।
(२) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९८।

जालिमसिंह ने हमारी सेना को कोई सहायता नहीं दी और विपदग्रस्त अवस्था में हमको शहर के अन्दर भी नहीं घुसने दिया। वास्तव में मानसून के प्राण कोटे की सेना के आत्मत्याग के कारण ही बच पाये थे। परन्तु यह बात स्वीकार करना उसके लिये आसान नहीं था[1]।

कोटे पर होल्कर का आक्रमण—जब मानसून के पलायन से होल्कर को सन्तोष हो गया, तो उसने कोटे से बदला लेने की ठानी और वह कूँच करता हुआ कोटे के राज्य में घुस आया। शहर के पास उसकी सेना का पड़ाव लग गया और विषम स्थिति उपस्थित होगई। शहरपनाह के दरवाजे बन्द कर लिये गये और लोग धड़कते हुये हृदय से देखने लगे कि क्या होने वाला है। होल्कर को कोटा पहिले से ही खण्डणी देता था। इसलिये वह और भी रुष्ट हुआ कि एक मातहत राज्य ने उसके विरुद्ध शत्रु की सहायता की; परन्तु कोटा भी उस समय संकट में था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति बढ़ती जाती थी। सेंधिया ने उसकी एक प्रकार से अधीनता स्वीकार कर ली थी। जयपुर के साथ भी कम्पनी की सन्धि होचुकी थी। ऐसी स्थिति में कोटे को विवश होकर कम्पनी की सहायता करनी पड़ी थी। जब जालिमसिंह ने देखा कि मानसून भाग निकला है तो उसने रुख भी बदल लिया था और मानसून की सेना को किले में नहीं घुसने दिया था। जालिमसिंह ने जो मानसून को जवाब दिया था, वह भी बड़ी चाल से भरा हुआ था। वास्तव में मानसून के पलायन के बाद वह होल्कर और कम्पनी दोनों में से किसी को भी नाराज नहीं करना चाहता था, क्योंकि इस समय जालिमसिंह यह अनुभव नहीं कर पाया था कि कम्पनी का उत्कर्ष अनिवार्य है।

सन्धि का प्रस्ताव—होल्कर के साथ सन्धि की बातचीत

(१) टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९८।

आरम्भ की गई, परन्तु उसने जालिमसिंह की कोई भी शर्त स्वीकार नहीं की। अन्त में यह निश्चय हुआ कि दोनों सरदार आपस में मिलें और झगड़े को निपटावें। जालिमसिंह ने प्रस्ताव किया कि मुलाकात चम्बल नदी के मध्य में नाव पर हो। होल्कर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और मुलाकात की तैयारी हुई। नावों को सुन्दरता के साथ सजाया गया और उनमें बहुमूल्य कालीन बिछाये गये। गढ़ के नीचे चम्बल में दोनों सरदार मिले। होल्कर जालिमसिंह को काका कहता था और जालिमसिंह होल्कर को भतीजा। बड़ी शिष्टता और प्रीति के साथ बातचीत हुई, परन्तु साथही दोनों ओर की सेनायें सशस्त्र, सुसज्जित नदी के तट पर खड़ी हुई थीं और अनिष्ट संकेत की प्रतीक्षा कर रही थीं[1]।

होल्कर तीन लाख रुपये लेकर हटा—पीपल्या के युद्ध में जिस फौजबख्शी को बंगस ने कैद कर लिया था, उसने अपना पिण्ड छुड़ाने के लिये होल्कर को यह दस्तावेज लिखदी थी कि कम्पनी को सहायता देकर कोटा राज्य ने जो होल्कर को क्षति पहुँचाई है, उसके दण्डस्वरूप कोटा दस लाख रुपये जुरमाना देगा। जब यह बख्शी कोटे पहुँचा और उसने जालिमसिंह को यह बात सुनाई तो जालिमसिंह ने इसको स्वीकार नहीं किया और उससे उसी समय कह दिया कि तुम वापिस होल्कर के लश्कर में चले जाओ। अब होल्कर ने वह दस्तावेज जालिमसिंह के सामने रक्खी, परन्तु जालिमसिंह ने उसको स्वीकार नहीं किया। फिरभी होल्कर तीन लाख रुपये लेकर कोटे से रवाना होगया और शेष सात लाख रुपये माँगना उसने

(१) टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९९।

कभी नहीं छोड़ा[1]। कर्नल टॉड का कहना है कि अन्त को जब यशवन्तराव होल्कर पागल होगया तो अपने प्रलाप में काका जालिमसिंह की दस्तावेज का प्रायः जिक्र किया करता था। कर्नल टॉड अन्य अँग्रेज इतिहासकारों की भाँति मराठों का विरोधी है, और मराठा इतिहास में इस घटना का कहीं जिक्र नहीं है, इसलिये यह कथन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

होल्कर की शक्ति घटी और कोटा रियासत पर अधिकार कम हुआ—इसके बाद डीग में होल्कर की हार हुई और कम्पनी की जीत। तब से राजपूताने में होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। सेंधिया स्थान स्थान पर होल्कर के परगनों पर अपना अधिकार स्थापित करने लगा और होल्कर की खण्डणी पर अतिक्रमण करने लगा[2]। इस अवस्था का अनुभव करके होल्कर ने जहाँ तहाँ अपने प्रबन्ध में परिवर्तन किया परन्तु स्थिति नहीं सुधरी। खातौली आदि परगनों के कमाविसदार मामलत की वसूली में सुस्ती करने लगे। अतः होल्कर ने दूसरा कमाविसदार भेजा परन्तु होल्कर का प्रताप क्षीण होता ही गया[3]।

जयपुर उससे लड़ने को तैयार होगया—जयपुर होल्कर से खुल्लमखुल्ला झगड़ा करने पर ही तैयार होरहा था। अगस्त सन् १८१२ में मल्हारराव होल्कर ने लालाजी बल्लाल कोटे वाले को लिखा था कि जयपुर वाले रुपये नहीं देते हैं सो तो अलग बात है,

---

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९८, ५९९।

(२) पत्र १६५, शिंदेशाही इतिहासांची साधनें, भाग २।

(३) उपरोक्त, पत्र १६५।

परन्तु वे लड़ने के लिये भी तैयारी कर रहे हैं[1]। इसके एक मास बाद ही जयपुर वालों ने होल्कर के जनरल नवाब मुहम्मदशाह का मुकाबिला किया और यह समाचार सुनकर जब दूसरा जनरल मदद पर गया तो उसको सफलता नहीं हुई[2]।

जालिमसिंह ने शिष्ट व्यवहार जारी रक्खा—मानसून के मामले में जालिमसिंह से अनबन होने पर भी होल्कर उसकी मित्रता को बहुमूल्य और आवश्यक समझता था और इसको तोड़ना हितकर नहीं समझता था। कारण यह था कि जालिमसिंह से उसको कभी कभी मदद मिल जाया करती थी। ३० मई सन् १८१३ में मल्हार-राव होल्कर ने अपने लड़के परशुराम होल्कर को ढूँढार परगने के रामपुर किले पर दखल करने के लिये भेजा, परन्तु उसको सन्देह था कि वहाँ का थानेदार उसका दखल नहीं होने देगा और बड़ा विघ्न आवेगा। इसलिये उसने जालिमसिंह को लिखा कि वह परशुराम होल्कर को मदद देकर किले पर उसका दखल करवादे। इससे अनु-मान होता है कि जालिमसिंह और होल्कर में कैसा सम्बन्ध था और जालिमसिंह की मित्रता को होल्कर कितनी महत्त्वपूर्ण समझता था?

कोटा राज्य ने उदयपुर के महाराणा को मराठों के विरुद्ध सहायता दी—इस समय उदयपुर में जागीरदारों की दो पार्टियाँ थीं। एक शक्तावतों की और दूसरी चूँड़ावतों की। चूँड़ावतों ने शक्तिशाली बनकर शासनसंचालन अपने हाथ में लेलिया था और महाराणा पर अपना पूरा आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहाँ तक कि महाराणा अपने वैयक्तिक खर्च के लिये भी तंग रहने लगे। तब राज-

(१) फालके: भाग २, लेखाङ्क १८४।
(२) उपरोक्त, भाग २, लेखाङ्क १८५, १८६।

माता ने सोमचन्द गंधी को राजमंत्री नियत किया। उसने चूँड़ावत और शक्तावतों में सन्धि करवाने की गरज से उदयपुर में दोनों पक्ष के सरदारों को एकत्र किया और यह प्रगट किया कि मराठों को उदयपुर से निकालने के लिये सब सरदारों को परस्पर द्वेष भूल कर तथा एक होकर लड़ना चाहिये। इस बात को चूँड़ावतों और शक्तावतों ने स्वीकार कर लिया। तब मोखमसिंह शक्तावत कोटे आया और वहाँ महाराव उम्मेदसिंहजी से निवेदन किया कि मराठों को राजपूताने से हटाना सब राजपूतों का परम कर्त्तव्य है, अतः उदयपुर को सहायता मिलनी चाहिये। जालिमसिंह समझ गया होगा कि यह प्रयत्न मराठों से राजपूताने की रक्षा के लिये नहीं है बल्कि मेवाड़ की घरेलू लड़ाई को शान्त करके महाराणा की शक्ति को पुनः स्थापित करने के लिये है, परन्तु वह मेवाड़ पर अपनी धाक जमाना चाहता था और अपने प्रभाव को विस्तृत करना चाहता था, अतः उसकी सलाह से कोटा नरेश ने महाराणा के निवेदन को स्वीकार कर लिया और उदयपुर की सहायता के लिये मोखमसिंह के साथ अपनी सेना भेजी। इस सेना के साथ झाला जालमसिंह गया और कुन्हाड़ी के राज भवानीसिंहजी, कोयले के आप अमरसिंहजी और गैंता के महाराजा नाथसिंहजी को उसने अपने साथ लिया[1]।

सेंधिया को हराने में कोटा राज्य की सेना का सहयोग- उधर मारवाड़ और जयपुर दोनों राज्य भी मिलकर इसी समय मराठों को निकालने का प्रयत्न कर रहे थे और लालसोट की लड़ाई में उनको एक बार हरा भी चुके थे[2]। अतः यह अवसर मराठों पर हमला

(१) i ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९८६।
ii भीमविलास, वीरविनोद।
(२) टॉड : राजस्थान, भाग १, पृष्ठ ५१३।

करने के लिये बहुत अच्छा था। मेवाड़ तथा कोटे की संयुक्त सेना का अध्यक्ष मेहता मालदास नियुक्त हुआ। सेना ने उदयपुर से कूँच किया जो नीमाहेड़ा, निकुम्प, जीरण आदि स्थानों को जो उस समय मराठों के हाथ में थे, दबाती हुई जावत पहुँची। यहाँ पर मराठों के साथ घोर युद्ध हुआ। मराठों की सेना का नायक सदाशिव राव था जो कुछ दिनों तक वीरतापूर्वक लड़ता रहा, परन्तु फिर शहर छोड़कर भाग गया[1]।

तो भी मेवाड़ अराजकता का रंगमंच बनगया—मराठों के पराजय से मेवाड़ में शान्ति नहीं हुई। जब तक सेंधिया के विरुद्ध युद्धावेश तथा विजयोल्लास बना रहा तब तक तो चूँड़ावत और शक्तावत परस्पर निभते रहे, परन्तु कुछ अर्से बाद फिर इनका प्राचीन पारस्परिक वैमनस्य प्रकट होने लगा। चूँड़ावतों ने छल घात द्वारा सोमचन्द गंधी को मार डाला। उसके भाई सतीदास ने जो उस समय मेवाड़ का प्रधान था, शक्तावतों की सहायता से चूँड़ावतों को युद्ध में हराया। परन्तु दूसरी लड़ाई में शक्तावत हार गये। इस पारस्परिक कलह और रक्तपात के कारण मेवाड़ विनाश और दुर्भिक्ष का रंगमंच बन गया और सर्वत्र अशान्ति तथा अराजकता फैल गई[2]।

मेवाड़ के घरेलू कलह में जालिमसिंह का हस्तक्षेप—यह दशा देख कर महाराणा ने चूँड़ावतों को चित्तौड़ से निकालने का आयोजन किया और झाला जालिमसिंह तथा अपने मन्त्रियों को सेंधिया के पास पुष्कर भेजा। जालिमसिंह झाला और माधवराव सेंधिया ने मिल कर निश्चय किया कि चूँड़ावतों से चौसठ लाख रुपये दण्ड के लिये जावें। तब जालिमसिंह और अम्बाजी इँगलिया सेना लेकर चितौड़ की ओर चूँड़ावतों को दबाने के लिये रवाना हुये। रास्ते में हमीरगढ़

(१) ओझा: राजपूताने का इतिहास, चतुर्थभाग, पृष्ट ९८७।
(२) टॉड: राजस्थान भाग १, पृष्ठ ५१५–१६।

पर चढ़ाई की। यह किला उस समय धीरजसिंह चूँड़ावत के अधिकार में था। छः सप्ताह तक यहाँ लड़ाई हुई। अन्त में किला तथा जागीर मराठों के हाथ में आगई। इसी प्रकार बसी की जागीर भी दबाली गई। जालिमसिंह और इँगलिया की संयुक्त सेना आगे बढ़ी और चितौड़ के पास डेरा जा लगाया। यहीं पर सेंधिया भी अपनी सेना लेकर आपहुँचा[1]।

सेंधिया और महाराणा की मुलाकात—महादजी सेंधिया को महाराणा से मिलने की बड़ी इच्छा थी। इस समय जालिमसिंह झाला सेंधिया के साथ था। वह चितौड़ आया और महाराणा से अनुरोध किया कि सेंधिया से मुलाकात करें। महाराणा ने मुलाकात का स्थान नाहर मगरा निश्चित किया। दोनों रईस वहाँ मिले। जालिमसिंह भी मुलाकात में शामिल हुआ। इस मुलाकात के समय चूँड़ावतों को चित्तौड़ से बाहर निकाल देने के सम्बन्ध में बातचीत हुई[2]।

जालिमसिंह ने मेवाड़ के विद्रोही पठानों को दबाया—बातचीत करके सेंधिया प्रस्थान करने वाला था कि महाराणा की सेना में गदर होगया। मेवाड़ की पठान सेना, जिसको बहुत अर्से से वेतन नहीं मिला था, नंगी तलवारें हाथ में लिये हुये महाराणा के डेरे की ओर बढ़ने लगी। इस अवसर पर जालिमसिंह ने बड़े चातुर्य्य से काम लेकर असन्तुष्ट सैनिकों को दबा दिया और महाराणा की रक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया[3]।

---

(१) i वीरविनोद, भाग २, प्रकरण १५।
ii टॉड : राजस्थान, भाग १, पृष्ठ ५१६–१७।
iii ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९९०।
(२) ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९९१।
(३) i वीरविनोद, भाग २, प्रकरण १५।
ii ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९९१।

जालिमसिंह वापिस आया—महाराणा, जालिमसिंह और महादजी सेंधिया ने चित्तौड़ के पास सेंती गाँव में डेरा डाला और चूँड़ावतों से कहलाया कि किला खाली कर दें। भीमसिंह चूँड़ावत इस संयुक्त सेना को देख कर डर गया और उसने अम्बाजी इंगलिया के द्वारा कहलाया कि मैं महाराणा का दास हूँ, मुझे अपने स्वामी से कोई विरोध नहीं है, अगर जालिमसिंह झाला वापिस कोटे चला जावे तो मैं आत्म समर्पण करने को तैयार हूँ। महाराणा ने इसे स्वीकार कर लिया और जालिमसिंह कोटे लौट आया[1]।

जालिमसिंह की मेवाड़ नीति—चूँड़ावतों को नष्ट करने में जालिमसिंह की बहुत बड़ी राजनैतिक चाल थी। कोटे में वह सर्वेसर्वा बन ही चुका था। अब चूँड़ावतों को बरबाद करके मेवाड़ को अपने चंगुल में फँसाना और राजपूताने पर अपनी धाक जमाना चाहता था। चूँड़ावतों को यह शंका थी कि कहीं वह चित्तौड़ को अपने आधीन न करले, इसलिये उन्होंने उससे युद्ध करना श्रेयस्कर नहीं समझा। अम्बाजी इंगलिया जालिमसिंह की चाल को ताड़ गया और उसका पक्ष निर्बल करने के लिये ही उसने रावत भीमसिंह से मेल कर लिया[2]।

इसमें उसको दो बार निराशा हुई—चितौड़ से लौटते हुये जालिमसिंह को बड़ी निराशा हुई। चूँड़ावतों को चूर करके वह मेवाड़ में अपनी प्रधानता स्थापित करना चाहता था जो न हो सकी। थोड़े अर्से बाद जालिमसिंह को अपनी राजनैतिक चालों के उपयोग करने का दूसरा अवसर प्राप्त हुआ परन्तु फिर भी वह नाकामयाब रहा। जब भीमसिंह चूँड़ावत ने चितौड़ का किला खाली कर दिया तो विनष्ट

(१) i भीमविलास, पृष्ठ १०२।
ii ओझा: राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ९९२।
(२) उपरोक्त।

मेवाड़ में शान्ति और शासन स्थापित करने के लिये माधवराव सेंधिया ने अम्बाजी इंगलिया को नियत किया। यह जालिमसिंह का घनिष्ठ मित्र था। इसीने उसको सेंधिया की कैद से छुड़ाया था। महादजी सेंधिया के देहान्त के बाद उसके पुत्र दौलतराव सेंधिया ने एक सारस्वत ब्राह्मण जिसका नाम लकवा दादा था, राजपूताने का सूबेदार नियुक्त किया और महाराणा को लिखा कि अम्बाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपंत को मेवाड़ से निकाल दो। गणेशपंत निकलने को राजी नहीं हुआ और लकवा दादा में और उसमें लड़ाई छिड़ गई लकवा की सेना ने गणेशपंत को हमीरगढ़ के किले में घेर लिया जिससे उसकी स्थिति अत्यन्त नाजुक होगई। तब गणेशपंत की मदद के लिये अम्बाजी इंगलिया का भाई भालेराव, बापू सेंधिया, जसवन्तराव सेंधिया और कप्तान बटरफील्ड आ पहुँचे। इन्हीं के साथ झाला जालिमसिंह भी गया। गणेशपंत भी किले में से निकल कर इस सेना में आ मिला। इस सेना का खेमा धोसूँडा गाँव में लगा हुआ था। वहाँ पर युद्ध हुआ, परन्तु भालेराव या तो डर कर या लकवा के पुराने अहसानों का स्मरण करके रणक्षेत्र से हट गया। यह स्थिति देखकर महाराणा ने अम्बाजी इंगलिया का पक्ष करना छोड़ दिया। इससे जालिमसिंह को फिर निराशा हुई और वह कोटे लौट आया।

अवसर पाकर जालिमसिंह फिर मेवाड़ पहुँचा—अब महाराणा ने सतीदास को अपना मंत्री नियुक्त किया। सतीदास का भाई शिवदास उस समय जालिमसिंह के पास रहता था। अब वह मेवाड चला गया[1]। कुछ दिन बाद लकवा का देहान्त होगया। तब भालेराव सतीदास से जा मिला। भालेराव जालिमसिंह के परम मित्र

(१) टॉड : राजस्थान, भाग १, पृष्ठ ५२९-३०।

इंगले का भाई था। अतः इस स्थिति को अनुकूल समझ कर जालिमसिंह सेना के साथ मेवाड़ गया और शक्तावतों से मिल गया। थोड़े दिन बाद भालेराव और महाराणा में झगड़ा होगया जिसमें भालेराव हरा दिया गया और कैद कर लिया गया।

जालिमसिंह ने महाराणा को हराया और जहाजपुर पर कब्जा कर लिया—तब भालेराव को कैद से छुड़ाने के लिये जालिमसिंह ने तेजाघाटी की ओर कूँच किया। महाराणा उससे लड़ना नहीं चाहता था, परन्तु चूँड़ावतों के दबाव से वह छः हजार सेना साथ लेकर उसका मुकाबला करने के लिये रवाना हुआ। तेजाघाटी के पास पांच दिन तक युद्ध होता रहा जिसमें जालिमसिंह बड़ी वीरता के साथ लड़ा और रावत अजीतसिंह सख्त घायल हुआ। तब महाराणा ने सन्धि का प्रस्ताव किया जो जालिमसिंह ने स्वीकार कर लिया। महाराणा ने भालेराव को कैद से मुक्त कर दिया और फौजखर्च के ऐवज में जालिमसिंह को जहाजपुर का किला और परगना सौंप दिया। जालिमसिंह ने अपनी ओर से विष्णुसिंह शक्तावत को जहाजपुर का हाकिम बनाया[1]।

मेवाड़ के अन्य परगनों पर जालिमसिंह का अधिकार—केवल जहाजपुर से जालिमसिंह की आकांक्षा पूरी नहीं हो सकती थी, वह भीलवाड़े से पूर्व की तरफ का प्रदेश कोटे में मिलाना चाहता था। इन्हीं दिनों जालिमसिंह को एक और मौका मिला। दाणियों की कोटड़ी के जागीरदार ने शेरसिंह नामक एक राजपूत को मार डाला।

---

(१) i वीरविनोद, भाग २, प्रकरण १५ ख्यात।
ii टॉड: राजस्थान, जिल्द १, पृष्ठ ५३०–३१।
iii ओझा: राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ १००३।
iv वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३६१२।

शेरसिंह के पुत्र सूरजमल ने जालिमसिंह से शिकायत की। उसने जहाजपुर के किलेदार विष्णुसिंह शक्तावत को शेरसिंह की सहायता के लिये आदेश किया। विष्णुसिंह ने सूरजमल की सहायता कर कोटड़ी के किले को नष्ट कर दिया और कोटड़ी को जहाजपुर के परगने में मिला लिया। इसी प्रकार उसने देवगढ़ के ठाकुर से साँगानेर भी छीन लिया। इसके उपरान्त उसने माँडलगढ़ का किला भी हस्तगत करना चाहा। महाराणा ने उसके दबाव में आकर यह किला उसके नाम लिख तो दिया, परन्तु साथही किलेदार को संकेत कर दिया कि किला सुपुर्द न किया जावे। जालिमसिंह ने लड़ाई नहीं लड़ी और किला उसके हाथ नहीं आया[1]।

मेवाड़ पर कोटा राज्य का ऋण—सेंधिया और होल्कर को खण्डणी देने के लिये तथा महाराणा के व्यक्तिगत खर्च के लिये कई बार करके जालिमसिंह ने इकहत्तर लाख रुपये मेवाड़ को कर्ज दिये थे। इस कर्ज की और फौजखर्च की अदायगी के लिये जालिमसिंह ने मेवाड़ के कई परगनों पर कोटा राज्य का शासन जारी कर रक्खा था। कोटड़ी पर उसने जीत कर अधिकार किया था एवम् साँगानेर, जहाजपुर, ईटोदा, सकरगढ़, कोटड़ी और हस्तड़ा के परगने कोटे के सुपुर्द थे। इनका अफसर बिशनसिंह शक्तावत था। इन परगनों की कुल आमदनी कोटा राज्य में जमा होती थी। वार्षिक आमदनी में से फौज और प्रबन्ध का खर्च निकाल देने के बाद जो कुछ बचता था, वह कर्ज पेटे जमा किया जाता था। लेकिन इकहत्तर लाख रुपये का ब्याज परगनों

---

(१) i वीरविनोद, भाग २, प्रकरण १५।

ii ओझा राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृष्ठ १०१०।

की बचत से अधिक जुड़ा करता था। अतः ऋण घटने के बजाय प्रतिवर्ष बढ़ता जाता था[1]।

ये परगने मेवाड़ को वापिस कैसे मिले ?—ये परगने सम्वत् १८७१ तक कोटे के सुपुर्द रहे। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की बातचीत शुरू हुई तो कर्नल टॉड ने आग्रह किया कि इन परगनों को वापिस कर देना उचित है। यह नहीं कहा जासकता कि कर्नल टॉड ने इन परगनों को वापिस दिलाते हुये कौनसी दलील का उपयोग किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये परगने जीत कर कोटा राज्य में मिलाये गये थे और साथ ही यह भी बात स्पष्ट है कि मेवाड़ पर कोटे का इकहत्तर लाख रुपये के लगभग कर्ज था। इन परगनों को वापिस करने के लिये झाला जालिमसिंह ने महाराणा को कुछ शर्तें लिख कर भेजी थीं, परन्तु महाराणा ने उनको अस्वीकार कर दिया। इस समय महाराणा को न चूँड़ावतों का भय था और न झाला जालिमसिंह की सहायता की आवश्यकता। उस समय कर्नल टॉड मेवाड़ की पीठ ठोक रहा था और जालिमसिंह की विस्तृत और प्रभूत शक्ति को भी वह सीमित करना चाहता था। झाला जालिमसिंह ने इस कठिन स्थिति में पड़ कर तथा विवश होकर जो महाराणा मेवाड़ को पत्र लिखा था, वह अविकल उद्धृत करने योग्य है।

"श्री श्री श्री श्री श्री दीवाणजी हजूर श्री महाराव उम्मेदसिंहजी स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्री ई तान अरज जालिमसिंह छोरू माधोसिंह केन मुजरो अवधारज्योजी अठ का समाचार श्री दीवाणजी की सु नजर महरवानगी सूँ भला छ। श्री दीवाणजी का सुख समाचार घड़ी

(१) कागजात सम्वत १८६०, बस्ता नं० ७५।

घड़ी पुल पुल का सदा सर्वदा आरोग चाहिजे तो परम आणंद होइजी। अपरंच श्री दीवाणजी बड़ा छ सरदार छ सारा हिन्दुस्तान का सर्वस्व छ धणी छ सु नजर महरवानगी फरमावे छ तीसूँ विशेष फरमावा को हुक्म होसी और श्री हजूर की तरफ कर्जा का वा फरमास वागेर का रुपया श्री·····का लेणा तींका रुक्का वा दस्तावेजां छी तीं पेटे जायगाँ, जहाजपुर, साँगानेर, वागेर श्री हजूर ने तनख्वा लगा दीनी छी तींको जवाब कपतान टाट साब बहादुर की मारफत हुयो। जठ श्री हजूर ने सारी नामंजूर करी ती पें जायगाँ छोड़ या फारगती साब बहादुर का राजीनामा क लेख लिख दीनी छ, सो अठ का रुपया लेणा जो आग जाताँ श्री हजूर सूँ माँगगाँ नहीं। अठ पाँच घोड़ा रजपूत छै सो श्री दीवाणजी का हुक्म का छ। महरवानगी फरमाई। मती नन्दगाँव चिरंजीव माधोसिंह ने करी। परवानगी पंडित बलवन्तराव मती भादवो सुदी १४ संवत् १८७१"।

कर्नल टॉड ने स्वयम् बिशनसिंह शक्तावत से इन परगनों का चार्ज लिया था और फिर ये मेवाड़ दरबार के सुपुर्द किये थे। परगने अपने कब्जे में करके कर्नल टॉड ने जो ठाकुर बिशनसिंह शक्तावत को पत्र लिखा था, वह भी मनोरंजक है और अविकल उद्धृत करने योग्य है :—

"ठाकुराँ बिशनसिंह मालूम करे तरफ जमस टाट साब के पीछे पीछो राम राम के, गढ़ कल्ला पर्गना ईटोदा, सकरगढ़ का आज पहली तारीख महीना फरवरी सुपरदनामां के लिख दी, तारीख महीना फरवरी सन् १८१९।"

जालिमसिंह की बूँदी के प्रति नीति—बूँदी और कोटे

में अरसे से वैमनस्य चला आता था। यह कलह जाजव की लड़ाई में बल्कि उससे भी पहिले आरम्भ हुआ था जो अब तक नहीं मिटने पाया था। जालिमसिंह की नीति अपना स्वार्थ सिद्ध करते हुये यथासम्भव सब नरेशों के साथ मैत्री स्थापित करने की थी। अतः उसने अपनी पुत्री का विवाह बूँदी के रावराजा के साथ कर दिया और इस बात का प्रयत्न करने लगा कि कोटा बूँदी का पारस्परिक द्वेष किसी प्रकार धुल जाये। एक बार जालिमसिंह और बालाजी यशवन्त दोनों केशवराय पाटण दर्शनार्थ गये हुये थे। उनको मालूम हुआ कि बूँदी राज्य का प्रधान सचिव धाभाई सुखराम भी पाटण दर्शनार्थ आरहा है। जालिमसिंह ऐसे सुअवसर को कब खोने वाला था? वह सुखराम का स्वागत करने के लिये एक कोस तक गया और बड़े स्नेह और हर्ष के साथ उसको पाटण लेकर आया। केशवराय के मन्दिर में बालाजी यशवन्त ने जालिमसिंह और सुखराम से गम्भीरतापूर्वक आग्रह किया कि तुलसीदल हाथ में लेकर दोनों मित्रता करें। इसी समय एक बेरीसालोत सरदार ने साहस करके कहा कि जालिमसिंह एकता करने के योग्य नहीं है। इसने स्वरूपसिंह को मरवाया है, रानियों को धोखा दिया है, और जसकरण धाभाई को महान् कष्ट पहुँचाया है। यह बात सुन कर जालिमसिंह को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा कि तुम कायर पुरुष की तरह दो शूरवीरों की एकता में क्यों बाधक बनते हो? अंत में अगहन बदी द्वितीया संवत् १८३१ के दिन जालिमसिंह और सुखराम ने श्रीकेशवरायजी को साक्षी करके परस्पर एकता की शपथ ली[1]।

कोटा और बूँदी में मेल—जालिमसिंह वापिस कोटे आया और अपने साथ ही सुखराम धाभाई को लाया। नगर के बाहर राज्य

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३८२४।

की ओर से सुखराम का स्वागत किया गया और उसको सम्मानपूर्वक बाग में ठहराया। अगहन बदी ५ सम्वत् १८३१ को वह महाराव उम्मेदसिंहजी से मिलने गया। उम्मेदसिंहजी उससे बड़ी प्रीति और उमंग के साथ मिले। उम्मेदसिंहजी ने दो दिन बाद सुखराम को सरपेंच, सरोपाव तथा एक बढ़िया घोड़ा देकर वापिस लौटने की आज्ञा दी। फिर यह जालिमसिंह तथा बालाजी यशवन्त के घरों पर मिलने गया और दोनों ने गहरी प्रीति प्रगट करते हुये उसको सरोपाव और घोड़े देकर सत्कृत किया। सुखराम ने विदा होकर नान्ते में मुकाम किया। वहाँ गैंता के महाराजा नाथसिंहजी और बालाजी यशवन्त उससे मिले और उसके साथ साथ बूँदी गये। वहाँ दो घोड़े, दो सरोपाव, एक हाथी और एक बहुमूल्य आभूषण बूँदी नरेश के भेंट किये और कोटा नरेश की ओर से कुशल क्षेम पूछा। बूँदी नरेश ने महाराजा नाथसिंहजी को तथा बालाजी यशवन्त को एक एक सरोपाव और घोड़ा देकर सप्रेम विदा किया। इस प्रकार एक अरसे से जो दो राजपरिवारों में पारस्परिक द्वेष चला आता था, उसको मिटाने में जालिमसिंह ने बड़ी चतुराई की[1]।

हाड़ा जागीरदारों के प्रति नीति—आटोण के महाराजा देवसिंहजी की भाँति अन्य जागीरदार भी जालिमसिंह से क्षमा माँग कर कोटे में वापिस आगये थे। फिर भी न इन जागीरदारों को जालिमसिंह पर विश्वास था और न जालिमसिंह उन पर भरोसा करता था। वास्तव में जालिमसिंह जागीरदारों के और विशेष कर हाड़ा जागीरदारों के बहुत विरुद्ध था। वह समझता था कि स्थानीय जागीरदारों की शक्ति को क्षीण किये बिना अपनी शक्ति प्रबल नहीं हो सकती और कोटा नरेश पर पूरा प्रभाव स्थापित नहीं हो सकता। अतः जागीरदारों

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

को निर्बल करने के लिये वह सदा प्रयत्न किया करता था। कर्नल मानसून की सहायतार्थ कोयला और पलायथा के जागीरदारों को भेजने में भी उसकी गहरी चाल थी। वह जानता था कि मानसून की विजय से उसको श्रेय मिलेगा और सरदारों के मारे जाने से उसकी शक्ति बढ़ेगी। जब पलायथे के आप अमरसिंहजी मारे गये तो जालिमसिंह ने उनके ठिकाने को नष्ट करने का विचार किया। आप अमरसिंहजी के पुत्र अजीतसिंहजी उस समय नवयुवक थे और जालिमसिंह की चालों को नहीं समझ सकते थे।

पलायथे पर जालिमसिंह का कोप—होल्कर के हार जाने पर कम्पनी ने जालिमसिंह के प्रति प्रसन्नता प्रगट की और होल्कर के चार परगने डीग, पचपहाड़, अहोर और गंगराड़ जो जालिमसिंह ने होल्कर से इजारे पर ले रक्खे थे, कम्पनी ने जालिमसिंह को बख्श दिये[1]। इस पर आप अजीतसिंहजी बहुत अप्रसन्न हुये और जालिमसिंह को मारने पर उतारू होगये[2]। जब जालिमसिंह को अजीतसिंहजी के इरादे का पता चला तो उनको कोटे बुला कर कैद कर दिया। आपे से बाहर होकर अजीतसिंहजी ने जालिमसिंह को बहुत बुरा भला कहा। इस पर जालिमसिंह और अधिक क्रुद्ध हुआ और पलायथे पर सेना चढ़ा दी। पलायथे का किला और गढ़ गोलाबारी करके गिरा दिया गया। केवल मन्दिर और महल का कुछ हिस्सा बच पाया। सब माल असबाब लूट कर कोटे मँगवा लिया गया। इस रोमाञ्चकारी समाचार से आप अजीतसिंहजी को घोर आघात पहुँचा और कैद में ही उनका देहान्त होगया[3]। उनकी विधवा माता के

---

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६००।
(२) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
(३) उपरोक्त।

निर्वाह के लिये आँकेड़ी नामक एक गाँव जागीर में देदिया और वृन्दाबन में रह कर भजन करने का उन्हें हुक्म दिया। इससे पहिले पलायथे की जागीर बहुत बड़ी थी और उसके पाँच भाई डाबरी, नागदा, कुन्जेड़, बड़वा और राजगढ़ अच्छी जागीर वाले थे[1]। ये जागीरदार भी आप अजीतसिंहजी की अप्रसन्नता में सम्मिलित थे और झाला के विरोधी थे। जालिमसिंह ने इनकी भी जागीरें छीन लीं और सब को राज्य से निर्वासित कर दिया। ये लोग देश छोड़कर वर्षों तक इधर उधर मारे मारे फिरे और तबाह होगये। फिर महाराव किशोरसिंहजी ने नाथद्वारे से वापिस आने पर इनको बसाया[2]।

जालिमसिंह के प्रति विरोध—इस प्रकार की नीति से जालिमसिंह के प्रति स्थानीय राजपूत सरदारों का विरोध बढ़ने लगा। परन्तु ज्यों ज्यों विरोध बढ़ता गया त्यों त्यों वह अधिकाधिक दमन करने लगा। अपनी सत्ता के बल से उसने हाड़ा सरदारों की शक्ति तो क्षीण करदी लेकिन उनके असन्तोष को वह नहीं मिटा सका। प्रत्यक्ष में जालिमसिंह का कोई विरोधी नहीं था, परन्तु राज्य में सैकड़ों लोग ऐसे थे जो उसके प्राणघातक बने हुये थे। स्वयम् जालिमसिंह भी जानता था कि उसका जीवन सुरक्षित नहीं है, परन्तु वह करता क्या। स्वरूपसिंहजी, देवसिंहजी और अमरसिंहजी—इन तीन मुख्य सरदारों को वह छल और बल से हटा चुका था। अन्य कई छोटे सरदारों को वह निर्वासित कर चुका था। कोटड़ियों के सरदारों पर उसका पूरा नियन्त्रण था, परन्तु सैकड़ों हाड़ा राजपूत जो वैसे उल्लेखनीय नहीं थे, उसके

---

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii कागजात सम्वत् १८३८, खाता जागीरदारों का।

(२) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

प्राणों का अन्त करना चाहते थे। बड़े सरदार ऐसे राजपूतों के साहस तथा प्रयास के साथ सहानुभूति रखते थे और गुप्त रूप से उनके सहायक थे।

जालिमसिंह के विरुद्ध प्रथम षड़्यन्त्र—ऐसे लोगों ने जालिमसिंह की जान लेने के लिये कई षड़्यन्त्र किये, परन्तु वे सफल नहीं हुये। मुहासे के बहादुरसिंह ने जो दस हजार का जागीरदार था, एक षड़्यन्त्र रचा। इसमें कितने ही राजपूत सम्मिलित थे और बड़ी चतुरता से सब तैयारी की गई थी। यह निश्चय किया गया था कि जिस समय जालिमसिंह कचहरी जावे तो उस पर आक्रमण कर दिया जावे, परन्तु जालिमसिंह बड़ा सतर्क था और उसके गुप्तचर बड़े निपुण थे। कचहरी जाने से पहिले जालिमसिंह को इस षड़्यन्त्र का पता लग गया। उसने अपने निजी पायगाँ के घुड़सवार अधिक संख्या में बुला लिये और षड़्यन्त्रकारी कुछ कर पाते उससे पूर्व ही उन पर आक्रमण करवा कर उनको घेर लिया[1]।

दूसरा षड़्यन्त्र—दूसरा षड़्यन्त्र राजमहलों में रचा गया। जालिमसिंह को जनानी ड्योढ़ी पर बुलाया और एक कमरे में बिठा दिया गया। वहाँ पर दासियों ने उसको बध करने की पहिले ही तैयारियाँ कर रक्खी थीं। उन्होंने जालिमसिंह को घेर लिया और क्रोध पूर्वक उससे बातें करने लगीं, सहसा आक्रमण करने की शायद उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। फिर भी सब स्त्रियाँ उस पर शस्त्र प्रहार करने ही वाली थीं कि एक दासी ने उसके प्राण बचाये। वह जनाने कमरे में से दौड़ी हुई आई और जालिमसिंह को ललकारा कि तुम यहाँ तक कैसे घुस आये। फौरन बाहर निकल जाओ। वह भाग कर बाहर

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७४।

आगया और इस प्रकार दूसरे षड़्यन्त्र से भी बचगया[1]।

उसका त्रस्त जीवन—इसी प्रकार जालिमसिंह के प्राण लेने के लिये अनेक षड़्यन्त्र किये गये पर सब विफल हुये। नहाते और शिकार करते समय वह बहुत ही सतर्क रहा करता था। ऐसे अवसरों पर उस पर कई बार वार किये गये थे परन्तु वह बड़ा भाग्यशाली था। कोई वार और कोई षड़्यन्त्र सफल नहीं हुआ। तो भी इस प्रकार भय-संकुल जीवन से जालिमसिंह अत्यन्त परेशान रहा करता था और वह कहा करता था कि अब मैं अपनी रक्षा करते करते थक गया। कभी कभी वह लोहे के पिंजड़े में सोया करता था, जिसकी चाबी स्वयम् अपने पास रखा करता था[2]।

वही वास्तविक शासक था—जालिमसिंह को शक्ति और प्रभाव की अदम्य पिपासा थी। अतः संकट-संकुल जीवन को भी वह सहज समझता था। वह महाराव उम्मेदसिंहजी पर अपना पूरा प्रभाव बनाये रखना चाहता था। उस समय उम्मेदसिंहजी नाम के शासक थे और जालिमसिंह काम का शासक। गुमानसिंहजी ने अपने अन्त समय जालिमसिंह को बालक उम्मेदसिंहजी का संरक्षक बनाया था। उनको क्या पता था कि जालिमसिंह जीवनपर्यन्त ही उनका संरक्षक बना रहेगा। वह उम्मेदसिंहजी को हमेशा बच्चा ही समझता रहा, और जो शासन सूत्र उसने गुमानसिंहजी के देहावसान के समय हाथ में लिया उसको कभी ढीला नहीं छोड़ा। राजप्रबन्ध में कहने को हुक्म दरबार का ही हुआ करता था, जब कभी दूसरी रियासत से कोई सन्देश आता तो वह दरबार को ही सब से पहिले पढ़ कर सुनाया जाता था, उसका उत्तर

---

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७५।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ५७५–७६।

भी दरबार के मुख से ही दिया जाता था। राजाज्ञायें सब दरबार की ओर से हुआ करती थीं, परन्तु यह सब नाटक मात्र था। इस प्रकार के उत्तरों और आज्ञाओं के एक शब्द को भी उम्मेदसिंहजी इधर उधर नहीं कर सकते थे। महाराव उम्मेदसिंहजी का देहान्त हुआ तब तक झाला जालिमसिंह उनके साथ वैसा ही व्यवहार करता रहा जैसा महाराव गुमानसिंहजी के सामने उनको अपनी गोद में बिठाते हुये किया था।

उसकी राजभक्ति—जालिमसिंह इतना नीति-निपुण था कि वह प्रत्यक्ष में कोटा नरेश का ऐसा आदर करता था मानो वह अक्षरशः उनकी आज्ञाओं का पालन करता हो। उनकी ही नहीं, राजपरिवार के सब लोगों के प्रति वह अगाध राजभक्ति प्रदर्शित किया करता था। एक बार जालिमसिंह का बड़ा लड़का माधोसिंह और बड़े महाराजकुमार किशोरसिंहजी दोनों साथ साथ घोड़े दौड़ा रहे थे। उस समय माधोसिंह ने किशोरसिंहजी के प्रति कुछ अशिष्ट व्यवहार किया। जब जालिमसिंह को इस बात का पता चला तो वह अपने पुत्र पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसको नान्ते में कैद कर दिया, जहाँ उसको निरन्तर तीन वर्ष तक रहना पड़ा। महाराव उम्मेदसिंहजी ने जालिमसिंह से कई बार कहा कि माधोसिंह को क्षमा करके कोटे बुला लिया जावे, लेकिन उसने नहीं माना और कहता रहा कि राजपरिवार के साथ अशिष्टता कभी क्षम्य नहीं हो सकती। दूसरी घटना इससे भी अधिक रोचक है। एक बार जालिमसिंह बृजनाथजी के दर्शन करने गया हुआ था। वहीं पर महाराजकुमार बिशनसिंहजी और पृथ्वीसिंहजी भी आ पहुँचे। मन्दिर के फर्श पर कुछ गीला था। जब जालिमसिंह ने देखा कि दोनों महाराजकुमार बैठना चाहते हैं तो उसने अपना दुशाला उतार

कर वहाँ बिछा दिया। दर्शनान्तर दोनों महाराजकुमार वहाँ से चले गये। तब नौकर यह समझ कर उस दुशाले को उठाने लगा कि जालिमसिंह उसको अब क्या काम में लावेगा, परन्तु जालिमसिंह ने उसको नौकर के हाथ से झटक लिया और कहा कि मेरे स्वामी के चरण चिन्ह इस दुशाले पर अंकित होगये हैं, इसलिये अब यह लाख रुपये का बन गया है और इसका उपयोग करने में मेरा बड़ा गौरव है। इस प्रकार की चतुर उक्तियों से जालिमसिंह उम्मेदसिंहजी को भुलावे में डाले रखता था। उम्मेदसिंहजी अपनी निर्बलता और जालिमसिंह की दुर्धर्ष शक्ति को पूर्णरूपेण समझते थे, परन्तु उस समय की विषम राजनैतिक स्थिति और मराठों के आक्रमणों के कारण वे उसका विरोध नहीं कर सकते थे।

जालिमसिंह और अँगरेज—राजपूताने में अँगरेजों के साथ सबसे पहिले कोटा राज्य ने ही सन्धि की थी। यह जालिमसिंह की राजनैतिक दूरदर्शिता थी। वह अँगरेजों की उतरोत्तर वृद्धि को ध्यानपूर्वक देखा करता होगा और समझता होगा कि वे शीघ्र ही मराठों का स्थान ग्रहण करने वाले हैं। कर्नल टॉड ने राँवठे के मुकाम पर जालिमसिंह से कहा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी पिंडारियों का दमन शान्ति स्थापना करने के लिये कर रही है, राज्यविस्तार के प्रयोजन से नहीं, तो जालिमसिंह एक क्षण के लिये शान्त रहा। इस समय वह नेत्रहीन हो चुका था, अतः कर्नल टॉड के चेहरे को वह नहीं देख सकता था, परन्तु हृद्गत भावों की झलक मुख मुद्रा पर देखने की उस के लिये आवश्यकता नहीं थी। जो होने वाला था उसे वह खूब समझता था। इसलिये वह मुसकराकर बोला, "ठीक है, मैं जानता हूँ कि दस वर्ष बाद सारे भारतवर्ष में कम्पनी का राज्य हो जाना है[1]।"

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६०५।

जालिमसिंह की भविष्यवाणी इस मुलाकात के दस वर्ष बाद तो नहीं किन्तु बत्तीस वर्ष बाद अवश्य पूरी होगई।

अँगरेजों को पिण्डारियों के विरुद्ध सहायता दी—सन् १८१७ में लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने पिंडारियों के दमन का बहुत बड़ा आयोजन किया और इन लोगों को चारों ओर से खदेड़ने के लिये बहुत बड़ी सेना तैयार की। लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने राजपूताने के समग्र राज्यों को इस बृहत् कार्य में सहयोग देने के लिये आमन्त्रित किया और साथ ही यह भी घोषित किया कि जो इस कार्य में कम्पनी का साथ नहीं देंगे वे कम्पनी के शत्रु माने जायँगे। यह जालिमसिंह के लिये एक समस्या होगई। अपने राज्य की रक्षा करने के लिये उसने पिंडारियों के नेताओं से मित्रता जोड़ रक्खी थी। मीरखाँ को शेरगढ़ में रहने के लिये एक हवेली दी गई थी। चारों ओर लूटमार करने के बाद मीरखाँ शेरगढ़ में आजाया करता था जो जालिमसिंह की शक्ति और प्रभाव के कारण उसके तथा उसके परिवार के लिये एक सुरक्षित स्थान था। मीरखाँ को जालिमसिंह उसकी सेना के वास्ते रसद दिया करता था और उसकी अन्य आवश्यकतायें पूरी करता था। विपत्ति के समय जालिमसिंह ने कई बार उसकी सहायता की थी। एक बार मीरखाँ अरसे तक अपने सैनिकों को वेतन नहीं देसका जिसके कारण उन्होंने बगावत कर दी और स्थिति का सँभालना कठिन होगया। उस समय जालिमसिंह ने उसकी सहायता की। चढ़ी हुई तनख्वाह चुकाने के लिये कोटा राज्य के कोष से रुपये देदिये गये और सैनिकों को सन्तुष्ट किया गया। सन् १८०७ में सेंधिया ने मीरखाँ को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में कैद कर दिया था। उस समय भी जालिमसिंह ने उसको धन देकर छुड़ाया था और भविष्य में उसकी

नेकचलनी की जमानत तक दी थी[1]। पिंडारियों के अन्य कई सरदार भी कोटे में रहा करते थे। उनको जमीन और जागीरें मिली हुई थीं और जालिमसिंह उनके साथ प्रतिष्ठा का व्यवहार करता था। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इतने पर भी पिंडारी लोग कोटा राज्य में कभी कभी लूट खसोट कर लिया करते थे। माँगरौल और शाहाबाद की तरफ इनके धावे प्रायः हुआ करते थे[2]। शायद ये लोग करीमखाँ और कोटे में आश्रय पाने वाले अन्य सरदारों के साथी नहीं थे। कोटा राज्य के मध्य भाग में अरसे तक पिंडारियों ने लूटखसोट की थी, परन्तु करीमखाँ और दूसरे पिंडारियों से मैत्री स्थापित हो चुकने के पश्चात् यह प्रायः बन्द होगई थी।

यह स्पष्ट है कि पिंडारियों के साथ जालिमसिंह ने जो मित्रता कर रक्खी थी, वह परिस्थिति के वश होकर की थी, परन्तु उस जैसा शासक इस बात को अनुभव किये बिना नहीं रह सकता था कि ये लोग अवांछनीय हैं और राज्य की शान्ति को भंग करने वाले हैं। इसलिये जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरल की तरफ से कर्नल टॉड पिंडारियों के दमन के लिये सन्धि का प्रस्ताव लेकर जालिमसिंह के पास आया[3], तो उसने इस प्रस्ताव का अभिनन्दन किया और लुटेरों के दमन में कम्पनी के साथ हृदय से सहयोग किया।

पिण्डारियों को हरा कर देश में शान्ति स्थापित करने तथा अपना राज्य जमाने के लिये लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने इस समय बहुत बड़ा

---

(१) टॉडः राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६००।

(२) i फालके, भाग २।

ii कागजात सम्वत् १८३०।

(३) यह मुलाकात तारीख २३ नवम्बर सन् १८१७ को राँवठे के मुकाम पर हुई थी।

आयोजन किया था। दो लाख सेना इस बृहद् कार्य के लिये तैयार की गई थी जो कितने ही भागों में विभक्त करके पिण्डारियों को खदेड़ने के वास्ते समस्त देश में फैला दी गई थी। कोटा राज्य, मध्य भारत और मालवा पिंडारियों के खास कार्यक्षेत्र थे। अतः तजवीज कीगई थी कि कोटा राज्य तथा पार्श्ववर्ती राज्य इस सेना संचालन के विशेष केन्द्र बनाये जावें। इसको सफल करने के लिये जालिमसिंह के सहयोग की परम आवश्यकता थी।

कर्नल टॉड के कहने पर जालिमसिंह ने पन्द्रह सौ पैदल और सवार तथा चार तोपें कम्पनी के सुपुर्द करदीं। इसके अतिरिक्त अन्य सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। पिंडारियों के विषय में जालिमसिंह से पक्की और पते की खबर मिला करती थी और कई वर्ष तक कोटा इस संग्राम का केन्द्र रहा था। जब जनरल सर जे०मेल्कम दक्षिण की तरफ से अपने जीर्ण, शीर्ण और परिश्रान्त सैनिकों के साथ उत्तर की तरफ बढ़ रहा था और चारों तरफ से विपक्षियों ने उसकी सेना को घेरे में लेकर स्थिति प्रायः नाजुक सी कर रक्खी थी तो जालिमसिंह की सेना ने उसकी बड़ी सहायता की थी[1]। अन्त को जब कम्पनी की सेना के तीन डिवीजनों ने करीमखाँ को सब तरफ से घेर लिया और वह हाड़ौती में ही इधर उधर छिपा फिरने लगा तब भी जालिमसिंह ने अपनी सेना सब कम्पनी के सुपुर्द कर दी और रसद तथा अन्य प्रकार की कम्पनी को सहायता दी। जालिमसिंह की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहायता से कम्पनी ने पिंडारियों के मुखियाओं को गिरफ्तार किया, और उसकी सहायता से मराठा युद्ध में कम्पनी को बड़ा धैर्य रहा[2]।

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६०५–०६।
(२) डाक्टर मोहन सिंह मेहता : हेस्टिंग्ज एण्ड इन्डियन स्टेट्स।

जालिमसिंह और मराठे—मराठों के साथ जालिमसिंह का आधी शताब्दी का सम्बन्ध था। वह उनके पक्ष और विपक्ष में कई बार लड़ा था, उनको कई बार सैनिक तथा आर्थिक सहायता भी दी थी। कई बार उनकी फौजों को बड़ी चातुरी के साथ उसने कोटे से विदा किया था। लाखों रुपये उनको मामलत या खण्डणी के रूप में दिये थे। तत्कालीन सब मराठा सरदारों से—सेंधिया, होल्कर, पँवार, पेशवा आदि सब से—वह कई बार रूबरू मिल चुका था; सेंधिया और होल्कर से उसका घनिष्ठ परिचय था। होल्कर, सेंधिया और पेशवा उससे समय समय पर सहायता माँगा करते थे। होल्कर के साथ उसने भ्रातृ-सम्बन्ध स्थापित कर रक्खा था। पारस्परिक पत्रव्यवहार अत्यन्त शिष्टता के साथ होता था। पेशवा भी उसको अत्यन्त सम्मान तथा आदर के शब्दों में पत्र लिखा करता था[1]। सब मराठा सरदारों के वकील उसके मित्र थे। लालाजी बल्लाल के साथ उसकी घनिष्ठ मैत्री थी। राजनैतिक कार्यों के लिये उसके पास कई दक्षिणी पण्डित और मराठे नौकर थे। इनको वह अत्यन्त विश्वासपात्र समझता था। अम्बाजी इंगले उसका अभिन्न मित्र था। अन्य कई सरदारों के साथ भी उसका स्नेह सम्बन्ध था। हरकूबाई होल्कर ने उसके वास्ते सोने और मोतियों की राखी भेजी थी। पचास वर्ष के सम्बन्ध में लड़ाई, झगड़े, समझौते, सन्धियाँ, मुलाकातें आदि कई घटनायें हो चुकी थीं, परन्तु जालिमसिंह ने कभी ऐसी भूल नहीं की थी जिससे मराठों से उसका सम्बन्ध टूट जाता। वह मराठों को राजनीति में चतुर और निपुण समझता था। वह स्वयम् बड़ा नीति-निपुण था। अतः मराठों की चालों को और योग्यता को भी वह भली भाँति समझ सकता था। यही कारण था कि राजनैनिक कार्यों के लिये उसने दक्षिणी पण्डित

(१) देखो परिशिष्ट सख्या १२।

नौकर रख रक्खे थे।

सम्बन्ध विच्छेद—सेंधिया, होल्कर तथा पेशवा ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो कम्पनी के साथ सन्धियाँ की थीं उनसे जालिमसिंह को पता लग गया होगा कि मराठों की शक्ति अब विदा होने वाली है। उधर पिंडारियों के साथ कम्पनी युद्ध कर रही थी और इधर सेंधिया, भोंसला, होल्कर और पेशवा ने सन् १८१२ के आसपास स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिये युद्ध आरम्भ कर दिया। तब कम्पनी के सामने वास्तव में महासंकट उपस्थित होगया था। उस समय कम्पनी को जालिमसिंह के सहयोग और साहाय्य की बड़ी आवश्यकता थी। जब कम्पनी के प्रतिनिधि ने जालिमसिंह के सामने सहायता का प्रस्ताव रक्खा तो उसने इसको सहर्ष स्वीकार किया। फिर भी न जाने क्यों प्रतिनिधि को शंका ही रही। अतः उसने कहा कि मध्यभारत में कम्पनी अपना प्रभाव मात्र जमाना चाहती है, राज्य स्थापित करना नहीं चाहती। जालिमसिंह से यह भी कह दिया गया था कि डीग, पचपहाड़, अहोर और गंगराड़ के परगने जो कम्पनी ने उसको इजारे पर दे रक्खे हैं, वे पिंडारियों के दमन के बाद उसकी सहायता के उपलक्ष में उसको जागीर में देदिये जावेंगे।

चौमहलाँ के परगने कोटा राज्य में मिलाये गये—जब कम्पनी ने जालिमसिंह को चौमहलाँ के परगने दिये और उसके नाम की सनद लिखी जाने लगी तो उसने चतुराई से तथा नीति से भरा हुआ उत्तर दिया। उसने कहा, "कम्पनी को जो कुछ भी सहायता पहुँचाई है, वह कोटा दरबार ने पहुँचाई है। कोटा राज्य के धन, जन और बल द्वारा मैंने कम्पनी की सेवा की है। इसलिये परगनों की सनद मेरे नाम नहीं की जावे, बल्कि महाराव उम्मेदसिंहजी

जी के नाम की जावे"। कम्पनी ने इस बात को स्वीकार किया और चारों परगने कोटा राज्य में मिला लिये गये।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि—कम्पनी की उदीयमान शक्ति को इस प्रकार सहायता देकर जालिमसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। सन् १८१७ में कम्पनी ने मराठा शक्ति को कुचल दिया और पंजाब के अतिरिक्त प्रायः समस्त भारतवर्ष कम्पनी के अधीन होगया। राजपूताने की रियासतों के साथ कम्पनी ने सन्धियाँ करने का आयोजन आरम्भ किया और इस कार्य के लिये कर्नल जेम्स टॉड को नियत किया गया।

दरे की नाल में होता हुआ कर्नल टॉड राँवठे के मुकाम पर जालिमसिंह से मिला। यहाँ पर जो कुछ बातचीत हुई, उसका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। पिंडारियों का दमन और मराठा शक्ति का ह्रास होने के बाद जालिमसिंह और ईस्ट इण्डिया कम्मनी में परस्पर सन्धि की शर्तें तय होने लगीं और सब बातें निश्चित होजाने के बाद कोटा दरबार की ओर से गैंता के महाराजा शिवदानसिंहजी, सेठ जीवनराम और लाला हूलचन्द प्रतिनिधि बनाकर दिल्ली भेजे गये। वहाँ उन्होंने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि मि० चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ से बातचीत की और सन्धि-पत्र लिखा गया, जिस पर मि० मेटकाफ ने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि की हैसियत से और महाराजा शिवदानसिंहजी आदि ने कोटा दरबार के प्रतिनिधि की हैसियत से हस्ताक्षर किये और यह तय हुआ कि एक महीने के अन्दर इस सन्धि पत्र को गवर्नर जनरल तथा महाराव उम्मेदसिंहजी और उनके प्रबन्धक राज राणा जालिमसिंह परस्पर सही करेंगे। यह दिल्ली का सन्धि-पत्र २६ दिसम्बर सन् १८१७ को लिखा गया था।

सन्धि की ग्यारह शर्तें—

पहिली शर्त—अँग्रेज सरकार और महाराव उम्मेदसिंह बहादुर तथा उनके (महाराव उम्मेदसिंह बहादुर के) उत्तराधिकारियों के मध्य निरन्तर मैत्री, (राजनैतिक) सम्बन्ध और हित समता रहेगी ।

दूसरी शर्त—सन्धि करने वाले (इन) दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र माने जावेंगे।

तीसरी शर्त—अँग्रेज सरकार कोटा राज्य को अपनी संरक्षकता (हिफाजत) में लेना कबूल करती है ।

चौथी शर्त—महाराव और उनके उत्तराधिकारी अँग्रेज सरकार के साथ मातहत रहते हुये सदा सहयोग करेंगे, उसके आधिपत्य को मानेंगे, और भविष्य में उन राजाओं और रियासतों से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे जिनके साथ कोटा राज्य का अब तक सम्बन्ध रहा है ।

पाँचवीं शर्त—अँग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उनके उत्तराधिकारी किसी राजा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे। किन्तु वे अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ व्यवहारिक पत्रव्यवहार करते रहेंगे ।

छठी शर्त—महाराव और उनके उत्तराधिकारी किसी (राज्य) पर अतिक्रमण नहीं करेंगे । यदि संयोग से महाराव के कार्य से या अन्य पक्ष के कार्य से विवाद खड़ा हो जावे तो वह निर्णयार्थ अँग्रेज सरकार के सामने पेश किया जावेगा ।

सातवीं शर्त—कोटा राज्य जो मामलत (खिराज या खण्डणी) अब तक मराठों (अर्थात् पेशवा, सेंधिया, होल्कर और

पँवार) को देता था, वह जुदे व्यौरे के अनुसार जो साथ में नत्थी है, सदैव दिल्ली में अँग्रेज सरकार को दी जावेगी ।

आठवीं शर्त—कोटा राज्य से अन्य किसी राज्य को मामलत लेने का अधिकार न होगा । यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अँग्रेज सरकार इसका उत्तर देगी ।

नवीं शर्त—जब अँग्रेज सरकार को आवश्यकता होगी तो कोटा राज्य अपनी गुञ्जायश के अनुसार सेना भेजेगा ।

दशवीं शर्त—महाराव और उनके उत्तराधिकारी पूर्णरूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे । उनके राज्य में अँग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमल जारी नहीं किया जावेगा ।

म्यारहवीं शर्त—यह म्यारह शर्तों की सन्धि दिल्ली में हुई । एक पक्ष की ओर से मि० चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ ने इस पर मोहर लगाई और दूसरी ओर से महाराजा शिवदानसिंह, शाह जीवनराम, और लाला हूलचन्द ने । आज से एक महीने के अन्दर परम प्रतिष्ठित गर्वनर जनरल और महाराव उम्मेदसिंह तथा उनके प्रबन्धक राजराणा जालिमसिंह उसकी पुष्टि करेंगे ।

दिल्ली में हुई । ता० २६ दिसम्बर १८१७ ईस्वी ।

हस्ताक्षर
सी० टी० मेटकाफ
महाराजा शिवदानसिंह
शाह जीवनराम
लाला हूलचन्द

मराठों का आधिपत्य

मराठा शासन के अस्सी वर्ष—मराठों के साथ कोटा राज्य का राजनैतिक सम्बन्ध सन् १७३७ से सन् १८१७ तक रहा। जब मराठों की शक्ति क्षीण होगई और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पंजाब तथा राजपूताने के अतिरिक्त प्रायः समस्त भारतवर्ष पर राज्य स्थापित होगया तो कोटा राज्य को भी अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। इस अस्सी साल के अरसे में कोटा राज्य को अनेक धक्के लगे और घोर आर्थिक कष्ट का सामना करना पड़ा। पेशवा ने कोटा राज्य सेंधिया, होल्कर और पवाँरों को जागीर में देदिया था। अतः इस राज्य को इन चारों मराठा सरदारों की मातहती करनी पड़ी। इससे राजनैतिक कठिनाइयों का कभी अन्त नहीं हुआ। मराठों की आर्थिक माँग कभी पूरी होती ही नहीं थी जिसके कारण राज का कोष ही खाली नहीं होगया था बल्कि सारी प्रजा को असाधारण करों का भार उठाना पड़ा था। इतने पर भी मराठा सरदार धन प्राप्ति के लिये कोटा राज्य पर आक्रमण करने की प्रायः धमकी दिया ही करते थे। महाराव दुर्जनशालजी की विधवा राणी ने सेंधिया को राखीबँध भाई बनाकर अपने राज्य की रक्षा की थी और सेंधिया ने इस सम्बन्ध को प्रत्यक्ष में कुछ निभाया भी था, परन्तु मराठों में और हाड़ों में कभी पारस्परिक विश्वास स्थापित नहीं हो सका। बात यह थी कि मराठे राजपूतों को और राजपूत मराठों को हेय समझते थे। ऐसी अवस्था में परस्पर विश्वास कैसे स्थापित हो सकता था? मुगलों के प्रभाव का तो उनके ह्रास काल में भी अन्त नहीं हुआ था अतः नादिरशाह का हमला हो चुकने के बाद भी कोटा नरेश ने मुगल सम्राट् को नजर भेजी थी और

शाही खिलत को गौरव के साथ प्राप्त किया था, परन्तु मराठों के उत्कर्ष काल में भी कोटा राज्य ने उनकी मातहती को गौरवास्पद नहीं समझा। जब समय आया तो अँगरेजों के आधिपत्य का कोटा नरेश ने हृदय से अभिनन्दन किया।

मराठा काल में कोटा राज्य की राजनैतिक स्थिति— पेशवा कोटा राज्य को अपना मांडलिक राज्य मानता था। अतः उसने सेंधिया, होल्कर और दोनों पवाँरों को यह राज्य जागीर में देदिया था। ये मराठे सरदार भी अपने आपको कोटा राज्य के अधिपति समझते थे और इस बात पर जोर देते थे कि गद्दीनशीनी के समय उनसे अनुमति ली जावे। मराठे कोटा राज्य से प्रतिवर्ष खण्डणी लेते थे जिसकी मात्रा उनकी आवश्यकता के अनुसार बढ़ जाया करती थी। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे मराठे सरदार अवसर पाकर कभी कभी कोटा राज्य में लूटमार करने के लिये आ घुसते थे या घुसने की धमकी दिया करते थे। इन लोगों को भी रुपया देकर कोटा राज्य के कर्मचारीगण सन्तुष्ट किया करते थे। उपरोक्त चारों मराठे रईस खण्डणी लेकर भी अन्य आक्रमणकारियों से कोटा राज्य की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझते थे। कोटा राज्य में होकर माल लेजाने वाले कई व्यापारियों को मराठे सरदार अपनी इच्छानुसार स्थानीय महसूल जकात माफ कर दिया करते थे। विवश होकर कोटा राज्य ऐसे व्यापारियों से महसूल नहीं ले सकता था। इतना ही नहीं इनकी हिफाजत का भी प्रबन्ध कोटा राज्य को करना पड़ता था। मराठे सरदार कभी कभी दक्षिणी पण्डितों को कोटा राज्य में जागीर देदिया करते थे परन्तु जागीरों की आय खण्डणी में मुजरा दी जाती थी। जब सेंधिया या होल्कर कोटा राज्य में आते थे तो उनका उसी प्रकार स्वागत किया जाता था जैसे मुगल काल में अजमेर के सूबेदार का। आवश्यकता

पड़ने पर मराठा सरदारों को सैनिक सहायता भी देनी पड़ती थी। होल्कर के कई फ्रान्सीसी सेनानायक अरसे तक कोटा राज्य में आदर-पूर्वक टिकाये गये थे। विवाह या पुत्र-जन्म के अवसर पर कोटा राज्य की ओर से सेंधिया और होल्कर को सत्कार स्वरूप बहुमूल्य वस्त्र, और आभूषण तथा स्वर्ण मुद्रायें भेंट की जाती थीं। कोटा राज्य की आय, स्थिति और गति को मराठों का वकील देखा करता था।

वकील के कर्त्तव्य—मराठों का वकील सन् १७३७ से कोटे में रहने लगा था। वर्तमान राजनैतिक भाषा में वह रेजीडेन्ट या पोलिटिकल एजेन्ट था। प्रथम वकील का नाम लालाजी बल्लाल था और दूसरे का नाम बालाजी यशवंत। राजनैतिक और शासन-सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त वकील मराठे सरदारों की ओर से कोटा राज्य में व्यापार भी करता था[1]।

मामलत वसूल करना—वकील कोटा राज्य में विभिन्न परगनों से मामलत एकत्र करता था। वह इस बात का पता रखता था कि कितनी मालगुजारी वसूल होचुकी है। ज्यों ज्यों राज्य में कड़ता वसूल होता रहता था त्यों त्यों वह मामलत भी वसूल करता जाता था। यदि समय पर मामलत की किस्त अदा नहीं होती थी तो वह कोटा दरबार से ताकीद करता था और सेंधिया को शिकायत लिखता था। उसका यह भी कर्त्तव्य था कि जो मामलत वसूल हो उसको चारों मराठा सरदारों में निश्चित अनुपात के अनुकूल विभक्त करे और व्यवस्थित रूप से उसका हिसाब रक्खे[2]।

राजनैतिक कार्य—राजनैतिक कार्य करने में वकील को सदैव सजग और सतर्क रहना पड़ता था। राजधानी में जो कुछ बातें

(१) फालके: जिल्द १, लेखाङ्क २ और ३।

(२) उपरोक्त: लेखाङ्क ३१, ३३, ९६, ९८, १३०, १३४।

होती थीं, उनका विस्तृत ब्यौरा यथासमय मराठा सरदारों के पास भेजा जाता था। मराठा सरदार भी समय समय पर ताकीद किया करते थे कि कोटा राज्य के दरबार में छोटी या बड़ी जो घटनायें हों, उनका सविस्तर वृतान्त लिखकर भेजा जावे। मराठों को राजपूतों की गति पर सदैव सन्देह हुआ करता था और उनका सन्देह था भी सत्य। मराठा आधिपत्य को उखाड़ देने के लिये राजपूत नरेश मिलकर दो बार प्रयत्न कर चुके थे और इन प्रयत्नों के विफल होजाने के बाद भी इस विषय पर मन्त्रणा हुआ करती थी। ऐसी अवस्था में मराठों के लिये यह स्वाभाविक बात थी कि वे अपने आप को राजपूतों की प्रत्येक चाल से परिचित रखते। अतः कोटा नगरस्थ वकील कोटा दरबार की प्रत्येक गति और विधि को बड़ी होशियारी से देखा करता था। सम्वत् १८११ में जब महाराव दुर्जनशालजी प्रत्यक्ष में नाथद्वारे में दर्शन करने के लिये, परन्तु वास्तव में उदयपुर नरेश तथा अन्य प्रमुख राजपूत नरेशों के साथ तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पर विचार करने के लिये गये तो वकील ने मराठा सरदारों को बात बात की खबर भेजी। जब कोटा नरेश नाथद्वारा या बूँदी या और कहीं जाते थे या जब कोई रईस उनसे मिलने कोटे आता था तो वकील इस बात की सूचना सेंधिया को दिया करता था। जब बूँदी नरेश उम्मेद-सिंहजी ने इन्द्रगढ़ के देवसिंह को छल घात से मार दिया था तो वकील ने सेंधिया को इस विषय की सूचना दी थी। इतना ही नहीं देव-सिंह की विधवा पत्नी के कोटे में आने की और कोटा नरेश के यहाँ रहने की भी खबर भेजी थी। एक बार वकील ने सेंधिया को लिखा था कि हाड़ा और खींचियों में घोर शत्रुता है। हाड़ा राजपूत प्रायः खींचियों के राज्य में अतिक्रमण किया करते हैं। बालाजी यशवंत कोटे की राजनैतिक स्थिति से ही नहीं बल्कि पार्श्ववर्त्ती अन्य राजपूत

रियासतों के हालात से भी सेंधिया को सूचित किया करता था। जयपुर नरेश राजा माधोसिंहजी और दिल्ली के शाहजादे की मुलाकात की खबर और उनमें परस्पर जो बातचीत हुई, उसका हाल वकील ने सेंधिया को लिखा। यह वकील सेंधिया का नौकर था। अतः जब होल्कर राजपूताने में आता था तो वह जहाँ जहाँ जाता था और जो कुछ करता था, इसकी खबर सेंधिया को भेजा करता था[1]।

वकील का प्रबन्ध कार्य—कोटा-वकील का प्रबन्ध कार्य भी कम नहीं था। कोटा राज्य में मराठे सरदारों की तरफ से वह सबसे बड़ा हाकिम था। उसकी मातहती में एक दीवान, कई कमाविसदार, अन्य कितने ही कर्मचारी और छोटे नौकर रहते थे। यदि कोई सेंधिया से सीधा शिकायत करता था तो उसका मामला निपटारे के लिये वकील के पास भेज दिया जाता था[2]। सम्पूर्ण मराठे कर्मचारी उसकी आज्ञा मानते थे। वही सबका वेतन चुकाता था। जो परगने सीधे सेंधिया के राज्य में थे, उनका वह शासक या गवर्नर था। कोटा राज्य से मामलत वसूल करके हिस्सारसी के अनुसार उसको मराठों की राजधानियों में पहुँचाया करता था। यह रुपया प्रायः ऊँटों पर लाद कर भेजा जाता था। कोटा नरेश उसके साथ जाब्ता भेजा करते थे, परन्तु रुपये को सुरक्षित रूप से पहुँचा देने का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण वकील पर था।

कोटरियात—इन्द्रगढ़, पीपल्दा, बलवन, करवाड़ और खातौली आदि कोटरियाँ भी इसी वकील के सुपुर्द थीं, इनसे सेंधिया और होल्कर मामलत लिया करते थे। मामलत की मात्रा इतनी अधिक

---

(१) फालके : जिल्द १, लेखाङ्क ८८, १५८, १७३, १५४।
जिल्द २, लेखाङ्क ४७, ९६, २६५।

(२) उपरोक्त : जिल्द २, लेखाङ्क ५५।

थी कि कोटरियाँ अदा नहीं कर सकती थीं। अतः मराठों ने वहाँ अपना शासन स्थापित कर दिया था और सरदार नाममात्र के शासक रह गये थे। वकील के नीचे हर एक कोटड़ी में एक कमाविसदार नियत था जो वकील का मातहत था। कोटरियात के सरदारों और राजपूतों को मराठों का शासन पसन्द नहीं था। इसलिये ये लोग प्रायः मराठों के खिलाफ उठ खड़े होते थे। ऐसे अवसरों पर वकील कोटा राज्य से सैनिक सहायता माँगा करता था जो कोटा नरेश को विवश देनी पड़ती थी।

केशोराय पाटण और कापरेण—केशोराय पाटण और कापरेण के इलाके पूर्णरूप से सेंधिया के ही अधिकार में थे। इनका प्रबन्ध भी वकील के सुपुर्द था। इनकी मालगुजारी के दस भाग में से छः भाग सेंधिया लेता था और चार भाग होल्कर।

वकील सब मराठा सरदारों की नौकरी करता था—यह वकील नौकर तो सेंधिया का ही था, परन्तु काम चारों मराठा सरदारों का करता था और सब के हुक्म की तामील करता था। वह सब की ओर से मामलत वसूल करता था और उसका हिसाब रखता था। प्रत्येक मराठा सरदार का सन्देश उसी के द्वारा कोटा नरेश के पास पहुँचता था। कुछ अरसे बाद होल्कर और पँवारों को यह सन्देह होने लगा था कि सेंधिया का वकील उनका काम भली भाँति नहीं करता। अतः उन्होंने अपने अपने वकील अलग नियत कर दिये थे। इसलिये कोटे में कुछ अरसे तक मराठों के चार वकील रहा करते थे। इनमें परस्पर मतभेद भी होजाया करता था[1]। मराठा सरदारों ने अपने कमाविसदार भी अलग नियत कर दिये थे।

---

(१) फालके : जिल्द २, लेखाङ्क ५४, ५५, ५७।

वकील का वेतन आदि—मराठा कर्मचारियों को प्रायः दो मास में वेतन मिला करता था। वकील का वेतन अड़तीस हजार रुपये वार्षिक था। इसके अतिरिक्त उसको प्रसन्न रखने के लिये महाराव दुर्जनशालजी ने उरमाल परगने में बोरखेड़ी नामक गाँव जागीर में दे रक्खा था। सेंधिया ने इस गाँव की मामलत माफ करदी थी। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मराठे मामलत का हिसाब परगनावार और गाँववार रखते थे, और ज्यों ज्यों अमुक परगने से या गाँव से माल हासिल वसूल होता जाता था त्यों त्यों वकील उस परगने की मामलत भी वसूल करता रहता था।

दीवान उसका मातहत था—दीवान वकील का मातहत था और दूसरे दरजे का मराठा अफसर था। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से उसका अधिक महत्त्व नहीं था। उसका काम था मालगुजारी की वसूली को देखते रहना और साथही मामलत की वसूली करते रहना। इतने अधिकार से भी राज्य के कर्मचारियों पर उसका खूब आतंक था। उसको भी सन्तुष्ट रखने के लिये कोटा नरेश ने एक गाँव जागीर में दिया था। उसका वेतन वकील से बहुत कम था।

कमाविसदार और उसका कार्य—प्रत्येक परगने पर एक कमाविसदार नियत था। कमाविसदार का कर्त्तव्य था कि अपने परगने के माल हासिल की वसूली को देखता रहे और राज की वसूली के साथ साथ मामलत वसूल करता रहे। परगने के अन्य प्रबन्ध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था और न परगने की प्रजा से उसका कोई ताल्लुक था। जो परगने सीधे मराठों के राज्य में थे, जैसे केशोराय पाटण और कापरेण, वहाँ का कमाविसदार वर्त्तमान तहसीलदार की भाँति परगने का हाकिम था। कोटरियात के कमाविसदारों के अधिकार भी इतने ही विस्तृत थे। ऐसे परगनों में कमाविसदार खेती और व्यवसाय की उन्नति करता था और

दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों का फैसला करता था। कभी कभी कुछ मामले वह पंचायत के भी सुपुर्द कर दिया करता था। कमाविसदार के पास काफी अमला और परगने में शान्ति की रक्षा करने के लिये जाब्ता रहता था। उसके पास कितने ही सवार, पैदल, चौकीदार और शहणे होते थे। पाटण के कमाविसदार की मातहती में पिचहत्तर सवार, पचास पैदल, छः सौ बरकन्दाज और दो सो शहणे थे। इन सबके वेतन में चौतीस हजार तीन सौ चालीस रुपये वार्षिक खर्च होते थे। कोटरियात और पाटण तथा कापरेण के कमाविसदारों में कुछ ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति थे जो वकील की आज्ञा पूर्णरूप से नहीं मानते थे। इस विषय में सेंधिया और होल्कर अपने कमाविसदारों को वकील की आज्ञा मानने के लिये आदेश किया करते थे[1]। कोई कमाविसदार तो इतना प्रबल और शक्तिशाली होता था कि सेंधिया या होल्कर का हुक्म मिलने पर भी अपने पद को नहीं छोड़ता था। ऐसी अवस्था में मराठा सरदार कोटा राज्य की सहायता से कमाविसदार को अपने पद से हटाया करते थे[2]। मामलत वसूल करके सब मराठा सरदारों में वह विभक्त कर दिया करता था। कमाविसदार का वेतन सब मराठा सरदार हिस्सारसी से देते थे। कोटरियात के कमाविसदारों को भी वेतन इसी प्रकार मिलता था।

इजारा—आरम्भ में अपने परगनों का मराठे स्वयम् शासन करते थे। परन्तु जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति बढ़ने लगी और उनकी शक्ति क्षीण होने लगी तब उन्होंने अपने परगने इजारे पर देने शुरू किये। पाटण का परगना कोटे के वकील के इजारे में था। मराठों का एक वकील बूँदी में भी रहता था, परन्तु कोटे वाला वकील अधिक

(१) फालके: जिल्द २, लेखाङ्क ५५, १०२।
(२) उपरोक्त: ,, लेखाङ्क ९५, १३४।

शक्तिसम्पन्न और प्रभावशाली था। अतः इस परगने का इजारा उसको मिला था। वह दो लाख दस हजार रुपये प्रतिवर्ष इजारे के देता था। इस धन के बदले में परगने की मालगुजारी और हुकूमत पूर्णरूप से उसके सुपुर्द करदी गई थी। इस इलाके का इजारा देते समय उसको यह हुक्म दिया गया था कि प्रजा को सुखी रक्खे। परगने के जमींदार, चौधरी, कानूँगो, पटेल और पटवारियों को परवाना लिखा गया था कि वकील के शासन को स्वीकार करें[1]। एक दो गाँव भी इजारे पर देदिये जाते थे, परन्तु यह देखा जाता था कि इजारेदार हैसियतदार है कि नहीं, और प्रजा को सुखी रखता है या नहीं। जो इजारेदार प्रजा को दुख देता था और इजारे की रकम समय पर जमा नहीं करता था, उसको अलग कर दिया जाता था[2]।

मराठों की शासन-नीति—मांडलिक राज्य के प्रति मराठों की नीति थी खूब मामलत वसूल करना और मौका मिलने पर नजराणा आदि लेना। ऐसे राज्य के प्रति वे लोग अपना कोई कर्त्तव्य नहीं समझते थे। आन्तरिक शासन के संचालन में तो इनको कोई रुचि नहीं थी, परन्तु अपने मतलब के लिये जब चाहे हस्तक्षेप किया करते थे। ऊपर लिखा जाचुका है कि सेंधिया और होल्कर अपने मित्र व्यापारियों को दस्तक जारी कर देते थे जिसके द्वारा कोटा राज्य में होकर महसूल दिये बिना माल लेजाया जा सकता था और कोटा सरकार को अपने राज्य में उस माल की रक्षा भी करनी पड़ती थी[3]। कोटा राज्य निवासी को यदि किसी ऐसे आदमी का कर्जा देना होता था जो सेंधिया के राज्य में रहता हो, तो वकील के द्वारा वसूली

(१) फालके : जिल्द १, लेखाङ्क १२०।
(२) उपरोक्त : लेखाङ्क १३५।
(३) उपरोक्त : लेखाङ्क ५३, १०९, १४८।

करवादी जाती थी। मराठों के इलाके के लोग यदि कोटा राज्य में आ बसते थे तो ऐतराज किया जाता था। कोटा दरबार यदि कोई ऐसा इलाका जीत कर अपने राज्य में मिलाना चाहते थे जो मराठों के राज्य में न हो तो कोई ऐतराज नहीं किया जाता था, परन्तु मराठे ऐसे इलाके की मामलत अर्थात् खण्डणी जुदी निश्चित करते थे। जब शाहाबाद को जीत कर कोटा राज्य में मिला लिया गया था तो सेंधिया ने शाही अमल किया था।

शिष्टाचार—मराठों की आर्थिक माँग मुगलों की अपेक्षा अधिक कठोर थी और उनकी आर्थिक नीति बड़ी दुखदायी थी, परन्तु कोटा राज्य के साथ उनका शिष्टाचार उच्च कोटि का था। जसवन्तराव होल्कर जालिमसिंह को काका कह कर पुकारता था। जालिमसिंह महाराणी अहल्याबाई को श्रीमातु श्री लिखता था। महाराणी हरकूबाई होल्कर जालिमसिंह को राखी भेजा करती थी। विशेष अवसरों पर सेंधिया राणावतजी अर्थात् दुर्जनशालजी की विधवा पत्नी और कोटा नरेश के वास्ते रिश्तेदार की भाँति कपड़े भेजा करता था। कोटा नरेश को मराठे सरदार बड़े सम्मान के साथ पत्र लिखते थे और अपने वकील के नाम लिखे हुये पत्रों में भी कोटा दरबार का प्रतिष्ठापूर्वक उल्लेख करते थे।

कोटा रियासत और केशोराय पाटण तथा कापरेण—केशोरायपाटण, कापरेण और कोटा रियासत में मराठों की शासन-नीति थी खूब अर्थदोहन करना। उनकी मालगुजारी अत्यधिक थी और कठोरता से वसूल की जाती थी। शासन में सुन्दरता यह थी कि उन्होंने राजपूतों की दी हुई माफियों को जारी रक्खा था[1]। प्रजा के

(१) फालके: जिल्द १, लेखाङ्क १५७, २८१।
,, जिल्द २, लेखाङ्क ६३।

दुख को तत्काल दूर करने की कोशिश की जाती थी[1]।

कोटा राज्य में दक्षिणी जागीरदार—मराठों के वकील को बोरखेड़ी परगना उरमाल और दीवान को मण्डोला परगना बाराँ जागीर में दिये हुये थे। होल्कर के दीवान की जागीर में जुलमी (चेचट) था और दूसरे मराठा दीवान की जागीर में रटावद। इन उच्चकर्मचारियों के अतिरिक्त कई अन्य दक्षिणी ब्राह्मणों को और मराठों को जागीरें मिली हुई थीं। इन लोगों की जागीर में कुल ७१ गाँव थे जिनकी आमदनी एक लाख अट्ठाईस हजार थी। मराठे जागीरदारों की संख्या उन्तालीस थी। मराठे सरदार चाहते थे कि कोटा राज्य में ऐसे जागीरदारों की संख्या बढ़ती रहे। जालिमसिंह को यह बात अखरती थी। राजपूत जागीरदारों को निर्बल बनाने में और अपने अधिकार से मराठे जागीरदारों को राज्य में शक्तिशाली बनाने में उनका हित था। इसके अतिरिक्त दक्षिणी पण्डितों से राजनैतिक कामों में उसको बड़ी सहायता मिलती थी[2]। राजपूत जागीरदारों की भाँति इनकी दरबार में प्रतिष्ठा थी। दरबार के जन्म-दिन पर और अन्य त्यौहारों पर इनको सरोपाव आदि द्वारा सत्कृत किया जाता था। इनके जागीरों के गाँव से भेंट, बेगार, जामदारी और न्यौता आदि कर नहीं लिये जाते थे। राजपूत जागीरदारों की भाँति मराठे जागीरदार भी आवश्यकता होने पर राज की नौकरी करते थे। ताँतियाजी नामक एक दक्षिणी

---

(१) फालके : जिल्द १, लेखाङ्क १५०, १७५, १६२, २०१।

(२) i टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५९३–६०३।

ii फालके : जिल्द १, लेखाङ्क २८०।

,, जिल्द २, लेखाङ्क ९४।

iii जमाबन्दी सम्वत् १८३९।

जागीरदार को कई बार कोटा राज्य की सेना का नायक बना कर शोपुर, इन्द्रगढ़, करवाड़ और खातौली की ओर भेजा गया था। मराठा आधिपत्य के अन्त के पश्चात् मराठा जागीरदारों का भी शनैः शनैः बल घट गया। अब केवल सारोला का ठिकाना ही एक उल्लेखनीय दक्षिणियों का ठिकाना है।

जालिमसिंह के साथ अलग सन्धि— ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ कोटा राज्य की जो सन्धि हुई थी, उसमें यह तय नहीं हुआ था कि जालिमसिंह और उसके वंशजों का भविष्य में कोटा राज्य में क्या स्थान होगा? इस समय जालिमसिंह को कोटा राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लिये हुये लगभग पचास वर्ष होने आये थे। इस अरसे में वह कहने को तो फौजदार था, परन्तु था वास्तव में अनियन्त्रित शासक। कम्पनी के प्रतिनिधियों को आश्चर्य था कि जालिमसिंह ने अपने भविष्य के लिये कम्पनी के साथ कोई शर्त्त क्यों नहीं की? मिस्टर सी० टी० मेटकाफ ने जो उस समय कम्पनी की ओर से दिल्ली में रेजीडेन्ट था, गवर्नर जनरल के नाम इस सन्धि के विषय में पत्र लिखते हुये लिखा था कि "जालिमसिंह की ओर से उम्मेद थी कि अपने भविष्य के विषय में वह कोई शर्त करवावेगा। इतना ही नहीं जालिमसिंह की ओर से यद्यपि ऐसी शर्त नहीं रक्खी गई है, तो भी वह ऐसी शर्त को स्वीकार करने के लिये तैयार है[1]।" सन्धि के तीन महीने बाद अर्थात् मार्च सन् १८१८ में उपरोक्त सन्धि की शर्तों में दो शर्तें और बढ़ा दी गईं। इन शर्तों के अनुकूल महाराव उम्मेदसिंहजी और उनके उत्तराधिकारी कोटे के राजा माने गये और

(१) इन शब्दों से प्रगट है कि मेटकाफ ने जालिमसिंह की प्रेरणा से ऐसा लिखा होगा।

जालिमसिंह और उसके वंशजों को हमेशा के लिये सम्पूर्ण अधिकारयुक्त राजमन्त्री बनने का अर्थात् कोटा राज्य के वास्तविक शासक बनने का अधिकार देदिया गया[1]। इन शर्तों के कारण कोटा राज्य में जो अनिष्ट रक्तपात हुआ, उसका उल्लेख आगे किया जावेगा।

---

(१) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ६०८।

जालिमसिंह

विस्तृत राज्य को कायम रक्खा और बढ़ाया—जालिमसिंह ने फौजदार बनने के बाद कोटा राज्य की एक इंच भूमि भी कम नहीं होने दी बल्कि बढ़ाने का ही यत्न किया। उदयपुर राज्य के कई परगने उसने जिस प्रकार अपने अधिकार में कर लिये थे, इसका उल्लेख पहले ही किया जाचुका है। गौड़ राजपूतों की राजधानी शोपुर को भी वह कोटा राज्य में मिलाना चाहता था और इस अभिप्राय से शोपुर पर उसने आक्रमण भी किया था, परन्तु सफलता प्राप्त न होसकी[1]। शाहाबाद को उसने सम्वत् १८३६ में जीत ही लिया था। राजगढ़, खिलचीपुर और पाटणी आदि राज्यों के रईसों को उसने मराठा काल में तो मातहती से नहीं निकलने दिया। इन्द्रगढ़, खातौली, करवाड़, गैंता, पीपल्दा और वल्वन आदि कोटरियों को मराठों ने दबा लिया था, तो भी उसने इनको कोटा राज्य के अधीन बनाये रक्खा और इनके सरदारों को उसने कोटा राज्य की फौज के साथ कई बार लड़ने के लिये भेजा।

सन् १८१७ की सन्धि—कम्पनी सरकार के साथ जो जालिमसिंह ने कोटे की सन्धि की, उससे उसकी राजनैतिकता या दूरदर्शिता जाहिर नहीं होती। इससे पूर्व उसने जितने काम किये वे प्रत्यक्ष में कोटा नरेश के हितार्थ किये हुये मालूम होते हैं, परन्तु कम्पनी से सन्धि करते हुये जालिमसिंह या तो जीर्णावस्था और नेत्रहीनता के कारण चौकड़ी भूल गया, या तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति को भलीभाँति नहीं समझ सका। बहुत करके अपने हक में गुप्त सन्धि स्वीकार करवाने

---

(१) i टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५९५।
ii कागजात सम्वत् १८३७, बस्ता नं० ६४।

के लिये उसने कोटा राज्य को हानि पहुँचा कर कम्पनी के प्रतिनिधि ने जो कुछ कहा, सब आसानी से मान लिया। अन्यथा क्या कारण था कि राजगढ़, खिलचीपुर आदि जो महाराव भीमसिंहजी ने लगभग एक शताब्दी पूर्व जीत लिये थे और जिनका फरमान अर्जुनसिंहजी को बादशाह मुहम्मदशाह ने देदिया था, कर्नल टॉड के कहने पर स्वतन्त्र कर दिये जाते, मेवाड़ के परगने जो कोटा राज्य की सेना का रक्त बहा कर तथा लगभग एक करोड़ रुपये कर्ज देकर अधिकृत किये थे, वे टॉड की प्रसन्नता के लिये छोड़ दिये जाते, और कोटरियात से जयपुर को जिसका राजनैतिक सम्बन्ध इनके साथ शायद कभी कुछ वर्ष के लिये रहा हो, मामलत देना स्वीकार कर लिया जाता ?

जालिमसिंह और दलेलखाँ पठान की मैत्री— सैनिक-संगठन जालिमसिंह ने बड़ी चतुरता के साथ किया था। वह हाड़ा जागीरदारों को और यथासम्भव किसी भी राजपूत सरदार को सेनानायक नहीं बनाता था। सेना का संचालन और प्रबन्ध आदि कार्य प्रायः मुसलमान या कायस्थों के सुपुर्द किया जाता था। प्रबन्ध पदों पर अधिकांश पठान नियत थे। प्रधान सेनानायक दलेलखाँ नामक पठान था। इसके साथ जालिमसिंह भाई का सा बर्ताव करता था। उसने कई बार कहा था कि "दलेलखाँजी से पहिले मेरी मृत्यु होजाय तो अच्छा है, जिससे मुझे उनकी जुदाई का दुख न उठाना पड़े[1]।" दलेलखाँ के कारण सेना के प्रायः सम्पूर्ण प्रधान पदों पर पठान नौकर थे। दलेलखाँ का प्रभाव इतना अधिक था कि उस समय जितनी नई तोपें ढाली गई थीं, उन सब पर "महाराव श्री उम्मेदसिंहजी, मामाजीराज जालिमसिंहजी और खाँजी दलेलखाँजी" के नाम अंकित हैं।

(१) टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ६०३।

उसका सैनिक संगठन—जालिमसिंह के पास लगभग बीस हजार सैनिक थे जो सब "बटेलियन्स" में विभक्त थे। इनके अतिरिक्त एक सौ अच्छी तोपें थीं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजी जा सकती थीं। उसकी नौकरी के लिये एक हजार घुड़ सवार हमेशा तैयार रहते थे। जागीरदार, कोटरियों के सरदार और राजगढ़ आदि के रईसों को अपनी जागीर या सन्धि की शर्तों के अनुकूल कोटा राज्य के माँगने पर जो सेना देनी पड़ती थी, वह इससे अलग थी[1]।

उसका सैनिक अनुभव—जालिमसिंह ने सेंधिया, होल्कर, पवाँर, मेवाड़, बूँदी, जोधपुर तथा शोपुर आदि कई राज्यों और सरदारों की सेनायें देखी थीं। इसलिये उसको सैनिक संगठन का अच्छा ज्ञान प्राप्त होगया था। सेंधिया और होल्कर की सेना में जो अँग्रेज और फ्रान्सीसी जनरल थे, उनसे भी जालिमसिंह का परिचय था। तत्कालीन प्रायः सब प्रसिद्ध अँग्रेज राजनीतिज्ञों से मिलने का उसको काम पड़ा था। कई अँग्रेजों से उसका स्नेह सम्बन्ध था। जब होल्कर ने क्रुद्ध होकर जनरल डोडरनिक और पुलमेट को कैद कर लिया था तो जालिमसिंह ने कह सुन कर उनको छुड़वाया था[2]।

उसके अँग्रेज जनरल—कोटा राज्य की सेना में जालिमसिंह ने दो अँग्रेज सैनिक अफसर नौकर रक्खे थे। इन दोनों के असली नामों का पता नहीं चलता। सरकारी कागजों में फिरंगी मूसाकालपी और फिरंगी बादलबेग लिखा हुआ है। इन दोनों की तनख्वाह

---

(१) i टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९५।
ii कागजात सम्वत १८३९, बस्ता नं० ६४।

(२) होल्कर रिसर्च, मेन्यूस्क्रिप्ट्स् जिल्द नं० ९।

बीस हजार रुपये साल थी[1]। जनरल मूसा की मदद से ही आटोण का किला फतह किया गया था। जालिमसिंह स्वयम् अच्छा सेना-नायक था। मेवाड़ में वह स्वयम् कई बार महाराणा के विरुद्ध तथा महाराणा की ओर से सेंधिया के विरुद्ध बड़ी वीरतापूर्वक लड़ा था। भटवाड़े के मैदान में जयपुर की सेना को हरा कर उसने बड़ा नाम कमाया था। जनरल जोन बेप्टिस्ट जालिमसिंह का मित्र था और कोटे में बख्शपुरी के कुण्ड के पास कई वर्ष रहा था। जब उसके पुत्र हुआ तो राज की तरफ से सोने के 'कड़ूले तागली' भेजे गये थे।

किलों का निर्माण और जीर्णोद्धार—१८ वीं शताब्दी में राजपूताने में नये किले बनवाने की और पुराने किलों की मरम्मत करवाने की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर में कई छोटे छोटे किले इस शताब्दी में बनवाये गये थे। मराठों और पिण्डारियों के हमलों से इन किलों के द्वारा रक्षा होसकती थी। जालिमसिंह ने कई रियासतों में इस प्रगति को देखा था। इसलिये उसने कोटा राज्य में भी प्रायः सब मुख्य किलों की मरम्मत करवाई, नई तोपें ढलवाईं और नये किले बनवाये। कोटा नगर का शहरपनाह सम्वत् १८३६ में बनवाया गया। सूरजपोल से चम्बल नदी तक जो नगर प्राचीर है, उसके समान मजबूत और विशाल दीवार कुछ ही किलों की है। इस दीवार के बनाने में जो रुपया खर्च हुआ था, वह श्रीपुरा, ओड़पुरा, किशोरपुरा और रामपुरा के निवासियों से कर रूप में वसूल किया गया था। यहाँ तक कि पण्डित लालाजी बल्लाल ने भी इसमें छः सौ रुपये दिये थे। शेरगढ़ के किले की बाहर की दीवार और

(१) कागजात सम्वत् १८३९, वस्ता नं० ६४।

दरवाजे तथा शहरपनाह जालिमसिंह के ही बनाये हुये हैं। गागरोण के किले की और शाहाबाद के किले की मरम्मत भी इसी समय करवाई गई थी। गागरोण, नाहरगढ़, केलवाड़ा, शाहाबाद, भँवरगढ़ और थाने के किलों में विशेषरूप से जाब्ता रक्खा गया था और सब मुख्य किलों पर नई तोपें ढलवा कर रक्खी गई थीं।

शासन-व्यवस्था का विचार—महाराजा स्वरूपसिंहजी को कत्ल करवा कर और महाराजा देवसिंह आदि हाड़ा सरदारों को कोटे से निकाल कर जालिमसिंह ने अपनी स्थिति दृढ़ करली थी और शासन-सूत्र पूर्णतया अपने हाथ में लेलिया था, लेकिन अभी रचनात्मक कार्य करना बाकी था। सेनाविभाग की व्यवस्था वह पूर्णरूप से कर चुका था। अतः देश के आन्तरिक प्रबन्ध के लिये विचार करने लगा।

पटेल संस्था की प्राचीनता—राजपूताने की अन्य रियासतों की भाँति कोटा राज्य के भी प्रत्येक गाँव में परम्परा से पटेल हुआ करता था। वास्तव में पटेली राजपूताने में नहीं, सारे भारतवर्ष में ग्रामीण संस्था थी। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में और शिलालेखों में पटेल का उल्लेख मिलता है। कई शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि पटेल परम्परागत हुआ करता था[1]। कोटा राज्य के प्रत्येक गाँव में जो वंशपरम्परागत पटेल होता था, वह राज का भी आदमी था और प्रजा का भी। भूमिकर वसूल करने में, राजाज्ञायें जनता तक पहुँचाने में, बटाई के समय या मुकाते के समय राज का हिस्सा नियत करने में तथा अन्य कई कार्यों में पटेल राज और जनता दोनों के लिये बड़े काम का था।

अठारहवीं शताब्दी के बाद इसका विपर्यास और कोटा राज्य के पटेल—अठारहवीं शताब्दी भारत के इतिहास में एक प्रकार

(१) आर. के. मुकर्जी : लोकल सेल्फ गवर्नमेंट इन एनशियन्ट इण्डिया।

से विप्लव काल था। उस समय सम्पूर्ण प्राचीन संस्थायें अस्त [illegible] होगई थीं और इस घोर विप्लव का प्रभाव देश के कोने कोने में व्या[illegible] होगया था। इसके कारण कोटा राज्य के पटेल भी स्वार्थी, अनियन्त्रित और प्रजापीड़क बन गये थे[1]। बटाई, लटाई और मुकाते के समय ये लोग किसानों से बहुत घूस लिया करते थे। निरन्तर लड़ाई झगड़े बने रहने के कारण राज का नियन्त्रण भी पर्याप्त नहीं था। इसलिये पटेल लोग राज का कर भी पूर्णरूप से राजकोष में नहीं पहुँचाते थे। इस प्रकार पटेल लोग राज को भी लूटते थे और प्रजा को भी। फिर भी उनके बिना राज्य का काम नहीं चल सकता था और उनको आवश्यक समझा जाता था। ये लोग जो बेईमानी से धन संग्रह करते थे, उसका एक बड़ा अंश पटेल बराड़ के नाम से हर तीसरे वर्ष राज वसूल कर लिया करता था। यह प्रथा कई पीढ़ियों से चली आती थी। तीन वर्ष तक पटेल जो कुछ करना चाहता था, कर सकता था। उस समय केन्द्रीय शक्ति इतनी प्रबल नहीं थी कि पटेल की हर एक हरकत पर नजर रख सके और उसकी रोक कर सके। इसलिये हर तीसरे वर्ष उस पर एक प्रकार का जुरमाना किया जाता था। यह जुरमाना किसी अपराध के कारण नहीं होता था। पटेल चाहे भला आदमी हो या बेईमान, हर हालत में उसको यह जुरमाना देना ही पड़ता था। इसका परिमाण राज-कर्मचारी नियत करते थे। यह उनकी इच्छा पर निर्भर था कि अमुक पटेल से कितना जुरमाना लिया जावे। पटेल यह नहीं कह सकता था कि यह जुरमाना क्यों लिया जारहा है ? क्योंकि यह एक प्रकार का कर समझा जाने लगा था, जो पटेल होने के कारण ही देना पड़ता था।

---

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७९।

क कारण पटेलों को किसानों पर और राजकर्मचारियों को ा पर अत्याचार करने का बहुत मौका मिलता था और राज की प्रतिष्ठा भी जनता की दृष्टि में कम होती जाती थी।

पटेल संस्था का सुधार—जालिमसिंह योग्य सैनिक और चतुर राजनितिज्ञ ही नहीं था, वह दक्ष शासक भी था। उसने समझ लिया था कि सम्पूर्ण राज्य शासन का मूल पटेली है। इस संस्था को सुधारने से सम्पूर्ण शासन सुधर सकता है। अतः उसने पटेलों का सुधार किया और उनको संगठित करके शासन की मशीन को मजबूत बनाया। जालिमसिंह ने घोषणा कर दी कि यदि पटेल जनता को नहीं लूटेंगे और राज्य का हिस्सा पूरा पूरा राज्य को दे दिया करेंगे तो उनसे प्रति तीसरे वर्ष जो पटेल-बराड़ लिया जाता है, वह नहीं लिया जावेगा। इस घोषणा के साथ ही जालिमसिंह ने पटेलों की रसूम नियत कर दी। यह गाँव की मालगुजारी पर एक रुपये में डेढ़ आना दी जाती थी। इस योजना को लाभकारी समझ कर तथा जालिमसिंह की आज्ञा को दुर्निवार्य मान कर सब पटेलों ने राज्य की शर्तें स्वीकार करलीं। जालिमसिंह ने सब पटेलों को एकत्र किया। हर एक को सोने के कड़े और पगड़ी बस्शीश में दी गई और उनके नाम पर पटेली के पट्टे जारी किये गये[1]। इससे मालगुजारी वसूल करने में बहुत सुविधा होगई। जनता में राज के प्रति विश्वास होने लगा। प्रजा लूट से बची और राज को भी अपना पूरा हिस्सा मिलने लगा।

पटेलों की कौन्सिल और उसके कर्त्तव्य—फिर जालिमसिंह ने देखा कि इस संस्था से और भी अधिक लाभ उठाया जा

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५८०।

सकता है। अतः उसने राज के सम्पूर्ण पटेलों में से चार योग्य पटेल छाँटे। उनकी एक समिति बनाई जो अपने मातहत रक्खी। इस कौन्सिल का कार्य आरम्भ में मालगुजारी वसूल करना और जमीन को आबाद करना था। आजकल के शब्दों में कह सकते हैं कि पटेलों की कौन्सिल एक प्रकार से "रेवेन्यू बोर्ड" था, परन्तु कुछ अरसे बाद पुलिस का कार्य भी इस कौन्सिल के सुपुर्द किया गया। गाँव में चोरी और डकेतियाँ न होने देना, और जहाँ हो जाय वहाँ चोरों और डाकुओं का पता लगाना पटेलों की कौन्सिल का कार्य समझा जाने लगा। इस व्यवस्था के अनुकूल प्रत्येक गाँव में शान्ति की रक्षा करना पटेलों की कौन्सिल का और कौन्सिल के द्वारा प्रत्येक गाँव के पटेल का कर्त्तव्य होगया। भारतवर्ष में यह व्यवस्था कोई नई नहीं थी। शेरशाह के समय में प्रत्येक गाँव में शान्ति की रक्षा करना गाँव के मुखिया का ही कर्त्तव्य माना जाता था। अन्तर केवल यह था कि जालिमसिंह की व्यवस्था में चार बड़े पटेल राज्य शासन का भी कार्य करते थे। परगनों की पंचायतों के निर्णय से जो लोग असन्तुष्ट होते थे, वे लोग भी पटेलों की कौन्सिल के सामने फरियाद करते थे[1]। अतः यह कौन्सिल एक प्रकार से अदालत अपील थी। माल, पुलिस और फौजदारी का प्रबन्ध इस समिति के सुपुर्द होने के कारण राज्य में यह एक बड़ी प्रभावशाली संस्था थी। विशेष करके पुलिस का कार्य भी इस कौन्सिल के सुपुर्द होने से इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया था। जालिमसिंह की पुलिस तत्कालीन भारत में बल्कि शायद सम्पूर्ण संसार में सर्वाधिक प्रबल, सजग और सचेत थी। कोटा राज्य का कोई गाँव ऐसा नहीं था जहाँ कि साधारण घटनाओं का पता दूसरे

(१) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५८१।

या तीसरे दिन जालिमसिंह को न लग जावे। कोटा राज्य का कोई अधिकारी ऐसा नहीं था, जिसके प्रत्येक कार्य का हाल जालिमसिंह को मालूम न हो। कोटे से बाहर का आदमी ज्योंही राज्य में घुसता था त्योंही जालिमसिंह को उसकी सूचना मिल जाती थी। उस समय लोग कहा करते थे कि जालिमसिंह को सूचना हुये बिना कोटा राज्य में पवन भी प्रवेश नहीं कर सकता[1]।

कौन्सिल पर निगरानी—यह कौन्सिल शासनकार्य में योग्य और निपुण थी, परन्तु फिर भी जालिमसिंह निश्चिन्त नहीं था। बात यह थी कि वह पटेलों की योग्यता पर तो विश्वास करता था, परन्तु उनकी नीयत पर सदैव सन्देह करता था। इसलिये इन पटेलों के प्रत्येक कार्य की सूचना देने के लिये भी उसने अपने खास गुप्तचर नियत कर रक्खे थे। जालिमसिंह योग्यतानुरूप काम सबसे लेता था, परन्तु उसको विश्वास किसी पर नहीं था।

भूमि-प्रबन्ध—जालिमसिंह ने भूमि के प्रबन्ध में बहुत सुधार किये। राव माधोसिंहजी के जमाने से भूमि के नाप और कर की एक परम्परा चली आती थी। न प्रति बीघे का नाप निश्चित था और न राज का कर। किसान अपनी उपज का एक अंश राज को दिया करते थे। कभी उपज का तृतीयांश, कभी इससे अधिक और कभी इससे कम लिया जाता था।

उपज के अनुसार भूमि-विभाग और नकद लगान—जालिमसिंह ने राज्य के मुख्य मुख्य पटेलों को बुलाया। हर एक से विस्तारपूर्वक पूछा गया कि कड़ता कैसे वसूल किया जाता है? प्रत्येक गाँव से कितना वसूल होता है और कब वसूल होता है? इस

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५८१।

विधि से उसने अनुमान लगाया कि सम्पूर्ण राज्य की आमदनी लगभग कितनी हुआ करती है। तदनन्तर उसने जमीन को नपवाया। परम्परागत बीघे का दो तिहाई अब पूरा बीघा माना गया। जमीन की चकबन्दी की गई और जाति और उपज के अनुकूल उसको पीवत (चाही), गौरमा (कौरवान) और मोरमी (काजू पड़त, नालायक छापर आदि) इन तीन भागों में विभक्त किया गया। लगान निश्चित करके यह घोषित कर दिया गया कि कड़ता नकद लिया जावेगा, उपज के रूप में नहीं। इससे किसानों को पता लग गया कि उन्हें क्या देना है और राज्य को भी मालूम होगया कि क्या लेना है? इस विधि से राज को विशेष लाभ हुआ और शासन में उत्तमता आगई। प्रति बीघा डेढ़ आना पटेल की रसूम नियत करदी गई। पटेल पर जमीन का लगान औरों की अपेक्षा हल्का रक्खा गया। इस घोषणा के सुनने पर सैकड़ों लोग पटेल बनने के लिये उत्सुक हो उठे और राज्य के कोष में लगभग पन्द्रह लाख रुपये नजराने के आये[1]।

पटेल और बोहरों का कृषकों पर जुल्म—कुछ पटेल ऐसे भी थे जिन्होंने अनेक गाँवों की पटेली ले रक्खी थी और जिनको हजारों रुपये रसूम मिलती थी। जालिमसिंह का शासन कठोर होते हुये भी पटेलों के लिये रिआया को लूटने की और रुपया इकट्ठा करने की बहुत गुञ्जायश थी। जब खेत पक जाता था तो किसान फसल को काटने की इजाजत माँगता था, पटेल कहता था कि पहले कड़ता अदा करो, तब फसल काटो; ऐसी अवस्था में किसान को पटेल की ही शरण लेनी पड़ती थी क्योंकि वह उधार देसकता था। तब पटेल का काम बनता था। वह खड़ी फसल का कुछ हिस्सा खरीद कर कड़ता चुकाने के लिये किसान को रुपया देदिया करता था। इस हिस्से की

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५७९–८०।

कीमत आँकना भी पटेल पर ही निर्भर था। इस प्रकार पटेल को बहुत लाभ होता था और किसान को बहुत नुकसान। जालिमसिंह को इन सब बातों का पता था, परन्तु वह परेशान था कि क्या किया जावे? यदि उपज की बिक्री तक कड़ते की वसूली की प्रतीक्षा की जाती तो यह भय था कि किसान माल बेचदे और कड़ता न दे। इसके अतिरिक्त यह भी डर था कि किसान माल इधर उधर करदे। साथ ही-कड़ता वसूल करने में पटेल का उत्तरदायित्व था और वह इस प्रकार की देखरेख का पूर्ण प्रबन्ध नहीं कर सकता था। इस दशा को जालिमसिंह ने कई साल तक देखा। अन्त में निश्चय किया कि यह व्यवस्था लाभदायक नहीं है और इसका अन्त कर देना चाहिये।

पटेल प्रथा का अन्त—सम्वत् १८६७ में इस विषय में अकस्मात् आदेश हुआ। सब बड़े बड़े पटेलों को गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी सम्पत्ति छीन कर राजकोष भर दिया गया। इस व्यवहार से कोई नहीं बचने पाया। कहा जाता है कि केवल एक पटेल की सम्पत्ति इस अपहरण से बची और वह भी इसलिये कि उसने लगभग सात लाख रुपये दूसरे राज्यों में लगा रक्खे थे।

जालिमसिंह का कृषि-कार्य—उन तमाम गाँवों में जहाँ की जमीन अच्छी उपजाऊ थी, जालिमसिंह ने राज के हवाले स्थापित किये। इन हवालों के वास्ते किसानों की जमीनें छीनी जाने लगीं। जो कृषक राज का कड़ता देने में एक पल का भी बिलम्ब करता था, उसकी जमीन तत्काल छीन ली जाती थी। अन्य प्रकार का और कोई अपराध होता तो भी किसानों के खेत छीन लिये जाते थे। इस प्रकार दो साल के अन्दर ही लाखों बीघा जमीन खालसा कर ली गई। जो लोग पहले किसान थे, वे अब राज के हाली बन कर काम करने लगे। तीन साल के अन्दर यह खेती इतनी बढ़ गई कि प्रायः प्रत्येक उपजाऊ

ग्राम में सरकारी हवाला स्थापित होगया। सन् १८२० और १८२१ के लगभग राज के पास सौलह हजार बैल थे और लगभग चार लाख बीघे जमीन। राज के बैल निहायत बढ़िया और मालवे की उत्तम नसल के थे। जालिमसिंह ने नये ढंग का हल भी चलाया था। बैलों की खरीद के लिये उसने राज्य में कई मेले भी जारी किये थे।

अन्न-व्यापार—इस प्रकार लगभग बत्तीस लाख मन अन्न प्रतिवर्ष राज के हवालों से उत्पन्न होने लगा। इस अन्न के द्वारा जालिमसिंह सम्पूर्ण राजस्थान के अन्न-व्यापार को अपने हाथ में लेकर राजपूताने में अपनी धाक जमाना चाहता था। इस अन्न को वह खाई-खासों में गड़वा दिया करता था और मौका पाकर बेचा करता था। इससे दुर्भिक्ष के समय जालिमसिंह को करोड़ों रुपयों की आमदनी हुआ करती थी। कोटा राज्य के किसानों और व्यापारियों को ऐसे मौके पर भी वह लाभ नहीं होने देता था। उनके अन्न पर एक कर लगा दिया जाता था जो लट्ठा कहलाता था और इस कारण प्रजा का अन्न कोटे से बाहर उतना सस्ता नहीं बिक सकता था जितना राज का अन्न। इस नीति से जालिमसिंह दुगुना लाभ उठाता था। स्वयम् उसको खूब रुपया मिलता था और कुछ अन्न प्रजा के खाने के लिये राज में भी रह जाता था, परन्तु कृषक और व्यापारियों की आर्थिक अवस्था इस नीति के कारण दिन प्रति दिन हीन होती जाती थी।

अन्य कर—लट्ठे से सन्तुष्ट न होकर जालिमसिंह ने अन्य प्रकार के कई कर जारी किये थे। सींगोटी, बीघोटी, घाणी, नापो, छापो, बेसक, कँवरमटकी आदि कई प्रकार के कर जिनका विस्तृत उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, सदियों से जारी थे। लेकिन जालिमसिंह ने इनको काफी नहीं समझा और अन्य कई प्रकार के नये कर और लगा दिये। जालिमसिंह के करों में विधवा बराड, तूँबा बराड,

झाड़ू बराड़, चूल्हा बराड़, कागली, कूलड़ी, जामदारी आदि विशेष उल्लेखनीय और उपहास्य हैं। सरकारी कागजों से पता नहीं चलता कि इन तमाम करों के द्वारा वार्षिक आय कितनी हुआ करती थी, परन्तु फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इन बराड़ों के द्वारा कई लाख रुपये वसूल हुआ करते होंगे। इसके अतिरिक्त पटेलों से, बोहरों से, और दूसरे व्यापारियों से जालिमसिंह तिसाला दण्ड के नाम से बहुत रुपया लिया करता था। पटेल बराड़ की भाँति यह दण्ड भी एक प्रकार का कर समझा जाने लगा था। आजकल के शब्दों में इसको 'इनकमटेक्स' कह सकते हैं। परन्तु इस दण्ड के संग्रह करने में न कोई नियम था और न संयम[1]।

जालिमसिंह की नीति से कोटा राज्य में तबाही—जालिमसिंह की उपरोक्त नीति के कारण कोटा राज्य में सर्वत्र दारिद्र्य का ताण्डव होने लगा। सैंकड़ों वर्षों के जमे हुये कृषक-परिवार अपने पैतृक घरों और खेतों को छोड़ कर अन्यत्र बसने के लिये चले गये। सैंकड़ों गाँव ऊजड़ होगये और अनेक प्रकार के करों के भार से दब कर प्रजा सिसकने लगी। ऐसा अनुमान होता है कि सम्वत् १८८० और ८५ के लगभग इस धनहरण नीति के कारण राज्य में सर्वत्र घोर अशान्ति व्याप्त होगई और शायद स्थान स्थान पर उत्पात और बलवे भी होने लगे। जनता में इस प्रकार का क्षोभ और असन्तोष देख कर जालिमसिंह को अपनी नीति बदलनी पड़ी। यह नहीं कहा जासकता कि उसने सब नये बराड़ वास्तव में हटा दिये या नहीं, परन्तु प्रजा को शान्त करने के लिये उसको राज्य में घोषणा करनी पड़ी कि आयन्दा जनता से कोई अनुचित कर नहीं लिये जावेंगे। कोटा, बाराँ, गागरोण, कनवास, उम्मेदगंज, मुकन्दरा, माँगरोल, झालरापाटन आदि अनेक मुख्य

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५९२।

स्थानों पर शिलालेख स्थापित करने पड़े, जिनमें उपरोक्त घोषणा कीगई। आम लोगों के सिवाय नन्दवाने, सर्राफ और दूसरे व्यापारियों को विशेष आश्वासन दिया गया और उनके लिये स्थान स्थान पर विशेष शिलालेख खड़े किये गये। इन शिलालेखों में घोषित किया गया कि लोग विश्वास रख कर वाणिज्य और व्यापार तथा कृषि-कार्य करें। उनको सब दण्ड माफ किये गये हैं। पटेल, पटवारी और अन्य राज-कर्मचारियों को हिदायत की गई कि रिआया से कोई अनुचित दण्ड वसूल नहीं किया जावे। इससे यह भी स्पष्ट है कि राजकर्मचारियों पर पर्याप्त नियन्त्रण नहीं रहा करता था और ये लोग मनमाने ढंग से दण्ड या कर वसूल कर लिया करते थे। शिलालेख ऐसे स्थानों पर खड़े किये गये थे जहाँ जनता इनको पढ़ सके और सर्वव्यापी अशान्ति और क्षोभ दब जावें[1]।

तत्कालीन जागीरदार—पूर्ववत् इस समय भी जागीरदार दो श्रेणियों में विभक्त थे। तन का और देश का। तन के जागीरदारों में अमरसिंहजी पलायथा, देवसिंहजी बमूल्या, नाथ-सिंहजी साँगोद, शिवनाथसिंहजी राजगढ़, राज जालिमसिंहजी, राज भवानीसिंहजी, अनवरखाँजी, नामदारखाँजी, पण्डित बालाजी राव, और पण्डित जयशंकरजी विशेष उल्लेखनीय हैं। सब से बड़े जागीरदार राज जालिमसिंहजी और अनवरखाँजी थे। जालिमसिंहजी की जागीर चौसठ हजार की थी और अनवरखाँजी की जागीर बावन हजार की। आप अमरसिंहजी पलायथा की जागीर में बीस गाँव थे और उन को चालीस घोड़ों से नौकरी करनी पड़ती थी। तन के जागीरदारों में सबसे अधिक संख्या माधानी हाड़ों की थी, परन्तु झाला राजपूतों की जागीरें भी मिलाकर एक लाख बीस हजार की थीं। झालों में तेरह

(१) टॉड : राजस्थान, जिल्द २।

जागीरदार मुख्य थे और मुसलमानों में दस। इनमें अनवरखाँजी विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त हाड़ा बैरावत, हाड़ा अर्जुन पोता, हाड़ा साँवतका, हाड़ा हमीरका आदि तथा सोलंकी, राठौड़, राजावत, सीसोदिया, शक्तावत, गौड़, और दक्षिणी पण्डित भी इस श्रेणी के जागीरदार थे। देश के जागीरदारों में मुख्य आप भगोतसिंहजी कोयला और महाराजा प्यारसिंहजी रैलावण थे। कोयला की जागीर में उस समय अठारह गाँव थे और एक सौ तिरेपन घोड़ों से उनको नौकरी करनी पड़ती थी। दोनों प्रकार की जागीरों में मिलकर लगभग आठसौ गाँव थे। चौवीस प्रकार के राजपूतों के अतिरिक्त मुसलमान, दक्षिणी पण्डित, भाट, कुलमी, ख्वाणी, सेंधिया, ब्राह्मण, सन्यासी, गूजर, मीणा, जेठी, सहरिया, और सगर लोग भी जागीरदार थे[1]।

कोटा राज्य के परगने—सम्वत् १८३९ के आसपास कोटा राज्य में चालीस परगने थे। इनमें पन्द्रह सरकार गढ़ रणथम्भौर में और एक सरकार गढ़ आलमगीर में सम्मिलित था। इस प्रकार राज के चार डिवीजन थे। हर एक परगना तफों में बटा हुआ था और हर एक तफा में कई गाँव सम्मिलित होते थे। परगने का प्रबन्ध बहुत अंशों में वैसाही था जैसा मुकुन्दसिंहजी के समय में[2]।

आर्थिक स्थिति—अस्थिर राजनैतिक अवस्था, अनेक प्रकार के कर, पिंडारों की निरन्तर लूट, मराठों की लगातार माँगें, आक्रमणकारी सेनाओं का आवागमन, जालिमसिंह के हवाले और लट्टा, और दुर्गम तथा विघ्नमय मार्ग—इन सब कारणों से प्रजा की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। ज्वार का भाव सम्वत् १८३८ में ३।।) रुपये फी माणी

(१) कागजात सम्वत् १८३८।

(२) कागजात सम्वत् १८३९।

(१२ मण) था[1]। लेकिन इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिये कि राज्य में अन्न की विपुलता थी। अधिकांश रिआया करों के भार से और लूटमार से निर्धन होचुकी थी और खरीदने के लिये पैसा नहीं था। जनता की शोचनीय आर्थिक स्थिति का इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्वत् १८३९ में पिचासी रुपये में कई लड़कियाँ राज ने दासियाँ बनाने के लिये खरीदी थीं[2]। सेना संचालन में तथा मेवाड़ को मदद देने में जालिमसिंह ने प्रचुर धनराशि खर्च करदी थी, जिससे राजकोष में कमी आगई थी। इसलिये रिआया से भारी ब्याज पर रुपया उधार लेना पड़ता था। पण्डित श्रीकृष्ण नाना से एक लाख सतरह हजार रुपया एक रुपया सैंकड़ा मासिक ब्याज पर होल्कर को खरनी देने के लिये उधार लिये गये थे और इसी ब्याज पर खुशाल सोनी और बिहारीदास नन्दवाना से भी ऋण लिया गया था[3]।

स्थिति सुधार के प्रयत्न—आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये जालिमसिंह ने कई मेले जारी किये थे। कुछ मेले पशुओं के थे और कुछ साधारण व्यापार के लिये। उम्मेदगंज और नान्ता आदि कई स्थानों पर वार्षिक मेले लगते थे। नान्ते का मेला बृजनाथजी का मेला कहलाता था। इन मेलों में आने वाली चीजों पर कर नहीं लिया जाता था और राहदारी कर में पिचहत्तर फीसदी छूट दी जाती थी। अनेक प्रसिद्ध औद्योगिक और व्यापारिक नगरों के सौदागरों के नाम परवाने भेजे जाते थे जिनके द्वारा सूचित किया जाता था कि अपनी खातिरजमा रख कर व्यापार करने आना, मेले में कर नहीं लिया जावेगा। इस प्रकार के परवाने लिखकर कोटा निवासी शाह

(१) कागजात लम्वत् १८३८।

(२) कागजात सम्वत् १८३९।

(३) उपरोक्त।

किशनराम हल्दिया को दे दिये जाते थे जो उनको यथास्थान पहुँचाता था। यह सेठ उस समय कोटा नगर में बड़ा धनाढ्य और प्रभावशाली था। केवल राजपूताने में ही नहीं, भारत के सुदूर प्रसिद्ध नगरों में भी अपने आदमियों के द्वारा यह डाक पहुँचाया करता था। उस समय की लूटमार, संकट-संकुल मार्ग, राजनैतिक अस्थिरता, और आने जाने के साधनों की कमी आदि की कल्पना करने पर पता लगता है कि यह काम कितना कठिन होगा और इस सेठ का संगठन कितना दृढ़ होगा[1] ?

सम्वत् १८४४ में निम्नलिखित नगरों के व्यापारियों के नाम बृजनाथजी के मेले में माल लाने के लिये परवाने भेजे गये थे :—

बूँदी, सीलोर, नगर, नैणवाँ, टोंक, टोडा, जयपुर, मानपुरा, नौशहर, पाली, किशनगढ़, मेड़टा, जोधपुर, बीकानेर, आगरा, साही-पुरा (शाहपुरा), प्रतापगढ़, रामपुरा, भानपुरा, डूँगरपुर, सीतामऊ, गंगराड़, इन्दौर, उज्जैन, सरोंज, नई सराय, साडोरा, झाँसी, छत्रपुर, शोपुर, करोली, नरवर, सूरत, अहमदाबाद, बड़ौदा, रतलाम, पटलावद, बुरहानपुर, चन्देरी, रणोंग, सारंगपुर, भूपाल, पड़ावा, सुन्देल, सागवाड़ा, लूनावाड़ा, सागर, भाँसोदा, ब्यावरा, शाहजहाँपुर, सुसनेर, नौरंगाबाद, पूना, दिल्ली, नागौर, पिहीकरण, पचपहाड़, बोल्पा, मन्दसौर, बेगूँ, मेलसा, गौतमपुरा, नराणा, अजमेर, रूपनगर, नाऊँ, परवतसर, मारोठ।

उपरोक्त नामावली से स्पष्ट है कि कोटे में इन्दौर, सूरत, अहम-दाबाद, बड़ौदा, बुरहानपुर, पूना, दिल्ली आदि सुदूर नगरों के व्यापारी भी वाणिज्य के लिये आया करते थे और इतनी दूर के नगरों में कोटे का एक सेठ डाक पहुँचाया करता था। कृषक और बोहरे तो

(१) कागजात सम्वत् १८४४।

जालिमसिंह की नीति से तथा पिण्डारियों और मराठों की लूटमार से नष्ट और क्षीण होगये थे, किन्तु नगर निवासी अच्छी सम्पन्न अवस्था में थे। रामपुरे के बाजार में सर्राफों की सैंकड़ों दुकानें थीं, जिनमें चांदी और सोने के जेवरों के ढेर लगे रहते थे[1]।

महाराव उम्मेदसिंहजी का देहान्त—२१ नवम्बर सन् १८१९ (मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया शनिवार सम्वत् १८७६)[2] को एकाएक महाराव उम्मेदसिंहजी का देहान्त होगया। उसी दिन राजराणा जालिमसिंह ने कर्नल टॉड को जो उस समय मारवाड़ से मेवाड़ जा रहा था, निम्नलिखित पत्र लिखा :—

"शनिवार के सायंकाल तक महाराव उम्मेदसिंहजी का स्वास्थ्य पूर्णरूप से अच्छा था। सूर्यास्त के लगभग एक घण्टे बाद वे श्री बृजनाथजी के दर्शन करने गये। मन्दिर में उन्होंने छः बार साष्टांग प्रणाम किया। जब सातवीं बार प्रणाम करने लगे तो उनको चक्कर आया और वे मूर्छित होगये। इसी अवस्था में उनको शयनागार में लेजाया गया और सब प्रकार औषधोपचार किया गया, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुये और प्रातःकाल दो बजे उनका स्वर्गवास होगया। ऐसा दुःख शत्रु को भी नहीं होना चाहिये, परन्तु भाग्य के आगे किसका वश चलताहै ? आप हमारे मित्र हैं और जिन लोगों को महाराव साहब छोड़ गये हैं, उनका हित और सम्मान आपके हाथों में है। स्वर्गीय महाराव साहब के ज्येष्ठ पुत्र महाराव किशोरसिंहजी गद्दी पर बिठा दिये गये हैं। यह सूचना मित्रता की दृष्टि से दी गई है"।

---

(१) पण्डित तेजकरण—अहवाल राज कोटा।

(२) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

महाराव किशोरसिंहजी

(सम्वत् १८७६–१८८४)

राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन—जालिमसिंह ने मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी सम्वत् १८७६ के दिन किशोरसिंहजी को गद्दी पर बिठा दिया और राज्य का शासनसूत्र पूर्ववत् अपने हाथ में रक्खा,[1] परन्तु उम्मेदसिंहजी के देहावसान के समय वैसी स्थिति नहीं थी जैसी महाराव गुमानसिंहजी के देहान्त के समय थी। उस समय गुमानसिंहजी मराठों के आक्रमणों के कारण घोर संकटों से घिरे हुये थे और उम्मेद-सिंहजी बच्चे थे। इसलिये गुमानसिंहजी के लिये इसके सिवाय और कोई चारा नहीं था कि राज्य का शासन-भार जालिमसिंह के सुपुर्द करके बालक उम्मेदसिंहजी को उसकी गोद में बिठाते। उम्मेदसिंहजी जालिम-सिंह की संरक्षकता में ही छोटे से बड़े हुये थे। उन्होंने मराठों के और पिंडारियों के नाशकारी आक्रमणों की भयंकरता को देखा था। वे जानते थे कि जालिमसिंह ने बार बार होने वाले हमलों से कोटा राज्य को बचाया था। उनको मालूम था कि शाहाबाद को जीत कर तथा मेवाड़ के कई परगनों पर अधिकार करके जालिमसिंह ने कोटा राज्य के वैभव में भी वृद्धि की है। इतना होते हुये भी जालिमसिंह उम्मेदसिंहजी का अत्यधिक आदर करता था और उनको अपनी विवशता का कभी अनु-भव नहीं होने देता था। परन्तु अब यह सब स्थिति बदल चुकी थी।

उम्मेदसिंहजी के तीन पुत्र—महाराव उम्मेदसिंहजी के तीन पुत्र थे। किशोरसिंहजी, विष्णुसिंहजी और पृथ्वीसिंहजी। किशोरसिंहजी

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

महाराव किशोरसिंहजी
(१८७६–१८८४ वि०)

की अवस्था इस समय चालीस वर्ष की थी। उनकी प्रकृति सरल थी। उनका पालनपोषण अधिकतर महलों में हुआ था। इसलिये उनको राजनैतिक या शासन-सम्बन्धी अनुभव नहीं था। शायद उनमें महत्वाकांक्षा भी अधिक नहीं थी। यदि दूसरे लोग उनकी सुषुप्त प्रवृत्तियों को जागृत नहीं करते तो वे अपने स्वर्गीय पिता की भाँति नाममात्र के राजा बने रहते और जालिमसिंह पूर्ववत् निर्विघ्न कोटा राज्य का शासन करता रहता। दूसरे कुँवर विष्णुसिंहजी स्वभाव, प्रकृत्ति और प्रवृत्ति में किशोरसिंहजी के ही समान थे और उनसे केवल तीन वर्ष छोटे थे। जालिमसिंह के साथ इनका अधिक स्नेह था। सम्भव है कि इस स्नेह का कारण राजनैतिक हो। तीसरे कुँवर पृथ्वीसिंहजी की अवस्था तीस वर्ष से कम थी, परन्तु इनकी प्रवृत्ति अपने दोनों भाइयों से नितान्त भिन्न थी। वे कोटा नरेश की विवशता को सहन नहीं कर सकते थे। उनको कोरी शान और विलासमय जीवन पसन्द न था। वे हमेशा शस्त्र प्रयोग द्वारा अपने वंश की गई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहते थे। प्रत्येक भाई को पच्चीस हजार रुपये की जागीर मिली हुई थी जिससे वे अपना निर्वाह करते थे। तीनों भाइयों में प्रत्यक्ष में परस्पर अच्छा प्रेम था, परन्तु यह बात भी सब जानते थे कि विष्णुसिंहजी की जालिमसिंह और उसके पुत्र के साथ खूब घनिष्ठता है और यह स्वार्थ से शून्य नहीं है।

जालिमसिंह के दो पुत्र—जालिमसिंह के दो पुत्र थे। माधोसिंह और गोरधनदास। माधोसिंह की अवस्था इस समय छियालीस वर्ष की थी। उसका व्यक्तित्व आकर्षक और रौबदार था, परन्तु वह कुछ सुस्त और विलासी भी था। जब जालिमसिंह राजनैतिक, सैनिक और शासन सम्बन्धी कारणों से कोटा छोड़ कर छावनी पाटण जा बसा था तो उसने

माधोसिंह को फौजदार के पद पर नियत कर दिया था। कोटा राज्य में इस पद से ऊँचा अन्य कोई पद नहीं था। माधोसिंह की मातहती में बीस हजार सेना थी जिसको वह ही वेतन चुकाया करता था। राज्य में किसकी हिम्मत थी कि उस पर नियन्त्रण रखता या उसके हिसाब का निरीक्षण करता ? यह जालिमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र तो था ही परन्तु महाराव उम्मेदसिंहजी भी उससे बहुत प्रेम करते थे। इस अप्रतिम पद के कारण माधोसिंह बड़ा अभिमानी, उद्दण्ड और ऐशपसन्द बन गया था। उसके बाग, उसके घोड़े और उसके बजरे सब निराले ढंग के थे। सब में राजसी ठाट था। इस कारण तीनों राजकुमार उससे ईर्ष्या करते थे। जालिमसिंह माधोसिंह की विलासप्रियता के कारण उससे अप्रसन्न रहता था। उसने कई बार तंग आकर यह कहा था कि जब मेरे सौ वर्ष पूरे हो जावेंगे तो माधोसिंह उस शान और शौकत को बिगाड़ डालेगा, जो मैंने पचास वर्ष के अथक परिश्रम से खड़ी की है। गोरधनदास की अवस्था सत्ताइस वर्ष के लगभग थी, परन्तु वह साहसी, बुद्धिमान, सचेत और प्रत्युत्पन्नमति था। उसकी प्रकृति पृथ्वी-सिंहजी से मिलती जुलती थी। इसलिये दोनों में घनिष्ठ मैत्री थी। अन्य दो राजकुमारों के साथ भी गोरधनदास नम्रता और आदर के साथ व्यवहार करता था। विष्णुसिंहजी की भाँति इसके व्यवहार में भी गहरी और गुप्त राजनैतिक चाल थी। जालिमसिंह ने इसको प्रधान नियत कर दिया था। उस समय प्रधान का कार्य अन्न की रक्षा, उसका संचय और यथासमय उसका निकास करना था। पहिले लिखा जा चुका है कि अन्न के व्यापार के कारण जालिमसिंह राजपूताने के बाजारों में और राजनैतिक तथा युद्ध-क्षेत्रों में बहुत प्रसिद्ध होगया था और बहुत बड़ा लाभ उठाता था। ऐसे विभाग का अध्यक्ष बनना कोई छोटी बात नहीं

थी। गोरधनदास को लाखों रुपयों का रात दिन लेनदेन करना पड़ता था जिससे लाभ उठा कर उसने खूब सम्पत्ति एकत्र करली थी। माधोसिंह और गोरधनदास में सदैव अनबन रहा करती थी। माधोसिंह को गोरधनदास और पृथ्वीसिंहजी की मैत्री खटका करती थी। इन दोनों की घनिष्ठता के कारण वह अनिष्ट की आशंका किया करता था। माधोसिंह के पास राजशक्ति थी और गोरधनदास के पास केवल धन और व्यक्तिगत साहस। एक बार माधोसिंह ने गोरधनदास को गिरफ्तार करके हवालात में भी रखवा दिया था। इससे दोनों भाइयों का पारस्परिक वैमनस्य और भी बढ़ गया था[1]।

पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास की किशोरसिंहजी को सलाह—पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास किशोरसिंहजी को माधोसिंह के विरुद्ध भड़काया करते थे और समय समय पर उनको कम्पनी के साथ जो कोटा नरेश की सन्धि हुई थी, उसका स्मरण दिलाया करते थे। सन् १८१७ के दिसम्बर में जो सन्धि हुई थी, उसमें एक शर्त यह भी थी कि महाराव उम्मेदसिंहजी और उनके उत्तराधिकारी सदैव पूर्णरूप से कोटा राज्य के शासक रहेंगे। पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास इस शर्त का भाष्य करके किशोरसिंहजी को समझाया करते थे और माधोसिंह की निरंकुशता की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया करते थे।

जालिमसिंह के प्रति असन्तोष—जालिमसिंह इस समय वृद्ध था और नेत्रहीन भी। उसकी कठोर शासन-नीति ने शत्रुओं की संख्या खूब बढ़ा दी थी और ज्यों ज्यों उसका शारीरिक बल क्षीण होता जाता था त्यों त्यों उसके विपक्षियों की संख्या और भी बढ़ती जाती थी।

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१०।

क्या जागीरदार, क्या बोहरे, क्या कृषक, क्या मजदूर सब जालिमसिंह के विरोधी थे। रिआया करों के भार से सिसक रही थी, और जागीरदार अपनी जागीरें छिन जाने से तथा माधोसिंह की उद्दण्ड नीति से असन्तुष्ट थे। जालिमसिंह के अन्तिम दिन अब दूर नहीं थे। माधोसिंह कई बातों में अपने बाप की अपेक्षा अयोग्य था। सब लोग समझते थे कि अब झालों के शासन का अन्त होने वाला है और इस अन्त की तिथि लोगों ने निश्चित कर रक्खी थी महाराव उम्मेदसिंहजी का मृत्यु-दिवस। इस व्यापक असन्तोष का पता कर्नल टॉड को भी था, बल्कि जालिमसिंह की अपेक्षा कर्नल टॉड ने इस स्थिति का अधिक सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण कर रक्खा था और उसके द्वारा ही जालिमसिंह को सूचना मिली थी कि उसके दोनों पुत्रों में गहरी अनबन है और उसका कुप्रभाव राजनैतिक स्थिति पर पड़े बिना नहीं रहेगा[1]।

किशोरसिंहजी का असन्तोष और कर्नल टॉड की सम्मति—जालिमसिंह का वह पत्र मिलने पर जिसमें उसने महाराव उम्मेदसिंहजी के देहान्त की सूचना लिखी थी, कर्नल टॉड कोटे के लिये रवाना होगया। उसने देखा कि महाराव किशोरसिंहजी सन् १८१७ के दिसम्बर की सन्धि का पालन करवाने पर तुले हुये हैं और जालिमसिंह तथा उसके पुत्र सन् १८१८ के मार्च की गुप्त सन्धि का पालन करवाने पर। कर्नल टॉड का कहना है कि यदि लूटमार का जमाना न गुजर गया होता और मराठों तथा पिण्डारियों के आक्रमण अब भी जारी होते तो महाराव किशोरसिंहजी अपने पिता की भाँति जालिमसिंह की संरक्षकता को चुपचाप सहन करते रहते और बहुत सम्भव था कि कोटे की गद्दी हाड़ा राजपूतों के हाथ से निकल कर झाला राजपूतों के

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६११।

हाथ में चली जाती[1]। इतिहास में भविष्यवाणी का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिये हम ज्योतिष के क्षेत्र में नहीं उतरना चाहते। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बहुत सी झंझटों और रक्तपात के बाद विवश होकर कम्पनी को वह शर्त बदलनी पड़ी जो कोटा नरेश की सम्मति के बिना और उनको सूचना दिये बिना उसने गुप्तरूप से जालिमसिंह के साथ करली थी।

महाराव किशोरसिंहजी का पोलिटिकल एजेण्ट के नाम पत्र—गोरधनदास और पृथ्वीसिंहजी की सलाह से महाराव किशोर-सिंहजी ने अन्त में निश्चय कर लिया कि जालिमसिंह के हाथ से शासन की बागडोर छीन कर अपने हाथ में लीजावे और गत पचास वर्ष की संरक्षकता का अन्त किया जावे। किशोरसिंहजी ने पोलिटिकल एजेण्ट की मारफत गवर्नर जनरल को खरीता भेजा[2] कि दिसम्बर सन् १८१७ की सन्धि पर स्वर्गीय महाराव तथा गवर्नर जनरल दोनों के हस्ताक्षर हैं। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार स्वर्गीय नरेश के उत्तराधिकारी कोटा राज्य के अनियन्त्रित शासक रहने चाहियें। इसलिये इस शर्त का पालन होना चाहिये और कम्पनी को चाहिये कि जालिमसिंह की सहायता न करे। मार्च सन् १८१८ में जालिमसिंह और कम्पनी में जो सन्धि हुई है, उसका स्वर्गीय नरेश को अपने अन्त समय तक पता भी नहीं था। अतः यह गुप्त सन्धि उनके उत्तराधिकारियों पर लागू नहीं हो सकती[3]।

गवर्नर जनरल का उत्तर—कम्पनी के सामने प्रश्न था कि

---

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१२–१३।

(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(३) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

गुप्त सन्धि के अनुसार जालिमसिंह को सहायता दी जावे या प्रथम सन्धि के अनुकूल किशोरसिंहजी का साथ दिया जावे। अन्त में यह निश्चय किया कि जालिमसिंह का पक्ष ग्रहण किया जावे। कारण यह था कि पिंडारियों को और भागे हुये मराठा सरदारों को पकड़वाने में जालिमसिंह ने कम्पनी की बड़ी सहायता की थी। कर्नल मॉनसून को मदद देकर भी जालिमसिंह कम्पनी का हितैषी बन चुका था। राजपूताने में सर्व प्रथम कम्पनी के साथ सन्धि करके दूसरे राज्यों के साथ सन्धि करने का उसने रास्ता खोल दिया था। यह सब कुछ उसने कोटे के राजबल द्वारा और महाराव उम्मेदसिंहजी के नाम पर किया था। इस लिये कोटा नरेश को स्वप्न में भी यह सन्देह नहीं होसकता था कि उनके साथ धोका होगा। इधर कम्पनी समझती थी कि जो कुछ उसको सहायता मिली है, उसका श्रेय जालिमसिंह को है न कि कोटे के महाराव को। इसलिये खरीते के उत्तर में लिखा कि "महाराव नाममात्र के शासक हैं। जालिमसिंह के साथ जो कम्पनी की सन्धि हुई है, उसके खिलाफ महाराव की दलीलें नहीं सुनी जासकतीं। कोटा राज्य का वास्तविक शासक जालिमसिंह है न कि महाराव। महाराव की स्थिति सतारा के राजा या मुगल सम्राट् से ज्यादा अच्छी नहीं है[1]"।

किशोरसिंहजी का रंगबाड़ी को प्रयाण—ये बातें कोटा नरेश स्वीकार नहीं कर सकते थे। गोरधनदास और पृथ्वीसिंहजी की सलाह से वे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर तुले हुये थे। अतः पोलिटिकल एजेण्ट ने निश्चय किया कि इन दोनों सलाहकारों को कोटा नरेश से अलग कर दिया जावे। उस समय पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास दोनों राजमहल में रहते थे। इनको गिरफ्तार करने के लिये यह

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१५।

युक्ति सोची गई कि गढ़ के घेरा डाला जावे जिससे तंग आकर वे दोनों आत्मसमर्पण करदें । कई दिन तक यह घेरा जारी रहा । अन्त में स्थिति को असह्य समझ कर महाराव किशोरसिंहजी पाँच सौ सवार और गोरधनदास तथा पृथ्वीसिंहजी को साथ लेकर गढ़ से निकल गये और रंगबाड़ी पहुँच कर अपने डेरे लगाये[1] । गढ़ से निकलते समय और रंगबाड़ी को कूँच करते समय जालिमसिंह ने या पोलिटिकल एजेण्ट ने उनको रोकने की कोशिश नहीं की । किशोरसिंहजी हाड़ा राजपूतों की सेना एकत्र करके जालिमसिंह से लड़ना चाहते थे । राजनीति से अनभिज्ञ होने के कारण उनको पता नहीं था कि सन् १८१७ की सन्धि ने स्थिति में क्या परिवर्तन कर दिया है । अब कोटा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मातहत था और कम्पनी जालिमसिंह के साथ थी । कम्पनी की शक्ति के आगे डच, फ्रेन्च, मराठे और मुगल भारतवर्ष में अपना सिर झुका चुके थे । महाराव किशोरसिंहजी की क्या औकात थी जो सामना करने में सफल होते ? ज्योंही पोलिटिकल एजेन्ट को इस घटना का पता लगा वह जालिमसिंह के पास पहुँचा और पूछा कि स्थिति को सँभालने के लिये किन साधनों का प्रयोग करना चाहिये ? जालिमसिंह ने उत्तर दिया कि "मैं हमेशा अपने स्वामी के चरणों का आँसरा चाहता हूँ । मैं उन्हीं की चाकरी करूँगा । चाहे नाथद्वारे जाकर मैं भगवान् के भजन करने में अपनी शेष आयु बिता दूँ, परन्तु अपने मालिक के साथ विद्रोह करके अपना मुँह काला नहीं करूँगा[2]" ।

---

(१) i टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१६ ।
ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी ।

(२) i टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१५—१७ ।
ii स्ट्रेटन : ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ दी कोटा स्टेट ।
iii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी ।

किशोरसिंहजी का रंगबाड़ी से वापिस आना—इस उत्तर से पोलिटिकल एजेन्ट को अपनी कर्त्तव्यरेखा निश्चित करने में कुछ दुविधा हुई, परन्तु अन्त में वह किशोरसिंहजी को लौटा लाने के लिये घोड़े पर सवार होकर रंगबाड़ी पहुँचा। महाराव किशोरसिंहजी उस समय पृथ्वीसिंहजी और गोरधनदास के साथ रंगबाड़ी के अन्दर बैठे हुये अपने साथ के सरदारों से सलाह कर रहे थे कि जालिमसिंह के हाथ से राजसत्ता कैसे छीनी जावे। किशोरसिंहजी के पाँच सौ घुड़ सवार बाग के अहाते के बाहर इधर उधर खड़े हुये थे। पोलिटिकल एजेन्ट अन्दर पहुँचा और उनको समझाया कि इस प्रकार राजधानी छोड़ कर बाहर निकलना और जालिमसिंह के विरुद्ध सेना-संचालन करने का इरादा करना कम्पनी से विरोध करने के बराबर है। गोरधनदास और पृथ्वीसिंहजी से वह बहुत क्रुद्ध हुआ, जिससे वे दोनों इतने उत्तेजित होगये कि तलवारें खींचलीं। वे पोलिटिकल एजेन्ट को मार ही डालते, परन्तु सरदारों ने उनको समझाया और पोलिटिकल एजेन्ट भी अपनी बातचीत में कुछ नरम हुआ[1]। पोलिटिकल एजेन्ट ने कोटानरेश को विश्वास दिलाया कि यदि आप वापिस चलकर गद्दी पर बैठ जावेंगे तो आपके मान और प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आवेगा। साथही यह भी कह दिया कि कम्पनी ने जो शासन-शक्ति जालिमसिंह को दी है, उसमें भी किसी प्रकार की कमी न की जावेगी[2]। यह कह कर पोलिटिकल एजेन्ट ने किशोरसिंहजी का घोड़ा मँगवाया और उनको सवार करवाकर अपने साथ ही लिवा लाया।

महाराव किशोरसिंहजी का राज्याभिषेक—महाराव किशोर-

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

(२) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६१६–१७।

सिंहजी का राजतिलक पहले होचुका था । इसकी सूचना जालिम-सिंह ने पोलिटिकल एजेन्ट को तत्काल ही दे दी थी, परन्तु कम्पनी यह परम्परा डालना चाहती थी कि राज्याभिषेक ब्रिटिश सरकार की आज्ञा से तथा उसके प्रतिनिधि की उपस्थिति में हो । इसलिये कम्पनी के एजेन्ट ने किशोरसिंहजी की वापसी के मौके को अनुकूल समझ कर राज्याभिषेक पुनः धूमधाम से करवाया । उसने स्वयम् अपने हाथ से राजतिलक किया । कोटा नरेश ने उसको एक सौ एक मोहरें दीं । तत्पश्चात् जालिमसिंह ने भी पच्चीस मोहरें उसके नजर कीं । पोलिटिकल एजेन्ट ने कम्पनी की ओर से महाराव किशोरसिंहजी और जालिमसिंह को खिलअतें देकर सत्कृत किया[1] । इसके बाद पोलिटिकल एजेन्ट कुछ अरसे तक कोटे में रहा । प्रत्यक्ष में जालिमसिंह और किशोरसिंहजी में स्नेह-सम्बन्ध पुनः स्थापित होगया । जनता भी समझने लगी कि उत्पात का अन्त होगया और शान्ति स्थापित होगई । नगर में जिधर होकर जालिमसिंह निकलता था, उधर ही लोग उसका अभिनन्दन करते थे । इस प्रकार स्थिति काबू में आजाने के पश्चात् पोलिटिकल एजेन्ट ने प्रस्ताव किया कि गोरधनदास को कोटे से निर्वासित कर दिया जावे । एजेन्ट की धारणा थी कि गोरधनदास स्वार्थवश किशोरसिंहजी को भड़काया करता है । किशोरसिंहजी और गोरधनदास में बड़ी घनिष्ठता थी । गोरधनदास जालिमसिंह की एक मुसलमान उपपत्नी का पुत्र था[2] ।

---

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी ।
ii टॉड : राजस्थान, परसनल नेरेटिव ।

(२) i वंशभास्कर चतुर्थभाग, पृष्ठ ४०२१ ।
ii गोरधनदास की माता का नाम सम्भवतः मन्नीबाई होगा । इस नाम की एक मुसलमान नीलगरनी जालिमसिंह की भोग्य पत्नी थी । इसके माता पिता अरण्डखेड़ा निजामत लाड़पुरा के निवासी थे ।

तो भी किशोरसिंहजी उससे विशेष भेदभाव नहीं करते थे और प्राय: उसकी सलाह पर चलते थे। जब कर्नल टॉड ने यह प्रस्ताव किया कि गोरधनदास को कोटा राज्य से निर्वासित कर दिया जावे तो किशोरसिंहजी को बहुत दु:ख हुआ परन्तु वे विवश थे और अपनी असहाय अवस्था को अनुभव करते थे। उधर जालिमसिंह को भी अपने पुत्र को निर्वासित होतेहुये देख कर अवश्य दु:ख हुआ होगा लेकिन उसने प्रगट यह किया कि "अच्छा है, हाड़ौती का वायु उसकी उपस्थिति से दूषित न हो[1]"।

गोरधनदास का दिल्ली में निवास और झाबुआ आना— गोरधनदास से यह कहा गया कि तुम दिल्ली या प्रयाग जहाँ चाहो, रह सकते हो। दिल्ली कोटे से निकट है, इसलिये उसने दिल्ली में ही रहना पसन्द किया। उसके निर्वाह के लिये पर्याप्त पेन्शन करदी गई और अँग्रेजी रिसाले के सवार उसकी अर्दली में रहने लगे। घूमने फिरने की भी उसको काफी स्वतन्त्रता दी गई। बहुत अरसे तक गोरधनदास दिल्ली में रहा। फिर उसने झाबुआ के राजकुमार के विवाह में सम्मिलित होने की आज्ञा माँगी जो स्वीकृत होगई। गोरधनदास का झाबुवे में पहुँचना था कि कोटे में अनेक प्रकार की अफवाहें फैलने लगीं। महाराव किशोरसिंहजी और उनके साथियों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की अभिलाषा पुन: जागृत हो उठी[2]।

जालिमसिंह की खवास बन जाने के पश्चात् उसने अपनी जन्मभूमि में एक कुण्ड बनवाया था जिस पर उसके नाम का एक शिलालेख खुदा हुआ है।

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६२०–२१।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ६२२–२३।

महाराव किशोरसिंहजी बूँदी पहुँचे—महाराव किशोरसिंहजी गुप्तरूप से गोरधनदास के साथ पत्रव्यवहार किया करते थे। गोरधनदास भी निराश होकर नहीं बैठा हुआ था। वह अनुकूल अवसर की निरन्तर प्रतीक्षा में था। झाबुआ आने में उसका उद्देश्य मुख्यतः विवाह में सम्मिलित होना नहीं था, बल्कि एक बार फिर उसके पिता और भाई के विरुद्ध युद्ध करना था। जब इस विषय की चर्चा कोटे में चलने लगी तो जालिमसिंह ने गढ़ के चारों ओर कड़ा प्रबन्ध कर दिया और महाराव किशोरसिंहजी से लोगों का मिलना जुलना बन्द कर दिया। इतने पर भी जैसे तैसे किशोरसिंहजी अपना प्रयत्न करते ही रहे। जालिमसिंह के घोर प्रयत्न से भी किशोरसिंहजी का पक्ष बलशून्य नहीं होसका। तब एजेण्ट की सलाह से जालिमसिंह ने उन लोगों को गिरफ्तार करना चाहा जो कोटा नरेश के मुख्य सलाहकार समझे जाते थे। इस स्थिति को देख कर उधर किशोरसिंहजी और उनके साथी मरने मारने को तैयार होगये। सेना सब जालिमसिंह के पुत्र माधोसिंह के अधिकार में थी। जब गोलाबारी शुरू होने ही वाली थी तो सेफअली नामक एक सैनिक अफसर अपने साथ काफी सेना लेकर महाराव किशोरसिंहजी से आ मिला[१]। जालिमसिंह ने शहर के दरवाजे बन्द करवा दिये और सूरजपोल के कोट की तोपें गढ़ की ओर फेर दीं। सायंकाल से मध्य रात्रि तक निरन्तर तोपें गोले बरसाती रहीं, जिससे स्थिति ने अत्यन्त विषम रूप धारण कर लिया। जब किशोरसिंहजी ने देखा कि आत्मरक्षा करना असम्भव है तो गढ़ के गुप्तमार्ग से मध्यरात्रि के बाद नाव में बैठकर नदी पार की और बूँदी की ओर रवाना हो गये।

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ४०२१।
ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
iii टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६२४।

जालिमसिंह ने राजगद्दी पर किशोरसिंहजी की खड़ाऊँ स्थापित कीं—किशोरसिंहजी के साथ पृथ्वीसिंहजी, कुँवर रामसिंहजी, मीर सेफअली तथा अन्य कितने ही नौकर चाकर थे। प्रातः काल होते होते ये सब बूँदी जा पहुँचे[1]। जालिमसिंह उस समय नगर से बाहर डेरे में रहा करता था। जब उसने यह खबर सुनी तो गढ़ में आया, जो आदमी वहाँ मिले उनके शस्त्र छिनवाये, भण्डारों का और अन्तःपुर का यथोचित प्रबन्ध किया और सब जगह अपने आदमी नियत किये। इसके अनन्तर जालिमसिंह ने किशोरसिंहजी के पैरों की खड़ाऊँ मँगवाई, उनको आदरपूर्वक गद्दी पर रक्खा, गम्भीरतापूर्वक उनको नमस्कार किया और कहा कि मेरे स्वामी को बदमाश बहका कर लेगये हैं, अतः अब उनके वापिस पधारने तक उनकी खड़ाऊँ राज्य करेंगी। किशोरसिंहजी से छोटे भाई विष्णुसिंहजी जालिमसिंह से मिले हुये थे ही। इनको साथ लेकर जालिमसिंह बाहर डेरे में चला गया[2]।

बूँदी में किशोरसिंहजी का स्वागत—बूँदी नरेश राव राजा विष्णुसिंहजी हाथी, घोड़े, पालकी और सेना साथ लेकर राजधानी से दो कोस के फासिले पर किशोरसिंहजी का स्वागत करने के लिये आये। आदर सत्कार के साथ उनको बूँदी लेगये और सम्मानपूर्वक अपने पास ठहराया और आश्वासन दिया[3]।

कर्नल टॉड की चालें—कर्नल टॉड ने बूँदी नरेश को पत्र लिखा कि महाराव किशोरसिंहजी को बूँदी में अतिथि की भाँति रक्खा

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग पृष्ठ ४०२०–२३।
(२) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ४१००।
(३) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ४०२४।

जा सकता है और पारस्परिक शिष्टता तथा स्नेह के अनुरूप व्यवहार भी किया जासकता है, परन्तु इस बात का स्मरण रक्खा जावे कि वहाँ रह कर वे सेना एकत्र न करने पावें। उधर नीमच की अँग्रेजी सेना के अफसर को भी लिखा गया कि बूँदी और झाबुवे के बीच का रास्ता रोक दिया जावे जिससे गोरधनदास और महाराव किशोरसिंहजी की सेनायें परस्पर न मिल सकें। गोरधनदास पक्का सैनिक था और बूँदी तथा झाबुवे के बीच के मार्ग के कंकर कंकर से परिचित था। उस समय अँग्रेजों का भौगोलिक ज्ञान संकुचित और त्रुटियुक्त था। अतः गोरधनदास अँग्रेजी सेना से बचता हुआ बूँदी आ पहुँचा, परन्तु जब उसने देखा कि बूँदी नरेश सहायता करने को तैयार नहीं हैं तो वह मारवाड़ की ओर रवाना होगया और जब अँग्रेजों के कारण उसको वहाँ भी आश्रय नहीं मिल सका तो वापिस दिल्ली पहुँच गया। वहाँ उस पर अब और अधिक निगरानी रहने लगी[1]।

बूँदी छोड़ कर किशोरसिंहजी भरतपुर और दिल्ली पहुँचे– कम्पनी के एजेन्ट और जालिमसिंह ने अब बूँदी नरेश के नाम खरीते भेजे कि महाराव किशोरसिंहजी का बूँदी में रहना वांछनीय नहीं है और यदि बूँदी नरेश इस विषय में आग्रह करेंगे तो इसमें उनका हित नहीं है। यह स्थिति देख कर महाराव किशोरसिंहजी बृन्दावन की ओर रवाना होगये और वहाँ पर अपने दिन बिताने लगे। जब बूँदी से रवाना हुये तो कुछ फासिले पर अँग्रेजी सेना भी साथ साथ चली और यह देखती रही कि कहीं जालिमसिंह से लड़ने के लिये सेना तो एकत्र नहीं की जाती है। मार्ग में सब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया, परन्तु भरतपुर नरेश ने अपनी सीमा पर उनके लिये केवल सत्कार भेज दिया और कहला भेजा कि मैं अस्वस्थ और नेत्र-

(१) टॉड : राजस्थान भाग २ पृष्ठ ६२२।

हीनता के कारण स्वयम् उपस्थित होने में असमर्थ हूँ। इससे किशोरसिंहजी को बहुत रंज हुआ और उन्होंने सत्कार अस्वीकार कर दिया। यह सुन कर भरतपुर नरेश बहुत क्रुद्ध हुये और उनको अपने राज्य में नहीं घुसने दिया। कुछ दिन बृन्दावन रह कर किशोरसिंहजी दिल्ली पहुँचे। वहाँ रेजीडेन्ट से मुलाकात की। उसके पास पहिले ही कर्नल टॉड का पत्र पहुँच चुका था। उसने किशोरसिंहजी को बहुत समझाया। महाराव किशोरसिंहजी इस पर राजी नहीं हुये कि वास्तविक शासन माधोसिंह के हाथ में रहे और वे स्वयम् नाम मात्र के राजा बने रहें। रेजीडेन्ट भी इस बात पर सहमत नहीं हुआ कि गुप्त सन्धि में किसी प्रकार का हेर फेर किया जावे।

युद्ध के लिये तैयारी—किशोरसिंहजी ने आखिर यह निश्चय किया कि जालिमसिंह के हाथ से शासन सूत्र छीनने के लिये एक बार पुनः प्रयत्न किया जावे। इस उद्देश्य से वे कोटे की ओर रवाना हुये। गोरधनदास के प्रयत्न से रेजीडेन्सी का खजानची और मीर मुंशी कोटा नरेश के पक्ष में होगये। जब महाराव किशोरसिंहजी ने कोटे के लिये प्रयाण किया तो इनके खर्च का प्रबन्ध करने के लिये और शायद यह देखते रहने के लिये कि इनका साथ कौन कौन देता है, रेजीडेन्ट ने इस खजानची को उनके साथ कर दिया[1]। मार्ग में किशोरसिंहजी यह घोषित करते आये कि उनको कम्पनी सरकार से कोई विरोध नहीं है और कम्पनी की आज्ञा से ही वे अपना राज्य पुनः प्राप्त करने के लिये कोटा जारहे हैं। कम्पनी का खजानची उनके साथ होने से लोगों को इस बात पर विश्वास भी हुआ और सब उनके साथ सहानुभूति करने लगे[2]। महाराव किशोरसिंहजी सन् १८२१ के वर्षाकाल में कोटे

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
(२) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६२३।

की सीमा पर पहुँचे। जिस समय उन्होंने चम्बल पार की, तो उनके पास तीन हजार सैनिक एकत्र हो चुके थे। कोटा राज्य में घुसने के पश्चात् उन्होंने समस्त हाड़ा राजपूतों के नाम परवाने भेजे कि जो हाड़ा वंश का हो, वह हमारी मदद करे और जो झाला हो, वह झाला का पक्ष ग्रहण करे। हाड़ा राजपूत और जागीरदार सब जालिमसिंह के शासन से असन्तुष्ट थे। ये लोग उसके शासन को राजनैतिक अतिक्रमण समझते थे और सब उत्सुकता के साथ चाहते थे कि किशोरसिंहजी गद्दी पर बैठ कर शासन सूत्र अपने हाथ में लें, जिससे उनके दुःख का निवारण हो। इस आह्वान को सुन कर सब हाड़ा सरदार महाराव किशोरसिंहजी के पक्ष में लड़ने के लिये उनके झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। वास्तव में यह अवसर हाड़ों के इतिहास में अपूर्व था। किशोरसिंहजी के पास न राज था और न राजशक्ति। उधर जालिमसिंह के पास राजबल और सैन्यबल के अतिरिक्त कम्पनी का बल भी था। इतना होते हुये भी हाड़ा राजपूतों ने अपूर्व स्वामिभक्ति का परिचय दिया। उस अवसर पर ऐसा कोई हाड़ा जागीरदार, माफीदार या सरदार न था जिसने किशोरसिंहजी का पक्ष ग्रहण न किया हो। इतना ही नहीं, कोटा राज्य में प्रवेश करने से पहिले बूँदी के भाई गोठड़े के महाराजा बलवन्तसिंहजी भी सौ घुड़ सवारों के साथ किशोरसिंहजी की सेना में आ सम्मिलित हुये थे।

कम्पनी ने जालिमसिंह को सहायता दी—जब ज़ालिमसिंह को मालूम हुआ कि सब हाड़ा सरदार किशोरसिंहजी से जा मिले तो उसने पोलीटिकल एजेण्ट से सलाह की और सैनिक सहायता माँगी। नीमच से कम्पनी सरकार की दो पल्टनें, नौ रिसाले और एक तोपखाना आया। इसमें लेफ्टिनेन्ट मिलन, लेफ्टिनेन्ट क्लार्क, लेफ्टिनेन्ट कर्नल रिज तथा कर्नल टॉड थे। जालिमसिंह की निजी आठ पल्टनें, चौदह रिसाले

और तेईस तोपें थीं[1]। दोनों सेनायें संयुक्त कीगईं और महाराव किशोरसिंहजी को रोकने के लिये आगे बढ़ीं। उधर महाराव किशोरसिंहजी चम्बल पार करके तथा कालीसिंध उतर कर माँगरौल की तरफ बढ़ते आरहे थे। उद्देश्य यह था कि हाड़ौती के अन्दर घुस कर सेना और अधिक इकट्ठी की जाय, और तब कोटे पर हमला किया जावे। जालिम-सिंह और कम्पनी की सेना की कूँच के कारण महाराव किशोरसिंहजी की सेना आगे न बढ़ सकी और माँगरौल के पास ही ठिठक गई।

समझौते की बातचीत—जब दोनों सेनायें आमने सामने आगईं तो लड़ाई आरम्भ होने से पहिले पोलीटिकल एजेण्ट और एक अँग्रेज अफसर दरबार को समझाने के लिये उनके डेरे पर गये। एजेण्ट ने कोटा नरेश से कहा कि आपको अपनी पैतृक गादी पर सम्मानपूर्वक बिठाया जा सकता है। परन्तु महाराव किशोरसिंहजी ने इस बात को नहीं माना और पुनः उन शर्तों को दुहराया जो उन्होंने आश्विन कृष्णा ५, सम्वत् १८७८ को कर्नल टॉड को लिख भेजी थीं[2]। इस पत्र का सारांश यह था कि जालिमसिंह के फौजदार बने रहने पर दरबार को कोई आपत्ति नहीं है। जैसे उन्होंने महाराव उम्मेद-सिंहजी की सेवा की थी, उसी प्रकार वे अब भी सेवा कर सकते हैं, और शासन का संचालन कर सकते हैं, परन्तु माधोसिंह में और दर-बार में वैमनस्य है और दरबार को माधोसिंह पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। इसलिये दोनों की आपस में कभी नहीं बन सकती। अतः उसके निर्वाह के लिये जागीर दे दी जावे और कोटे से दूर रक्खा जावे। माधोसिंह का लड़का बापूलाल दरबार के पास रहेगा और राज की उसी भाँति चाकरी करेगा जैसे प्रायः राजमन्त्री किया करते हैं।

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

(२) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६२४।

अर्थात् दरबार स्वामी रहेंगे और बापूलाल सेवक। बृटिश सरकार को या अन्य रियासतों को जो पत्र भेजे जावेंगे, वे दरबार की सम्मति से भेजे जावेंगे। सेना दरबार के अधिकार में रहेगी और किलों के हाकिम भी दरबार द्वारा ही नियुक्त हुआ करेंगे।

विफल हुई—उपरोक्त शर्तों को मानने के लिये पोलीटिकल एजेण्ट तैयार नहीं हुआ। कम्पनी सरकार अपनी गुप्त सन्धि के अनुकूल जालिमसिंह को वास्तविक और महाराव को नामधारी शासक बनाने पर तुली हुई थी। एजेन्ट करता भी क्या? वह किशोरसिंहजी से विदा होकर वापिस आया और यह कह आया कि आधे घण्टे तक प्रतीक्षा की जावेगी और दरबार का सन्तोषजनक उत्तर न आने पर लड़ाई आरम्भ करदी जावेगी। जालिमसिंह के मन की बात का अब भी पता नहीं चलता था। वह अब भी यही कहता था कि बदमाशों ने मेरे स्वामी को बहका रक्खा है और मेरा मुँह काला होने वाला है। महाराव के पक्ष में विपुल सेना देख कर भी वह दंग था और कहता था कि मेरे बदन के कपड़े भी मुझसे विश्वासघात कर रहे हैं[1]।

युद्ध आरम्भ हुआ—(आश्विन शुक्ला ५, सम्वत् १८७८) जब आध घण्टे तक महाराव किशोरसिंहजी ने अपना रुख नहीं बदला तो लड़ाई आरम्भ हुई। जालिमसिंह की सेना तीन भागों में विभक्त थी। पाँच पल्टनें, चौदह तोपें और दस रिसाले आगे की तरफ थे, उनके बाईं तरफ कम्पनी की दो पल्टनें, नौ रिसाले और तोपखाने का रिसाला था। दोनों से लगभग पाँच सौ गज पीछे तीन पल्टनें, अठारह तोपें और चार रिसालों के साथ जालिमसिंह था। लेफ्टिनेन्ट कर्नल रिज सम्पूर्ण सेना का नायक था। कर्नल टॉड जालिमसिंह के मोर्चों से बायीं तरफ जमा हुआ था। उधर किशोरसिंहजी के पास भी आठ हजार घुड़ सवार

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ट ६२५।

थे, परन्तु तोपखाना नहीं था। एक विस्तृत मैदान में जालिम-सिंह की सेना बढ़ती जाती थी। कुछ आगे जाकर एक छोटी नदी के पास जमीन ढालू होती थी और फिर कुछ आगे चढ़ाई आती थी। महाराव किशोरसिंहजी की सेना इस उँचाई पर जमी हुई थी। कुछ दूर उनके डेरे लगे हुये थे। पठान सेफअली बाईं ओर था और कोटा नरेश के आगे दूसरे सैनिक थे, जिनको खेत छोड़ कर भाग-ने का मौका नहीं था। संयुक्त सेना आगे बढ़ती जाती थी, परन्तु महाराव किशोरसिंहजी शान्त और चुपचाप डटे हुये थे। अन्त में दोंनों पक्ष की सेनाओं के मध्य में लगभग दो सौ गज का अन्तर रह गया। संकेत दिये जाने पर सर्व प्रथम जालिमसिंह की तोपें दगीं और उसके बाद कम्पनी की घुड़तोपों का फायर शुरू हुआ। हाड़ा वीर उस साहस और वीरत्व के साथ लड़े जो लगभग एक सौ पिचहत्तर वर्ष पूर्व फतेहाबाद और धौलपुर के रणक्षेत्र में देखा गया था। उन्मत्त होकर वे आगे बढ़ते गये। भीषण अग्नि वर्षा की परवाह न करके तोपों के मुँह तक पहुँच गये। यदि उस समय कम्पनी का रिसाला आगे न बढ़ता तो बाईं पंक्ति को चीर कर हाड़ा लोग जालिमसिंह तक बढ़ जाते। उसी क्षण कम्पनी का रिसाला आगे बढ़ा, जिसके कारण हाड़ा राज-पूतों को पीछा हटना पड़ा। महाराव किशोरसिंहजी चार सौ सवारों के साथ लगभग आधा मील पीछे हट गये। उनके अन्य सैनिक इधर उधर तित्तर वित्तर होगये। इस दृश्य को कर्नल टॉड दूर खड़ा देख रहा था। अँग्रेजी सेना ने उस छोटे से नाले को पार किया और पैदल पल्टन चक्कर काट कर आगे बढ़ाई ताकि महाराव किशोरसिंहजी की सेना पीछे न हट सके और दो रिसालों ने महाराव किशोरसिंहजी पर हमला किया। रिसाला आगे बढ़ता जाता था और किशोरसिंहजी अपने

घुड़सवारों के साथ शान्त तथा निश्चल डटे हुये थे। हर एक रिसाले का अफसर अँग्रेज था। दीवार की भाँति हाड़ा वीरों को खड़े देखकर अँग्रेज अफसर दंग रहगये। इन लोगों ने अब तक लुटेरे और पिंडारियों का सामना किया था जो संगठित सेना को देखते ही खेत छोड़ भाग जाया करते थे। राजपूतों से लड़ने का इनके लिये यह प्रथम अवसर था।

दो अँग्रेज अफसर मारे गये—ज्यों ही रिसाले आगे बढ़े तो कोयले के आप राजसिंहजी और गैंते के दो कुँवर बलभद्रसिंहजी तथा सालमसिंहजी, उनके काका दयानाथजी, हरीगढ़ के महाराजा अमरसिंहजी और उनके छोटे भाई दुर्जनशालजी आदि सरदार अपने घुड़सवारों के साथ बिजली के वेग से आगे लपके और अँग्रेजी तोपखाने पर आक्रमण किया। तोपों तक घोड़े पहुँच गये और घमासान युद्ध हुआ। कुँवर बलभद्रसिंहजी और आप राजसिंहजी के वारों से लेफ्टिनेन्ट क्लार्क और लेफ्टिनेन्ट रीड दोनों मारे गये और लेफ्टिनेन्ट कर्नल रिज मरता मरता बचा जिस पर सब को अचम्भा हुआ[1]।

पृथ्वीसिंहजी आहत हुये—इतने में ही तोपखाने का रिसाला अधिक वेग से फायर करने लगा। महाराव किशोरसिंहजी पीछे हटे और एक मक्का के खेत की आड़ ली। पृथ्वीसिंहजी को इस प्रकार हटना पसन्द नहीं आया। पच्चीस सवारों के साथ वे वापिस शत्रु पर आक्रमण करने के लिये मुड़े और आहत होकर जमीन पर गिर पड़े। मक्का के खेत में इस अवस्था में पड़े हुये पृथ्वीसिंहजी कप्तान स्कीनर के एक घुड़सवार को मिले। वह उनको डोली में रख कर

---

(१) i टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ट ६२८।

ii दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

जालिमसिंह के डेरे में लाया। यथाशक्य उनका औषधोपचार किया गया, परन्तु दूसरे दिन उनका देहान्त होगया।

उनके देहान्त में जालिमसिंह का हाथ—माँगरौल के आस पास ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि जालिमसिंह ने शोपुर निवासी एक जर्राह के द्वारा पृथ्वीसिंहजी के घावों पर विष की पट्टी चढ़वा दी थी जिसके कारण उनका देहान्त हुआ। जालिमसिंह ने गुमानसिंहजी के साथ ऐसा व्यवहार किया था। इसलिये इस किंवदन्ती को भी ऐतिहासिक सत्य मानने में विशेष आपत्ति तो नहीं है, परन्तु कर्नल टॉड स्वयम् सेना-शिविर में उपस्थित था और उसी का लिखना है कि औषधोपचार यथावत् किया गया था। सम्भव है कि स्वयम् कर्नल टॉड भी जालिमसिंह की कपट-नीति को न समझ सका हो। विशेष कर इसलिये कि टॉड को उस समय भारतीय उपचार-विधि का ज्ञान ही क्या हो सकता था? पृथ्वीसिंहजी ने शरीर छोड़ते समय अपना खंजर और मोतियों की माला पोलीटिकल एजेण्ट को दी और उससे कहा कि मेरे पुत्र की याद रखना।

किशोरसिंहजी हारकर नाथद्वारे चले गये—महाराव किशोरसिंहजी और उनकी सेना ने एक ज्वार के खेत में घुस कर आत्म-रक्षा की। विपक्ष के बल को देखते हुये किशोरसिंहजी का पराजय भी विजय की भाँति प्रशंसनीय था। इस अवसर पर हाड़ा वीरों के अप्रतिम साहस का प्रदर्शन देखकर केप्टन मिलन और कर्नल टॉड भी चकित होगये[1]। महाराव किशोरसिंहजी पारवती नदी को पार करके बड़ौदे पहुँचे। यहाँ पर उन्होंने अपने वीर हाड़ा भाइयों से विदा माँगी। इन सब की इस समय शोचनीय दशा थी। महाराव किशोर-

---

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६३०।

सिंहजी के पास इनके निर्वाह के लिये धन नहीं था और वापिस घर लौटने में इनको जालिमसिंह के बदले का भय था। इसके अतिरिक्त अपने स्वामी का संकटाकुल भविष्य इनको और दुखी कर रहा था। महाराव किशोरसिंहजी ने सब सरदारों को विदा किया और स्वयम् नाथद्वारे की ओर रवाना हुये[1]।

पराजित सरदारों के साथ कम्पनी का सद्व्यवहार—वापिस आये हुये सरदारों के साथ पोलिटिकल एजेन्ट ने जालिमसिंह को दुर्व्यवहार नहीं करने दिया और माँगरौल के युद्ध का किसी से बदला नहीं लिया गया, और सब को शान्तिपूर्वक अपनी अपनी जागीरों में जाने दिया। फिर भी माँगरौल के पराजय से सब हाड़ा सरदार त्रस्त और क्षुब्ध होगये और कर्नल टॉड के पास सैकड़ों ऐसे पत्र आये जिनमें महाराव किशोरसिंहजी का पक्ष ग्रहण करने के लिये क्षमा माँगी गई। इन पत्रों में एक पत्र ठिकाने बमूल्या की माँ साहिबा का था, जिसमें लिखा था कि मेरे पुत्र ने अपने स्वामी का पक्ष ग्रहण करके धर्म का पालन किया है। अब उसका वीरोचित सम्मान किया जाय और पिछली बात को क्षमा किया जाकर उसका ठिकाना उसको वापिस दिया जावे। कर्नल टॉड ने इसका उत्तर दिया कि पत्र का उत्तर और आपके पुत्र साथ साथ ही आपके पास पहुँच रहे हैं। कर्नल टॉड बाराँ जाते समय एक बार बमूल्ये में आतिथ्य-सत्कार प्राप्त कर चुका था[2]। इसलिये ऐसा पत्र भेजने में उसको विशेष प्रसन्नता हुई।

रामसिंहजी किशोरसिंहजी के साथ रहे—पारवती नदी को पार करते समय महाराव किशोरसिंहजी का घोड़ा जिसके माँगरौल के

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ट ४१००–२।
(२) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ट ६३२।

युद्ध में कई गोलियाँ लग चुकी थीं, मर गया। तब दुर्जनशाल चन्द्रावत के घोड़े पर सवार होकर वे आगे बढ़े। इस विपत्ति में महाराजा पृथ्वीसिंहजी के पुत्र रामसिंहजी उनके साथ थे। किशोरसिंहजी उनसे बहुत स्नेह करते थे। किशोरसिंहजी ने पाँच विवाह किये थे। पहिला करौली नरेश राजा माणिकपालजी की पुत्री के साथ, दूसरा हरीगढ़ के महाराजा महतावसिंहजी की पुत्री से, तीसरा डोले की विधि से एक भाटी कन्या से, चौथा देवगढ़ के रावत नाहरसिंहजी की लड़की से और पाँचवाँ महाराणा उदयपुर के भाई सोरती के महाराजा सूरजमलजी की पुत्री से। इन पाँच पत्नियों में से केवल देवगढ़ वाले चूँड़ावतजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। परन्तु वह चार वर्ष का होकर मर गया। इस घटना के बाद महाराव किशोरसिंहजी कुँवर रामसिंहजी से और अधिक प्रेम करने लगे और सर्वत्र यह चर्चा होने लगी कि रामसिंहजी ही युवराज बनाये जाँयगे। रामसिंहजी ने भी दरबार के प्रेम को खूब निभाया। उल्लास और उमंग के समय में तो वे किशोरसिंहजी के प्रेमपात्र थे ही, अब माँगरौल के पराजय के बाद भी वे किशोरसिंहजी के साथ रहे।

पृथ्वीसिंहजी का श्राद्ध—किशोरसिंहजी तीन सौ आदमियों के साथ बड़ौदे से रवाना हुये। जयपुर राज्यान्तर्गत कुसतला नामक ग्राम में पहुँच कर उन्होंने अपने भाई महाराजा पृथ्वीसिंहजी का क्रियाकर्म किया और वहीं उनका द्वादशा किया। इसके अनन्तर वे नाथद्वारे पहुँचे। वहाँ उनसे मिलने के लिये उदयपुर नरेश महाराणा भीमसिंहजी आये[1]।

मेवाड़ के महाराणा मध्यस्थ बने—महाराणा भीमसिंहजी

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

का विवाह महाराव उम्मेदसिंहजी की पुत्री से हुआ था और उनके कुँवर अमरसिंहजी का विवाह महाराजा विष्णुसिंहजी की पुत्री से हुआ था और महाराणा के छोटे लड़के जवानसिंहजी को इन्द्रगढ़ के महाराजा शिवदानसिंहजी की बहिन ब्याही गई थी[1]। यही कारण था कि महाराणा को महाराव किशोरसिंहजी की विपत्ति में उनके साथ सहानुभूति थी। महाराणा उदयपुर कम्पनी सरकार और महाराव किशोरसिंहजी में समझौता कराने के लिये मध्यस्थ की हैसियत से इधर महाराव किशोरसिंहजी से बातचीत करते थे और उधर कर्नल टॉड तथा जालिमसिंह से पत्रव्यवहार करते थे।

जालिमसिंह का नाटक—जालिमसिंह ने माँगरौल की विजय के पश्चात् फिर वही नाटक रचा, जो पहिले रच रक्खा था। उसने राजगद्दी पर महाराव किशोरसिंहजी की खड़ाऊँ पूर्ववत् रहने दीं और स्वयम् फौजदार की हैसियत से कोटे का शासन करता रहा। महाराजा विष्णुसिंहजी जो पहिले ही स्वार्थवश जालिमसिंह से मिले हुये थे, अब उसके और भी अधिक प्रेमपात्र बन गये।

महाराव किशोरसिंहजी और कम्पनी में सन्धि—महाराव किशोरसिंहजी नाथद्वारे में रह कर भगवद्भजन में अपने दिन बिताने लगे। इधर महाराणा भीमसिंहजी और जालिमसिंह तथा कम्पनी के बीच जो पत्रव्यवहार हो रहा था, वह सन्तोषप्रद रूप धारण करने लगा। लोकमत अधिकतर कोटा नरेश के पक्ष में था। महाराणा उदयपुर उनके पक्ष में थे, स्वयम् कम्पनी इस स्थिति को सुधारने के लिये चिन्तित थी। साथ ही महाराव किशोरसिंहजी भी समझ गये कि शस्त्रबल से वे जालिमसिंह का मुकाबला कर सकते हैं, कम्पनी का नहीं।

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ४०२०।

इसलिये पूर्ण स्वातन्त्रय के लिये उनका आग्रह भी शनैः शनैः शिथिल होने लगा। माँगरौल का युद्ध आश्विन शुक्ला पंचमी सम्वत् १८७८ को हुआ था। श्रावण कृष्णा तृतीया सम्वत् १८७९ को नाथद्वारे में महाराव किशोरसिंहजी और कुँवर माधोसिंह तथा कम्पनी के प्रतिनिधि कर्नल टॉड के बीच एक सन्धि हुई। इस प्रकार माँगरौल की लड़ाई के बाद लगभग नौ महीने तक महाराव किशोरसिंहजी नाथद्वारे में रहे। इस सन्धि के अनुकूल निम्नलिखित शर्तें निश्चित हुईं :—

"कुँवर माधोसिंह झाला कोटे का फौजदार रहेगा और राज्य शासन सम्पूर्ण उसके हाथ में रहेगा। पुण्य, इनाम, त्यौहार और सैनिक जुलूसों का प्रबन्ध कोटा नरेश के सुपुर्द होगा। छत्र, चँवर आदि राज चिन्ह किले में रहेंगे। वहीं नक्कारखाना रहेगा। सवारी में राज्य का सम्पूर्ण लवाजमा दरबार के साथ रहेगा। इनाम वगैरह जो वितरण किया जावेगा, वह कोटा नरेश की तरफ से होगा। नगर के भीतर के तथा बाहर के सब राज महलों पर कोटा नरेश का अधिकार होगा और उनकी रक्षा तथा मरम्मत के लिये पर्याप्त रुपया दिया जावेगा। बाग, हाँके और साथ के सरदारों पर नरेश का शासन होगा। महाराजा पृथ्वी-सिंहजी के पुत्र रामसिंहजी के निर्वाह के लिये उचित प्रबन्ध होगा और विष्णुसिंहजी जिन पर दरबार का विश्वास नहीं है, अन्त में रहेंगे। महाराव किशोरसिंहजी के व्यक्तिगत तथा अन्तःपुर के खर्च के लिये उतना रुपया निश्चित किया जावेगा जितना महाराणा उदयपुर खर्च किया करते हैं[1]"।

एक बनिये का उत्पात—इस सन्धि के बाद महाराव किशोर-

(१) i दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
ii टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६३४।

सिंहजी कोटे वापिस आने के लिये तैयार होगये, परन्तु उनको अब भी यह भय था कि कहीं उनके साथ विश्वासघात न हो जाये। अतः वे पोलिटिकल एजेण्ट से यह प्रतिज्ञा करवाना चाहते थे कि उनकी जान पर कोई वार न होगा और उनकी रक्षा के लिये कम्पनी जिम्मेवार होगी। उनको इस विषय में आश्वासन दे दिया गया, परन्तु इसी समय एक अजीब घटना हुई जिसके कारण वे वापिस आते आते रुक गये। जयपुर का एक बनिया जिसको जयपुर राज्य से निर्वासित कर दिया था और जिसकी आकृति किशोरसिंहजी के छोटे भाई विष्णुसिंहजी से मिलती जुलती थी, कुछ आदमियों को साथ लेकर नाथद्वारे की ओर यह घोषणा करता हुआ बढ़ने लगा कि मैं किशोरसिंहजी को मारकर कोटे की राजगद्दी प्राप्त करने के हेतु अपना मार्ग निष्कण्टक बनाना चाहता हूँ। यह बनिया दुस्साहसपूर्वक बढ़ता ही चला गया। उसकी आकृति विष्णुसिंहजी से मिलती जुलती थी। इसलिये महाराव किशोरसिंहजी को इस बात की सच्चाई पर विश्वास होगया। जब यह खबर महाराणा उदयपुर को मिली तो उनको यह आशंका हुई कि कहीं उनके किये हुये सब प्रयत्न पर पानी न फिर जाय। इसलिये उन्होंने उस बनिये को गिरफ्तार करवाया और नाथद्वारे बुलवाया। तदनन्तर महाराव किशोरसिंहजी को विश्वास दिला कर उसको फाँसी पर लटकवाया[1]।

किशोरसिंहजी और माधोसिंह में मेल—अब महाराव किशोरसिंहजी ने कोटा वापिस आने की तैयारी की। पौष कृष्णा ९, सम्वत् १८७९ को जब ये कोटे के निकट पहुँचे तो नगर से चार मील दूरी पर पोलिटिकल एजेण्ट और जालिमसिंह ने उनका स्वागत किया। उस समय जो नगर में खुशियाँ मनाई गईं उनसे सिद्ध होगया था

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ट ६३३–३४।

कि कोटे की जनता महाराव किशोरसिंहजी को कितना चाहती थी? बड़ी धूमधाम के साथ उनको पुनः गद्दी पर बिठाया गया। जालिमसिंह ने आदरपूर्वक पच्चीस मोहरें नजर कीं और पुनः कोटा राज्य का शासन पूर्ववत् होने लगा। पोलिटिकल एजेण्ट इसके बाद एक महीने तक कोटे में रहा और किशोरसिंहजी तथा माधोसिंह में परस्पर शान्ति स्थापित करने का उद्योग करता रहा। उसके प्रयत्न से एक दिन माधोसिंह और किशोरसिंहजी खुले दिल से मिले। किशोरसिंहजी ने माधोसिंह का आलिङ्गन किया और विगत बातों पर पश्चाताप प्रगट किया। जालिमसिंह यह देख कर फूला न समाया। उसने बारम्बार अपने कुकृत्यों के लिये अपने को धिक्कारा और अपने लड़के माधोसिंह से कहा कि यह तेरे पापों का फल है कि मुझे इतनी लज्जा उठानी पड़ी और मेरे स्वामी को इतना कष्ट हुआ।

जालिमसिंह का राज्य में दौरा—जब राज्य का शासन पूर्णरूप से माधोसिंह के हाथ में आगया तो जालिमसिंह पुनः छावनी में रहने लगा। फिर उसने तमाम राज्य में दौरा किया। जब महाराव किशोरसिंहजी कोटे से बाहर थे तो जालिमसिंह का शासन बहुत अप्रिय होगया था और सर्वत्र क्षोभ और त्रास दिखाई देता था। अब दौरा करके उसने दरबार की वापसी घोषित की और सर्वत्र शान्ति स्थापित करदी[1]। जालिमसिंह इस समय जीर्ण, शीर्ण और नेत्रहीन लगभग पिच्चासी वर्ष का वृद्ध था, परन्तु फिर भी उसकी तृष्णा शिथिल नहीं होने पाई थी।

जालिमसिंह और किशोरसिंहजी का देहान्त—महाराव किशोरसिंहजी के वापिस आने के बाद जालिमसिंह अधिक अरसे तक जीवित नहीं रहा और सम्वत् १८८० में उसका देहान्त होगया।

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ६३५–३६।

उसके बाद उसका पुत्र माधोसिंह महाराव किशोरसिंहजी की सन्तोषप्रद रूप से सेवा करता रहा। महाराव किशोरसिंहजी भी अधिक दिन तक राजसुख नहीं भोग सके। आषाढ़ शुक्ला ८, सम्वत् १८८४ के दिन उनका देहान्त होगया[1]। उन्होंने केवल सात वर्ष राज्य किया, जिसमें लगभग दो वर्ष निरन्तर झगड़े और विपत्ति में बीते और शेष विफल आकांक्षामय प्रतीक्षा में।

किशोरसिंहजी का चरित्र—किशोरसिंहजी स्वाभिमानी पुरुष थे, वीर योद्धा थे और ईश्वरभक्त थे। यदि चाहते तो अपने पिता उम्मेदसिंहजी की भाँति वे भी जालिमसिंह और उसके पुत्र माधोसिंह के अधिकार को स्वीकार करते हुये नाममात्र के नरेश कहला कर सुख भोग करते रहते परन्तु उनको यह स्थिति सहन नहीं हुई। वे केवल राजा कहलाने से सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे, वे वास्तव में राज्य करना चाहते थे। यह जानते हुये भी कि सम्पूर्ण शक्ति, सैन्यबल तथा राज-कोष जालिमसिंह के हाथ में है, और इस बात को भी अनुभव करते हुये कि जालिमसिंह की पीठ पर परम शक्तिशालिनी बृटिश सरकार है, उन्होंने सच्चे क्षत्रिय की भाँति विपक्ष बल की चिन्ता नहीं की और केवल यह समझ कर कि राजपूत को अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिये प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिये, अपने इने गिने स्वामिभक्त अनुयायियों के साथ राजप्रासाद छोड़कर रंगबाड़ी चले गये और सैन्यबल एकत्र करने का विचार करने लगे। जब कम्पनी के एजेन्ट ने उनको विश्वास दिलाया कि कम्पनी उनके साथ न्याय करेगी तो एक चतुर राजनीतिज्ञ की भाँति उसका कहना मानकर वे वापिस अपनी राजधानी में आगये और शान्तिपूर्वक न्याय की प्रतीक्षा करने लगे। जब उनके धैर्य की सीमा हो चली तो स्वातन्त्रय-प्राप्ति के लिये वे अर्द्धरात्रि

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

में चम्बल नदी को पार कर बूँदी की ओर रवाना हुये और सुख तथा विलास को छोड़ कर विपद-संकुल अन्धकारमय भविष्य में राजशक्ति को टटोलने लगे। बूँदी, मथुरा, वृन्दाबन और देहली आदि स्थानों में धनहीन और सैन्यहीन घूमते हुये किशोरसिंहजी वीर महाराणा प्रताप का स्मरण दिलाते हैं, जिसने अधीन जीवन के विलास की अपेक्षा जंगलों और पर्वत कन्दराओं में भूख प्यास को सहन करते हुये शत्रु का विरोध करते रहना अधिक अच्छा समझा था। माँगरौल की लड़ाई आरम्भ होने से पहिले किशोरसिंहजी भलीभाँति जानते थे कि जालिम-सिंह के पक्ष में अतुल शक्तिशालिनी बृटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी है परन्तु उनको तो क्षात्रधर्म पालन करना था। सामने कम्पनी और जालिमसिंह का रिसाला था। चार अँग्रेज अफसर अपनी तोपों के साथ जालिमसिंह के सहायक बने हुये थे। सम्पूर्ण राजकोष शत्रु के हाथ में था। उधर किशोरसिंहजी के पास क्या था? केवल उनके उत्पीड़ित भाई जो जालिमसिंह के शासन से तंग आ चुके थे और पुनः अपने वंश का शासन स्थापन करना चाहते थे। माँगरौल की लड़ाई सर्वांश में हल्दीघाटी की लड़ाई कही जा सकती है। किशोरसिंहजी की हार तो होनी ही थी, परन्तु यह हार भी विजय से कम नहीं थी। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और तोपों से सुरक्षित तीन अँग्रेज अफसरों का रणक्षेत्र में मारा जाना, जालिमसिंह का केवल मौके से ही बचना तथा किशोरसिंहजी और उनके सैनिकों का कर्नल टॉड के शब्दों में पत्थर की दीवार की भाँति अचल रूप से डटे रहना वास्तव में प्रशंसनीय पराक्रम है। माँगरौल के मैदान से हट कर किशोरसिंहजी ने जालिमसिंह या कम्पनी से क्षमा नहीं माँगी। अपने पराजय को धैर्य और साहस के साथ सहन करके वे नाथद्वारे गये और भगवद्भक्ति में

अपने दिन बिताने लगे। इस अवस्था में भी महाराणा उदयपुर कम्पनी के साथ तथा जालिमसिंह के साथ समझौते के लिये पत्रव्यवहार करने लगे तो किशोरसिंहजी ने अपनी आन नहीं छोड़ी और जब कम्पनी ने किशोरसिंहजी के अधिकारों को कुछ विस्तृत और जालिमसिंह के अधिकारों को कुछ संकुचित करना स्वीकार कर लिया तब वे वापिस कोटे आये।

किशोरसिंहजी किसी हद तक नीतिज्ञ भी थे। इसलिये उन्होंने कर्नल टॉड को लिखा था कि मुझे जालिमसिंह से कोई विरोध नहीं है, परन्तु मैं माधोसिंह का शासन नहीं चाहता। जालिमसिंह बड़ा दूरदर्शी था, अतः उसने अपने सामने ही माधोसिंह को अधिकार सौंप दिया था। यह किशोरसिंहजी की भूल थी कि उसकी विद्यमानता में ही उसका विरोध शुरू कर दिया।

जालिमसिंह का चरित्र—जालिमसिंह १८ वीं शताब्दी के भारत का प्रमुख व्यक्ति है। अभी जालिमसिंह के कार्य भारतीय इतिहास की दृष्टि से प्रकाश में नहीं आपाये हैं, परन्तु यह कहा जासकता है कि जालिमसिंह उस शताब्दी के विधाताओं में गणना करने योग्य है। यह उच्चपद उसने अपनी व्यक्तिगत योग्यता, नीतिज्ञता, वीरता और क्षमता के बल से प्राप्त किया था। जब गुमानसिंहजी ने उसको निकाल दिया तो उसके गुणों की वास्तविक परीक्षा हुई। उसने तत्काल अपना भविष्य टटोल लिया। एक रईस को छोड़ते ही वह दूसरे रईस का सहायक बन गया। उस समय भारतवर्ष में चारों ओर घोर राजनैतिक उथल पुथल होरही थी। एक ओर मराठों की शक्ति प्रबल बाढ़ की भाँति भारतवर्ष के छोटे छोटे राज्यों को अपने प्रलयंकर प्रवाह में डुबो रही थी, दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी छल, बल और कौशल से शनैः शनैः जिधर दाँव देखती थी, उधर भारत में प्रवेश करती

जाती थी। उधर जो मुगल सम्राट् एक समय विश्वविदित वैभव में विलास करते थे, उनके वंशज अब गरीबी में सिसकियाँ ले रहे थे। इस प्रकार के क्षत और विक्षत वातावरण में राजपूताने के नरेश किंकर्त व्य विमूढ़ थे। सम्पूर्ण राजपूताने में एक प्रकार की अराजकता व्याप्त होरही थी। कोई नरेश राज्य बढ़ा रहा था, कोई राज्य भ्रष्ट होकर दर दर का भिखारी बना हुआ था, और कोई अपने सरदारों के पारस्परिक द्वेष और कलह के कारण तंग था। कई राज्य साम्पत्तिक संकट में डूबे हुये थे और कई मराठों के आक्रमण से कम्पायमान होरहे थे। ऐसी स्थिति में जालिमसिंह जैसे चतुर कूटनीतिज्ञ और वीर योद्धा की सर्वत्र माँग थी। अतः इधर कोटे ने उसे छोड़ा उधर उदयपुर ने उसे अपनाया। महाराणा की ओर से उसने वीरतापूर्वक मराठों से युद्ध किया। वह घायल हुआ और कैद हुआ। फिरभी उसके अदम्य उत्साह ने उसका साहस नहीं छोड़ा। अपने मित्र सरदार इँगले की सहायता से वह मराठों के कैम्प में भी आजादी से रहने लगा, और अपना भावी कार्यक्रम सोचही रहा था कि गुमानसिंहजी ने आदर और आग्रह के साथ उसको वापिस कोटे बुलवाया, फौजदार के पद पर पुनः नियुक्त किया, उसकी जागीर वापिस दी, हाथी, पालकी, छड़ी, चोबदार, चँवर, नक्कारा आदि राजसी चिन्हों से उसको अलंकृत और सत्कृत किया। जालिमसिंह ने इस आदर और सत्कार के लिये कृतज्ञ होकर मराठों को चतुरतापूर्वक कोटा राज्य से निकाल दिया और राज्य को बाल बाल बचा लिया। इन योग्य कार्यों के कारण गुमानसिंहजी उस पर विश्वास करने लगे और उसकी नीतिज्ञता तथा चतुरता की अपने राज्य की रक्षा के निमित्त आवश्यकता अनुभव करने लगे। यह कहना कठिन है कि महाराव गुमानसिंहजी जालिमसिंह को विश्वसनीय समझते थे या आवश्यक।

उनको भरोसा था या भय । कुछ भी हो, अपने अन्तिम समय में वे इसके अतिरिक्त और क्या निश्चय कर सकते थे कि अपने किशोर-व्यस्क पुत्र को उसकी गोद में बिठलाते और राज्य-रक्षा का भार उसके सुपुर्द करते ? कहाँ तो गुमानसिंहजी ने जालिमसिंह को अपने राज्य से निर्वासित कर दिया था और कहाँ अब अपने पुत्र और अपने राज्य को उसके सुपुर्द किया। इस आश्चर्यकारी परिवर्त्तन में घटनाओं के रहस्यमय संयोग का भी हाथ होसकता है और कालचक्र की दुर्लक्ष गति का प्रभाव भी, परन्तु जालिमसिंह के प्रबल व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

उम्मेदसिंहजी के राज्य काल में अनेक जटिल प्रश्न उपस्थित हुये । रघुनाथराव ने नाना फड़नवीस के विरुद्ध उनसे सहायता माँगी। होल्कर और सेंधिया में पारस्परिक द्वेष और खींचतान हुई । सेंधिया ने जोधपुर पर चढ़ाई की और कोटे से सैनिक सहायता माँगी । ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी अधीनता स्वीकार करवाने के लिये कोटा दरबार को आमन्त्रित किया। पिंडारी युद्ध में जालिमसिंह से सहयोग के लिये कहा गया—ये सब स्थितियाँ अत्यन्त जटिल और कठिन थीं। परन्तु जालिमसिंह ने राज्य की नौका को किसी सागर के किसी भँवर में नहीं धँसने दिया । हर एक खतरनाक चट्टान से उसको बचाता हुआ वह पार लेगया ।

जालिमसिंह में क्षत्रियोचित वीरता थी और मराठों की सी नीति । जय और पराजय दोनों से वह लाभ उठाना जानता था। वह योग्य नेता था, वीर सैनिक था, प्रबल शत्रु था, और सफल चाटुकार। जालिमसिंह योद्धा था और विजेता भी । उसको शक्ति संचय की प्यास थी और प्रभाव विस्तार की लालसा । उसने पुराने कर बढ़ाये, नये कर लगाये । लगान बढ़ाया, स्वयम् कृषि की, व्यापार किया, इजारे पर

परगने लिये, ब्याज पर रुपये दिये और धनवानों का धन छीना। १८ वीं शताब्दी के शासक सब यही करते थे। प्रजा हित, लोकोपयोगी कार्य, शिक्षाप्रचार, प्रजातन्त्र शासन आदि के भाव उस समय उत्पन्न ही नहीं हुये थे। शस्त्रास्त्रों की चमक और तोपों के गोलों की घोर ध्वनि में ये भाव उत्पन्न हो भी नहीं सकते थे। यह कहना कठिन है कि जालिमसिंह शान्ति के युग में होता तो क्या करता? लेखक के खयाल से शान्ति के युग में ऐसा पुरुष उत्पन्न नहीं होसकता। यह इतिहास का क्षेत्र नहीं है, ज्योतिष का है। परन्तु फिर भी जालिमसिंह की पेटेल समिति यदि शान्ति युग में जारी की गई होती तो उसका अनिवार्य परिणाम होता प्रजापक्ष का दृढ़ीकरण और राजशक्ति का संकोच।

यह निर्णय करना कठिन है कि जालिमसिंह स्वामिभक्त था या स्वार्थसाधक। कर्नल टॉड बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ और दूसरों के मन की बात को भाँपने वाला था। उसका जालिमसिंह से बहुत सम्पर्क रहा था, परन्तु वह भी उसको भलीभाँति नहीं समझ सका। अतः हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि जालिमसिंह की स्वामिभक्ति स्वार्थ से शून्य नहीं थी और उसके स्वार्थ पर स्वामिभक्ति का आवरण था। जालिमसिंह १८ वीं शताब्दी के संघर्ष के लिये अत्यन्त उपयुक्त पुरुष था और कोटा राज्य के लिये आमरण आवश्यक।

———

महाराव रामसिंहजी

(सम्वत् १८८४–१९२२ विक्रम्)

राज्याभिषेक—जब महाराणा मेवाड़ के द्वारा कम्पनी सरकार से समझौते की बातचीत होरही थी तो किशोरसिंहजी ने इस बात पर जोर दिया था कि यदि उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तो रामसिंहजी को कोटा राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जावेगा। कम्पनी ने यह स्वीकार कर लिया था, अतः किशोरसिंहजी के देहान्त के बाद कोई गड़बड़ नहीं हुई और श्रावण शुक्ला ६ सम्वत् १८८४ को रामसिंहजी का अभिषेक होगया[1]। गुप्त संधि के अनुकूल शासन शक्ति झाला माधोसिंह के हाथ में ही रही। अतः उसको कुछ भी चिन्ता नहीं थी कि राजसिंहासन पर कौन बैठता है और कौन नहीं? वह विस्तृत राज्य का वास्तविक शासक था और रामसिंहजी थे उसके नाम मात्र के स्वामी।

उनकी नौ राणियाँ—रामसिंहजी के शासन अधिकार तो संकुचित थे, परन्तु राजसी ठाठ में कोई कमी नहीं थी। इन्होंने नौ विवाह किये थे। दो राजगद्दी पर बैठने से पूर्व, और सात उसके पश्चात्। प्रथम् विवाह अजमेर प्रान्तांतर्गत जूनिया के ठाकुर बैरीसालजी राठौड़ की पुत्री से सम्वत् १८८० के माघ शुक्ला पंचमी के दिन हुआ और दूसरा डोले की विधि से सम्वत् १८८१ में मारवाड़ राज्य के उमराव किलाणे के ठाकुर अमरसिंह तँवर की लड़की से। राजसिंहासन पर बैठने के दो साल बाद शोपुर बड़ौदे के राजा राधकादास की लड़की महताब कुँवर से तीसरा विवाह हुआ। चौथा विवाह उदयपुर के

(१) कागजात सम्वत् १८८५ (रीत करयावर)

महाराणा जवानसिंहजी की पुत्री से हुआ। यह महिला वास्तव में महाराणा की पुत्री नहीं थीं; बल्कि सलूम्बर के रावत पदमसिंहजी की बहिन थीं और इनका नाम अनूप कुँवर था। महाराणा जवानसिंहजी ने इनको अपनी पुत्री बनाकर महाराव रामसिंहजी के साथ ब्याहा था। सम्वत् १८९२ में जब महाराव रामसिंहजी उदयपुर से बनेड़े होकर कोटे वापिस आरहे थे तो बनेड़े के राजा हमीरसिंहजी की पुत्री से इनका पाँचवाँ विवाह हुआ। छठवाँ विवाह झाला मदनसिंह को कोटे से निकाल देने के एक साल बाद अर्थात् सम्वत् १८९५ में खण्डेले के राजा अभयसिंहजी शेखावत की लड़की से हुआ। सातवाँ विवाह जैसलमेर के रावल बैरीसालजी की बेटी से सम्वत् १९०७ में हुआ। सम्वत् १९०७ में इनका आठवाँ विवाह उदयपुर के महाराणा सरदारसिंहजी की पुत्री से हुआ। नवाँ विवाह नान्तोड़ी (जयपुर) के ठाकुर हणवतसिंहजी की लड़की से हुआ। इनमें प्रथम महाराणी ने आश्विन कृष्णा अमावास्या सम्वत् १८९६ को महाराज कुमार शत्रुशालजी को जन्म दिया।

गद्दी पर बैठने के दो वर्ष बाद महाराव रामसिंहजी दिल्ली गये और रेजीडेन्ट से मिले। इसके कुछ अरसे बाद वे केशवराय पाटण दर्शनार्थ गये, कुछ दिन वहाँ ठहरे और दो हजार रुपये का पुण्य दान किया[1]।

गवर्नर जनरल से भेंट—(माघ कृष्ण पक्ष सम्वत् १८८८) सन् १८३१ में भारतवर्ष का गवर्नर जनरल अजमेर गया। वहाँ पर दरबार हुआ और राजपूताने के सम्पूर्ण नरेश उसमें उपस्थित हुये। महाराव रामसिंहजी भी झाला माधोसिंह तथा कोटरियात के सरदारों के साथ उसमें सम्मिलित हुये। अजमेर से चार मील दूर राजोरी नामक गाँव के निकट गवर्नर जनरल के आठ प्रतिनिधि जिनमें एक पोलिटिकल

(१) कागजात सम्वत् १८८७–८८।

महाराव रामसिंहजी
(१८८४–१९२२ वि०)

सेक्रेटरी था, हाथियों पर बैठ कर महाराव रामसिंहजी का स्वागत करने आये। इधर रामसिंहजी भी हाथी पर सवार थे। स्वागत के लिये एक स्थान पर कालीन बिछे हुये थे। उस पर कोटा नरेश और गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि परस्पर शिष्टाचार पूर्वक बगलगीर होकर मिले। तदनन्तर सब घोड़ों पर सवार होकर चले। मार्ग में पोलिटिकल सेक्रेटरी ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि कोटा नरेश गवर्नर जनरल का निमन्त्रण स्वीकार करके अजमेर आये। वहाँ पहुँचने पर इक्कीस तोपों की सलामी हुई।

दूसरे दिन माघ शुक्ला प्रतिपदा को गवर्नर जनरल से मिलने के लिये रामसिंहजी की सवारी रवाना हुई। स्वयम् हाथी पर चाँदी के हौदे में बैठे। हाथी के सामने इन्द्रगढ़ के महाराजा शिवसिंहजी, गैंता के महाराजा शिवदानसिंहजी, कोयले के आप राजसिंहजी और कुनाड़ी के राज अर्जुनसिंहजी और पीछे माधोसिंह घोड़ों पर सवार होकर चले। डेरे से कुछ फासिले पर गवर्नर जनरल के दो प्रतिनिधि हाथी पर बैठ कर स्वागत करने आये। जब अँग्रेजी सैनिकों ने कोटे के सैनिकों को विशेष स्थान से आगे बढ़ने से रोका तो बड़ी गड़बड़ हुई। दोनों ओर से तलवारें खींचकर लड़ने को तैयार होगये, परन्तु रामसिंहजी ने तत्काल अपने आदमियों को समझा दिया और वे शान्त होगये। कोटा नरेश के साथ केवल दश व्यक्ति गवर्नर जनरल के डेरे में घुसे। ज्योंही दरवाजे पर पहुँचे, गवर्नर जनरल ने स्वागत किया और इक्कीस तोपें चलीं।

दरबार में गवर्नर जनरल के दाईं ओर बम्बई का गवर्नर और दूसरे अँग्रेज बैठे। बाईं ओर रामसिंहजी और उनके उमराव बिठाये गये। माधोसिंह रामसिंहजी के पास बैठा। उमरावों ने गवर्नर जनरल को नजर की। दो अँग्रेज दुभाषियों द्वारा बातचीत हुई। गवर्नर जनरल ने कोटा नरेश को पान दिया जिसमें सोने की सींक लगी हुई

थी। पोलिटिकल सेक्रेटरी ने माधोसिंह को पान दिया। विदा के समय गवर्नर जनरल दरवाजे तक पहुँचाने आया और इक्कीस तोपों से सलामी हुई।

अष्टमी को गवर्नर जनरल रामसिंहजी से मिलने आया। रास्ते में दो उमरावों ने उसका स्वागत किया। मार्ग के दोनों ओर कोटा राज्य के सैनिक खड़े किये गये। कुछ दूरी पर स्वयम् रामसिंहजी हाथी पर बैठ कर उससे मिले। दरवाजे के पास सैनिकों ने सलामी ली। दरवाजे से गवर्नर जनरल तामझाम में बैठा और रामसिंहजी महाजान में।

दरबार में बीच में रामसिंहजी बैठे। दाईं ओर गवर्नर जनरल और बाईं ओर बम्बई के गवर्नर बैठे। सरदार यथा स्थान बिठाये गये। वेश्याओं का नाच और जेठियों की कुश्ती हुई। कोटा नरेश ने एक सरोपाव, एक कंठा, हाथी, घोड़े, बन्दूक और खंजर गवर्नर जनरल की भेंट किये। गवर्नर जनरल ने जेठियों को पन्द्रह सौ रुपये इनाम दिये।

अजमेर में ही नवमी को अकस्मात् गैंता के महाराजा शिवदान-सिंहजी बीमार हुये और थोड़ी देर में उनकी मृत्यु होगई।

दशमी को प्रस्थान करने से पूर्व पुनः रामसिंहजी गवर्नर जनरल से मिलने गये। इस समय भी उनका पूर्ववत् स्वागत हुआ और उसी शिष्टाचार से बातचीत हुई। इस समय गवर्नर जनरल ने पूछा कि "कम्पनी की फौज की मदद करते हुये जो पलायथे के आप अमरसिंह मारे गये थे उनका पुत्र कहाँ है"? माधोसिंह ने उत्तर दिया कि उनके वंश में कोई नहीं है, परन्तु कोयले वाले हाजिर हैं। रामसिंहजी ने गवर्नर जनरल से कोटा आने को कहा पर उसने उत्तर दिया कि अब गर्मी आने वाली है, अतः मजबूरी है।

अपने हर्ष को प्रकट करने के लिये गवर्नर जनरल ने झाला माधोसिंह को चँवर प्रदान किये[1]। गवर्नर जनरल से कोटा नरेश की यह प्रथम भेंट थी। बृटिश शासन स्थापित होने के बाद गवर्नर जनरल ने राजपूताने का यह प्रथम दौरा किया था। मुगल शक्ति के क्षीण होजाने के पश्चात् बाजीराव पेशवा ने राजपूताने की मुख्य रियासतों का दौरा किया था। अब गवर्नर जनरल ने भी उसी प्रकार दौरा करके और राजपूत नरेशों से नजर लेकर यह प्रत्यक्ष दिखाया कि भारतवर्ष का आधिपत्य अब अँग्रेजों के हाथ में आगया है।

महाराणा का आगमन—उदयपुर और कोटे के राजवंशों में पीढ़ियों से परस्पर सम्बन्ध चला आता था। महाराव किशोरसिंहजी और जालिमसिंह में संधि करवा कर महाराणा उदयपुर ने इस स्नेह को और भी दृढ़ कर दिया था। इस स्नेह के कारण सम्वत् १८९१ में महाराणा उदयपुर कोटे आये। महाराव रामसिंहजी झाला मदनसिंह के साथ सेना लेकर शेरगढ़ तक स्वागत करने के लिये गये। दश दिन तक महाराणा उदयपुर कोटे में रहे और फिर महाराव रामसिंहजी ने उनको आदरपूर्वक विदा किया।

माधोसिंह का देहान्त— माधोसिंह झाला का सम्वत् १८९० के माघ में देहान्त होगया। मदनसिंह झाला ने स्वतः ही फौजदार बन कर अपने स्वर्गीय पिता की शक्ति और सम्पत्ति ग्रहण कर ली। जब तक जीवित रहा माधोसिंह ने कभी रामसिंहजी को असन्तुष्ट नहीं किया। वास्तव में तो राजशक्ति उसके हाथ में थी ही और रामसिंहजी नाम के ही राजा थे, परन्तु प्रत्यक्ष में माधोसिंह उन का बड़ा आदर करता था और रामसिंहजी को कभी यह अनुभव नहीं होने देता था कि रामसिंहजी स्वामी नहीं और वह नौकर नहीं है।

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

झाला मदनसिंह का व्यवहार—मदनसिंह झाला का बर्ताव वैसा नहीं रहा। एक वर्ष तक तो अपने पिता और पितामह का अनुकरण किया, परन्तु फिर कोटा नरेश की उपेक्षा करने लगा। कारण स्पष्ट था। तीन पीढ़ी से कोटे का शासन सूत्र उसके वंश के हाथ में चला आता था। वह समझता था कि मेरे पूर्वजों ने इस राज्य को बचाया, बनाया और बढ़ाया। तिस पर भी मैं आज नौकर! और राजगद्दी पर उन लोगों के वंशज जो संकट के समय किंकर्तव्य विमूढ़ थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उद्दण्ड, असहनशील, शीघ्रकर्मा और स्वतन्त्र प्रकृति वाला था। इसलिये वह रामसिंहजी की आज्ञाओं की अवहेलना करने लगा। उसने स्वयम् सब राजसी चिन्ह धारण कर लिये। नगर से जाते समय और वापिस आते समय उसकी सलामी तोपों से ली जाने लगी। गढ़ में उसके जन्म दिन का उत्सव समारोह के साथ मनाया जाने लगा। सवारी बना कर वह त्यौहारों पर निकलने लगा। सब आज्ञापत्रों पर उसका नाम नरेश की भाँति लिखा जाने लगा।

रामसिंहजी का असन्तोष और मदनसिंह की शिकायत—इससे रामसिंहजी बहुत असन्तुष्ट हुये। अब उन घटनाओं की आवृत्ति होने लगी जो किशोरसिंहजी के राज्यकाल में माँगरौल के युद्ध से पहिले हुई थीं। रामसिंहजी कम्पनी सरकार को बार बार लिखने लगे कि मदनसिंह की उद्दण्डता के कारण मेरी स्थिति असह्य होगई है और मदनसिंह भी इस बात की निरन्तर शिकायत करने लगा कि महाराव रामसिंहजी शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर वास्तव में राजा बनना चाहते हैं और मुझको उन अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं जो कम्पनी के साथ की हुई सन्धि के अनुकूल मुझे प्राप्त हैं। कम्पनी अपनी नीति का प्रदर्शन पहिले ही कर चुकी थी। माँगरौल की लड़ाई

झाला मदनसिंहजी

से पहिले कम्पनी ने स्पष्ट कर दिया था कि वह कोटा नरेश को केवल नामधारी राजा मानती है और वास्तविक राजशक्ति झाला और उसके वंशजों के हाथ में रखना चाहती है। इस समय भी कम्पनी उसी नीति की संथा पढ़ने लगी और मदनसिंह की पीठ ठोकना शुरू की।

कोटा कन्टिन्जेन्ट—कम्पनी का अनुकूल रुख देख कर मदनसिंह का साहस और बढ़ गया, और उसने लिखा कि रामसिंहजी मेरा प्राणान्त करने के लिये षड्यन्त्र रच रहे हैं और मुझको भय है कि न जाने किस समय क्या होजाये? कम्पनी ने इस कथन को स्वीकार कर मदनसिंह से पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उसने सम्वत् १८९३ में कम्पनी को लिखा कि कोटे में एक अँग्रेजी फौज रखदी जावे और उसका खर्च कोटे से लेलिया जावे, परन्तु जब मेरे प्राणों पर संकट आवे तो यह फौज मेरी रक्षा करे। कम्पनी ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। कोटे में कम्पनी की सेना रहने लगी जिसका नाम 'कोटा कन्टिन्जेन्ट' रक्खा गया। इसका खर्च कोटा राज्य के कोष से मिलने लगा। महाराव रामसिंहजी ने इसका घोर विरोध किया, परन्तु कम्पनी ने उनके एतराजों को नहीं माना और फौज कोटे में बनी रही। इससे भी मदनसिंह और रामसिंहजी का परस्पर द्वेष शान्त नहीं हुआ बल्कि स्थिति उत्तरोत्तर और भी भयावह होने लगी।

मदनसिंह की तरफ कम्पनी का रुख—जब महाराव रामसिंहजी और झाला मदनसिंह में निरन्तर कलह रहने लगा तो कम्पनी सरकार ने आखिर यह अनुभव किया कि गुप्त सन्धि की शर्तों का अधिक समय तक पालन होना सम्भव नहीं है। जालिमसिंह और माधोसिंह के साथ भी महाराव उम्मेदसिंहजी और किशोरसिंहजी की अनबन होजाया करती थी, परन्तु वे दोनों जितने शक्तिशाली थे उतने ही चतुर भी थे। इसलिये कई विषम स्थितियों को पार कर वे दोनों

सफलतापूर्वक काम करते रहे। मदनसिंह में न उतनी बुद्धि थी और न निपुणता। उसके पास बल था अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त अधिकारों का और साहस था कम्पनी के पक्ष का। लेकिन कम्पनी भी उसका उतना लिहाज नहीं करती थी जितना जालिमसिंह या माधोसिंह का। अपने पूर्वजों की भाँति मदनसिंह में न वह चतुरता थी न वह शक्ति और न थी कम्पनी को उसका लिहाज करने की कोई आवश्यकता ही।

उसको पृथक् राज्य देने के लिये गवर्नर जनरल का आदेश—जब मि० लैडलो ने जो कोटे में पोलिटिकल एजेण्ट था, गवर्नर जनरल को इस विषय का पत्र लिखा कि महाराव रामसिंहजी और मदनसिंह अधिक समय तक साथ साथ नहीं निभ सकते और जालिमसिंह की सेवाओं के कारण जितना लिहाज उसके वंशजों का किया जाना चाहिये था, उतना किया जा चुका है और अब समय आगया है कि कोटा नरेश को अपने वंशपरम्परागत अधिकार और स्वत्व पुनः वापिस दे दिये जावें तो गर्वर जनरल और उसकी कौन्सिल ने मिस्टर लैडलो के प्रस्ताव को स्वीकार किया और यह आदेश दिया गया कि जालिमसिंह के समय में जितने परगने कोटा राज्य में मिलाये गये थे, वे सब अलग करके जालिमसिंह के वंशजों के लिये एक पृथक् राज्य स्थापित करदिया जावे।

राज्य विभाग का निश्चय—गवर्नर जनरल का ऐसा खरीता महाराव रामसिंहजी के नाम आया। राज्य का विभागीकरण किसको रुचिकर होसकता है? परन्तु रामसिंहजी क्या कर सकते थे? उधर कम्पनी का दवाव था और इधर मदनसिंह के साथ निरन्तर कलह। इस स्थिति की अपेक्षा रामसिंहजी ने अपने राज्य में से परगने देकर मदनसिंह से पिण्ड छुड़ाना अच्छा समझा। जालिमसिंह ने जो हिस्सा कोटा राज्य में मिलाया था, वह लगभग पाँच या छः लाख रुपया सालाना

की आमदनी का था, परन्तु मदनसिंह ने इस समय एक चाल चली।

एक बनावटी पत्र—उसने महाराव उम्मेदसिंहजी के हाथ का लिखा हुआ एक पत्र मि० लैडलो के सामने उपस्थित किया। उसमें लिखा हुआ था कि गद्दी हमारे हाथ में रहेगी और शासन तुम्हारे हाथ में और यदि हमारे वंशज तुमको कभी अलग करना चाहेंगे तो तुमको राज्य का इतना हिस्सा अलग दिया जावेगा जिससे बारह लाख रुपया सालाना की आय हो। इस राज्य को तुम्हारे औरसाधिकारी सदैव भोगते रहेंगे।

महाराव रामसिंहजी की स्वीकृति—उस समय मदनसिंह के हाथ में शक्ति थी और और सम्पत्ति भी। कम्पनी को चाहे उसका विशेष लिहाज नहीं था तो भी महाराव रामसिंहजी की अपेक्षा वह पोलिटिकल अफसरों को अधिक प्रभावान्वित कर सकता था। मि० लैडलो ने पत्र की सत्यता या कृत्रिमता पर तो विचार किया नहीं और इस बात पर जोर दिया कि उसमें लिखी हुई शर्तों का पालन किया जावे। कोटा राज्य के लिये इतने भारी भाग का अलग होजाना घोर साम्पत्तिक संकट था, परन्तु रामसिंहजी तो येन केन प्रकारेण झाला मदनसिंह से अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे। इसलिये परिस्थिति की निर्मम प्रेरणा के वश होकर उन्होंने यह भी स्वीकार किया।

पन्द्रह लाख का राज्य लेकर मदनसिंह विदा हुआ—वैशाख शुक्ला ३, सम्वत् १८९४—यों तो जालिमसिंह ने जो कुछ भी वृद्धि की थी, वह राज्य के साधनों द्वारा ही की थी और इसलिये जो परगने राज्य में मिलाये गये थे, वे कोटा राज्य के अंश बन चुके थे और उन पर जालिमसिंह का कोई निजी अधिकार नहीं था; और थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाये कि उसका अधिकार था तो ऐसा अधिकार केवल चौ महलां और शाहाबाद पर ही हो सकता था और

ये पाँचों परगने लगभग पाँच लाख के थे। परन्तु मदनसिंह के नये जाल के अनुकूल बारह लाख का राज्य देना निश्चय हुआ। राज्य का बँटवारा भी मदनसिंह के ही हाथ में था। इसलिये उसने हिसाबी झंझटों का आश्रय लेकर तथा कागजी उलझनों में सत्य को छिपा कर बारह लाख के बजाय लगभग पंद्रह लाख का राज्य पृथक् करवा लिया। चेचट, सुकेत, आवर, डग, गंगराड़, झालरापाटन, रींछवा, बकानी, वहलनपुर, कोटड़ा, भालता, सरड़ा, रटलाई, मनोहरथाना, फूलबड़ौद, चाचोरनी, गुंजारी, छीपाबड़ौद और शाहाबाद—ये परगने अलग कर दिये गये।

एक किंवदन्ती—ऐसी किंवदन्ती है कि जब मदनसिह कोटा नगर से प्रस्थान करने लगा तो महाराव रामसिंहजी से अन्तिम बार मिलने के लिये गया। उस समय महाराव रामसिंहजी ने अपना रोष और असन्तोष प्रकट करने के लिये उसको काला घोड़ा और काला सरोपाव विदा में दिया। मदनसिंह अपने पिता के समान तो चतुर नहीं था परन्तु शासन की परम्परा में पला हुआ था। उसने काले कपड़े वहीं पहन लिये और काले घोड़े पर सवार होकर सूरजपोल के बाहर निकला। कोटा नगर से लगभग एक मील के फासिले पर उसने अपने लिये सैनिक जुलूस तैयार करवा रक्खा था। वहाँ से हाथी पर बैठ गया और चँवर होने लगे। और चौबदार-नकीब बोलने लगे, और छत्र धारण कर पूर्णरूपेण नरेश की भाँति रवाना हुआ। छावनी और पाटन में जालिमसिंह ने अपने वास्ते रहने के लिये महल और किले बना रक्खे थे। जालिमसिंह वहाँ रहा भी करता था। मदनसिंह अब वहाँ रहने लगा और पाटन को अपने नये राज्य की राजधानी बनाया और उसका नाम झालरापाटन तथा नये राज्य का नाम झालावाड़ रक्खा।

जागीरें दीगईं—इस प्रकार राज्य के टुकड़े होजाने से रामसिंहजी स्वतन्त्र शासक होगये और निर्विघ्न राज्य करने लगे। परन्तु उनको घोर साम्पत्तिक संकट का सामना करना पड़ा। राज्य की आमदनी एक दम घट गई। खर्च उतना ही था। इसलिये आय और व्यय को सम करने के लिये राज्यप्रबन्ध में बहुत उथल पुथल करनी पड़ी। जो इलाके मदनसिंह को दिये गये उनके अधिकांश राजकर्मचारी तो झालावाड़ के मातहत बन गये परन्तु जो लोग कोटे आगये उनकी परवरिश का प्रश्न महाराव रामसिंहजी को हल करना पड़ा। कई जागीरदारों ने अपनी जागीरें छोड़दीं और कोटा नरेश की सेवा करना स्वीकार किया। ऐसे जागीरदारों को महाराव रामसिंहजी ने अपने राज्य में जागीरें दीं। इस अवसर पर महाराव रामसिंहजी ने अपने सरदारों को भी अपनी स्थिति के अनुसार उदारतापूर्वक सत्कृत किया[1]। इस प्रकार लगभग तीन लाख के गाँव जागीरों में विभक्त होगये।

---

(१) कोयले के आप राजसिंहजी के मँझले कुँवर सरदारसिंहजी को दीगोद और चैनपुरया ये दो गाँव जागीर में दिये। डाबरी आपजी के काका गिरवरसिंहजी को ठीकरया नामक गाँव जागीर में दिया। रामसिंहजी अर्जुनपोता हाड़ा को बड़ोदिया नामक गाँव दिया। बभूतसिंहजी किशोरसिंहोत को आमली दिया। शिवनाथसिंहजी किशोरसिंहोत को चरेल प्रदान किया। कोयले के भाई दीपसिंहजी को सुखावण दिया। केलावा के तँवर प्रतापसिंहजी को खेड़ली बख्शी। अजमेर प्रान्तांतर्गत बगराई के ठाकुर चन्द्रसिंहजी राठौड़ को पालक्या, मंगलसेनजी हाड़ा और शिवदासजी राठौड़ को बरखेड़ा। बागसिंहजी राणावत को खेड़ा, मोतीसिंहजी हरदावत को पीपल्दा, कल्याणसिंहजी हरदावत को फतेहपुर, घाटी के राव शत्रुशालजी को कोथला, सारथल के ठाकुर नरपतसिंहजी हाड़ा को कचनावदा, कसौरी और चलेत, दयानाथजी हरदावत को रेणगढ़, गणपतसिंहजी हरदावत को भँवरगढ़, पीपल्दे के ठाकुर अजीतसिंहजी को अयांणी और उमरी, राजा मोखमसिंहजी को खानपुरया, तख्तसिंहजी गौड़ को खुसालपुरा, फाळूसिंहजी चन्द्रावत को गुड़खेड़ी,

बूँदी नरेश से मुलाकात—महाराव रामसिंहजी का जिस प्रकार उदयपुर के महाराणा से स्नेह सम्बन्ध था, वैसा ही बूँदी के रावराजा रामसिंहजी से था। बूँदी नरेश बड़े गुणग्राही और नीति निपुण शासक थे। ब्रिटिश सरकार इनका बड़ा आदर करती थी। इनके समय में बूँदी राज्य सब प्रकार सम्पन्न और उन्नत था। सूर्यमलजी चारण इनके दरबारी थे जिनका लिखा "वंशभास्कर" चौहान वंश का और विशेष कर बूँदी राजवंश का उत्तम पद्यात्मक इतिहास है। रामसिंहजी मध्यकाल और वर्तमान काल के सन्धि युग में पैदा हुये थे। जब कर्नल टॉड राजपूत नरेशों के साथ सन्धि करने में लगा हुआ था तो रामसिंहजी आठ, दश वर्ष के बालक थे। जिस समय रामसिंहजी बालक थे, वह मध्यकाल का प्रायः अन्त था। मुगल साम्राज्य विलीन हो चुका था। मराठों की शक्ति जर्जर होगई थी। ठग और पिंडारियों की लूट खसोट बन्द होती जाती थी। केन्द्रीय शक्ति स्थापित

महासिंहजी चन्द्रावत को बलेंडी, फतेहसिंहजी गौड़ को झाड़ोल्या, ठाकुर अमरसिंहजी को अकावद और बरेड़ा, दुर्जनशालजी खँगारोत को बुलासरा, किशोरसिंहजी हाड़ा को निनावता, श्योबख्शजी राठौड़ को छोटा भटवाड़ा, पलायथे के आप फतेहसिंहजी को पलायथा, मिर्जापुर और आँकेड़ी, अमरसिंहजी चन्द्रावत को मोतीपुरा और बमूल्या, अलीखाँ पठान को भावगढ़ और बरूणी, बडोरा के पठान मुस्तफाखाँ को रीछन्दा, देवता छोटेलालजी को पीसाहेड़ा और झालरी, सायपुरा वाले पुण्डरीकजी को दरबीजी, उदयपुर के पुरोहित श्यामनाथजी को ककवासा, चारण भूरा को घोड़ों की चाकरी के लिये बगसपुरा, सीमल्या और जोधपुरा, चारण बच्छराज को घोड़ों की नौकरी के लिये हथौली, रसूलखाँ चाबुक सवार को कासिमपुरा, सौदागर दिलावरखाँ को झौंटेली, महाराजा भौमसिंहजी को दड़ा, नीमोदा और ब्रजेशपुरा, गुरूजी दयाशंकरजी को दोबड़ा, दादूपन्थी बाबा रामप्रसादजी को समसपुर, मुंशी रतनलाल पचौली को किशनपुरा, पं० सखारामजी को रोलाणां, धाभाई श्योबख्शजी को बमूली, धाभाई लालजीराम को धाकड़खेड़ी, सौदागर फतेहखाँ को सूरपुरा।

हो चुकी थी। नवीनता का उदय हो रहा था। वे नवीन काल की नई उमंगों में युवा हुये थे, अतः नये उत्साह के साथ उन्होंने अपने राज्य का शासन किया, और वे अत्यन्त सफल हुये। उनके समय में विद्या की इतनी उन्नति हुई कि बूँदी नगर दूसरी काशी माना जाने लगा। सम्वत् १८९१ में बूँदी नरेश कोटे आये। सात दिन तक यहाँ रहे। उसके बाद सम्वत् १८९२ में जब रामसिंहजी विवाह करने के लिये उदयपुर जारहे थे तो बूँदी रावराजा साहब ने चार दिन तक उनको अपने यहाँ ठहराया। इस समय कोटा राज्य में झाला मदनसिंह का प्रभुत्व था और रामसिंहजी थे केवल नाम के राजा। जब उनकी बूँदी नरेश से भेंट हुई होगी और सात दिन तक कोटे में तथा चार दिन तक बूँदी में साथ साथ रहे होंगे तो मदनसिंह के विषय में बूँदी नरेश से अवश्य बात चीत हुई होगी।

दिल्ली दरबार में रामसिंहजी—सम्वत् १८९९ में देहली दरबार हुआ जिसमें राजपूताने के समस्त नरेश आमन्त्रित किये गये। पन्द्रह हजार सेना के साथ महाराव रामसिंहजी भी दिल्ली गये और दरबार में सम्मिलित हुये। दरबार में जो उनके साथ व्यवहार किया गया उससे वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुये। दिल्ली में बीकानेर नरेश रतनसिंहजी और धौलपुर के राणा बलवन्तसिंहजी से उनकी मुलाकात हुई।

बृजयात्रा—दिल्ली से वापिस आते समय महाराव रामसिंहजी ने बृजयात्रा की, और अनेक मन्दिरों में श्रद्धापूर्वक दर्शन किये। कई स्थानों पर बृहत् ब्रह्मभोज किये और पुष्कल दान दिया। जब कोटे वापिस आये तो बड़े समारोह के साथ उन्होंने अपनी राजधानी में प्रवेश किया।

गदर

कम्पनी का आधिपत्य और असन्तोष—सन् १८४९ में पंजाब भी कम्पनी ने जीत लिया। अब भारतवर्ष का कोई भी हिस्सा स्वतन्त्र नहीं रहा। अधिकांश भाग पर सीधा अँग्रेजों का राज्य स्थापित होगया, और जो देशी राज्य बच गये उन्होंने कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। कम्पनी के इस एकछत्र राज्य के खिलाफ कुछ वर्ष बाद ही सारे देश में सैनिकों ने एक घोर विद्रोह किया, जिसके फलस्वरूप कोटे में भी कई मास तक अशान्ति और अराजकता का भयंकर ताण्डव होता रहा।

इसके कारण—इस असन्तोष के कारण कुछ राजनैतिक थे और कुछ सामाजिक। लार्ड डलहौजी ने यह नीति जारी की कि जिस रईस के औरस पुत्र न हो उसका राज्य उसके मरने के बाद कम्पनी के राज्य में मिला लिया जावे। यह नीति कई राज्यों पर लागू की गई। अवध के नवाब को कुप्रबन्ध के कारण गद्दी से उतार कर उसका सब इलाका छीन लिया था। द्वितीय बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब को अपने पिता की आठ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन से वंचित कर दिया था। दिल्ली सम्राट् बहादुरशाह की प्रतिष्ठा कम करदी थी। इसके अतिरिक्त अँग्रेजों के वैज्ञानिक आविष्कारों को भारतीय जनता भूतविद्या समझती थी। वास्तव में यह समय नवयुग का आकस्मिक आगमन था जिसका स्वागत करने के लिये भारतीय मस्तिष्क अभी तैयार नहीं हो पाया था। इसके अतिरिक्त भारतीय सैनिक कम्पनी की नीति से असन्तुष्ट थे। कहा जाता है कि सैनिकों को ऐसे कारतूस दिये गये थे जिनमें गौ और सूअर की चर्बी लगी हुई थी और जिनको मुँह से

काटना पड़ता था, इन कारणों से सैनिकों में असन्तोष की ज्वाला एकदम धधक उठी।

देश व्यापी गदर—बंगाल, प्रयाग, लखनऊ, कानपुर, मेरठ, दिल्ली, लाहौर, ग्वालियर, झाँसी, कालपी आदि स्थानों की सेनायें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध होगईं। कई स्थानों पर अँग्रेज अफसर मारे गये और कई स्थानों पर असैनिक अँग्रेज, स्त्रियाँ और बच्चे कत्ल किये गये। इस विद्रोह की लहर राजपूताने में घुसे बिना कैसे रह सकती थी? परन्तु इस प्रान्त में गदर उन्हीं स्थानों पर हुआ, जहाँ कम्पनी की फौजें रहती थीं। इस समय राजपूताने में स्थान स्थान पर अँग्रेजी सेनायें नियत थीं। इनमें ब्रिटिश भारत के कई हजार सैनिक थे। इन लोगों की स्वभावतः ब्रिटिश भारत के सैनिकों से सहानुभूति थी। ये रात दिन ब्रिटिश भारत के विद्रोह की खबरें सुनते थे। वहाँ के सैनिक इनके पास विद्रोह करने के लिये सन्देश पहुँचाया करते थे। इसलिये राजपूताने में जहाँ भी कम्पनी की सेनायें थीं, वहाँ विद्रोह होने लगा। कम्पनी की फौजों में केवल एक मेवाड़ की पल्टन थी जो विद्रोह में सम्मिलित नहीं हुई क्योंकि इसमें अधिकतर राजपूताना के भील और राजपूत थे। दूसरी फौजें बहुत प्रबल प्रयत्न करने पर भी वश में नहीं रहीं और जहाँ तहाँ रक्तपात होने लगा।

राजपूताने का ए० जी० जी०—इस समय सम्पूर्ण राजपूताना अँग्रेजों के कब्जे में आचुका था। सब रियासतों ने कम्पनी सरकार के साथ सन्धियाँ करली थीं। कम्पनी का ए० जी० जी० अर्थात् गवर्नर जनरल का एजेन्ट अजमेर में रहा करता था और राजपूताने के सम्पूर्ण राज्यों का इस समय की भाँति नियन्त्रण करता था। सम्वत् १९१४ में राजपूताने का ए० जी० जी० जार्ज लारेन्स था। यह बड़ा अनुभवी

शासक और सैनिक था। अफगानिस्तान के प्रथम युद्ध में इसने बड़े साहस और वीरता के साथ कार्य किया था। इसके बाद पेशावर में असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट रह चुका था। सिक्खों के दूसरे युद्ध में छत्रसिंह ने इसके परिवार को कैद कर लिया था। वहाँ से छुटकारा पाने के बाद वह पेशावर में डिप्टी कमिश्नर रहा था। सम्वत् १९०७ में वह मेवाड़ राज्य का पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त हुआ था और सन् १८५७ के मार्च में राजपूताने का ए० जी० जी० बनाया गया था।

नसीराबाद में गदर—सैनिक दृष्टि से अजमेर राजपूताने का दिल्ली था। अजमेर के किले में उस समय बंगाल नेटिव इन्फेन्ट्री की एक कम्पनी रहती थी और एक कम्पनी मेरवाड़ा बटेलियन कहलाती थी। मेरवाड़ा कम्पनी में कई जातियों के सैनिक थे। इसलिये उनको बंगाल की सेना से कोई सहानुभूति नहीं थी, परन्तु तो भी जार्ज लारेन्स को अजमेर के किले की रक्षा के विषय में भय था। राजपूताने में जहाँ तहाँ अशान्ति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। सैनिकों में दबी हुई हलचल थी और प्रत्यक्ष में शान्ति होते हुये भी इस बात की आशंका थी कि न जाने किस क्षण उत्पात हो उठे। अजमेर के किले में प्रचुर मात्रा में गोला बारूद था। यदि वह इन विद्रोहियों के हाथ में आजाता तो स्थिति भयावह होजाती। इसलिये जार्ज लारेन्स ने दीसा के अफसर को लिखा कि नसीराबाद में सेना भेजी जावे। उधर वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट जॉन कॉलविन ने अपने हुक्म से ब्यावर की सेना अजमेर भेज दी थी। इसी बीच में मालूम हुआ कि नसीराबाद की सेना बागी होगई। बागी और भक्त सेना में लड़ाई हुई, जिसमें कप्तान स्पोटिसवुड और कोरनिट न्यूबरी मारे गये और कप्तान हार्डी तथा कप्तान लॉक सख्त घायल हुये। यह हालत देखकर बचे हुये अँग्रेज

अफसर, स्त्री और बच्चों के साथ वहाँ से भाग निकले। विद्रोही सैनिक छावनी को लूट कर और जलाकर दिल्ली की ओर रवाना होगये।

मेजर बर्टन नीमच गये—जब मेरठ और दिल्ली विद्रोहियों ने अपने अधिकार में कर लिये तो अँग्रेज अफसरों को यह भय होने लगा कि कहीं नीमच के सैनिक भी विद्रोही बन जायँ। इसलिये सैनिकों को वफादार बनाये रखने के निमित्त अँग्रेज अफसर अपने परिवारों के साथ सैनिकों में रहने लगे और उनके साथ बड़े स्नेह का व्यवहार करने लगे। इसी समय नीमच के कमान्डिंग अफसर कर्नल मेकडोनेल्ड ने कोटे के पोलिटिकल एजेण्ट मेजर बर्टन को नीमच बुलाया। इस समय सर्वत्र अशान्ति थी और अँग्रेजों का जीवन कहीं भी सुरक्षित नहीं था। कोटे में जो 'कोटा कन्टिन्जेन्ट' नामक अँग्रेजी सेना रहती थी, उसका भी रुख बदला हुआ था। इसलिये कोटा नरेश ने मेजर बर्टन के साथ रक्षा के लिये अपनी सेना भेजी। इस सेना के साथ बोरदे के महाराजा बख्तावरसिंहजी, कुनाड़ी के राज अर्जुनसिंहजी, रिसालदार महमूद खाँ और फौजबख्शी देवीलालजी भेजे गये। मेजर बर्टन नीमच पहुँचा। वहाँ पर हिफाजत के लिये उदयपुर, बूँदी, झालावाड़ और टोंक से भी सेनायें आई हुई थीं। वहाँ कोटे की सेना अँग्रेज अफसरों की रक्षा के लिये सदैव सचेत और तैयार रहती थी। इस विषय में नीमच छावनी के अफसर कर्नल इलियट ने कोटा नरेश को कई पत्र लिखे और एक तोप कोटे की सेना के भेंट की जो इस समय बल्देव बुर्ज पर स्थित है[1]।

वापिस आये और उनसे रामसिंहजी ने गढ़ में रहने का आग्रह किया—कार्तिक मास के आरम्भ में मेजर बर्टन भी कोटे वापिस

---

(१) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

आगया। जब वह महाराव रामसिंहजी से गढ़ में मिला तो उन्होंने उसको सचेत किया कि इस समय सैनिक विद्रोह की खबरें कोटे में भी खूब फैल रही हैं। 'कोटा कन्टिन्जेन्ट' ही नहीं, बल्कि रियासत की सेना में भी इस बात की चर्चा प्रायः हुआ करती है। राजकीय सेना में अधिकांश मुसल्मान हैं और राजपूत कम हैं। अतः आप गढ़ में रहें। मेजर बर्टन बड़ा निर्भीक वीर सैनिक था। सर्वत्र खतरा अनुभव करते हुये भी वह इस बात को आत्मगौरव के विपरीत समझता था कि प्राणों की रक्षा के निमित्त महलों में छिपा जावे। कोटा नरेश ने उससे यह भी कहा कि आप नान्ते के महलों में रहें, परन्तु उसने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया। कोटा दरबार ने इत्र पान करके मेजर बर्टन को विदा किया और वह एजेन्सी बँगले में चला गया। महाराव रामसिंहजी ने अपने विश्वसनीय सरदार राज अर्जुनसिंहजी को और महाराजा शिवनाथसिंहजी को उसके साथ भेजना चाहा, परन्तु मेजर बर्टन ने कहा कि हमारे साथ सिक्खों को भेजो। तदनुकूल उनके साथ हरदाससिंह रिसालदार अपने रिसाले के साथ और दादूपन्थियों की जमात भेजी गई।

कोटा कन्टिन्जेन्ट का गदर—रात भर मेजर बर्टन अपने बँगले में सुख से सोया। दूसरे दिन प्रातःकाल क्या देखता है कि कोटा कन्टिन्जेन्ट तथा राजकीय सेना सब बागी होगई और मेजर बर्टन के बँगले को चारों ओर से घेर लिया। इस स्थिति को देख कर सिक्ख और दादूपन्थी सैनिक भाग गये। मेजर बर्टन असहाय बँगले में घिर गया। फिर भी मेजर बर्टन ने साहस नहीं छोड़ा। वीरतापूर्वक अर्से तक वह विद्रोहियों का सामना करता रहा और गोलियाँ चलाता रहा। जब विद्रोहियों ने देखा कि बन्दूकों से काम नहीं चलता तो उन्होंने बँगले की तरफ तोपें सीधी कर दीं। यह खबर जब महाराव रामसिंहजी

ने सुनी तो स्वयम् घोड़े पर सवार होकर मेजर बर्टन की रक्षा के लिये जाने लगे। उस समय अजीटन नबीशेरखाँ ने घोड़े की बाग पकड़ कर कहा कि "आप जाकर क्या करेंगे ? सारी सेना विरुद्ध है। शहरपनाह की तोपें विद्रोहियों ने अपने कब्जे में करली हैं। सैनिक अधिकांश बागी मुसल्मान हैं। राजपूत नाममात्र के थोड़े बहुत हैं जिनसे काम नहीं चल सकता"। इस भयावह और प्रतिकूल परिस्थिति को देख कर महाराव रामसिंहजी वापिस महल में चले गये।

मेजर बर्टन का बध—बागियों ने डॉक्टर सेडलर और मिस्टर सेवील को मार डाला और बँगले पर गोलाबारी शुरू रक्खी। बँगले के अन्दर मेजर बर्टन और उसके दो पुत्र थे। उनके साथ एक स्वामि-भक्त, वीर रेबारी था। चार घंटे तक बँगले पर गोले और गोलियों की घोर वर्षा होती रही। चारों वीर अपूर्व धैर्य और साहस के साथ आत्म-रक्षा करते रहे। अन्त में बागियों ने बँगले में आग लगादी। जब मेजर बर्टन ने देखा कि स्थिति निराशाजनक है तो उसने आत्मसमर्पण का प्रस्ताव किया और यह शर्त रक्खी कि उसके दोनों पुत्रों के प्राणों की रक्षा की जावे। परन्तु दोनों वीर नवयुवकों ने यह बात स्वीकार नहीं की और चाहा कि चारों को साथ साथ प्राणोत्सर्ग करना चाहिये। इसी अरसे में बागी लोग सीढ़ियाँ लगा कर बँगले में घुस गये। छत पर पहुँचे और मेजर बर्टन तथा उसके दोनों पुत्रों को कार्तिक कृष्णा १३ को तलवार के घाट उतार दिया। मेजर बर्टन का शिर शहर में घुमाया गया और फिर तोप से उड़ाया गया। बागियों का इतना जोर होते हुये भी इन तीनों बाप बेटों को जैसे तैसे दरबार के हुक्म से बाग में विधिपूर्वक दफना दिया गया[1]।

(१) फोरेस्ट : हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी जिल्द ३, पृष्ठ ५५५–५६।

विद्रोहियों के नेता—बागी फौज के दो मुखिया थे। लाला जयदयाल कायस्थ और मेहराबखाँ पठान। जयदयाल ब्रजनिवासी था, मेहराबखाँ पठान करौली का रहने वाला था और कोटा कन्टिन्जेन्ट में अफसर था। तीसरा उल्लेखनीय व्यक्ति था इसरारअली अजीटन का लड़का। इसरारअली अजीटन बड़ा स्वामिभक्त था। महाराव किशोरसिंहजी के शासनकाल में इसने बड़ी ईमानदारी के साथ नौकरी की थी। जालिमसिंह से तंग आकर जब किशोरसिंहजी बड़ी विपत्ति के साथ बूँदी, मथुरा और वृन्दाबन होते हुये दिल्ली पहुँचे थे तो इसरार अली उनके साथ था। अपने मालिक के साथ उसने भी अनेक विपत्तियाँ सही थीं और माँगरौल के युद्ध में वह वीरतापूर्वक लड़ा था। ऐसे स्वामिभक्त पुरुष का लड़का भी बागियों के चक्कर में आगया और अपनी मातहत फौज के साथ कोटा नरेश के विरुद्ध लड़ा।

कोटा नरेश के विरुद्ध—त्रयोदशी अर्थात् धन तेरस का दिन कोटा नगर में घोर संकट का समय था। बागियों ने किले की तोपों के मुँह गढ़ की ओर फेर दिये थे। महाराव रामसिंहजी दो तीन स्वामिभक्त सरदारों के साथ गढ़ में बन्द थे। उनकी रक्षा के लिये या तो थोड़ा सा गढ़जाब्ता था या थीं महलों की दृढ़ दीवारें। मेजर बर्टन को मारने के बाद बागियों का साहस वास्तव में बहुत बढ़ गया था। जो सैनिक अभी बागियों से नहीं मिले थे, वे भी अब उनके साथ मिलने लगे। शहरपनाह पर इन लोगों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया और दरवाजों पर अपना जाब्ता नियुक्त कर दिया। इसलिये दरबार की सहायता के लिये बाहर से राजपूतों का आना बन्द होगया। कोटा नरेश का शासन केवल गढ़ के अन्दर ही अन्दर रह गया।

खरीता पकड़ा गया—मेजर बर्टन की हत्या से दरबार को

अत्यन्त शोक हुआ, परन्तु उस स्थिति में वे कर क्या सकते थे ? वे स्वयम् गढ़ में बन्द थे। राजपूत लोगों को बागी लोग नगर में घुसने नहीं देते थे। रामसिंहजी के पास गढ़ की रक्षा के लिये भी काफी आदमी नहीं थे। ऐसी अवस्था में इन्होंने दिल्ली खरीता भेजा और फौज की बगावत की सूचना दी। शहर से बाहर खरीता लेकर जाना बड़ी समस्या थी। प्रथम तो गढ़ से बाहर निकलना ही कठिन था फिर कोटा और दिल्ली के बीच का मार्ग भी सुरक्षित नहीं था। इस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत में गदर फैल चुका था। सर्वत्र लूटमार और अराजकता थी। कोटे के विद्रोहियों ने भी कोटे के सब रास्तों पर अपने आदमी नियत कर रक्खे थे। विपक्ष के लोगों को न आने देते थे, न जाने देते थे। जो लोग उदासीन थे और अपने घरू काम के लिये आते जाते थे, उनकी भी पूरी तलाशी ली जाती थी। कोटा नरेश का हरकारा खरीता लेकर दुब छुप कर येन केन प्रकारेण कोटा नगर से तो निकल गया, परन्तु जब उसने देखा कि चारों ओर के सब रास्ते रुके हुये हैं, तो वह भैंसरोड़ की तरफ बढ़ा और दुर्गम जंगल में होकर बागियों के टोंकियों से बचता हुआ आगे चला। परन्तु भैंसरोड़ के जंगल में होकर गुजरते हुये जब बागियों के आदमियों ने उसे देखा तो उनको सन्देह होगया और उसको पकड़ लिया गया। जब तलाशी लीगई तो उसके पास दरबार का खरोता निकला। इस पर उस बेचारे को बहुत मारा पीटा और खरीता लाला जयदयाल तथा मेहराबखाँ के पास पहुँचा दिया गया।

बागियों के स्वप्न—ऐसा मालूम होता है कि लाला जयदयाल और मेहराबखाँ कोटा राज्य में अपना शासन स्थापित करना चाहते थे। उनको क्या पता था कि अब इस प्रकार की लूटमार से राज्य स्थापित होना बन्द होगया है। मध्यकाल में जिसके पास हजार पाँच सौ सैनिक

और घुड़सवार होते थे, वही अपने लिये छोटा मोटा राज्य स्थापित कर लिया करता था। परन्तु अब समय बदल चुका था। सन् १८५० से सम्पूर्ण भारत अँग्रेजों के अधीन होचुका था। आपस की लड़ाइयाँ बन्द करदी गई थीं। जिस रईस को शिकायत होती थी, उसको अँग्रेज सरकार का दरवाजा खटखटाना पड़ता था। देश भर का शासन दृढ़ और सुसंगठित हो चुका था। अँग्रेजों की शक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि उसका सफलतापूर्वक मुकाबला करना जयदयाल या मेहराबखाँ जैसे आदमियों के लिये बिल्कुल असम्भव था। सम्पूर्ण उत्तर भारत में गदर अवश्य फैल चुका था, परन्तु अन्त में अँग्रेजों का विजयी होना भी अवश्यम्भावी था। उनकी सामुद्रिक शक्ति और स्थल शक्ति का तथा उनकी आश्चर्यकारिणी संगठन शक्ति का बागी लोग क्या सामना कर सकते थे? परन्तु अपने अज्ञान के कारण दिल्ली में नामधारी मुगल बादशाह, कानपुर में नाना साहिब और मध्यभारत में ताँतिया टोपी वगैरह अपने अपने राज्य स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे। जयदयाल और मेहराबखाँ भी ऐसे ही हवाई किले बनाया करते होंगे। वे समझते थे कि कोटा नरेश को जब उन्होंने गढ़ में बन्द कर दिया है तो अब बात ही क्या रह गई है? उनको यह पता नहीं था कि उनकी बगावत कोटा दरबार के ही खिलाफ नहीं है बल्कि अँग्रेज सरकार के खिलाफ है। बागी लोग चाहते थे कि दरबार घेरे से तंग आकर गढ़ भी उनके सुपुर्द कर दें और हाड़ौती में उनका राज्य स्थापित होजाये। यदि गढ़ उनके सुपुर्द हो भी जाता तो भी यह बात निश्चित थी कि अन्त में उनको फाँसी ही लगती।

लेखकों को कैद किया—खरीते का हाल सुन कर बागी लोग और उत्तेजित होगये। जो लोग फारसी लिखना पढ़ना जानते थे, तथा जिन लोगों को विद्रोही लोग खरीता लिखने के योग्य समझते थे,

उनको पकड़ना शुरू किया। रतनलाल मुसाहिब, धनरूप मुनीम, चतुर्भुजदास मुन्शी, आदि फारसी लिखने वाले थे। भैरूबख्श कायस्थ, छगनलाल बख्शी उमरावान, धाभाई लालजीराम मुसाहिब, देवीलाल फौजबख्शी आदि अहलकार हिन्दी या उर्दू में काम करते थे। बागियों ने इन सबको गिरफ्तार करके अपने लश्कर में कैद कर दिया।

राज की सहायतार्थ राजपूत आये—इस प्रकार अर्से तक कोटे में बागियों का अधिकार रहा। फिर धीरे धीरे दरबार की सहायता के लिये बाहर से राजपूत आने लगे। शहरपनाह पर बागियों का अधिकार था। अतः दरवाजों में होकर कोई नहीं आसकता था। उधर चम्बल की नावें भी बागियों ने अपने अधिकार में कर रक्खी थीं। रात के समय नदी के दूसरे किनारे पर देशी या परदेशी राजपूत जो राज की सहायता के लिये आते थे, उनको नाव वालों से मिल कर बड़ी कठिनता के साथ गढ़ में घुसाया जाता था। कोटे पर बागियों का अधिकार होजाना राजपूत घोर विपत्ति समझते थे। इसलिये स्थिति के अनुकूल सैनिक साथ लेकर कितने ही राजपूत सरदार कोटे की सहायता और सेवा करने के लिये आये। इनमें उल्लेखनीय हैं:—भैंसरोड़ के रावत अमरसिंहजी के छोटे भाई मोहब्बतसिंहजी, गैंते के महाराजा चतुर्भुजसिंहजी, पीपल्दे के ठाकुर अजीतसिंहजी, और कोयले के आप अजीतसिंहजी तथा काका सरदारसिंहजी। सब मिल कर पन्द्रह सौ राजपूत किले में इकट्ठे होगये जिससे पहले की अपेक्षा किला अधिक सुरक्षित होगया। जो मुसलमान सैनिक अन्दर थे, उनको बाहर निकाल दिया गया। राजपूतों के अतिरिक्त दूसरी जाति का कोई सैनिक किले के अन्दर नहीं रहने दिया।

दिल्ली से पत्रव्यवहार—इस प्रकार रक्षा का साधन एकत्र करके महाराव रामसिंहजी ने दूसरा कार्यक्रम निश्चित किया। कविराजा

भवानीदानजी की सलाह से यह निश्चय हुआ कि बड़े साहब के पास सब हाल लिख कर किसी न किसी प्रकार भेजा जावे। खरीते लिखने वाले सब अहलकार इस समय बागियों ने अपने लश्कर में कैद कर रक्खे थे। अतः बड़ी कठिनाई के साथ खंडेराव नामक एक दक्षिणी पण्डित को तैयार किया गया। देहली में लाला स्वरूपकिशोर नामक कोटे का वकील रहता था। उसके पास प्रायः दैनिक वृत्त लिख कर भेजा जाने लगा।

गढ़ पर बागियों के हमले—अब तक तो बागी लोग शहर पर कब्जा करके ही सन्तुष्ट थे परन्तु जब उनको मालूम हुआ कि दरबार गुप्त रूप से अँग्रेज सरकार को अपनी स्थिति से सूचित करते रहते हैं, तो वे और भड़के और गढ़ पर आक्रमण करने लगे। इस समय भैंसरोड़ से आई हुई सेना कुछ बहाना करके वापिस लौट गई, परन्तु हाड़ौती के इलाके से आये हुये सरदार प्राणपण से शत्रुओं का सामना करने के लिये तैयार होगये। जब बाहर के बलवाइयों ने यह सुना कि कोटे में दरबार को गढ़ में बन्द कर दिया गया है और सम्पूर्ण शहर पर बागियों का अधिकार स्थापित होगया है तो सैकड़ों बागी कोटे के बागियों में सम्मिलित होने के लिये आने लगे। इनमें उल्लेखनीय थे रिसालदार हीरासिंह और टोंक का नसीर मुहम्मद। बागियों ने गढ़ में प्रवेश करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उनको सफलता नहीं हुई। राजपूत सरदार ऐसी वीरता के साथ लड़े कि जब बलवाइयों का हमला होता था तभी उनको हार कर वापिस लौटना पड़ता था।

नगर को लूटा—यह स्थिति देख कर बागियों ने अपने मोरचे बदल दिये। गढ़ पर हमला करने के बजाय अब वे नगर के सेठ साहूकारों को लूटने लगे और राजपूत सरदारों की हवेलियों पर हमला

करने लगे। सब से बड़ा हमला कोयले की हवेली पर हुआ। यहाँ पर राजपूत सैनिक वड़ी वीरता के साथ लड़े। दो दिन तक बागियों के हमले जारी रहे और राजपूत लोग सफलतापूर्वक हवेली की रक्षा करते रहे। अन्त में मेहराबखाँ ने हवेली पर तोप से गोले मारने शुरू किये। उधर दरवाजा तोड़ कर घुसने का प्रयत्न भी जारी रक्खा। इस लड़ाई में धोंकलसिंह नामक राजपूत ने प्रशंसनीय वीरता दिखाई और दुर्जनशाल, गिरवरसिंह, दुर्जनशाल राठौड़ आदि राजपूत लड़ते लड़ते मारे गये। तब शत्रु लोग हवेली में घुस पड़े और माल असबाब लूट कर लेगये। सेठ दानमलजी की हवेली पर भी बड़ा हमला हुआ। बागी लोग बार बार हमले करते थे और बार बार हटा दिये जाते थे। स्वयम् सेठजी के प्राण संकट में थे। उस समय राज साहब कुन्हाड़ी हाथी पर बैठ कर बागियों को चीरते हुये सेठजी की सहायतार्थ आये और सेठजी को अपने साथ हाथी पर बिठा कर कुन्हाड़ी लेगये। अन्य कई हवेलियों पर भी ऐसे ही हमले हुये, इनमें कोई हवेली लुट गई और कोई बच गई।

राजभक्तों ने बागियों को हटाया—जब दरबार को किले में बन्द हुये बहुत दिन बीत गये तो सरदारों ने सोचा कि शत्रुओं के दमन के लिये अब विशेष प्रयत्न करना चाहिये। इस समय गढ़ में राजपूतों की संख्या भी सन्तोषजनक थी। अब यह ठहरा कि केवल गढ़ की रक्षा से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये बल्कि शहर को वापिस छीनने के लिये भी बागियों पर हमला करना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार एक हजार राजपूतों के दो विभाग किये गये। एक हिस्से ने कैथूनी पोल की तरफ बढ़ना शुरू किया और दूसरे ने पाटनपोल की ओर। जो हिस्सा पाटनपोल की ओर बढ़ा उसमें कविराजा भवानीदानजी, कोयला के आपजी के काका सरदारसिंहजी, ठाकुर लक्ष्मणदानजी,

गैंता महाराजा के काका सलामतसिंहजी, उनके लड़के मोतीसिंहजी, आदि सरदार सम्मिलित थे। इधर कैथूनीपोल की ओर बढ़ने वालों में थे महाराजा शिवनाथसिंहजी, किलेदार काल्हसिंहजी, महाराजा महासिंहजी, महाराजा माधोसिंहजी, और देवीसिंहजी आदि। दोनों दल गोलियाँ चलाते हुये और काटते मारते इधर कैथूनी पोल और उधर पाटनपोल तक पहुँच गये। बागियों के पास विपुल सेना थी और अनेक तोपें तथा बारूद, परन्तु राजपूत लड़ रहे थे आत्मरक्षा के निमित्त और बागियों का उद्देश्य था स्वार्थ। साथ ही राजपूतों में वीरता और साहस भी अधिक था। अतः एक ही दिन की लड़ाई में कैथूनीपोल और पाटनपोल का हिस्सा बागियों से छीन लिया गया।

बागियों पर घोर आक्रमण—ये दोनों दल दरवाजों तक तो पहुँच गये, परन्तु बागी पूरी तरह दबे नहीं। रात भर लड़ाई होती रही। शहर की हवेलियों पर चढ़ कर राजपूत लोग बागियों पर गोलियाँ बरसाते रहे। उधर बागी भी साहसपूर्वक उनका सामना करते रहे। इस प्रकार रात भर तोप, बन्दूक और तलवारों से लड़ाई होती रही। न बागियों ने राजपूतों को आगे बढ़ने दिया और न राजपूतों ने बागियों को वापिस दरवाजे छीनने दिये। प्रातःकाल होने पर लड़ाई ने और भी घोर रूप धारण किया। कैथूनीपोल पर विशेष कर भयंकर मुठ भेड़ हुई। राजपूत सरदारों ने कैथूनीपोल के बाहर निकल कर बागियों की तोपों पर हमला किया। तोपें तो छीन ली गईं, परन्तु इस आक्रमण में काल्हसिंह और महासिंह जुझारसिंहोत दो वीर राजपूत सरदार मारे गये। अतः राजपूतों को पीछा हटना पड़ा और अब वे दरवाजा बन्द करके केवल आत्मरक्षा करने लगे। पाटनपोल की तरफ भी राजपूतों ने दरवाजों के बाहर निकल कर आगे बढ़ना चाहा, परन्तु दरवाजे के बाहर ही बागियों की बारह तोपें जमी हुई थीं जो आक्र-

मणकारी दल पर एक साथ दागी गईं। इनकी ज्वाला में कितने ही राजपूत वीर सैनिक स्वाहा होगये। इनमें ठाकुर लक्ष्मणदानजी घायल हुये और मेजर भोजराज मारा गया। तो भी राजपूत आगे बढ़ते गये और उन्होंने शत्रुओं की कई तोपें छीन लीं। राजपूत लोग और आगे बढ़ना चाहते थे परन्तु इस समय उनके सौ से ऊपर सैनिक मारे जा चुके थे और बागियों का जोर वैसा ही बना हुआ था, इसलिये वे तोपों को घसीट कर दरवाजे के अन्दर ले आये, और फाटक बन्द करके आत्मरक्षा करने लगे।

कामदारखाँ बागी मारा गया—बागियों के लगभग सौ सैनिक इस अर्से में पाटनपोल के अन्दर घुस गये थे और एक हवेली पर कब्जा करके उसके अन्दर छिपे हुये बैठे थे। उन लोगों ने राजपूतों पर एकाएक हमला कर दिया और बड़ी लड़ाई की। इस बागी दस्ते का मुखिया कामदारखाँ नामक मुसलमान था। वह आश्चर्यकारी वीरता के साथ लड़ा। उसने पीपल्दे के ठाकुर मोतीसिंहजी और ठाकुर लक्ष्मणदानजी दोनों पर वार किये जिससे मोतीसिंहजी आहत हुये। कामदारखाँ ठाकुर लक्ष्मणदानजी के वार से मारा गया। उसके साथियों में से कुछ लड़ते हुये धराशायी हुये और शेष ने शस्त्र डाल कर आत्मसमर्पण कर दिया।

आठ सौ बागी मारे गये—अब राजपूतों ने किले की दीवार पर चढ़ कर बागियों पर गोलियाँ बरसाना शुरू किया। उधर बागियों ने भी तोपों के फायर आरम्भ किये। राजपूतों में से लगभग सौ सैनिक तो पहिले ही हमले में मर चुके थे, फिर बहुत से कामदारखाँ के साथ लड़ते हुये मारे गये। अब बागियों की तोपों के गोलों से भी शनैः शनैः वीर राजपूत काम आते जाते थे। इतने में ही उनकी सहायतार्थ गैंते के महाराजा चतुर्भुजसिंहजी अपने काका कल्यासिंहजी

के साथ सौ राजपूतों को लेकर आपहुँचे। उन्होंने मोरचों पर लड़ना शुरू किया और दो पहर तक खूब लड़ाई जारी रही। शाम होते होते बागियों के लगभग आठ सौ सैनिक मारे गये। इनमें नारायण पल्टन का अजीटन सरदारअली भी था।

राजभक्तों को बागियों ने पुनः पीछे हटादिया और गढ़ पर गोलाबारी की—अब लड़ाई होते हुये करीब दो दिन हो चुके थे। सैनिक भूखे प्यासे निरन्तर लड़ रहे थे। बागियों की घोर क्षति होचुकी थी, परन्तु उनकी संख्या अधिक थी। राज के तीन सौ सैनिक मारे जा चुके थे। उधर बागियों को हीरासिंह और महरावखाँ उत्साह दिला रहे थे। अतः बागियों ने अब और भी अधिक उत्साह और जोश के साथ लड़ना शुरू किया। मेहरावखाँ ने किले को चारों तरफ घूम कर भली प्रकार देखा और फिर सीढ़ियाँ लगा कर पटाबुर्ज पर सैनिक चढ़ा दिये और गढ़ की तरफ गोले चलाने शुरू किये। इससे गढ़ की स्थिति चिन्ताजनक होगई। विशेष कर इसलिये कि पन्द्रह सौ राजपूतों में से लगभग पाँच सौ पाटनपोल और कैथूनीपोल की लड़ाई में मारे जा चुके थे। यह हालत देख कर दोनों मोरचे छोड़ दिये गये और बचे हुये राजपूत छीनी हुई तोपों को घसीटते हुये वापिस गढ़ में जा घुसे। नगर का जो भाग वीरतापूर्वक लड़कर राजपूतों ने छीन लिया था वह फिर बागियों के हाथ में चला गया।

करौली की सेना का आना और बागियों के साथ सन्धि का प्रस्ताव—गढ़ पर लगातार गोलों की वर्षा होरही थी और बागियों का जोश बढ़ता जारहा था। गढ़ में उस समय रक्षार्थ काफी राजपूत भी नहीं थे। दरवाजे बन्द करके ज्यों त्यों आत्मरक्षा की जारही थी। इस समय खबर आई कि करौली के महाराजा मदनपालजी ने पन्द्रह सौ सैनिक भेजे हैं जो चम्बल के दूसरे किनारे से तीन कोस की दूरी

पर पड़े हुये हैं। सेना सहायतार्थ अवश्य आरही थी, परन्तु सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि उसको गढ़ में किस प्रकार घुसाया जावे। चम्बल नदी की नावों पर बागियों ने पहले ही अधिकार कर रक्खा था। अब उन्होंने और भी अधिक कठोर प्रबन्ध कर दिया। इस स्थिति को देखकर महाराव रामसिंहजी ने यह निश्चय किया कि बागियों से सुलह करली जावे और फिर भविष्य के लिये तैयारी की जावे।

गुसाईंजी ने पंद्रह दिन के लिये लड़ाई बन्द करवाई—बागियों के पास सुलह का सन्देश भेजा गया। वे बातचीत करने पर तैयार होगये। यह निश्चय हुआ कि दोनों पक्ष के लोग मथुरेशजी के मन्दिर में मिलें और महाराज कन्हैयालालजी की मध्यस्थता में सुलह की बातचीत की जावे। राजकी ओर से अर्जुनसिंहजी झाला, कविराजा भवानीदानजी और ठाकुर लक्ष्मणदानजी मन्दिर में पहुँचे। उधर से लाला जयदयाल और मेहराबखाँ तीन हजार सैनिकों को साथ लेकर आये। प्रारम्भिक बातचीत करके दोनों पक्ष वापिस अपने अपने स्थान पर पहुँच गये। जब दरबार को हाल मालूम हुआ तो उनको यह बात रुचिकर मालूम नहीं हुई कि गुसाईंजी को मध्यस्थ बनाकर सुलह की जावे और फिर मौका पाकर लड़ाई शुरू करदी जावे। तब कविराजा भवानीदानजी ने समझाया कि "आपत्तिकाल में सब उचित है। इसके अतिरिक्त बागियों की सेना काबू से बाहर होरही है। इसलिये विपक्षी ही पहिले सन्धि को तोड़ेंगे"। अन्त में निश्चय हुआ कि सुलह कर ली जावे। दूसरे दिन गुसाईंजी को गढ़ में बुलाया गया और महाराव रामसिंहजी उनसे हवामहल में मिले। लाला जयदयाल और मेहराबखाँ भी वहाँ पहुँचे और गुसाईंजी के कहने से यह निश्चय हुआ कि लड़ाई बन्द करदी जावे। उस समय न तो गुसाईंजी को पता था और न बागी सरदार जानते थे कि उनके द्वारा की हुई सन्धि कोई सन्धि

नहीं है। इस विषय में अन्तिम निर्णय अँग्रेज सरकार के हाथ में था। कम्पनी के द्वारा की हुई सन्धि ही वास्तव में सन्धि हो सकती थी। यदि उस समय कोटे के महाराव सन्धि के द्वारा बागियों को अपने राज्य का कोई हिस्सा भी देदेते तो भी अँग्रेज सरकार अन्त में उसको बागियों से अवश्य छीन लेती। इस सन्धि में कोई शर्त नहीं की गई। दोनों पक्षों ने पन्द्रह दिन के लिये लड़ाई बन्द करदी। इस सुलह के बाद गदर का उतार आरम्भ हुआ और राजपक्ष प्रबल होने लगा। मेजर बर्टन का बध कार्तिक कृष्णा १३ को हुआ था और यह सुलह माघ शुक्ला ४ को हुई। यह चार मास का अर्सा राजा प्रजा के लिये घोर संकट का था। सुलह के बाद ये काले बादल शनैः शनैः हटने लगे।

करौली की सेना गढ़ में पहुँची—करौली की सेना के नायक ठाकुर मलकपालजी और छीतरपालजी एक दिन नाव वालों को फुसला कर नदी उतर गये और गढ़ में महाराव रामसिंहजी से उन्होंने रात में बातचीत की। बलवाईयों के डर से उनको रात में ही वापिस कर दिया और फिर विचार किया जाने लगा कि करौली की सेना को किस भाँति इधर उतारा जावे। तब ठाकुर लक्ष्मणदानजी जयदयाल के डेरे पर गये। उस समय उसने शराब पी रक्खा था और उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं थी। लक्ष्मणदानजी ने समझा बुझा कर उससे यह लिखवा लिया कि करौली की सेना को आतिथ्य-सत्कार निमित्त गढ़ में आने दिया जावे। इधर यह इजाजत लिखवाई, उधर नाव वालों को मिलाया। इस प्रकार दूसरे दिन प्रातःकाल होते होते करौली की सम्पूर्ण सेना को गढ़ में घुसा लिया। जब यह सूचना बागियों के दल में पहुँची तो सब आश्चर्य करने लगे और जयदयाल को भी अपनी भूल पर घोर पश्चात्ताप होने लगा।

बागियों की धमकी और गुसाईंजी का महाराव रामसिंहजी को उत्तर—जब सेना तीन चार दिन तक गढ़ में रह चुकी तो बागियों ने कहलाया कि उसको शीघ्र वापिस कर दिया जावे वरना गढ़ पर आक्रमण किया जावेगा। अब महाराव रामसिंहजी असमंजस में पड़ गये। सेना उतारी इसी उद्देश्य से थी कि बलवाइयों का सामना किया जावे, परन्तु सन्धी की बातचीत गुसाईंजी की मध्यस्थता में हुई थी और दोनों पक्ष के लोग उनको धार्मिक गुरू मानते थे। इसलिये सन्धि की शर्त को तोड़ कर महाराव रामसिंहजी उनको कठिनाई में नहीं डालना चाहते थे। अतः बागियों को तो यह उत्तर देदिया गया कि कल होली है। त्यौहार में एक दिन सम्मिलित होकर सब सेना वापिस करौली चली जावेगी। इधर गुसाईंजी से कहलाया कि बागी लोग आक्रमण करने की धमकी देते हैं, आपकी क्या आज्ञा है? महाराज ने कहला दिया कि बागियों के सरदार हमारा कहना नहीं मानते हैं। दरबार उचित समझें वैसा करें।

फिर लड़ाई शुरू हुई और बागी पीछे हटे—इसी अर्से में हाड़ौती के और कोटरियात के बहुत से सरदार और सैनिक दरबार की सेवा करने को आपहुँचे थे। उधर बागियों की भी शक्ति बढ़ गई थी। जब अँग्रेजी सेना ने बागियों को खदेड़ कर मन्दसौर से हटाया था तो वे लोग भाग कर कोटे आगये थे और यहां के बलवाइयों से मिल गये थे। कोटे में पहिले ही बागी सैनिकों की संख्या बीस हजार के लगभग थी। अब उनमें दस हजार और आ मिले। लड़ाई पहिले बागियों ने आरम्भ की। जब उन्होंने देखा कि करौली की सेना वापिस नहीं जाती है तो हमला शुरू कर दिया। गढ़ पर तोपों से गोले फेंके जाने लगे और गढ़ में घुसने का प्रयत्न भी किया जाने लगा। यह हालत

देख कर करौली की सेना लड़ने को तैयार हुई। हाड़ौती के राजपूत सरदारों ने भी अपने अपने राजपूत सैनिकों के साथ उसकी सहायता की। साहस और उत्साह के साथ प्राणों की बाजी लगा कर गढ़ से निकले। बागियों का सामना हुआ और घोर युद्ध आरम्भ होगया। बागियों की संख्या अधिक थी। उनके पास तोपें थीं और बारूद भी, परन्तु उनमें न संगठन था और न ध्येय की एकता। जितने सैनिक थे सबके अलग अलग उद्देश्य थे। इधर राजपक्ष सब सुसंगठित था और स्नेह तथा भ्रातृभाव में बँधा हुआ था। अतः राजपूतों के हमलों को बागी लोग नहीं रोक सके। राजपूत आगे बढ़ते गये और बागी सेना निरन्तर पीछे हटती गई। सायंकाल के पहिले ही मुख्य नगर अर्थात् पाटनपोल और कैथूनीपोल के अन्दर का हिस्सा राजपक्ष ने अधिकृत कर लिया और दोनों दरवाजों के फाटक बन्द कर दिये। मुख्य नगर के शहर-पनाह पर राजपक्ष का अधिकार स्थापित होगया और सब तोपें उनके हाथ में आगईं। जितने मुसलमान गोलन्दाज थे, सब को कत्ल कर दिया गया और तोपों के मुँह बागियों की तरफ फेर दिये गये। फिर गढ़ के मेगजीन में से सतरह तोपें निकाली गईं और कैथूनीपोल तथा पाटनपोल के कोट पर चढ़ा दीगईं। उधर बागियों ने भी जोर से तैयारी शुरू की। उनके पास शहरपनाह की दो सौ तोपें पहिले ही थीं। पचास तोपें और तोपखाने से निकाली गईं और बीच के कोट पर रक्खी गईं। बागियों की तरफ से दो सौ पचास तोपें और बीस हजार बन्दूकों के वार शुरू हुये। राजपक्ष के पास पचास तोपें थीं और दो हजार बन्दूकें। होली का दिन था और घमासान युद्ध। सम्पूर्ण शहर में घोर संकट और सन्ताप व्याप्त होगया। ऐसा मालूम होता था कि प्रलय होने वाला है। तोपों के गोलों से कितने ही मकान नष्ट होगये और कई हजार

नागरिक मारे गये। बागियों ने कई बार हमले किये और गढ़ के दरवाजे में घुसने का प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुये। यह संघर्ष कई दिन तक चला।

अँग्रेजी सेना का आगमन—एक दिन सूचना मिली कि अँग्रेज सरकार की सेना सहायता के लिये आरही है। इस खबर से राजभक्त सैनिकों में उत्साह का संचार हुआ और वे अधिक साहस के साथ लड़ने लगे। बागियों के दल में इस खबर से घोर विक्षोभ उत्पन्न हुआ, परन्तु उनके लड़ने में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आई। चैत्र शुक्ला नवमी के दिन अँग्रेजी सेना ने नान्ते में डेरे डाले। दूसरे दिन उस सेना के अफसर चम्बल पार कर गढ़ में आये। गढ़ के ऊपर चढ़ कर उन्होंने सैनिक दृष्टि से नगर का निरीक्षण किया और मोरचे निश्चित किये।

अँग्रेज़ी तोपखाने का काम—इस समय राजपूताना प्रान्त का सेना संचालन मेजर लॉरेन्स के सुपुर्द था। उसने जनरल रोबर्ट्स को कोटे की रक्षा के लिये रवाना किया। इक्कीस मार्च को जनरल रोबर्ट्स कोटे के निकट आपहुँचा। ब्रिगेडियर मेकन उसके साथ था और उसके नेतृत्व में फर्स्ट ब्रिगेड थी। दूसरा ब्रिगेड पार्क के सुपुर्द थी। फौजी एञ्जिनियर ने चम्बल का निरीक्षण किया और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि नदी बहुत आसानी से पार की जासकती है और सेना गढ़ में पहुँच सकती है, परन्तु भारी तोपें उन कमजोर नावों में नहीं उतारी जा सकती थीं जो उस समय राज के अधिकार में थीं। इसलिये केप्टिन कम्बरलैंड और लेफ्टिनेन्ट हेग—इन दो एञ्जिनियरों ने चम्बल के बायें किनारे का भली प्रकार निरीक्षण किया और सलाह दी कि बारह पाउन्डर लोहे की तोपें सकतपुर के पास जमाई जावें जहाँ से उनके द्वारा अँग्रेजी सैनिकों की रक्षा हो सके। दूसरी जगह

कुन्हाड़ी के पास तजवीज की गई और वहाँ पर दो अठारह पाउन्डर तोपें जमाना निश्चित किया गया ताकि दूसरे किनारे रक्खी हुई बागियों की तोपों का मुकाबिला किया जावे और नगर के प्रधान हिस्से से शत्रुओं को कुन्हाड़ी की ओर आकर्षित किया जावे। चैत्र शुक्ला १२ को प्रातः काल अँग्रेजी तोपों का दगना शुरू हुआ। सकतपुर की तोपों से शत्रुओं की तोपों ने हार मानी और नावों पर जो गोले बरसाये जाते थे, वे बन्द होगये। कुन्हाड़ी के पास की तोपें नगर के बड़े बड़े मकानों पर कभी कभी गोले मारती रहीं, परन्तु शत्रुओं ने भी उसी प्रकार गोले बरसाना जारी रक्खा।

बागियों के मेगजीन और घास में आग लगाई—चैत्र शुक्ला १३ को प्रातःकाल तोपों का घोर शब्द सुनाई देने लगा। मालूम हुआ कि शत्रुओं ने बड़े आयोजन के साथ कैथूनीपोल पर हमला किया है। वे चाहते थे कि अन्दरूनी शहरपनाह को फिर छीनकर राजपूतों को पीछा गढ़ में घुसा दिया जावे। अँग्रेजी फौज और करौली की फौज ने आक्रमणकारियों को पीछा हटा दिया, परन्तु दिन भर घोर लड़ाई होती रही। तब जनरल रोबर्ट्स ने महाराव रामसिंहजी से पुछवाया कि राज का बारूदखाना जो बागियों के हाथ में है, वह किस जगह है? जब उसका ठीक स्थान मालूम होगया तो वहाँ पर बम डाला गया और बारूदखाना उड़ा दिया गया। इसके बाद घास की बागर जो बागियों के कब्जे में थी, तोप के गोले से जलादी गई। यद्यपि बारूदखाना और बागर की क्षति विद्रोहियों के लिये घोर विपत्ति थी, तो भी वे लोग वीरतापूर्वक मैदान में डटे रहे और भागे नहीं।

बागियों को शहर के आन्तरिक भाग से हटा दिया—चम्बल के बायें किनारे पर पहिले तो तोपें केवल दो जगह रक्खी गई थीं, परन्तु अब वे ना काफी समझी गईं। अतः सकतपुर के बाईं

ओर एक स्थान पर और तोपें जमाई गईं और गोलाबारी शुरू हुई। शत्रुओं के पास भी अभी काफी गोला बारूद था। इसलिये वे भी गोलाबारी करते रहे। २७ मार्च (चैत्र पूर्णिमा) के प्रातःकाल फिर बागियों ने शहर को छीनने के लिये एक प्रबल आक्रमण किया। तब बागियों पर ४३ नम्बर की अँग्रेजी पल्टन ने हमला किया और उनको वापिस हटा दिया।

अँग्रेजी सेना की शक्ति—२८ और २९ मार्च को अँग्रेजी तोपें नगर के अन्दर कई स्थानों पर जमादी गईं और प्रधान बारूद-खाने पर गोलाबारी करके उसको उड़ा दिया गया। अब निश्चय किया गया कि दूसरे दिन अर्थात् ३० मार्च को बागियों पर प्रबल आक्रमण किया जावे। इस कार्य के लिये अँग्रेजी सेना के चार भाग किये गये। प्रत्येक भाग में पाँच सौ सैनिक थे और एक प्रधान नायक। उसके नीचे दो मातहत अफसर थे और प्रत्येक अफसर के नीचे दो सौ पचास सैनिक। प्रथम भाग का नायक था लेफ्टिनेन्ट कर्नल पार्क। दूसरे का लेफ्टिनेन्ट कर्नल होम्स और तीसरे का लेफ्टिनेन्ट कर्नल रेन्स। चौथा भाग रिजर्व था और उसका प्रधान अफसर था ब्रिगेडियर मेकन। प्रत्येक भाग में जो दो मातहत अफसर थे, वे भी अँग्रेज थे। इस प्रकार सम्पूर्ण सेना में बारह अँग्रेज अफसर थे और इन सबका सेनानायक था मेजर जनरल रोबर्ट्स। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आक्रमणकारी भाग के साथ दो अँग्रेज एञ्जिनियर थे जिनके साथ दीवारें तोड़ने के औजार, किला फाँदने की सीढ़ियाँ और बारूद के बोरे आदि थे। चारों भागों में दो हजार सैनिकों में से एक हजार गोरे थे और इतने ही हिन्दुस्तानी।

कैथूनीपोल को तोड़ कर बागियों पर हमला किया—३० मार्च की रात्रि के एक बजे यह सेना चम्बल नदी को पार करने लगी। बागियों को जब मालूम हुआ तो उन्होंने रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु

ज्यों ज्यों प्रकाश बढ़ता जाता था त्यों त्यों अँग्रेजी तोपों से गोलबारी होती जाती थी, इसलिये बागियों को सफलता नहीं हुई। सात बजे तक सेना के चारों भाग नदी पार कर शहर में आ घुसे। अब यह निश्चय हुआ कि तीन भाग तीन तरफ से आक्रमण करें। एक भाग कैथूनी पोल दरवाजे को बारूद से उड़ाकर सूरजपोल की ओर बढ़ा और साथ ही दूसरे दो भाग कोट की दीवार को तोड़कर बागियों के हिस्से में घुसे। दीवार का निरीक्षण करने पर एञ्जिनियरों ने सम्मति दी कि दीवार इतनी मोटी है कि उसको तोड़ने में समय लगेगा। अतः अन्तिम निश्चय यह ठहरा कि कैथूनीपोल को उड़ाकर सेना के तीनों भाग बागियों पर हमला करने को बढ़ें। एञ्जिनियरों ने दरवाजे में बारूद के थैले भरे और आग लगाई। बात की बात में दरवाजा उड़ गया और रास्ता साफ होगया।

सूरजपोल पर अंग्रेजी सेना का अधिकार—प्रथम भाग जो लेफ्टिनेन्ट कर्नल पार्क के नायकत्व में था, दीवार के सहारे सहारे दाहिनी ओर अर्थात् दक्षिण दिशा को बढ़ा और उसके पीछे दूसरा भाग चला। तीसरा कॉलम बाईं तरफ रवाना हुआ। प्रथम भाग निर्विघ्न पटेदार बुर्ज तक पहुँच गया। वहाँ से मुड़कर दीवार के सहारे सहारे जोरावर बुर्ज तक पहुँच गया। हाईलैन्डर सैनिक बड़ी आसानी से इस पर चढ़ गये और बागी लोग अपनी तीन तोपें छोड़ कर भाग गये। यह कॉलम फिर कोट के सहारे सहारे सूरजपोल दरवाजे तक जा पहुँचा। बागियों ने उसका सामना किया, परन्तु वे लोग अधिक समय तक नहीं टिक सके और थोड़ी देर की लड़ाई के बाद पार्क ने सूरजपोल पर अधिकार कर लिया। बागी लोग भाग निकले और अपनी तीन तोपें छोड़ गये। सूरजपोल के पास प्रायः प्रत्येक गली में बागियों ने तोपें जमा रक्खी थीं और

अन्य प्रकार से रास्ते रोक रक्खे थे। पार्क जब इनकी तरफ मुड़ा तो जिधर वह गया उधर से ही शत्रु भाग निकले और उनकी तोपें उसके हाथ आती गईं। दूसरा कॉलम पटेदार बुर्ज से तीन बुर्ज के फासले तक तो आगे बढ़ा और फिर पीछे हट कर सूरजपोल की ओर मुड़ा। जब बागियों को पता चला कि सूरजपोल पर अँग्रेजी फौज का अधिकार होगया है तो रामपुरे के बागी लोगों ने सूरजपोल की ओर धावा बोल दिया। ये लोग सूरजपोल की ओर बढ़े, परन्तु तीसरा कॉलम जो कैथूनीपोल से दाहिनी ओर बढ़ रहा था, उसके सामने होकर इन लोगों को निकलना पड़ा। इस कॉलम की गोलियों के कितने ही बागी शिकार हो गये।

रामपुरे पर अँग्रेजी सेना का कब्जा और अँग्रेज एञ्जिनियर की मृत्यु—एक कॉलम होम्स के नेतृत्व में सीधा रामपुरे की ओर बढ़ा। उधर से बागी लोग पहिले ही भाग रहे थे। सूरजपोल की तरफ तो पार्क के कॉलम का ऐसा आतंक जमा कि वे लोग कोट पर चढ़ कर और रस्सों से लटक लटक कर दूसरी ओर कूदने लगे। बागियों को पहिले ही भय था कि उनको भागना पड़ेगा। अतः उन लोगों ने रस्सों का प्रबन्ध स्थान स्थान पर कर रक्खा था। एक बागी ने तो भयभीत होकर प्राण बचाने के लिये अपना घोड़ा एक बुर्ज पर चढ़ा दिया और दूसरी ओर कुदा दिया। काम तो उसने वास्तव में बड़े साहस का किया, किन्तु उसके प्राणों की रक्षा न हो सकी। वह तत्काल मर गया। उधर होम्स का कॉलम रामपुरे में जिधर बढ़ता जाता था उधर से ही बागी लोग भागते जाते थे। रामपुरे और लाड़पुरे के दरवाजे बहुत जल्द अँग्रेजी सेना के अधिकार में आगये। रिजर्व कॉलम जो अब तक कैथूनीपोल पर ही हुक्म की प्रतीक्षा कर रहा था, अब रामपुरे की तरफ बढ़ाया गया। यह शीघ्र ही बे रोक

होम्स के कॉलम में जा मिला। रामपुरा दरवाजे के पास की एक बुर्ज पर जो कुन्हाड़ी के सामने पड़ती थी, शत्रुओं ने अपनी तोपें जमा रक्खी थीं। होम्स ने आदेश किया कि इन तोपों को उतारा जावे। तदनुकूल लेफ्टिनेन्ट हेनकॉक शाही एञ्जिनियरों की पार्टी लेकर उस बुर्ज की ओर बढ़ा और तोपों को गिराने का प्रयत्न किया जाने लगा। जिस समय अँग्रेज अफसर इस प्रयास में संलग्न थे तो एकाएक बारूदखाने में आग लग गई जो इस बुर्ज में था। इससे अँग्रेजी सेना के कितने ही सैनिक मारे गये और हेनकॉक तथा लगभग दस आदमी एञ्जिनियरों के घायल हुये। हेनकॉक दूसरे दिन ही मर गया।

सब नगर पर अधिकार—ढाई बजे के लगभग बागी लोग प्रायः सब दबा दिये गये। जो लोग बड़ी बड़ी हवेलियों में घुसे हुये थे उन पर भी हमले शुरू किये गये। अधिकांश बागियों ने तो आत्म-समर्पण कर दिया, परन्तु कई स्थानों पर खासा मुठभेड़ हुई। लेफ्टि-नेन्ट केमरिन ने जब एक मकान पर आक्रमण किया तो बागियों ने उसका बड़ा सामना किया। उनमें से दो तो मारे गये, परन्तु केमरिन भी सख्त घायल हुआ। तीन बजे के लगभग सारे नगर पर अँग्रेजी सेना का अधिकार स्थापित होगया।

हरदयाल मारा गया—जब अँग्रेजी सेना प्रातःकाल हमला करने के लिये तैयार हुई थी तो महाराव रामसिंहजी भी घोड़े पर सवार होकर जनरल रोबर्ट्स के साथ हो लिये थे, परन्तु रोबर्ट्स ने मुनासिब नहीं समझा कि उनको साथ लिया जावे। अतः आग्रहपूर्वक उनको महलों में ही टिकाया गया। अँग्रेज सेना के साथ आपजी सरदार-सिंहजी, कविराजा भुवानीदानजी, ठाकुर लक्ष्मणदानजी, ठाकुर मोती-सिंहजी, महाराजा शिवनाथसिंहजी आदि सरदार सौ राजपूत सैनिक साथ लेकर चले। कैथूनीपोल पर जब दरवाजा बारूद से उड़ा कर

अँग्रेजी सेना बाहर निकली तो लाला जयदयाल के भाई हरदयाल के नायकत्व में बागियों ने उसका सामना किया। इस मौके पर राजपूत सैनिक आगे बढ़े और खासा गहरी लड़ाई हुई। हरदयाल वीरता और साहसपूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

बागियों का पीछा और बध—जब बागियों ने देखा कि अब कोटे में उनकी स्थिति किसी प्रकार भी नहीं रह सकती तो भागते भागते वे लोग उन दो कायस्थ अहलकारों को तोपों के बाँध कर उड़ा गये जिनको उन्होंने महाराव रामसिंहजी की तरफ से दिल्ली खरीता लिखने के अपराध में कैद कर रक्खा था। भागते हुये बागियों का राजपूत सरदारों ने पीछा किया और रिसालदार मुहम्मदखाँ, अकबरखाँ, दफादार मिर्जा अब्बास बेग, जमादार गुलमुहम्मदखाँ आदि कई बागियों के अफसर मारे गये। उनकी घुड़ तोपें और एक हाथी छीन लिया गया। उधर गढ़ में जितने मुसलमान सैनिक कैद कर रक्खे थे, सब के शिर कटवा दिये गये और नबीशेरखाँ आदि उनके अफसर तोप से उड़ाये गये।

जनरल रोबर्ट्स की दरबार से भेंट और विदा—बागियों के कुचल जाने के बाद जनरल रोबर्ट्स और ए०जी०जी० ने जो नसीराबाद से सेना के साथ आया था, चाहा कि दरबार उनके डेरे पर उनसे मिलें और जिस परिस्थिति में मेजर बर्टन मारा गया है, उसके विषय में जवाब दें। आबू के वकील रूपकिशोर ने समझाया कि दरबार को इस प्रकार बुलाना और उनसे ऐसी बात करना अनुचित होगा। तब दोनों अफसरों ने यह बात मानली कि दरबार अपना कोई ऐसा प्रतिनिधि भेजदें जिसको उनकी तरफ से बातचीत करने का पूर्ण अधिकार हो। तब कविराजा भवानीदानजी इस कार्य के लिये अँग्रेज अफसरों के पास भेजे गये। क्या बातचीत हुई, इसका कहीं भी

उल्लेख नहीं है। आगे महाराव रामसिंहजी के साथ आगरे के दरबार में जो व्यवहार हुआ, उससे स्पष्ट ही है कि अँग्रेज अफसरों को इस बात पर विश्वास नहीं हो सका कि कोटा दरबार ने मेजर बर्टन को बचाने की पूरी कोशिश की थी। भवानीदानजी ने यह तो कहा ही होगा कि स्वयम् महाराव रामसिंहजी गढ़ में बन्द थे, शेष सारा शहर बागियों के हाथ में था, तोपों के मुँह गढ़ की तरफ थे, गढ़ पर गोला-बारी हुई थी, और गोलों के निशान भी गढ़ की इमारतों पर मौजूद थे। मेजर बर्टन की रक्षा के निमित्त दरबार राजपूत सरदार नियत करना चाहते थे, परन्तु उसने इसकी आवश्यकता नहीं अनुभव की थी। फिर भी इन योग्य अफसरों को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि मेजर बर्टन को बचाने के लिये कोटा नरेश ने पूर्ण प्रयास किया होगा। भवानीदानजी से बातचीत हो चुकने के बाद उनके कथन की पुष्टि करवाने के लिये दोनों अँग्रेज अफसर गढ़ में आये और दरबार से मिले। फिर २० अप्रैल को जब अँग्रेजी सेना कोटे से रवाना होनेलगी तो दरबार ए०जी०जी० और जनरल रोबर्ट्स से मिलने के लिये डेरे पर गये और उनको अत्यन्त आदरपूर्वक तथा कृतज्ञता-पूर्वक विदा किया।

शहर में शान्ति स्थापित हुई—कोटे में गदर कार्तिक कृष्ण पक्ष में आरम्भ हुआ था और वैशाख कृष्ण पक्ष में शान्त हुआ। छः मास तक निरन्तर संकट, क्षोभ और अशान्ति रही। राज-कोष खाली होगया, राज्य प्रबन्ध विक्षत होगया और सब व्यवस्था बिगड़ गई। करौली की सेना के आने से पूर्व स्थिति अत्यन्त चिन्ता-जनक हो गई थी। उसके आने के बाद चिन्ता कुछ हटी। खास शहर दरबार के अधिकार में आगया और स्थिति कुछ सुधरती हुई दिखाई दी। जब अँग्रेजी सेना आगई तो बागी लड़ते तो रहे, परन्तु उनका

उत्साह और साहस अवश्य टूटने लगा। अँग्रेजी सेना यहाँ बीस मार्च को पहुँची। दस दिन उसके अफसरों ने स्थिति के निरीक्षण में लगाये। तीस मार्च को हमला बोला और उसी दिन सारे नगर पर अपना अधिकार कर लिया। फिर बीस दिन सेना यहाँ और ठहरी। नगर में स्थान स्थान पर गोरों की चौकियाँ रहीं और शहर का प्रबन्ध जनरल रोबर्ट्स ने अपने हाथ में रक्खा। जब उसको विश्वास होगया कि बागियों का पक्ष निःशेष और हीन होगया है तो बीस अप्रैल को अर्थात् पूरे एक मास बाद वह यहाँ से रवाना होगया।

करौली की सेना को विदा और राजभक्तों को जागीरें— अब तोपखाने में गोलन्दाज और जमादार सब हिन्दू भरती किये गये। सेना का पुनः संगठन किया गया जिसमें सब राजपूत नियत किये गये। करौली की सेना को आदरपूर्वक विदा किया। ठाकुर मलूकपालजी, खुमाणपालजी और दौलतपालजी आदि सरदारों को खूब सत्कृत किया। करौली के वकील को तथा अन्य सब सैनिकों को यथा योग्य सत्कृत किया। मार्ग के लिये यथोचित प्रबन्ध किया। घायलों के लिये डोलियाँ तैयार करवाई गईं और कुछ फासिले तक कोटे के सरदार सेना को पहुँचाने गये। इसी प्रकार हाड़ौती के जिन सरदारों ने स्वामिभक्ति-पूर्वक सेवा की थी, उनको भी यथोचित सत्कृत और पुरस्कृत किया। आबू के वकील रूपकिशोर को उसकी प्रशंसनीय सेवा के लिये अन्ते के पास भोज्याखेड़ी नामक दो हजार रुपया सालाना की आमदनी का गाँव दिया। आप सरदारसिंहजी को माँगरौल की निजामत में चेनपुरया गाँव जागीर में दिया और कविराजा भवानीदानजी को साँगोद की निजामत में विनोद। ठाकुर लक्ष्मणदानजी को अतरालिया और पालक्या जागीर में मिले। महाराजा शिवनाथसिंहजी को चरोल नामक गाँव दिया गया।

कम्पनी का खरीता—आषाढ़ मास में अँग्रेज सरकार का कोटा नरेश के नाम एक खरीता आया जिसमें गदर की शान्ति के लिये उनको बधाई दीगई। कोटे में बड़ी धूमधाम के साथ दरीखाना लगा और उसमें वह खरीता पढ़ा गया। दरबार ने अँग्रेज सरकार की सहायता के लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

महाराव रामसिंहजी ने नाथद्वारे की यात्रा की—जब सर्वत्र शान्ति स्थापित होगई और राज्य व्यवस्था पुनः जमने लगी तथा उत्पात की आवृत्ति का भय नहीं रहा तो अपने उपास्य देव श्रीनाथजी के दर्शनार्थ महाराव रामसिंहजी फाल्गुण सम्वत् १९१५ में नाथद्वारे की यात्रा के लिये रवाना हुये। साथ में सब सामंत और प्रमुख जागीरदार थे तथा पन्द्रह हजार सेना थी। कोटा नरेश प्रतिदिन पैदल चलते थे और नित्य केवल दो कोस का सफर किया जाता था। इस प्रकार लगभग ढाई मास में नाथद्वारे पहुँचे। वहाँ नौ दिन तक ठहरे और भेंट, दान आदि किये। उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंहजी ने मेहता गोपालसिंह को नाथद्वारे भेज कर महाराव रामसिंहजी को आग्रहपूर्वक उदयपुर निमन्त्रित किया। अभी कोटे में बागियों का उत्पात शान्त ही होपाया था, सन्तोषजनक रीति से शान्ति भी स्थापित हो चुकी थी, परन्तु शासन विधि को पुनः स्थापित करना था और शासन में अनेक परिवर्तन करने थे। अतः उदयपुर का निमन्त्रण धन्यवादपूर्वक अस्वीकार किया गया।

महाराव रामसिंहजी की ए० जी० जी० से भेंट—सम्वत् १९१७ के पौष मास में महाराव रामसिंहजी ए० जी० जी० लॉरेन्स से मिलने के लिये देवली गये। साथ में दश हजार सेना थी। लॉरेन्स दरबार का स्वागत करने के वास्ते दो मील इधर आया। मुलाकात का क्या उद्देश्य था इसका निश्चित पता नहीं, परन्तु मेजर बर्टन की हत्या

के विषय में अवश्य बात चीत हुई होगी। देवली में लॉरेन्स ने दरबार के साथ अत्यन्त आदर का व्यवहार किया। अँग्रेजी सेना की उनको कवायद दिखाई और कई पोलिटिकल अफसरों से परिचय कराया।

मेहराबखाँ और जयदयाल को फाँसी—इसी वर्ष बड़ी कोशिश के साथ मेहराबखाँ, लाला जयदयाल और एक उनका साथी अफगानी मुसलमान गिरफ्तार करके कोटे लाये गये। पोलिटिकल एजेण्ट की विद्यमानता में राजभवन (एजेण्टी बँगला) के पास एक नीम के वृक्ष पर इन तीनों को फाँसी पर लटकाया गया एवम् गदर का आखिरी दृश्य समाप्त हुआ।

रामसिंहजी की चार तोपें कम हुईं—फाल्गुण सम्वत् १९१९ में आगरे में गवर्नर जनरल आया और दरबार भरा। उसमें जयपुर, बूँदी, ग्वालियर, भोपाल, भरतपुर, धौलपुर, अलवर आदि राज्यों के रईस उपस्थित हुये। उसमें महाराव रामसिंहजी को भी निमन्त्रित किया गया। उनकी सलामी की उस समय सतरह तोपें थीं। जब उन्होंने आगरे में प्रवेश किया तो केवल तेरह फायर हुये। उनको इस पर आश्चर्य हुआ और जब पूछताछ की तो मालूम हुआ कि यह कमी मेजर बर्टन की हत्या के सम्बन्ध में कीगई है। इससे उनको महान खेद हुआ, परन्तु करते क्या? सब सहन करना पड़ा।

मेजर बर्टन का स्मारक—मेजर बर्टन की यादगार में दरबार ने एक सुन्दर छत्री बनवाई जो अभी बाग में मौजूद है और उसकी सन्तप्त और भग्नहृदया धर्मपत्नी ने उस पर एक शिलालेख लगवाया जो १९१४ की धनतेरस की शोकरात्रि का रोमाञ्चकारी दृश्य आँखों के सामने उपस्थित करता है।

विद्रोह के परिणाम—लगभग छः मास तक कोटा नगर पर विद्रोहियों का अधिकार रहा। कभी उनकी शक्ति घट जाती थी और

कभी बढ़ जाती थी, परन्तु राजशक्ति उनको दबा नहीं सकी। राजधानी में कोटा नरेश का अधिकार नगर के थोड़े से भाग पर रह गया था। शेष सब शहर विद्रोहियों के हाथ में था। बागियों के सरदार जयदयाल और मेहराबखाँ इलाके के शासन के लिये भी हुक्म जारी करने लगे थे। वहाँ इन लोगों का अधिकार उतना स्थापित नहीं होपाया था जितना राजधानी के अधिकांश भाग पर। अतः इलाके में इन लोगों के हुक्म कहीं माने जाते थे और कहीं नहीं। फिर भी जोर बागियों का ही था। अतः शहर का और इलाके का व्यापार चौपट होगया। राज को घोर आर्थिक क्षति पहुँची। इलाके में अव्यवस्था के कारण चोरियाँ और डकैतियाँ खूब होने लगीं। विद्रोह शान्त होने के बाद बागी सिपाही डाकुओं में और चोरों में जा मिले जिससे शान्ति रक्षा की समस्या और अधिक कठिन होगई।

शासन-व्यवस्था का आयोजन—विद्रोहियों का दमन करके जब अँग्रेज अफसर कोटे से रवाना होगये तो कोटा नरेश के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि राज्य शासन को पुनः किस प्रकार व्यवस्थित किया जावे? इस बात का भी अनुभव होने लगा कि प्राचीन शासन-प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है। भारतवर्ष के जो भाग अँग्रेजों के अधिकार में आचुके थे, वहाँ का शासन अधिक व्यवस्थित, संगठित और उन्नत था। आगरा और दिल्ली के जिलों में नये कानून-कायदे जारी हो चुके थे और वर्षों की अशान्ति के बाद जनता फिर सुख और शान्ति का उपभोग करने लगी थी। उस समय यात्रा के साधन सुलभ न होते हुये भी दिल्ली और आगरा तथा कोटा में परस्पर आना जाना था ही। अँग्रेजी इलाके के उन्नत शासन की चर्चा कोटे में पहुँचती ही थी। स्वयम् कोटा नरेश भी ब्रिटिश इलाके के शासन को कई बार अपनी आँखों से देख चुके थे। इसके अति-

रिक्त पोलिटिकल अफसरों का भी अनुरोध होगा कि प्राचीन शैली में सुधार किया जावे। ऐसी परिस्थिति में कोटा नरेश ने यही उचित और श्रेयस्कर समझा कि शासन को नवीन रूप से व्यवस्थित किया जावे।

पुराने शासन की दुर्व्यवस्था—कोटा राज्य का शासन गत ढाई सौ वर्ष से प्रायः एकसा ही चला आया था। सारा राज्य कितने ही परगनों में बँटा हुआ था। आमदनी और क्षेत्रफल के लिहाज से कोई परगना छोटा था ओर कोई बड़ा। परगने में तीन कर्मचारी मुख्य थे जिनका पहिले ही उल्लेख किया जा चुका है। प्रत्येक परगने का सम्बन्ध सीधा दरबार से था, और परगने के अफसरों के नाम दरबार की ओर से ही हुक्म जारी हुआ करते थे। राजधानी में छोटे और बड़े कितने ही अहलकार होते थे जो हिसाब, इन्साफ और शासन कार्य करते थे। सिद्धान्त रूप में सब काम दरबार की आज्ञा से होता था, परन्तु वास्तव में बड़े अहलकार और नरेश के कृपापात्र लोग ही सब कुछ करते थे। यही कारण था कि शासन के प्रत्येक अंग में बहुत शिथिलता थी। बड़े अफसर या बिलेदार घूसखोरी के लिये खूब बदनाम थे। मुकद्दमे वाले इनके घर पर जाकर अपना काम बना लिया करते थे। कारबारी, मुत्सद्दी और बिलेदार ही नहीं किन्तु दरबार के सान्निध्य में रहने वाले राजपूत सवार, पासवान और मन्दिर के लोग भी घूस लिया करते थे। राजधानी में सफाई का कोई प्रबन्ध नहीं था। गलियाँ और बाजार बहुत गन्दे थे। जब राजधानी की ही यह हालत थी तो राज्य के अन्य कस्बों का तो कहना ही क्या? राजधानी में पुलिस का प्रबन्ध भी सन्तोषजनक नहीं था। चोरी होजाना मामूली घटना समझी जाती थी। इलाके में चोरियों का और डकैतियों का बड़ा जोर था। व्यापारी लोग प्राय अफीम खरीदने के लिये जो रुपया भेजा करते थे, वह लूट लिया जाता था। इस प्रकार

की लूट कोटा और झालावाड़ के रास्ते में अकसर होजाया करती थी। सम्पूर्ण शासन में इस प्रकार की व्यापक शिथिलता अधिक गदर के कारण बढ़ी थी। परन्तु गदर के पहिले भी झाला और दरबार के पारस्परिक वैमनस्य के कारण राज्यप्रबन्ध में ढीलापन आचुका था। अतः शासन में सुधार करने की सख्त जरूरत थी।

शासन का नया ढंग—सम्वत् १९२० में कोटा नरेश ने अपने सम्पूर्ण राज्य शासन को पुनर्व्यवस्थित किया और नवीन सुधारों को लिखित रूप दिया गया। अहलकार और अधिकारीवर्ग के कर्त्तव्य निश्चित हुये। दफ्तरों का समय नियत किया गया। पुलिस और पालकीखाने के अख्तियारात स्पष्ट कर दिये गये। घूस लेना या देना जुर्म करार दिया गया और राज्य भर में शान्ति स्थापन के लिये पूर्ण-रूप से व्यवस्था की गई। यह शासन-सुधार नये युग का आरम्भ था और वर्तमान शासन-प्रणाली का सूत्रपात।

जिले—प्रबन्ध के लिये राज्य को कितने ही जिलों में विभक्त किया। हर एक जिला एक लाख रुपया वार्षिक मालगुजारी का बनाया और उसके प्रबन्ध के लिये एक जिलादार नियत किया। जिले के अन्य कर्मचारी उसके मातहत रक्खे। लगान की वसूली, शान्ति-रक्षा और अन्य सब प्रबन्ध-कार्य जिलेदार के सुपुर्द हुये। जुडीशल मामलों में वह सौ रुपये तक जुर्माना और एक मास की कैद कर सकता था और जिला पुलिस के आदमियों को बरख्वास्त कर देने का उसको अधिकार था। जिलादार का यह भी कर्त्तव्य था कि महीने में चार बार वह अपने इलाके में घूमे और देखता रहे कि कहीं सती न हो, लड़कियाँ नहीं मारी जावें और बच्चे बच्ची नहीं बेचे जावें।

जिला पुलिस—हर एक जिले में एक थानेदार नियत हुआ। वह जिलेदार का मातहत था। प्रत्येक थानेदार के अधीन एक उर्दू

लेखक, एक जमादार और पन्द्रह सिपाही रहते थे। जिले की पुलिस चौकियाँ भी थानेदार के सुपुर्द थीं। उसका कर्त्तव्य था कि वह अपने इलाके में घूमता रहे, चौकियाँ सँभालता रहे और चोरी तथा डकैतियों की रोक के लिये भरसक प्रयत्न करता रहे। यदि कहीं चोरी या डकैती होजाती थी तो थानेदार को जिम्मेवार ठहराया जाता था। यदि कभी किसी काम के लिये पन्द्रह आदमी काफी नहीं होते थे तो थानेदार और आदमी माँग सकता था। उसको इस बात की हिदायत थी कि दूसरे राज्य के अपराधी को उसके राज्य की सीमा में जाकर नहीं पकड़ा जावे। दूसरे राज्य का आदमी यदि कोटा राज्य में पकड़ा जाता था तो उसको कोटे भेज दिया जाता था। थानेदार को ग्यारह रुपये जुरमाना और पन्द्रह दिन की कैद करने का अधिकार था। थानेदार को हर एक मामले की मिसल बनानी पड़ती थी और हर एक मुकद्दमे का सारांश सूचनार्थ दरबार में भेजा जाता था।

नगर पुलिस—शहर में एक कोतवाल नियत किया और शान्ति-रक्षा का भार उसको सौंपा गया। इस कर्मचारी को हिदायत की गई कि वह प्रातःकाल कोतवाली में पहुँच जाया करे और दिन भर वहाँ हाजिर रहे। कोतवाल को बाईस रुपया जुरमाना और पन्द्रह दिन की कैद करने का अख्तियार दिया गया। यह आदेश हुआ कि मुकद्दमे की मिसल बना कर कोतवाली चबूतरे पर रक्खी जावे। अगर कोई बड़ा मामला हो तो पालकीखाने में चालान किया जावे। उसका कर्त्तव्य था कि यदि कोई साहब या "अँग्रेजी का नौकर" आवे तो मुनासिब सरबराही करे और उसकी रिपोर्ट सरकार में पेश करे। यदि ऐसे कर्मचारी के पास कोई परवाना हो तो उसकी नकल फारसी में करवा कर कोतवाली चबूतरे में रक्खी जावे। इस कार्य के लिये कोतवाल के

पास एक फारसी का मुंशी नियत था। जो मीणे साहूकारों की दुकानों पर नौकर थे या जो किसी काम से कोटे में आते थे और सशस्त्र होते थे, उनकी सूची तैयार की जाती थी। कोतवाल की मातहती में कोटा नगर के प्रत्येक मोहल्ले में चोरी बन्द करने के लिये दो दो आदमी नियत हुये। इन लोगों का वेतन उस मोहल्ले के निवासियों से वसूल किया जाता था। शहर की सफाई का काम भी कोतवाल के सुपुर्द किया और हिदायत की गई कि गलियों में और बाजार में कूड़ा कचरा न हो और न मौरियों के पानी से गीला हो। कूड़ा उठाने के लिये मेहतर नौकर रक्खे गये और उनका वेतन मोहल्ले के लोगों से वसूल किया जाने लगा। यह भी हुक्म हुआ कि कोतवाल, कारकुन, जमादार और कोतवाली के दूसरे लोग रात के समय शहर में गश्त दें। कोतवाल को इस बात की चेतावनी दी गई कि पूर्णरूप से आज्ञाओं का पालन नहीं किया जावेगा तो दण्ड मिलेगा।

मार्ग-रक्षा—साहूकारों का रुपया कोटा नगर से झालरापाटन या इलाके में किसी जगह जाते समय प्रायः लुट जाया करता था। अब यह हुक्म किया गया कि एक हजार रुपये के साथ दो बन्दूक वाले नौकर साहूकार को भेजना चाहिये और साथ में जाने वाले आदमी भी विश्वसनीय होने चाहियें। कोटा और झालरापाटन के बीच रात में ठहरने के लिये हणोत्या, उम्मेदपुरा और मुकन्दरा ये तीन स्थान नियत किये गये। इन तीन स्थानों पर राज की ओर से जाब्ता नियुक्त किया गया। प्रातःकाल रुपये वाले रवाना हो सकते थे और सूर्यास्त से दो घड़ी पहले उपरोक्त तीन स्थानों में से कहीं ठहर जाया करते थे। ठहरने के स्थान पर सब रुपया राज के लोगों को दिखा दिया जाता था और रात में राज के सिपाही तथा साहूकार के आदमी

दोनों पहरा देते थे। प्रातःकाल रवाना होते समय जो आदमी साथ लिया जाता था, उसके लिये हुक्म था कि उसको मजदूरी दी जावे। अफीम खरीदने के लिये हाड़ौती में साहूकार लोग रुपये भेजा करते थे। इसके लिये भी हुक्म हुआ कि रुपये ले जाने वाले आदमी थाने में ठहरें और यदि थाना दूर हो तो किसी बड़े गाँव में सरकारी मकान में ठहरें। यह विज्ञप्त किया गया था कि इतना अहतयात करने पर भी यदि कहीं डकैती होगई तो यह सिद्ध होने पर कि रुपये वाले ने यथा-शक्य खूब अहतयात किया था, राज मुनासिब हुक्म देगा। साहूकारों को यह भी हिदायत की गई कि उनके पास जो रावत लोग नौकर हों उनकी सूची बना कर राज में पेश की जावे जिसमें यह भी बतलाया जावे कि रावत कहाँ रहने वाला है? उसकी जाति क्या है? कब से नौकर है? उसका जामिन कौन है? और उसके पास क्या क्या शस्त्र हैं?

न्याय-विभाग—न्याय-विभाग अर्थात् पालकीखाने की भी व्यवस्था की गई। यहाँ वे मुकद्दमे आते थे जिनका फैसला जिलादार या कोतवाल नहीं कर सकता था, परन्तु इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं बना था। पालकीखाने को पचास रुपये जुरमाना करने का और एक महीने की कैद करने का अधिकार दिया गया। जिन मुकद्दमों में इससे अधिक दण्ड की आवश्यकता होती थी उनके लिये दरबार से हुक्म लेकर फैसला किया जाता था। यह भी नियम बना कि शिकायत करने वाला हिन्दी या उर्दू में अर्जी पेश करे। मौखिक बात नहीं सुनी जावे। दूसरे पक्ष को परवाने के द्वारा बुलाया जावे और निर्णय करते समय किसी का लिहाज न किया जावे। प्रत्येक मुकद्दमे की मिसल विधिपूर्वक हिन्दी में तैयार की जावे और फैसले की नकल दरबार की छाप के सहित दोनों पक्षों को दी जावे। इस बात की हिदायत की

गई कि मुकद्दमे वाले लोग पालकीखाने के बिलादारों के घर पर नहीं जावें।

पोलिटिकल एजेण्ट का हस्तक्षेप—हाड़ौती के लोग राज के फैसलों से असन्तुष्ट होकर पोलिटिकल एजेण्ट से शिकायत किया करते थे और पोलिटिकल एजेण्ट प्रायः ऐसे मामलों में हस्तक्षेप किया करता था। उस समय अधिकांश काम जबानी हुआ करता था। इसलिये पोलिटिकल एजेण्ट को किसी मुकद्दमे के वास्तविक स्वरूप का पता नहीं लगता था और उसको यह सन्देह बना रहता था कि राज्य में छानबीन के साथ न्याय नहीं किया जाता। इस अवांछनीय स्थिति को सुधारने के लिये अब यह हिदायत की गई कि प्रत्येक मुकद्दमे की पूरी मिसल पालकीखाने में सुरक्षित रहे। यदि पोलिटिकल एजेण्ट किसी विषय में पूछताछ करे तो रियासत के वकील के द्वारा पोलिटिकल एजेण्ट के पास वह भेजदी जावे और फिर वापिस पालकीखाने में मँगवाली जावे।

कानून—अब तक जो फैसले दिये जाते थे वे सब प्राचीन रूढ़ियों को, रिवाजों को और देशधर्म तथा जातिधर्म को ध्यान में रख कर दिये जाते थे। सम्वत् १९२० के सुधार जारी करते हुये भी किसी कानून की व्यवस्था नहीं की गई। यह बात कारबारियों पर छोड़ी गई कि कौनसा काम जुर्म है और कौनसा काम नहीं। भविष्य के लिये रिश्वत देना और रिश्वत लेना, मुकद्दमे वालों का पालकीखाने के बिलादारों के घर जाना या बिलादार का ऐसे आदमी को अपने घर बुलाना, सती होना, लड़की मार डालना और लड़के लड़कियों को बेचना तथा चोर या डाकू को शरण में रखना अपराध माने जाने लगे। इन अपराधों के करने वाले को क्या दण्ड दिया जावे, इसकी व्यवस्था नहीं की गई। दण्ड का परिमाण बिलादारों की बुद्धि पर छोड़ा गया।

दफ्तरों का समय आदि—बड़े कारबारियों के वास्ते नियम

बना कि वे एक पहर दिन चढ़ने पर गढ़ में हाजिर हो जावें और तीसरे पहर तक वहां काम करें। दो पहर तक पालकीखाने की खबरें और अर्जियाँ सुनाई जावें और दो पहर से तीसरे पहर तक इलाके का कागज दिखाया जावे। उर्दू और हिन्दी के मुंशी भी इसी समय अपने कागज सुनावें। कोई कागज बहुत आवश्यक हो तो अवसर देख कर उसके विषय में निवेदन किया जावे। छोटे बिलादार तीन घड़ी दिन चढ़ने पर गढ़ में हाजिर होजावें और तीसरे पहर को पीछे चले जावें जो पहर भर दिन चढ़ने के बाद आवें उनको गैरहाजिर माना जावे। शुक्रवार, जन्माष्टमी, बावनद्वादशी, रामनवमी, नृसिंहचतुर्दशी, चारों ज्यन्तियाँ और एकादशी के दिन दफ्तर बन्द रक्खे जावें।

व्यवस्था—छोटे कारबारी बड़े कारबारियों की आज्ञा का पालन करें और जो आज्ञा का भंग करें, उन पर जुरमाना किया जावे। बड़े कारबारियों को चाहिये कि यदि कोई छोटा आदमी उनके हुक्म की तामील न करे तो अपने हुक्म के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करें और छोटे आदमी के जो उज्र हों, उन पर ध्यान दें और फिर जो उचित प्रतीत हो वह करें।

केन्द्रित शासन—बड़े बड़े कारबारी पहिले दरबार की ओर से परवाना या इजाजत जारी कर दिया करते थे। यह काम एक आदमी के हाथ में न होने से शासन में बहुत खराबियाँ होती थीं। अब यह नियम बना दिया गया कि मुनीब के सिवाय परवाना या परवानगी दूसरा कोई जारी न करे।

अपील—पालकीखाने के फैसलों के विषय में नियम बना कि असन्तुष्ट पक्ष दरबार में अर्ज करे।

नौकरियोंका स्थायीपन—अब तक बड़े कारबारी जिसको चाहें

बिलादार नियत कर देते थे और जिसको चाहें हटा दिया करते थे। अब हिदायत हुई कि कुसूर के बिना किसी राजकर्मचारी को अपने पद से अलग नहीं किया जावे। बिलेदारों के वास्ते भी हुक्म हुआ कि यदि वे किसी उच्च-कर्मचारी की शिकायत करें तो मौखिक नहीं करें। लिखित रूप से करें।

सेना—सेना में भरती करना या सैनिक नौकरी से किसी को हटाना केवल दरबार के अधीन रक्खा गया और हुक्म दिया गया कि अजीटन, मेजर, चौधरी, और बख्शी के अतिरिक्त और कोई दरबार से सीधी अर्ज नहीं करे। कोथ हवलदार और हवलदार अपने अपने सूबेदार को रिपोर्ट करें और सूबेदार अजीटन तथा मेजर से। फिर ये दोनों कर्मचारी दरबार से निवेदन करें।

राजकोष—सारे देश का खजाना कृष्णभण्डार में जमा किया जाने लगा और इस विभाग के बिलेदार अलग नियत हुये। दैनिक हिसाब सायंकाल से पहिले दरबार के सामने पेश किया जाने लगा।

महाराव रामसिंहजी का देहान्त—उपरोक्त शासनसुधार जारी करने के बाद रामसिंहजी केवल दो वर्ष जीवित रहे। उन्होंने अपने जीवन में बड़े उथल पुथल देखे। झाला मदनसिंह से उनकी अनबन हुई और परिणामस्वरूप राज्य का एक हिस्सा लेकर मदनसिंह अलग राजा बन गया। इसके पश्चात् सम्वत् १९१४ का गदर हुआ जिसमें महाराव रामसिंहजी को घोर संकट का सामना करना पड़ा। गदर के बाद नवीन युग का आरम्भ हुआ तो उन्होंने शासन प्रणाली को सुधारने के लिये प्रयत्न किया। इस प्रकार अनेक प्रकार के परिवर्तनों को पार करते हुये आधुनिक शासनशैली का सम्वत् १९२० में सूत्रपात करके सम्वत १९२२ में वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को उन्होंने अपना शरीर त्यागा।

(१) कागजात रीतकरयावर।

महाराव शत्रुशालजी

(सम्वत् १९२२—१९४५ विक्रम्)

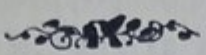

बाल्यकाल—शत्रुशालजी रामसिंहजी के औरस पुत्र थे और इनका जन्म आश्विन कृष्णा अमावस्या सम्वत् १८९६ में हुआ था। इससे दो वर्ष पूर्व झाला मदनसिंह कोटा राज्य की फौजदारी से हटाया जा चुका था। अतः उम्मेदसिंहजी या किशोरसिंहजी की भाँति शत्रुशालजी का बाल्यकाल परतन्त्रता और विवशता में नहीं कटा। उनका लालन पालन आजादी और उल्लास के वायुमण्डल में हुआ। फिर भी वे शासन कार्य के लिये उपयुक्त शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। सम्वत् १९१० में करौली नरेश की राजकुमारी से उनका सम्बन्ध हुआ और एक वर्ष बाद सम्वत् १९११ में बड़ी धूमधाम के साथ उनका विवाह कर दिया गया।

सम्वत् १९१४ का गदर—इस विवाह के तीन वर्ष बाद गदर शुरू हुआ। तब करौली का सम्बन्ध बड़ा काम आया। जब अँग्रेजी सेना ने बागियों का दमन करके कोटा नरेश का शासन पुनः स्थापित किया तो शत्रुशालजी को प्रथम अनुभव हुआ कि अँग्रेज सरकार कितनी शक्तिशालिनी है ?

इस प्रकार शत्रुशालजी ने अपने लड़कपन में ही अनेक प्रकार की राजनीतिक उथल पुथल देखी। रामसिंहजी की विवशता की और झाला मदनसिंह की विदाई की ताजा कहानियाँ उन्होंने सुनी होंगी। इसके अतिरिक्त सम्वत् १९१४ की भयंकर गोलाबारी, बागियों के साथ सुलह, करौली की सेना का युद्ध, बागियों का पराजय और पुनः शान्ति स्थापना ये सब अपूर्व घटनायें थीं। यह घटनावली उदीयमान

राजकुमार के मस्तिष्क को सतर्क और सजग कर सकती थी और निर्बल तथा निश्चेष्ट भी। जब उनके कन्धों पर राज्य भार पड़ा तो भारी बोझ को वे सफलतापूर्वक नहीं सँभाल सके और विकट स्थिति और भी अधिकाधिक विकट ही होती गई।

राज्याभिषेक—वैशाख शुक्ला १३ सम्वत् १९२२ को शत्रुशालजी राजसिंहासन पर बैठे। रामसिंहजी के देहान्त पर "बाजे गाँव के बिलादार, जागीरदार, मुकाती, पटेल, पटवारी, किलेदार और बिलेदारों" के नाम हुक्म जारी हुये कि मुसलमान और साधु सन्तों के अतिरिक्त सब लोगों को भद्र करवाया जावे। गद्दी पर बैठने पर शत्रुशालजी ने राज्य के पटेलों को पटेली से हटा दिया, और फिर "नजराणा" दाखिल करवा कर उनको पटेली दी गई। यह प्रथा शायद पुरानी थी, परन्तु पता नहीं चलता कि पहिले नजराणा किस हिसाब से लिया जाता था। शायद नजराणे का परिमाण नवाभिषिक्त नरेश की इच्छा और तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहा करता होगा। शत्रुशालजी के गद्दी पर बैठते समय आर्थिक स्थिति अत्यन्त विषम और शोचनीय थी, अतः पटेलों से नजराणा आठ आने प्रति बीघे के हिसाब से वसूल किया गया। अर्थात् पटेल के गाँव में यदि एक हजार बीघा हकत जमीन थी, तो उससे पाँच सौ रुपये वसूल किये गये। यह ठीक पता नहीं लगता कि नजराणे से कितना रुपया राजकोष में जमा हुआ, परन्तु अनुमान किया जासकता है कि लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया गया होगा। दो साल तक वसूली करने के बाद भी सम्वत् १९२५ में नजराणे के एक लाख चौतीस हजार चार सौ पिच्चासी रुपये बाकी थे। सम्भव है यह बाकी पूरी कभी वसूल ही नहीं हुई हो।

प्रबन्ध परिवर्त्तन—झाला मदनसिंह की विदा के बाद महाराव

महाराव शत्रुशालजी
(१९२२–१९४५ वि०)

रामसिंहजी ने पाँडे गोपाल को अपना मन्त्री नियत किया था। कहा जाता है कि यह माँगरौल का रहने वाला ब्राह्मण था। सम्वत् १८९४ से १९२२ तक का समय प्रबन्ध दृष्टि से बड़ा विषम था। राज्य के दो हिस्से होजाने से आमदनी बहुत घट गई थी और परम्परागत खर्च को कम करना साधारण आदमी का काम नहीं था। सम्वत् १९१४ के गदर ने इस स्थिति को और भी नाजुक बना दिया। राज्य पर ऋण का भार बढ़ गया और आमदनी एक साल तक कुछ नहीं हुई। उधर अँग्रेज सरकार शासन सुधार के लिये आग्रह करती होगी। इस विकट स्थिति को सँभालने के लिये पाँडे गोपाल ने कोई भारी प्रयत्न किया हो और उसको सफलता मिली हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। जब शत्रुशालजी गद्दी पर बैठे तो उन्होंने पाँडे गोपाल को अपने पद से हटा दिया और राजमन्त्री के स्थान पर गणेशलाल बीजा नियत किया। उसकी मातहती में छोट्टू दीबड़ा कायस्थ था जिसका मकान अभी कायस्थों की सराय में मौजूद है। छोट्टू दीबड़ा बड़ी कचहरी का हाकिम था और प्रधान कहलाता था। आजकल की भाषा में वह हाकिम माल था। पाठकों को यह जान कर मनोरंजन होगा कि उसकी तनख्वाह तीस रुपया माहवार थी जिसमें से भी उस समय की प्रथा के अनुसार प्रतिमास एक दो रुपये कट जाया करते थे[1]।

राज्य की हालत—जब शत्रुशालजी गद्दी पर बैठे तो राज्य में कुल १४९१ गाँव थे। इनमें से १६४ माफी में और २१६ जागीरों में थे। शेष १११९ गाँव सीधे उनके शासन में थे और इनकी आमदनी ही राज्य की आमदनी थी। इन गावों का माल हासिल कागज पर बाईस लाख रुपये के लगभग था, परन्तु यह पूरा कभी वसूल नहीं हुआ करता था। इसके अतिरिक्त साढ़े पाँच लाख

(१) बस्ता नं० २०९ कड़ता माल हासिल को झाड़ो सम्वत् १९२९।

के लगभग आमदनी जकात, जंगलात, शराब, अफीम आदि मदों की होती थी। रियासत की कुल आमदनी का आँक सत्ताईस लाख से ऊपर था, परन्तु कई लाख रुपये प्रतिवर्ष बाकी रहा करते थे।

प्रबन्ध शैली—शत्रुशालजी के राज्य काल में वही शासन का ढंग जारी रहा जो रामसिंहजी के समय में प्रचलित था। सम्वत् १९२० में जो परिवर्तन जारी किया गया था, उसको चलाने के लिये उपयुक्त कर्मचारियों की कमी थी, अतः पुरानी शिथिलता और अव्यवस्था ज्यों की त्यों चली आती थी। प्रबन्ध के उद्देश्य से राज्य कई जिलों या परगनों में बँटा हुआ था। परगने का सब से बड़ा अफसर जिलादार कहलाता था, जिसको माल, जकात, जंगल, दीवानी, फौजदारी, पुलिस आदि सब महक्मों के एक हद तक अख्तियार थे। उसके नीचे थानेदार था जो अपने अधिकारों के अन्दर पुलिस अफसर भी था और फौजदार भी। परगने के प्रत्येक जिलेदार का सम्बन्ध सीधा राजधानी से था। राजधानी में मुख्य महक्मे थे:—अपील की कचहरी, पालकीखाना, बड़ी कचहरी, कोतवाली, गिराही, डूँगर की कचहरी, टकसाल और तोपखाना। अम्बार, तोषाखाना, हथखर्च, ऊपला भँडार, शुभचिन्तन, बाग, बारगीर तवेला, वकील, अटाला, सड़कें और इमारत, गाड़ीखाना, फीलखाना और सरकारी जानवर—ये छोटे महक्मे थे। प्राइवेट और स्टेट का भेद उस समय बिल्कुल नहीं था। मुख्य महक्मे तोपखाना (सेना), बड़ी कचहरी (माल) और पुलिस के माने जाते थे। यह उल्लेखनीय बात है कि शफाखाना और शिक्षा के कोई महक्मे नहीं थे। सफाई की तरफ केवल राजधानी में कुछ ध्यान था और यह काम कोतवाली के सुपुर्द था[1]।

न्याय विभाग—यह विभाग अभी व्यवस्थित नहीं हो पाया

(१) कागजात सम्वत् १९२५।

था। थानेदार, जिलादार, कोतवाल, पालकीखाना, अपील की कचहरी और दरबार सब अदालत का रूप धारण कर लिया करते थे। सिल-सिलेवार अपील करने की भी व्यवस्था नहीं थी। फरियादी मन चाहे जहाँ शिकायत कर सकता था और मुद्दई जहाँ इच्छा हो उस कचहरी में अपना मुकद्दमा पेश कर दिया करता था। इस विषय में शायद कोई अलिखित रिवाज होगा, परन्तु उसका पालन प्रायः नहीं हुआ करता था।

कानून की कोई व्यवस्था नहीं थी। मध्यकाल में भारतवर्ष में यह कहावत प्रचलित थी कि "राजा करे सो न्याव और पासा पड़े सो दाँव।" यही दशा हाड़ौती में क्या सारे भारतवर्ष में जारी थी। मुसल-मानों के राज्य में मुसलमानी कानून से काम लिया जाता था, परन्तु हिन्दुओं का कानून सदैव अलिखित और अनिश्चित ही रहा। महाराज शिवाजी ने "अष्ट प्रधान" अर्थात् अपने मन्त्रि मण्डल में एक मन्त्री ऐसा नियत किया था जो कानूनी मामलों पर परामर्श और व्यवस्था दिया करता था, परन्तु वे भी हिन्दू कानून को निश्चित स्वरूप नहीं देसके। अतः हिन्दुओं के फैसले रीति रिवाज के अनुसार हुआ करते थे। कौनसा कर्म अपराध है और कौनसा नहीं इस विषय में अधि-कारीवर्ग साधारण बुद्धि से काम लिया करते थे और अपने शासक की नीति को ध्यान में रखते थे। ऐसी अवस्था में अधिकारीवर्ग के व्यक्तिगत विचार और तरंगें भी कभी कभी कानून का रूप धारण कर लिया करती थीं। कोटा राज्य में मनुष्य की जान और सम्पत्ति के खिलाफ कर्म दण्डनीय अपराध माने जाते थे, परन्तु दण्ड की मात्रा नियत नहीं थी और अपराधों की कोई सर्वमान्य परिभाषायें भी प्रचलित नहीं थीं। गालीगलौंच, मारपीट, व्यभिचार, बलात्कार, कत्ल, चोरी, डकैती, लूट, दंगा, फिसाद आदि जुर्म माने जाते थे। दीवानी कानून

और भी अधिक अनिश्चित और अव्यवस्थित था। लिखा हुआ कानून जारी नहीं था, इसलिये वकीलों का भी अभी प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सगाई छोड़ना, बच्चों को साधुओं के भेंट करना, रसायन पाड़ना, बैल या घोड़े को अख्ता करना, अपराधी को जाति में सम्मिलित करना, जानवरों पर घोर निर्दयता करना, झालावाड़ महाराजराणा के डाली नजर करना—ये कर्म कोटे में अपराध माने जाते थे।

मुकद्दमों की तफ्तीश, तहकीकात, चालान और सुनवाई के विषय में कोई कानून नहीं था। अपील की कचहरी, पालकीखाना, कोतवाली और थानों में कुछ भेदिये नौकर रक्खे जाते थे जो नजरबाज कहलाते थे। किसी जुर्म का पता लगने पर ये अपने अफसरों को सूचित करते थे और अपराधी को कचहरी में बुलवा कर उसको तत्काल मामूली पूछताछ करके या तो छोड़ दिया जाता था या सजा देदी जाती थी। मिसल की तकमील आजकल की भाँति नहीं होती थी। साधारण लिखित शिकायत सुन कर फैसला देदिया जाता था। फरियाद करने वाला मौखिक शिकायत कर सकता था जो सुन कर लिख ली जाती थी। चोरी या डकैती का माल मिल जाने पर जिसका होता था, उसको देदिया जाता था, परन्तु माल के मूल्य के अनुसार मालिक से राज में कुछ रकम जमा करवाई जाती थी। यदि किसी दूसरे राज्य की या किसी कोटरी की चोरी इस राज्य में बरामद होती थी तो उस पर चौथान लेकर माल मालिक के हवाले किया जाता था। चौथान चालीस प्रतिशत लिया जाता था। नालिश की रसूम छः प्रतिशत थी।

सम्वत् १९२३ में अपील की कचहरी में दो हाकिम थे। एक मुन्शी खाँडेराव और दूसरा ठाकुर भवानीसिंह। हर एक को साठ रुपया मासिक वेतन मिलता था। इनकी मातहती में दो कारकुन थे

और दो उर्दू के मुन्शी। कारकुन और मुन्शी का वेतन दस रुपये मासिक था। पालकीखाने में भी दो तीन अफसर रहते थे, परन्तु उनकी तनख्वाह अपील के अफसरों की अपेक्षा कम थी। उस समय वेतन और प्रतिष्ठा में घनिष्ठ सम्बन्ध भी नहीं था क्योंकि छोट्टू दीवड़ा जो बड़ी कचहरी का हाकिम था और राज्य के प्रमुख विभाग का प्रबन्धक था, वह केवल तीस रुपये मासिक ही पाता था। कितने ही हाकिमों को जागीरें भी मिली हुई थीं।

बड़ी कचहरी—यह माल विभाग के सब से बड़े दफ्तर का नाम था और इस महक्मे का सर्वोच्च कर्मचारी छोट्टू दीवड़ा था। जमीन का लगान वसूल करना और कृषि सम्बन्धी सब प्रबन्ध करना इस विभाग का काम था। यह स्मरण रखने की बात है कि राज्य की सम्पूर्ण जमीन का प्रबन्ध इस विभाग के सुपुर्द नहीं था। जागीर और माफी के गाँवों के सिवाय कितने ही अन्य गाँव उस समय अपना अपना खर्च चलाने के लिये पुलिस, पालकीखाना, तोपखाना, आदि महक्मों के सुपुर्द थे। इन गाँवों का भूमि कर ये विभाग अपने अपने कर्मचारियों के द्वारा संग्रह करते थे। परम्परागत चौधरी और कानूँगो इन महक्मों को उचित सहायता दिया करते थे। इस प्रकार के विचित्र प्रबन्ध के कारण बड़ी कचहरी का कार्यक्षेत्र उस समय इतना विस्तृत नहीं था जितना इस समय माल विभाग का है। फिर भी राज्य के सम्पूर्ण गावों की गणना करना और यह हिसाब रखना कि कितने गाँव किस बिला अर्थात् महक्मे के सुपुर्द हैं या जागीर में हैं या माफी में हैं, बड़ी कचहरी का ही काम था।

भूमि प्रबन्ध अभी व्यवस्थित नहीं हो पाया था! परगने के अफसर अपनी इच्छानुसार लगान बढ़ा दिया करते थे। इससे प्रजा प्रायः दुखी रहती थी। कभी कभी भारी लगान देने में असमर्थ

होकर कृषक अपने गाँव छोड़ जाया करते थे, और कभी कोटे आकर पुकार करते थे। ऐसे अवसर पर लगान प्रायः कम कर दिया जाता था। और कृषकों को सन्तुष्ट किया जाता था। दुर्भिक्ष तथा अन्य हानियों के कारण कृषकों को छूट दी जाती थी, इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं था। ऐसा अनुमान होता है कि परगने के अफसरों को छूट देने का अधिकार नहीं था या अपने परगने की आमदनी कम होने के भय से वे लोग छूट नहीं दिया करते होंगे। दुखी किसान कोटे आकर बड़ी कचहरी में या स्वयम् दरबार से पुकार करते थे और छूट का हुक्म राजधानी से हुआ करता था।

बड़ी कचहरी से कुछ गाँव मुकाते पर भी दे दिये जाते थे। मुकाती का दर्जा साधारण किसानों से ऊँचा और जागीरदारों से नीचा माना जाता था। जब कोई हुक्म सम्पूर्ण राज्य में विज्ञप्त करने के लिये जारी किया जाता था तो मुकाते के गाँवों के लिये मुकाती के पास भेजा जाता था और राज्य के गाँवों के लिये राजकर्मचारी के पास।

जकात का महक्मा पृथक् नहीं था। जकातों का सम्बन्ध परगने के अफसरों अर्थात जिलादारों से था। कुछ जकातों पर राज्य के जकाती नियत थे और कुछ मुकाते पर दी हुई थीं। हर एक जकात के साथ कुछ खर्च भी लगा रहता था। कोटे से प्रायः हुक्म होजाया करता था कि अमुक जकात से अमुक देवस्थान आदि का खर्च दिया जावे।

डूँगर की कचहरी—यह विभाग जंगल का प्रबन्ध करता था। शराब, गाँजा वगैरह का नियन्त्रण और नदियों के घाटों पर उतराई का कर वसूल करना भी इसी के सुपुर्द था। अफीम का प्रबन्ध इस महक्मे से सम्बन्ध नहीं रखता था। सम्भव है यह कार्य बड़ी कचहरी

के अधीन हो। डूँगर की कचहरी का मुख्य कार्य वृक्षों की बिक्री के दाम वसूल करना था। जँगली गाँवों के सब निवासियों से लकड़ी के दाम आम टेक्स के रूप में वसूल किये जाते थे। ऐसा कर प्रति जातिवार, सम्भवतः जाति के पटेलों द्वारा वसूल किया जाता था। जो गाँव जंगल से दूर थे, वहाँ के निवासियों से ऐसा टेक्स नहीं लिया जाता था। जो व्यक्ति जैसी और जितनी लकड़ी लेता था, उससे उसी के अनुकूल मूल्य लिया जाता था। नावों का ठेका इसी कचहरी से दिया जाता था। बकरियों की और ऊँटों की चराई भी इसी महक्मे में जमा होती थी। शराब के ठेके कलाल लोग लिया करते थे। जिस गाँव में एक कलाल की भट्टी होती थी, वहाँ प्रायः दूसरी भट्टी चलाने की इजाजत नहीं दी जाती थी। परन्तु शराब खरीदने में यह नियम नहीं था कि अमुक गाँव के निवासी अमुक गाँव से ही शराब खरीदें।

इस महक्मे के प्रबन्ध के लिये एक बिलादार था और एक कारकुन। बिलादार का वेतन केवल पन्द्रह रुपये और कारकुन का तेरह रुपये मासिक था। फोतेदार को बारह रुपये मासिक मिलता था। बिलादार की सवारी के वास्ते राज की ओर से एक घोड़ा रहता था जिसका खर्च राज से दिया जाता था। चौकीदारों की संख्या १०४ थी। इस महक्मे के अमले और जाब्ते पर वार्षिक खर्च ३७९९) रुपये होता था। सम्वत् १९२४ में इस विभाग की कुल आय १५७१६) रुपये हुई थी।

जेल—कोटा नगर में मुख्य कारागार दो थे। एक झालों की हवेली में और दूसरा गढ़ में। इसके अतिरिक्त कोतवाली, पालकीखाना, अपील की कचहरी और तोपखाने में अलग अलग हवालातें थीं। कैदियों के खाने और कपड़े का प्रबन्ध राज की ओर से किया

जाता था, परन्तु खाने के दाम कैदी से वसूल किये जाते थे। कैदी को अफीम और तम्बाकू भी मिला करती थी। बीमार कैदियों की चिकित्सा राज की तरफ से करवाई जाती थी। इस समय कैदियों की संख्या अधिक नहीं थी। कारण यह था कि पंचायत प्रथा अभी प्रचलित थी जिससे कितने ही मामले गावों में ही तय होजाया करते थे और अनेक अपराधों में तत्काल दण्ड देकर या जुरमाना देकर अपराधी को छोड़ दिया जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य के कितने ही इलाके इस समय झालावाड़ राज्य में जा चुके थे। सम्वत् १९२४ में कैदियों के खाने का सर्वाधिक मासिक खर्च ३६) रु० हुआ था। यह वर्ष कोटा राज्य में दुर्भिक्ष का था और अन्न ५) रु० प्रति मण के भाव से मिलता था। इससे अनुमान होता है कि कैदियों की संख्या बहुत कम होगी।

पुलिस—इस नाम का उस समय कोई विभाग नहीं था। इस महक्मे का कार्य उस समय दो भागों में विभक्त था, कोटा नगर और हाड़ौती। नगर का पुलिस-प्रबन्ध कोतवाल के सुपुर्द था और इलाके का प्रबन्ध गिराही के। शहर में दो कोतवाल रहते थे। महाराव शत्रुशालजी के शासनकाल में भी दो कोतवाल थे। प्रति कोतवाल को बाईस रुपये मासिक वेतन मिलता था। कोतवाल की मातहती में तीन अहलकार थे। बख्शी, कारकुन और फोतेदार। तीनों अहलकारों को क्रमशः ग्यारह ग्यारह रुपये और आठ रुपये वेतन मिलता था। कोतवाल की मातहती में कितने ही चौकीदार और नजरबाज थे। कोतवाल के कर्त्तव्य और अधिकार सम्वत् १९२० में ही निश्चित हो चुके थे। उसके बाद शत्रुशालजी के समय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कोतवाल जुर्म का पता लगाता था। अपराधी को गिरफ्तार करता था और एक सीमा तक वह ही उसको सजा भी दे दिया करता

था और लावारिस माल को वह बेच दिया करता था। इसके अतिरिक्त म्यूनिसिपैलिटी का कार्य भी कोतवाल के सुपुर्द था। यह व्यवस्था भी सम्वत् १९२० में ही की गई थी। शहर के अन्दर मकान बनाने के लिये जमीन बेचना, मकानों की एक प्रकार से रजिस्ट्री करना और स्थिर सम्पत्ति विषयक कई प्रकार के विवादों का निर्णय करना भी कोतवाल का कार्य था। यदि किसी के मकान के सामने कूड़ा मिलता था या गीला होता था तो कोतवाल दण्ड देसकता था। वही मौका देख कर तथा नजराणा दाखिल करवा कर जाजरू बनाने की इजाजत दिया करता था। दरवाजे भी उसी की इजाजत से बनाये जा सकते थे। सरायों पर कोतवाल का प्रबन्ध था और उनका किराया भी कोतवाली में जमा होता था। मकान बिक्री का चौथान कोतवाल वसूल करता था। चौथान की दर चालीस प्रतिशत थी। लावारिस मकान कोतवाली के द्वारा बेचे जाते थे और कीमत राज के नौहरे पर जमा की जाती थी। माली, कूँजड़े, घोंसी और सूत पूणी बेचने वालों से राज्य की जमीन पर बैठने का कर कोतवाल वसूल करता था। यह टेक्स नाममात्र का था। यदि कोई नई दुकान लगाता था तो उसको कोतवाली में टेक्स जमा करना पड़ता था। यदि कुछ मास तक दुकान बन्द रख कर फिर खोली जाती थी तो भी कर देना पड़ता था। चराई, झाड़ू और जलाने के कण्डे बेचने वालों से भी कर लिया जाता था।

म्यूनिसिपल करों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कर भी कोतवाल वसूल करता था। पुनर्विवाह करने वाले पुरुष से कागली नामक कर वसूल किया जाता था। यह कर 'झगड़े' पर चालीस प्रतिशत के हिसाब से लिया जाता था। 'झगड़ा' वह रुपया कहलाता था जो मृतक पति के उत्तराधिकारी विधवा के मूल्य स्वरूप उसके द्वितीय पति से लिया करते थे। यदि कोई 'झगड़ा' लेने वाला नहीं

होता था या कोई नहीं लेना चाहता था तो द्वितीय पति से राज 'चूड़ा का नजराणा' लिया करता था। यह कर कागली की अपेक्षा बहुत हल्का होता था। हम्माल, कूँजड़े, घोंसी, नीलगर, आदि पेशेवर जातियों की पटेली कोतवाली से मिलती थी और पटेल बनने वाले को राज में नजराणा दाखिल करना पड़ता था। नानकशाही फकीर, मुँड-चीरे, छातीकूटे, आदि फकीरों और भिखमंगों की पटेली भी कोतवाल देता था। इनके पटेलों से प्रतिवर्ष नजराणा लिया जाता था। नजराणे के एवज में ये लोग कई प्रकार से दयालु जनता को तंग और दुखी करके तामसी दान लिया करते थे। इन विस्तृत अधिकारों के कारण कोतवाल बड़ा शक्तिशाली राजकर्मचारी माना जाता था।

खर्च—कोतवाली के अमले और जाब्ते के वेतन के लिये कुछ जमीन कोतवाली के सुपुर्द थी। कोतवाल इस भूमि का कर संग्रह करके अपने फोतेदार के पास जमा रखता था और उससे वेतन चुकाता था। इस सीगे की आमदनी कुल खर्च के लिये पर्याप्त नहीं थी। अतः शेष खर्च नगरनिवासियों से 'शहर बराड़' और 'चबूतरा बराड़' इन दो करों के नाम से वसूल किया जाता था। दोनों कर पुलिस टेक्स थे, परन्तु अलग अलग वसूल किये जाते थे और दोनों का ब्यौरा भी पृथक् पृथक् रक्खा जाता था। दोनों ही कर सम्पूर्ण नगरनिवासियों से लिये जाते थे और जातिवार वसूली की जाती थी। 'शहर बराड़' उन चौकीदारों का वेतन चुकाने के लिये लिया जाता था जो शान्ति की रक्षा के लिये नगर के प्रत्येक मोहल्ले में कोतवाली की तरफ से सम्वत् १९२० के नये शासनविधान के अनुसार नियत किये गये थे। इसी प्रकार 'चबूतरा बराड़' कोतवाल और उसके अमले के खर्च के लिये लिया जाता था।

गिराही—इलाकों की पुलिस का नाम गिराही था। प्रत्येक

परगने में एक थानेदार नियत था। उसके मातहत दो मुन्शी, एक जमादार और पन्द्रह सिपाही थे। प्रत्येक गाँव का साँसरी भी थानेदार का मातहत था। थानेदार को सम्वत् १९२० के विधान के अनुसार अपराधी को गिरफ्तार करने का ही नहीं, किन्तु कुछ सीमा तक उसको आर्थिक दण्ड देने का तथा कैद करने का भी अधिकार था। थानेदार जिलेदार से पूछ कर काम करता था, क्योंकि परगने का सर्वोच्च कर्मचारी जिलादार माना जाता था। इलाकों के सब थानों का अफसर बिलादार कहलाता था जो प्रायः कोटा नगर में रहता था। उसके अमले में दो हिन्दी के और दो उर्दू के मुन्शी और एक फोतेदार रहता था। इनके सिवाय फर्राश, भोई आदि छोटे नौकर थे। गिराही के बिलेदार को बीस रुपये मासिक वेतन मिलता था और जब वह थानों को सँभालने के लिये तथा और थाने या और चौकियाँ नियत करने के लिये इलाके का दौरा करता था तो उसको तीन आने नित्य भत्ता मिलता था। इसके अतिरिक्त उसकी सवारी के वास्ते राज की तरफ से एक घोड़ा भी रहता था। थाने पर वास्तव में दोहरा नियन्त्रण था। बिलादार गिराही का और परगने के जिलेदार का। इस प्रकार की व्यवस्था से कार्य सँभालने में बड़ी बाधायें और विघ्न आया करते होंगे। यही कारण था कि भविष्य में शहर पुलिस और इलाका पुलिस को सम्मिलित करके एक पुलिस अफसर के अधीन किया गया।

तोपखाना—उस समय सेना का व्यापक नाम तोपखाना था। सम्वत् १९२४ के लगभग सेना में कुल सैनिक ५,२३६ थे। इनमें ७२४ खासा रिसाले के थे और शेष दूसरे। जब महाराव किशोर-सिंहजी और जालिमसिंह झाला में अनबन हुई और फलस्वरूप माँगरौल का युद्ध हुआ तथा उसके पश्चात् कर्नल टॉड की मारफत

कुछ शर्तें तय करके किशोरसिंहजी वापिस कोटे आये तो एक यह भी शर्त ठहरी थी कि गढ़ की तथा कोटा नरेश के अंग की रक्षा के निमित्त एक सेना पृथक् रहेगी जिसकी भर्ती आदि स्वयम् किशोर-सिंहजी के अधीन होगी और उसका वेतन भी दरबार द्वारा चुकाया जावेगा। इस फौज को खासा रिसाला कहा जाता था। और इसमें नरेश के विश्वसनीय आदमियों को ही भर्ती किया जाता था। झालों के पार्थक्य के पश्चात् स्वयम् दरबार द्वारा सैनिकों की भर्ती और नियुक्ति की जो शैली चली थी और अभी कुछ वर्ष पूर्व तक प्रचलित थी उसका इतिहास किशोरसिंहजी के समय से आरम्भ हुआ था। खासा रिसालों में पैदल, सवार, गोलन्दाज आदि सब सम्मिलित थे। शेष फौज में सात पल्टनें थीं, और दो रिसाले—एक घोड़ों का और एक ऊँटों का। सबसे बड़ी और मुख्य पल्टन गोरधन पल्टन थी जिसमें ४३९ सिपाही थे। जमना में ९४९, कन्हैया में ६६८ और कृष्णा में ४०० सैनिक थे। ये चारों पल्टनें जालिमसिंह ने व्यवस्थित तथा संगठित की थीं। इनकी व्यवस्था अँग्रेजी ढंग की थी। कवायद, वर्दी, शस्त्र आदि सब आधुनिक प्रकार के थे। इनके सिवाय ७५० नागे बाबाओं की एक अलहदा पल्टन थी जिसकी व्यवस्था पुराने ढंग की थी। ये लोग सब अविवाहित रहते थे, केवल लँगोट और साफा पहनते थे और ढाल तलवार से लड़ते थे। लालताप्रसाद नामक एक कायस्थ की अलग पल्टन थी जिसमें सिर्फ ७१ सिपाही थे। इस पल्टन का कुल वेतन लालताप्रसाद को दे दिया जाता था और वह अपने तरीके पर सबको चुकाया करता था। अपनी पल्टन की भर्ती भी उसके ही सुपुर्द थी। शहर दीवार की बुर्जों पर ५०२ गोलन्दाज थे जिनकी एक पल्टन मानी जाती थी। इनके अतिरिक्त घुड़तोपों के गोलन्दाज अलग थे। रिसालों में ६३४ आदमी थे। फीलखाना

तोपखाना के ताल्लुक नहीं था। खासा रिसाले पर ५५,५११) रुपये, आठों पल्टनों पर २,१६,९९७) रुपये और पायगाँ तथा शुतुरखाने पर १,०१,९८०) रुपये खर्च होता था। घुड़तोंपों पर तथा बारूद-खाने पर और अन्य सैनिक सामग्री पर ७५,०००) रुपये के लगभग खर्च था, एवम् कुल सैनिक वार्षिक व्यय साढ़े चार लाख रुपये के लगभग था।

आर्थिक संकट—कोटा राज्य को सन् १८१८ (सम्वत् १८७५) से आर्थिक कष्ट का सामना करना पड़ रहा था। सम्वत् १८७५ में कर्नल टॉड ने कोटा राज्य में और कम्पनी में सन्धि करवाते समय मेवाड़ के कुल परगने तो वापिस दिलवा दिये परन्तु एक करोड़ रुपये में से कोटा राज्य को एक पैसा भी वापिस नहीं दिलवाया। यह भारी आर्थिक क्षति साधारण बात नहीं थी। इसके बाद माँगरौल की लड़ाई हुई जिसमें जालिमसिंह ने विजय प्राप्ति के लिये पानी की भाँति रुपये बहाये और अँग्रेजी फौज तथा रिसाले का भारी खर्च दिया। मराठों और पिंडारियों की लूटमार से राज्य अभी सँभलने ही नहीं पाया था कि इन दो भयंकर धक्कों ने उसको और भी अचेत कर दिया। साहूकारों का ऋण लाखों की संख्या पर पहुँच गया और केवल ब्याज की रकम भी प्रति वर्ष अदा करना कठिन ज्ञात होने लगा। सन् १८२४ (सम्वत् १८८१) में झाला जालिमसिंह का देहान्त होगया जिससे अव्यवस्था और भी बढ़ गई। इसके चार वर्ष बाद महाराव किशोरसिंहजी का देहान्त होगया। महाराव रामसिंहजी में और झाला मदनसिंह में गहरी अनबन हुई जिससे सब राज्य व्यवस्था चौपट सी होने लगी। दरबार का एकमात्र ध्येय बन गया मदनसिंह को अलग करने का और मदनसिंह सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग करने लगा अपनी स्थिति को दृढ़ तथा स्थायी करने में। ऐसी अवस्था में आर्थिक

स्थिति अत्यन्त विषम होगई। नरेश और मन्त्री की पारस्परिक अनबन का परिणाम यह हुआ कि सम्वत् १८९४ में कम्पनी ने मदनसिंह को कोटे से निकाल दिया, परन्तु कोटा राज्य के १७ परगने देकर अलग राजा बनाने के लिये। इस योजना से रामसिंहजी को साँस तो अवश्य आया, परन्तु राज की आमदनी पूर्वापेक्षा दो तिहाई रह गई। सेना आदि का खर्च उतना ही बना रहा, बल्कि प्रबन्ध परिवर्तन के कारण कुछ अरसे के लिये खर्च और बढ़ गया। रामसिंहजी इस स्थिति को सँभालने का प्रयत्न ही करने लगे होंगे कि सन् १८५७ (सम्वत् १९१४) का देशव्यापी गदर होगया जिसका धक्का कोटा राज्य पर ऐसा लगा कि एक वर्ष तक प्रबन्ध शून्य सा होगया। इस प्रकार विषम घटनाओं की निरन्तर झड़ी के कारण कोटा राज्य पर ऋण का बोझ बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि सम्वत् १९०३ के लगभग इसका परिमाण ९० लाख के करीब जा पहुँचा।

महाराव शत्रुशालजी का प्रयत्न—महाराव शत्रुशालजी ने इस कठिनाई को पार करने का प्रयत्न तो अवश्य किया होगा, परन्तु ऐसी स्थिति को सँभालने के लिये उनके पास कोई योग्य प्रबन्धक और सलाहकार नहीं था। गणेशलाल बीजा के वश की यह बात नहीं थी कि राज्य के प्रबन्ध को पुनर्व्यवस्थित कर सके, और वार्षिक व्यय एक दम कम करके ऋण को चुकादे। इसके अतिरिक्त शत्रुशालजी उदार प्रकृति और पुण्यशील नरेश थे। अपने साधारण खर्च का कम करना भी उनको बहुत अरुचिकर मालूम होता था। पुण्यदान में वे स्वयम् तो बहुत सा धन व्यय करते ही थे, परन्तु प्रत्येक दफ्तर और कचहरी से भी अलहदा सैकड़ों रुपये वार्षिक पुण्य में खर्च हुआ करते थे। शत्रुशालजी के शासनकाल में राज्य की वार्षिक आय इक्कीस लाख के लगभग थी जिसमें से चौदह लाख के लगभग तोपखाना,

मामलत और कर्ज की किस्तों में तथा ब्याज में खर्च होजाता था। शेष आठ लाख में बाकी सब महक्मे थे। इस स्थिति में न तो कर्ज ही सन्तोषजनक रीति से चुकता था और न राज्य प्रबन्ध उत्तम रीति से चलाया जासकता था। अतः शत्रुशालजी ने एक सुयोग्य, अनुभवी और प्रभावशाली राजमन्त्री की आवश्यकता का अनुभव किया और भारतीय सरकार से इस कार्य के लिये उपयुक्त अफसर माँगा।

नवाब फैजअलीखाँ की नियुक्ति—सम्वत् १९३० (सन् १८७४) में भारतीय सरकार ने सम्पूर्ण अधिकारों के साथ नवाब फैजअलीखाँ को इस कार्य के लिये नियत किया। यह पहिले जयपुर का राजमन्त्री रह चुका था और वहाँ इसने बहुत अच्छा काम किया था। कोटे में ब्रिटिश सरकार ने इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करवाई। नौ तोपों से इसकी सलामी होती थी। बाजार में इस पर चँवर हुआ करते थे। यह गढ़ के दरवाजे के अन्दर तक छतरी लगा कर जाया करता था। और तामझाम में बैठा हुआ हथियाँपोल तक पहुँचा करता था। जब यह महाराव शत्रुशालजी से मिलने आता था तो कुर्सियों पर दरबार होता था और कोटा नरेश के दाईं ओर बैठा करता था। दरबार के अन्दर भी इसके आदमी चँवर हाथ में लिये हुये पीछे खड़े रहते थे। शत्रुशालजी इसका स्वागत करने के लिये फर्श के किनारे तक आते थे और इसी प्रकार विदा करते थे। इत्र पान द्वारा सत्कार किया जाता था। जितनी बार नवाब फैजअलीखाँ गढ़ में मिलने आता था उतनी ही बार शत्रुशालजी भी अजण्टी बँगले (राजभवन) पर उससे मिलने जाया करते थे। नवाब भी दरबार का स्वागत उसी प्रकार करता था जैसे गढ़ में उसका किया जाता था।

महाराव शत्रुशालजी का असन्तोष—जब भारतीय सरकार से एक योग्य प्रबन्धक माँगा गया था तो महाराव शत्रुशालजी को यह

अनुभव नहीं था कि वह इतने अधिकार और सम्मान के साथ नियुक्त किया जावेगा। नियुक्ति से पूर्व सरकार ने इस विषय का स्पष्टीकरण भी नहीं किया था। इस बात का पता शत्रुशालजी को उस क्षण लगा जब उनकी प्रथम बार नवाब से मुलाकात हुई। कर्नल बार्कले उसको लेकर आया था और नान्ते में मुलाकात हुई थी। कर्नल बार्कले ने जब नवाब फैजअली का परिचय कराया तो शत्रुशालजी ने कहा कि "इनने जयपुर में अच्छी नौकरी की है, आशा है यहाँ अच्छा काम करेंगे।" उनको यह पता नहीं था कि भारतीय सरकार ने नवाब को एक रईस की सी प्रतिष्ठा के साथ नियत किया है। जब नान्ते से शत्रुशालजी तामझाम में बैठ कर रवाना हुये तो एक तरफ कर्नल बार्कले और दूसरी तरफ नवाब फैजअलीखाँ भी तामझाम में बैठ कर छतरियाँ लगाये हुये उनके साथ हो लिये। शत्रुशालजी ने कर्नल बार्कले से इस विषय में पूछा तो उनसे कहा गया कि नवाब का ऐसा ही दर्जा है। इससे शत्रुशालजी को बड़ा असन्तोष हुआ और वे दोनों को छोड़ कर सीधे महल में आगये। उस दिन नवाब फैजअलीखाँ की सलामी की तोपें भी नहीं चलीं। दूसरे दिन कर्नल बार्कले के समझाने पर विवश होकर उन्होंने नौ तोपों से नवाब की सलामी लेने का हुक्म दिया। महाराव शत्रुशालजी को ऐसा मालूम हुआ होगा कि भारतीय सरकार ने कोटा राज्य से एक झाला निकाला, परन्तु दूसरा ला स्थापित किया। इस असन्तोष के कारण नवाब फैजअली केवल दो वर्ष ही काम कर सका। इतने थोड़े अरसे में भी उसने प्रबन्ध को पुनर्व्यवस्थित करने में प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

नवाब फैजअलीखाँ का प्रबन्ध—जिस समय नवाब फैजअली ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया तो सबसे बड़ी समस्या थी धन की कमी। जालिमसिंह तथा उसके पुत्र और पौत्र की महत्त्वाकांक्षा

ने राजकोष खाली कर डाला था और निरन्तर कलह ने सब प्रबन्ध-व्यवस्था शिथिल कर दी थी। प्रतिवर्ष भूमि कर के लाखों रुपये बाकी रह जाते थे। जिलादार प्रतिवर्ष कर निश्चित किया करते थे। जिससे कृषकों की स्थिति सदैव डावाँ डोल रहा करती थी। कर ग्रहण के निमित्त बड़ी कठोरता की जाती थी, परन्तु कृषक यातनायें सहकर भी बाकी रखने के आदी बने हुये थे। दुर्भिक्ष, भारी कर, और उत्पीड़न से तंग किसान अपनी जमीनों को छोड़ते जाते थे[1]। जो गाँव विभिन्न विभागों के खर्च के लिये उनके सुपुर्द कर रक्खे थे, उनकी वसूली में भी बड़ी कठिनाइयाँ हुआ करती थीं। पूरी वसूली न हो सकने के कारण महक्मों का खर्च चलना कठिन हो जाता था। राज के नौकरों की तनख्वाह कई मास तक नहीं मिलती थी[2]। अतः दो वर्ष के अरसे में नवाब फैजअली ने सर्वाधिक प्रयत्न इस बात का किया कि रियासत की आय बढ़ाई जावे और खर्च कम किया जावे।

आर्थिक सुधार—जिलेदार प्रायः मनमाने तरीके पर खर्च किया करते थे। कभी मन्जूरी लेते थे और कभी नहीं। नौकरों की संख्या भी इच्छानुसार घटा बढ़ा दिया करते थे। इस अवस्था को सुधारने के वास्ते पहिले यह आज्ञा हुई कि स्वीकृत चल्लू खर्च के सिवाय जिलेदार और कुछ खर्च न करे और यदि करेगा तो उससे वसूल किया जावेगा। इसके बाद यह हुक्म हुआ कि परगनों के अफसर चल्लू खर्च की भी स्वीकृति लें और परगने के कर्मचारियों और नौकरों का वेतन भी प्रति मास मंजूरी लेकर चुकावें। सब परगनों से जो रुपया वसूल होता था, उसको कोटा कृष्ण भण्डार में जमा करने की और

(१) तालीक सम्वत् १८८६ सावण बुद १।
(२) कृष्ण भण्डार की कयूफात सम्वत् १९३०।

वहाँ से आवश्यकतानुसार मन्जूरी से खर्च किये जाने की व्यवस्था की गई।

बकाया किस्तें — बकाया लगान की किस्तें वसूल करके बिलादार लोग अरसे तक रुपये अपने पास रख लिया करते थे और राजकोष में जमा नहीं करते थे। ऐसी किस्तों पर कृषकों से ब्याज भी लिया जाता था। ब्याज के रुपये प्रायः बिलादार लोग हजम कर जाया करते थे। इस प्रकार अनुचित रूप से बकाया पर ब्याज कमाने के लिये बिलादार लोग कर-संग्रह में रुचि और परिश्रम से कार्य नहीं करते थे। इस कुरीति के निवारणार्थ यह हिदायत की गई कि प्राप्त किस्तें और उनका ब्याज तत्काल राजकोष में जमा किया जावे।

बोहरों का रुपया और राज कर—कभी कभी राजकर्मचारी बोहरों से मिलकर राज का मतालबा बाकी रहने दिया करते थे और बोहरों का रुपया वसूल करवा दिया करते थे। इस प्रवृत्ति को रोक दिया गया और नियम बना दिया गया कि राजकर पूर्णतः जमा हो चुकने पर बोहरों के रुपयों की वसूली की कार्यवाही की जावे। जो जो गाँव विभिन्न विभागों के सुपुर्द थे, उनके कर-संग्रह का काम भी जिलेदार के सुपुर्द किया गया।

बकाया की वसूली—महाराव शत्रुशालजी के राज्याभिषेक के समय जो पटेलों से नजराणा लेना निश्चित हुआ था, इसमें से लगभग एक लाख रुपये अभी बाकी थे। जंगलात का महसूल कहीं से वसूल होता था और कहीं से नहीं। कहीं कहीं वसूल करके चौकीदार या बिलादार ही खाजाया करते थे। भूमि कर के भी कई लाख रुपये कई वर्षों से बाकी थे। उन दिनों में राज्य की ओर से कृषकों को अनाज उधार दिया जाता था और रुपये भी। इस कार्य के लिये प्रायः प्रत्येक

परगने में सरकारी दुकान होती थी। इस सीगे का अन्न और रुपया भी बहुत सा बाकी था। इसके अतिरिक्त 'टक्की बराड़' और 'जागीर बराड़' के भी हजारों रुपये बाकी चले आते थे। इस सब प्रकार की बकाया को वसूल करने के लिये जिलादारों को ताकीद की गई और हुक्म दिया गया कि जैसे जैसे बकाया वसूल होती जावे, कृष्णभण्डार में जमा करने को भेजदी जावे और वसूली का हिसाब भी पेश किया जावे। इस हुक्म के परिणामस्वरूप बहुत बकाया वसूल हुई। कुछ अरसे बाद बकाया की वसूली के लिये एक अलग महकमा संगठित किया गया जो कई वर्ष तक काम करता रहा। फिर भी लाखों रुपये नवाब फैजअलीखाँ के समय में ही नहीं बल्कि सम्वत् १९६८ तक बाकी रहते ही रहे। अन्त में मि० (अब सर) मोन्टेग्यू बटलर ने इसका सुधार किया जिसका उल्लेख विस्तार से आगे किया जावेगा।

टप्पण कचहरी का अन्त—सम्वत् १९३० तक ऐसी व्यवस्था थी कि जब कोई सरकारी आदमी किसी कृषक अपराधी या करदायी को बुलाने के वास्ते भेजा जाता था, तो वह अपनी खुराक तो उससे लेता ही था परन्तु इसके अतिरिक्त वह उससे कुछ पैसे भी लिया करता था जो 'रोजा का टका' कहलाता था। इस सीगे की आमदनी राज में जमा की जाती थी और इसका हिसाब रखने के वास्ते एक कचहरी थी जो 'टप्पण की कचहरी' कहलाती थी। इस प्रकार प्रजा से पैसे वसूल करना आधुनिक दृष्टि से अनुचित था, परन्तु सरकार ऋण के भार से लदी हुई थी, अतः 'रोजा का टका' ही क्या अन्य अनेक प्रकार के कर जो जालिमसिंह के समय में जारी किये गये थे, वे भी बन्द करना कठिन था। उस समय केवल यह व्यवस्था की गई कि 'टप्पण की कचहरी' तोड़दी जावे और इस सीगे की आमदनी

तालके के खजानों में जमा की जावे। इस व्यवस्था से कितने ही अहलकार और आदमी कम होगये और सरकार में बचत हुई।

शहर खबरी हरकारों पर नियन्त्रण—शहरखबरी हरकारे झाला जालिमसिंह की खास पुलिस थी जो प्रजा तथा राजकर्मचारी दोनों की गतिविधि से उसको सूचित रखा करती थी। इन लोगों पर जालिमसिंह को विशेष विश्वास था और विश्वास करना भी पड़ता था क्योंकि देश की स्थिति से परिचत रहने के लिये यही उस समय एक साधन था। इसलिये इन लोगों की सब पर धाक जमी रहती थी। क्या प्रजा क्या राजकर्मचारी सब इनसे भयभीत रहते थे और इनको सब प्रकार सन्तुष्ट रक्खा करते थे। जहाँ जाते थे वहाँ ये लोग प्रजा या राजकर्मचारियों से अपने खाने के लिये अनाज, गुड़ और अफीम आदि लिया करते थे। केवल खाने के लिये ही नहीं बल्कि अपने परिवार के लिये भी खाद्य सामग्री एकत्र कर लिया करते थे। इस बुराई को अब बिल्कुल बन्द कर दिया गया और विज्ञप्ति करदी गई कि कोई इन लोगों को घूस नहीं दिया करे। जो हरकारा इस प्रकार अनुचित लाभ उठाता था, उसको दण्ड दिया जाने लगा।

डाक प्रबन्ध—सम्वत् १८४० से पूर्व प्रजा की डाक का तो क्या राज की डाक का भी कोई प्रबन्ध नहीं था। जब कहीं कोई पत्र भेजना होता था तो हरकारे के साथ या साँडनी सवार के साथ भेजा जाता था। प्रजा में ऐसे लोग बहुत कम थे जो इस प्रकार का प्रबन्ध कर सकें। अतः पत्रव्यवहार नाममात्र का हुआ करता था। सम्वत् १८४० में जालिमसिंह ने केवल सरकारी डाक का कुछ प्रबन्ध किया था। महत्त्वपूर्ण खरीते तो अब भी पूर्ववत् भेजे जाते थे। परन्तु दूसरे साधारण पत्र, परवाने और हुक्मों को यथास्थान पहुँचाने का कार्य

शाह किशनराम हलदिया के सुपुर्द किया गया था। परवाने इस सेठ के सुपुर्द कर दिये जाते थे और वह उनको पहुँचाया करता था। बीकानेर, जोधपुर, अजमेर, झाँसी, पूना, दिल्ली और शाहजहांपुर आदि दूरस्थ नगरों तक यह सेठ सरकारी डाक पहुँचा दिया करता था। महाराव रामसिंहजी के समय में राज की डाक सरकारी तरीके पर पहुँचाई जाने लगी थी और डाकियों के साथ रक्षार्थ एक साँसरी रहा करता था। यह स्मरण रखने की बात है कि ब्रिटिश भारत में भी डाक की व्यवस्था सम्वत् १९१० के लगभग हुई थी। सम्वत् १९३० में कोटा राज्य की डाक का प्रबन्ध पटेल गजानन्द के सुपुर्द हुआ और केवल सरकारी डाक ही नहीं, किन्तु रिआया की डाक के पहुँचाने की भी व्यवस्था की गई। गैर सरकारी डाक पर एक तोला वजन का ।) लिया जाता था जो पत्र प्रेषक से नहीं, किन्तु पत्र प्राप्तकर्त्ता से वसूल किया जाता था। आधुनिक टिकिट अभी जारी नहीं हुए थे। इसलिये अहलकार लोग घरू पत्र सरकारी डाक के साथ भेज दिया करते थे और अहलकारों से मिल कर दूसरे लोग भी इस स्थिति से लाभ उठा लिया करते थे। इसको रोकने के लिये यह नियम जारी किया गया था कि सरकारी डाक के साथ यदि घरू डाक भेजी गई तो भेजने वाले पर २५) रुपये जुरमाना किया जावेगा।

ग्राम विवरण—नवाब फैजअलीखाँ ने नियुक्त होते ही जिलेदारों के नाम हुक्म जारी किया था कि अपने अपने तालके के प्रत्येक गाँव के स्त्री, पुरुष और बच्चों की, तथा मन्दिर, मस्जिद, कुएँ, बावड़ी, तालाब, नदी और कच्चे पक्के मकानों की सूची तैयार की जावे। इस हुक्म का जब कई मास तक पालन नहीं हुआ तो कई बार ताकीद भी की गई थी, परन्तु ऐसी सूची नहीं बन सकी। अतः कुछ अरसे बाद

दूसरा हुक्म जारी किया गया कि प्रत्येक गाँव की नहीं, किन्तु केवल उन कस्बों की जिनकी आबादी पाँच हजार या दस हजार से अधिक हो, सूची तैयार की जावे। सम्भव है ऐसी सूचियाँ बनाई गई हों, परन्तु वे पुराने दफ्तर में मिलती नहीं। पाँच हजार की आबादी वाले कस्बे उस समय इने गिने ही होंगे।

मुकाते की व्यवस्था—मुकाते की प्रथा कोटा राज्य में ही नहीं प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत में बहुत पुरानी थी। मुगल काल में भी यह कुछ हेरफेर के साथ जारी रही और मराठों ने तथा कम्पनी सरकार ने भी इसको जारी रक्खा। लॉर्ड कार्नवालिस ने तो इसको बंगाल तथा बिहार में स्थायी रूप दे दिया और इसका नाम "जिमींदारी" रक्खा। कोटा राज्य में मुकाता राव माधोसिंहजी के समय से चला आता था। इसके विषय में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी, परन्तु मुकाता हैसियत-दार को दिया जाता था और उसका सम्बन्ध केवल मालगुजारी से होता था। गाँव पर सरकार का शासन अन्य बातों में ज्यों का त्यों बना रहता था। नवाब फैजअलीखाँ ने भी मुकाते की प्रथा जारी रक्खी, परन्तु मुकाते की परम्परागत बातों को व्यवस्थित कर दिया और नियम बना दिया कि रियासत में जहाँ भी मुकाता दिया जावे, वहाँ एक सी शर्तों पर दिया जावे। मुकाते के पट्टों का स्वरूप निश्चित कर दिया गया और जिलादारों को हुक्म दे दिया कि सब मुकातेदारों को ऐसे पट्टे दिये जावें। मुकाता तीन वर्ष के लिये दिया जाता था। वार्षिक मतालबा तीन किस्तों में जमा करवाया जाता था। माफी और नौकरी की जमीन पर मुकाती का अधिकार नहीं रहता था। गाँव में जो सरकार की ओर से खर्च होता था, वह मुकाती को मुजरा मिलता था। जंगल, दीवानी, फौजदारी, रसूम और मकानों की बिक्री

के चौथान की आमदनी सरकार की थी। मुकाती इसको वसूल नहीं कर सकता था। तीन वर्ष पूर्व अकारण मुकाता नहीं तोड़ा जाता था।

निजामतें और तहसीलें—नवाब फैजअलीखाँ से पहिले कोटा राज्य परगनों में विभक्त था और प्रत्येक परगने का अफसर जिलादार कहलाता था। आरम्भ में कोई परगना छोटा था और कोई बड़ा, जिससे प्रबन्ध में कई कठिनाइयाँ हुआ करती थीं। सम्वत् १९२० में महाराव रामसिंहजी ने आमदनी की दृष्टि से सब परगने बराबर कर दिये थे। यह प्रबन्ध भी ठीक नहीं चल सका। अतः नवाब फैजअलीखाँ ने सम्पूर्ण कोटा राज्य को आठ निजामतों में विभक्त कर दिया। प्रत्येक निजामत दो तहसीलों में बाँट दी गई। हर एक निजामत का प्रबन्ध नाजिम के सुपुर्द किया गया जिसको माल के काम के अतिरिक्त दीवानी और फौजदारी के अधिकार भी दिये गये। प्रति तहसील पर एक तहसीलदार नियुक्त हुआ। हर एक निजामत के दोनों तहसीलदार नाजिम के मातहत रक्खे गये। निजामत के इलाके में कहीं एक और कहीं दो थानेदार थे। वे भी सम्वत् १९२० की व्यवस्था के अनुकूल नाजिम के मातहत बने रहे। माल, फौजदारी, दीवानी और हिसाब आदि के काम के लिये नाजिम के पास यथावश्यक लेखक और कर्मचारी नियत किये गये। नाजिम, तहसीलदार और अन्य कर्मचारियों का वेतन सम्पूर्ण राज्य में समान कर दिया गया।

पहिले जिलादारों को बहुत कम वेतन मिलता था। इसलिये वे लोग कई अनुचित साधनों से धन संग्रह किया करते थे। इस अनाचार को रोकने के लिये नाजिमों को अस्सी रुपया मासिक और नायबों को तीस रुपया मासिक तथा इसी के अनुकूल अहलकारों का उचित वेतन निश्चित किया।

उपरोक्त प्रबन्ध भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। अतः दो वर्ष

बाद ही अर्थात् सम्वत् १९३४ में काउन्सिल ने तहसीलें तोड़ कर आठ निजामतों को पन्द्रह निजामतों में विभक्त कर दिया और शेष प्रबन्ध पूर्ववत् रक्खा। प्रबन्ध को व्यवस्थित करने के लिये राज्य शासन जुदे २ महक्मों में विभक्त करके प्रत्येक महक्मे का वार्षिक बजट नियत किया गया। इसी प्रकार वार्षिक आय का भी अनुमान लगाया। इससे आय और व्यय का ठीक ठीक पता लग गया और लाखों रुपयों के ऋण को चुकाने के लिये मार्ग सूझने लगा। कई सेठों ने राज्य की आर्थिक कठिनाइयों से लाभ उठा कर अनुचित ब्याज दर से ऋण का परिमाण बढ़ा रक्खा था। ऐसे लोगों के कर्ज के उचित फैसले कर दिये गये और शेष बड़ी बड़ी रकमों की किस्तें करदी गईं। महाराव शत्रुशालजी दान पुण्य में प्रति वर्ष लाखों रुपये व्यय किया करते थे। अपनी दानशीलता के आवेश में उनको राज्य के आय और व्यय का भी विचार नहीं रहा करता था। इसकी रोक करने के लिये दान सीगे का बजट नियत किया और महाराव शत्रुशालजी के निजी खर्च के लिये दस हजार रुपये मासिक निश्चित किये गये[1]।

प्रजाहित के कार्य—सम्वत् १९३१ से पहिले राज्य की ओर से कोई पाठशाला नहीं थी। राजधानी में और परगनों में जो लोग अव्यवस्थित रूप से लड़कों को देशी हिन्दी और मामूली हिसाब पढ़ाया करते थे, उनमें से जिसकी गति किसी उच्चकर्मचारी तक हो जाती थी, उसको राज्य की ओर से दान के रूप में कुछ देदिया जाता था, परन्तु उनके काम पर या पढ़ाई की शैली पर या पाठ्यक्रम पर राज का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था। राजराणा जालिमसिंह ने सेना, माल, जकात, कृषि आदि विभागों को अच्छा संगठित किया

(१) बजट सम्वत् १९३०।

था और कई बातों में उसने अँग्रेजी ढंग को ग्रहण किया था, परन्तु स्वयम् अशिक्षित होने के कारण शिक्षाप्रचार की ओर उसका ध्यान नहीं गया। साथ ही उसकी योग्यता के आदमी के लिये शिक्षा के महत्त्व को समझना भी आसान बात नहीं थी। वास्तव में हमारा देश शिक्षा के महत्त्व को सदियों से भूला हुआ था। यही कारण है कि दशवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक अधिकांश हिन्दू राजा प्रायः निरक्षर थे और उनके मन्त्री भी नाममात्र के साक्षर थे। राजा के लिये शूरता और मन्त्री के लिये प्रपञ्च कौशल पर्याप्त गुण माने जाते थे। ऐसी अवस्था में कब सम्भव था कि जालिमसिंह शिक्षा के महत्त्व को अनुभव करता ?

भारतवर्ष में शिक्षाप्रचार का सूत्रपात सर्व प्रथम कम्पनी सरकार ने किया था। जब मिस्टर वारेन हेस्टिंग्ज को कम्पनी ने अपने भारतीय राज्य का प्रथम गवर्नर जनरल बनाया तो उसने कलकत्ता नगर में एक कॉलेज स्थापित करवाया और हिन्दी तथा उर्दू की पुस्तकें लिखवाना आरम्भ किया। लॉर्ड बेन्टिङ्क के शासन काल में यह निश्चित हुआ कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी भाषा रक्खी जावे। उसके बाद अँग्रेजी, हिन्दी, और उर्दू के स्कूलों की संख्या बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि गदर के साल ही कलकत्ता, मदरास और बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित कर दिये थे। इसके कुछ वर्ष बाद ही लाहौर और प्रयाग में भी विश्वविद्यालय जारी होगये। लॉर्ड मेयो (तत्कालीन वायसराय) ने सम्वत् १९२७ (सन् १८७०) में राजपूताने में मेयो कॉलेज का शिलान्यास किया था, और राजपूताने में प्रथम अँग्रेजी स्कूल सम्वत् १९२६ में अजमेर में ईसाइयों ने स्थापित किया था।

नवाब फैजअलीखाँ उर्दू और फारसी का तो विद्वान् था ही अँग्रेजों के सम्पर्क से वह शिक्षा के महत्त्व को भी समझने लग गया

था, साथ ही अँग्रेज सरकार की नीति भी थी कि देशी राज्यों में आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया जावे। अतः कोटा राज्य के प्रबन्ध की बागडोर अपने हाथ में लेते ही राज्य की ओर से नवाब ने शिक्षा प्रचार का कार्य आरम्भ किया। कोटा नगर में एक लड़कों का और एक लड़कियों का स्कूल जारी हुआ। लड़कों के स्कूल में दो अध्यापक अँग्रेजी के, दो उर्दू या फारसी के और दो हिन्दी के नियत किये। मुख्याध्यापक बाबू जादूनाथ था जो बंगाली था और उसको सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। लड़कियों का स्कूल केवल नाममात्र का था। दस रुपये मासिक पर एक मुसलमान अध्यापिका ही नियत की जा सकी थी जिसके पास दो पाँच लड़कियाँ पढ़ने के लिये आजाया करती थीं। हिन्दी पढ़ाने वाली अध्यापिका शायद उस समय मिलही नहीं सकती होगी। आरम्भ में शिक्षा का कुल वार्षिक खर्च ३,७६०) रुपये था। इसके अतिरिक्त निजामतों में जो लोग पुरानी शैली से कुछ उच्च जाति के लड़कों को पढ़ाया करते थे, उनको निजामत से कुछ सहायता मिल जाया करती थी।

शफाखाना—सम्वत् १९३० से पहिले भी कोटे में एक डाक्टर नियत था, परन्तु न तो औषधि आदि के लिये कोई बजट था और न लोग अँग्रेजी इलाज पर विश्वास करते थे। नवाब फैजअलीखाँ ने एक अच्छा डाक्टर कन्हैयालाल नामक नियत किया और उसके पास कम्पाउन्डर, ड्रेसर, नौकर आदि की भी नियुक्ति की तथा औषधि खरीदने के लिये बजट स्वीकृत किया। इस प्रकार इस राज्य के चिकित्सा विभाग का आरम्भ हुआ।

म्यूनिसिपल कमेटी—सम्वत् १९२० में नगर की सफाई की कुछ व्यवस्था की गई थी और यह काम शहर कोतवाल के सुपुर्द किया गया था, परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई। सम्वत् १९३१ में

भी वही शोचनीय दशा थी जो सम्वत् १९२० से पहिले थी। नवाब फैजअलीखाँ ने इस कार्य के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया और उसकी मातहती में कुछ लेखक, जमादार और चपरासी रक्खे। यह सफाई का श्रीगणेश मात्र था, परन्तु उस समय की आर्थिक समस्या और व्यापक दुर्व्यवस्था के होते हुये भी इस प्रकार के सुधार की ओर ध्यान देना नवाब फैजअलीखाँ के लिये प्रशंसा की बात थी।

एञ्जिनियरिंग विभाग—सम्वत् १९३० में कोटा राज्य में कच्ची या पक्की किसी प्रकार की कोई सड़क नहीं थी। परगनों की कचहरियाँ सब कच्ची बनी हुई थीं। यहाँ तक कि राजधानी में भी अधिकांश दफ्तर कच्चे मकानों में होते थे। आरम्भ में लड़के और लड़कियों के स्कूल भी किराये के मकानों में खोले गये थे। नवाब फैजअलीखाँ ने एक अँग्रेज को सड़कें और मकान बनाने के लिये पाँचसौ रुपये मासिक पर नियत किया। यह अफसर उस समय सुपरिन्टेन्डेन्ट इमारत कहलाता था। सड़कें, तालाब, निजामतों की कचहरियों के मकान और पुराने मकानों की मरम्मत का काम शुरू हुआ। यह सुव्यवस्था का फल था कि रियासत पर भारी ऋण होते हुये भी इस प्रकार की उन्नति के कामों के लिये वार्षिक बजट में गुंजायश निकाली जासकती थी।

न्याय विभाग—इस समय तक न्याय विभाग की कोई समुचित व्यवस्था नहीं हो पाई थी। सम्वत् १९२० में इस विभाग के अफसरों के कार्य, कार्यशैली, कार्यकाल आदि निश्चित करने का प्रयत्न किया गया था, परन्तु वह सफल नहीं हुआ और दुर्व्यवस्था वैसे ही बनी रही। अतः अब इस विभाग को पुनः संगठित किया गया। न्याय और माल की सर्वोच्च अदालत महक्मा आलिया के नाम से स्थापित हुई जिसमें स्वयम् नवाब फैजअलीखाँ काम करता था। उसको

सम्पूर्ण प्रबन्ध कार्य में तथा न्याय कार्य में सहायता देने के लिये तीन सदस्यों की एक कौन्सिल बनाई जो स्थानीय समस्याओं से उसको परिचित करती थी। महक्मा आलिया के मातहत अदालतेन थी जिसमें दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकद्दमों की सुनवाई की जाती थी। हाकिम अदालतेन आधुनिक भाषा में सेशन जज था। इसके मातहत दीवानी और फौजदारी की दो कचहरियाँ थीं। नाजिमों को भी जिलेदारों की भाँति दीवानी और फौजदारी के अधिकार दिये गये। इसके अतिरिक्त थानेदारों और कोतवालों के भी पुराने अधिकार कुछ अंश तक जारी रहे।

उर्दू राजभाषा बनाई—अब तक राज का सब कार्य हाड़ौती भाषा में होता था जिसके अक्षर भी हाड़ौती लिपि के थे। नवाब फैजअली जयपुर से आया था। अतः वह स्थानीय भाषा से अपरिचित था। इसके अतिरिक्त उसका अँग्रेजी अफसरों से भी सम्पर्क था और कोटा राज्य की प्रबन्ध कार्यवाही से एजेण्ट और ए० जी० जी० को सूचित करते रहना उसका कर्त्तव्य था। उस समय के अँग्रेज अफसर भी उर्दू से परिचित हुआ करते थे, क्योंकि उत्तर भारत में सारा प्रबन्ध उर्दू या फारसी में होता हुआ अँग्रेजों को मिला था। अतः नवाब फैजअली ने शासन सूत्र हाथ में लेते ही कोटा राज्य के मुख्य मुख्य दफ्तरों की भाषा उर्दू कर दी। उस समय उर्दू जानने वाले और नई प्रणाली से परिचित लोग कोटा राज्य में नहीं मिल सकते थे क्योंकि यहाँ पर शिक्षा का आरम्भ ही नवाब फैजअली ने किया था। इसके अतिरिक्त रेल, तार और डाकखाने अभी कोटा राज्य में नहीं पहुँच पाये थे। अतः यहाँ के निवासियों को नये युग का अभी दर्शन भी नहीं हुआ था। अतः नवीन ढंग के राजकर्मचारी और उर्दू तथा अँग्रेजी के लेखक यहाँ कैसे मिल सकते थे? यही कारण था कि नवाब फैजअली

ने आठों निजामतों के नाजिम, पन्द्रह तहसीलों के तहसीलदार, अदालतेन, दीवानी और फौजदारी के हाकिम, शहर कोतवाल, बड़े महक्मों के सरिश्तेदार, नाजिर और कौन्सिल तथा महक्मा आलिया के प्रायः सब अहलकार बाहर से बुलवाये। फिर भी प्रत्येक दफ्तर में बहुत सा काम ऐसा था जिसको बाहर के आदमी नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त पुराने दफ्तर सब हाड़ौती भाषा में थे अतः पुराने कागजात को पढ़ने के लिये यहाँ के लोगों की आवश्यकता थी! अतः प्रत्येक दफ्तर में हाड़ौती भाषा भी जारी रही। कुछ सीगों का काम उर्दू में होता था और कुछ का हिन्दी में; परन्तु शनैः शनैः हाड़ौती अक्षरों में अब उर्दू शब्द लिखे जाने लगे और उर्दू भाषा का व्यवहार अधिकाधिक होने लगा।

बन्दोबस्त—भूमि को नाप कर उसकी उपज के अनुकूल लगान निश्चित करने का प्रयत्न सर्व प्रथम कोटा राज्य में राजराणा जालिमसिंह ने किया था। उससे पहिले यह काम चौधरी, कानूँगो करते थे। परन्तु इस विषय में न कोई नियम था और न कोई व्यवस्था। खेतों का नाप और लगान निश्चित और स्थिर न होने के कारण कृषकों को निरन्तर कष्ट बना रहता था और राज्य की वार्षिक आय भी घटा बढ़ा करती थी। जालिमसिंह ने भूमि को नपवाकर लगान निश्चित किया था, परन्तु जुदे जुदे परगनों में जुदी जुदी डोरी से जमीन नापी गई थी, मुकाते की पृथा बन्द नहीं होपाई थी और कागज पक्के नहीं बन सके थे तथा दफ्तर की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। इसलिये पुरानी दुरावस्था में कोई सन्तोषजनक अन्तर नहीं होसका था और सब खराबियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई थीं। अब नवाब फैजअली सम्पूर्ण राज्य की जमीन पुनः नपवा कर उसका लगान नियत करना चाहता था। अतः उसने बन्दोबस्त का कार्य जारी किया और इस काम के

लिये चौबीस सौ रुपये सम्वत् १९३१ के बजट में मन्जूर किये। यह प्रारम्भ मात्र था। नवाब फैजअली के हाथ में कोटे का शासन केवल दो वर्ष रहा, अतः वह इस कार्य का विकास नहीं कर सका।

कौन्सिल का प्रबन्ध

(सन् १८७७—१८९७ तक)

नवाब फैजअलीखाँ की विदा—नवाब फैजअलीखाँ दो वर्ष ही काम कर सका। इस अरसे में उसने आर्थिक स्थिति को सँभालने का प्रयत्न किया, प्रबन्ध को व्यवस्थित किया और शिक्षा, सफाई तथा चिकित्सा के महक्मे जारी करके प्रजा का हित किया। परन्तु नवाब फैजअली की प्रशंसनीय सेवा भी शत्रुशालजी को नहीं रुचती थी। उसने कोटा राज्य में कदम रक्खा तब से ही वे असन्तुष्ट थे। उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा के कारण यह असन्तोष बना ही रहा। महाराव शत्रुशालजी आरम्भ से ही उससे अप्रसन्न होगये थे लेकिन भारत सरकार ने उसको शासन के पूर्ण अधिकार देकर कोटा राज्य का मदारुलमहाम् (सर्वोच्च शासक) नियत किया था। अतः विवश होकर दरबार को नवाब फैजअली की स्थिति सहन करनी पड़ी थी, परन्तु ऐसी अवस्था में निर्वाह होना था कठिन। निसन्देह महाराव शत्रुशालजी शासन संचालन करने में किसी प्रकार का अब हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे और शासन की बागडोर नवाब फैजअली के हाथों में सौंपी जा चुकी थी, परन्तु फिरभी दरबार का प्रभाव और बल लुप्त नहीं हो सकता था। इस प्रकार का पारस्परिक वैमनस्य पोलिटिकल विभाग को भी रुचिकर प्रतीत नहीं होता होगा। फिर भी अपने मान की रक्षा करने के लिये गवर्नमेन्ट ने नवाब फैजअली को दो वर्ष तो कोटे रक्खा ही। अतः उसको भारत सरकार ने सम्वत् १९३२ में वापिस बुलाकर कोटा राज्य का शासन भार स्थानीय पोलीटिकल एजेण्ट के सुपुर्द कर दिया।

कौन्सिल—नवाब सर फैजअली ने सम्वत् १९३१ में एक कौन्सिल स्थापित की थी। जिसमें तीन मेम्बर थे—पलायथे के आप अमरसिंहजी, राजगढ़ के आप कृष्णसिंहजी और पण्डित रामदयालजी। नवाब फैजअली के शासनकाल में यह कौन्सिल क्या काम करती थी और इसके क्या अधिकार थे, इसका पता नहीं चलता। नवाब फैजअली के हुक्म महक्मा आलिया के हुक्म कहलाते थे और उन्हीं का सम्पूर्ण राज्य में पालन होता था। उसके समय में कौन्सिल की ओर से सम्भवतः कोई हुक्म जारी नहीं हुआ। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि नवाब फैजअली आवश्यकतानुसार शासन कार्य में उपरोक्त तीनों मेम्बरों से उचित परामर्श कर लिया करता होगा और उनकी सलाह से लाभ उठाकर हुक्म दिया करता होगा। जब नवाब फैजअली ने शासन भार छोड़ा तो कोटा राज्य के पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल पौलिट थे। उन्होंने सारौला के पण्डित मोतीलाल को भी कौन्सिल सदस्य नियत किया। इस प्रकार अब चार मेम्बरों की कौन्सिल बनी। सम्वत् १९४३ में पण्डित रामदयाल ने काम करना छोड़ दिया और उसके स्थान पर पण्डित शिवशंकर नियत हुआ। सम्वत् १९४९ में पण्डित मोतीलालजी का देहान्त होगया और कोयला के आप पृथ्वीसिंहजी नियत हुये। सम्वत् १९५० में आप कृष्णसिंहजी की मृत्यु होगई और उनके स्थान पर बमूल्या के महाराजा जयसिंहजी नियुक्त हुये। इसी समय राज विजयसिंहजी कुन्हाड़ी कौन्सिल के अतिरिक्त मेम्बर बनाये गये। सम्वत् १९५० में पण्डित शिवशंकर की भी मृत्यु होगई। अतः सैयद जाफर हुसैन जो पहिले हाकिम अदालतेन था, उसके स्थान पर हुआ। एक वर्ष बाद इसने त्यागपत्र दे दिया और चौबे रघुनाथदास जो उस समय हाकिम माल था, इस स्थान पर नियत हुआ। यह कौन्सिल सम्वत् १९५३

तक काम करती रही। आदि से अन्त तक केवल आप अमरसिंहजी ने ही काम किया। शेष मेम्बर या तो मर गये या थोड़े अरसे तक ही रहे। जब उस वर्ष वर्त्तमान नरेश को शासन का पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ तो कौन्सिल तोड़दी गई और चौबे रघुनाथदासजी को दीवान नियत किया गया। आप अमरसिंहजी को अपनी सुसेवा के उपलक्ष्य में दो हजार रुपये वार्षिक जागीर और दो सौ पचास रुपये मासिक पेन्शन दी गई। महाराजा जयसिंहजी के सुपुर्द कुछ महक्मे करके दो सौ पचास रुपये मासिक वेतन और १०,०००) रुपये वार्षिक की व्यक्तिगत जागीर प्रदान की। राज विजयसिंहजी पुण्य-कोटरियात के हाकिम बनाये गये।

कौन्सिल के अधिकार—कौन्सिल कोटा राज्य की सर्वोच्च शासक समिति नहीं थी। इसका कार्य पोलिटिकल एजेण्ट के तत्त्वावधान में हुआ करता था। आरम्भ में कुछ वर्ष कर्नल पौलिट पोलिटिकल एजेण्ट ने शासन का संचालन किया और उसके बाद दस वर्ष तक कर्नल बेली ने काम किया। पोलिटिकल एजेण्ट कौन्सिल का प्रधान नहीं था। वह स्वतन्त्र रूप से शासक था। अनेक हुक्म कौन्सिल से पूछे बिना ही वह स्वयम् दे दिया करता था। विशेष और गम्भीर विषय कौन्सिल अपना मत निश्चित करके पोलिटिकल एजेण्ट के सामने अन्तिम निर्णयार्थ पेश किया करती थी। पोलिटिकल एजेण्ट का वास्तव में अलग ही महक्मा था। नवाब फैजअली के चलाये हुये रिवाज के अनुसार यह महक्मा कुछ अरसे तक महक्मा आलिया कहलाया, परन्तु फिर कर्नल बेली ने इसका नाम बदल कर महक्मा एजेण्टी रख दिया। महक्मा एजेण्टी में मीर मुन्शी, सरिश्तेदार और अन्य कई लेखक आदि अलग रहते थे और एजेण्ट अपना इजलास भी स्तन्त्ररूपेण अलग किया करता था। महक्मा एजेन्टी के हुक्म कौन्सिल के द्वारा जारी हुआ करते थे।

कौन्सिल का कार्य—बाईस वर्ष के अरसे में पोलिटिकल एजेण्ट—विशेषकर कर्नल बेली के तत्त्वावधान में कौन्सिल ने कोटा राज्य के शासन का बड़ी उत्तमता से संचालन किया, जिसके फल-स्वरूप सम्पूर्ण शासन की काया पलट होगई और प्रबन्ध के प्रत्येक विभाग में सन्तोषजनक सुधार दिखाई देने लगे। इस अरसे में प्रत्येक विभाग पुनः व्यवस्थित किया गया और छोटे बड़े राजकर्मचारियों के कर्त्तव्य तथा अधिकार निश्चित हुये। कचहरियों में ब्रिटिश कानून के मूल तत्त्वों के अनुसार काम होने लगा। शिक्षा, चिकित्सा और सफाई की उन्नति हुई। राज्य में चोरियाँ और डकैतियाँ बहुत कम होगईं और शान्ति की स्थापना हुई। भूमि को नाप कर उपज के अनुसार कर निश्चित किया गया। वर्षों का बाकी लगान वसूल करने का प्रयत्न जारी हुआ। कृषकों को दुर्भिक्ष में छूट और आवश्यकतानुसार तकावी दी जाने लगी। भूमि प्रबन्ध व्यवस्थित होजाने से तथा शान्ति और सुमार्गों के कारण जकात, जंगल और आबकारी की आय बढ़ जाने से सरकार की आर्थिक स्थिति सुधर गई। इस प्रकार राज्य को सर्वांगीण सुव्यवस्थित बना कर कौन्सिल ने सम्वत् १९५३ में शासन की बागडोर वर्त्तमान नरेश के सुपुर्द की।

आर्थिक सुधार—सम्वत् १९३० के फाल्गुण मास में जब नवाब फैजअली ने शासन सूत्र अपने हाथ में लिया था तो राज्य पर ८९,५७,९४०) रुपये का ऋण था और राजकोष में केवल ५१९) रुपये थे। जब भिन्न भिन्न बोहरों से हिसाब माँगा गया तो विदित हुआ कि वास्तव में ऋण ४६,४३,१२५) रुपये का है। निरन्तर बीस वर्ष के प्रयत्न से कौन्सिल ने इस भारी ऋण को चुका दिया। जब कौन्सिल ने राज्य शासन वर्त्तमान नरेश की आज्ञा से चौबे रघु-नाथदास के सुपुर्द किया तो राजकोष में १७,६५,३३०) रुपये जमा

थे। इतना ही नहीं, गत बाईस वर्ष में कौन्सिल लगभग सैंतालीस लाख रुपये प्रजाहित के कार्यों में अर्थात् इमारतों, सड़कों, शफाखानों और स्कूलों पर खर्च कर चुकी थी[1]। यह सब कुछ इसलिये होसका था कि कौन्सिल ने आरम्भ से ही आय और व्यय का वार्षिक तखमीना बना कर अनावश्यक खर्च कम कर दिया था। यहाँ तक कि महाराव शत्रुशालजी का व्यक्तिगत खर्च भी घटा कर केवल दस हजार रुपये मासिक रहने दिया था। उस समय प्रबन्ध भी इस समय की भाँति मँहगा नहीं था। कौन्सिल के मेम्बरों में सब से बड़े मेम्बर को पाँच सौ रुपये मासिक और नये मेम्बर को केवल दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। कौन्सिल के प्रारम्भिक काल में कई विभागों के अधिकारियों की तनख्वाह आजकल के सरिश्तेदारों की तनख्वाह के बराबर थी।

बन्दोबस्त, नहरें और तकावी आदि सुविधाओं के कारण राज की आमदनी प्रत्येक विभाग में उत्तरोत्तर बढ़ती गई। सम्वत् १९४६ में माल, जंगलात, जकात और आबकारी की आमदनी मिल कर २०,६५,९८८) रुपये थी लेकिन सम्वत् १९५३ में अर्थात् सात वर्ष के पश्चात् इन्हीं सीगों की आमदनी बढ़ कर ३२,७२,०८०) रुपये होगई।

बन्दोबस्त—कौन्सिल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य बन्दोबस्त था। भूमिकर ही कोटा राज्य के कोष का आधार है और कृषि यहाँ के निवासियों का एक मात्र मुख्य व्यवसाय है। जालिमसिंह ने भी इस ओर ध्यान दिया था और सम्वत् १८६४ में सारे कोटा राज्य की जमीन की पैमायश करवाई थी। इस बन्दोबस्त में सब से बड़ा और उल्लेखनीय सुधार राज्य की दृष्टि से यह था कि उपज के अंश के बजाय अब लगान के नकद रुपये लिये जाने लगे।

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५१, पृष्ठ ३।

इसके बाद लगभग सत्तर वर्ष तक इस विषय की चिन्ता नहीं की गई और यह बन्दोबस्त अस्तव्यस्त होगया। इस अरसे में ऐसी अनेक घटनायें हुईं जिनके कारण सब प्रबन्ध अव्यवस्थित होगया था। फिर जालिमसिंह का किया हुआ कच्चा बन्दोबस्त क्या टिक सकता था? अतः सम्वत् १९३० में जब फैजअली मदारुल मुहाम बना तो उसने भूमि प्रबन्ध को पुनः संगठित और व्यवस्थित करने की आवश्यकता अनुभव की। उसने मुकाते के नियम बनाये और बन्दोबस्त का श्रीगणेश किया। परन्तु अपने अल्प शासन समय में वह सुधार योजनाओं को क्रियात्मक रूप नहीं देसका। ऐसी किंवदन्ती है कि जब उसने बन्दोबस्त आरम्भ किया तो इटावे के कृषकों में बड़ा असन्तोष हुआ और उन्होंने पोलिटिकल एजेण्ट को दरख्वास्त दी कि नवाब फैजअली का शासन बड़ा कठोर है। इसके अतिरिक्त महाराव शत्रुशालजी को नवाब पर पूरा विश्वास नहीं था। उसके कई कार्यों को वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। राजराणा पृथ्वीसिंहजी के देहान्त पर नवाब फैजअली ने झालावाड़ को पुनः कोटा राज्य में मिलाने के लिये जो कार्रवाई की थी, वह भी शत्रुशालजी ने सन्देह की दृष्टि से देखी। अतः नवाब ने असन्तुष्ट होकर त्यागपत्र देदिया। कोटा राज्य का शासन कार्य कर्नल पौलिट के सुपुर्द कर दिया गया।

मुन्शी दुर्गाप्रसाद का बन्दोबस्त—कर्नल पौलिट ने फौरन ही बन्दोबस्त का काम मुन्शी दुर्गाप्रसाद के सुपुर्द किया। दुर्गाप्रसाद पहिले कई अँग्रेज अफसरों की मातहती में रह चुका था और भूमि प्रबन्ध का उसको विस्तृत अनुभव था। मुन्शी दुर्गाप्रसाद ने सम्वत् १९३३ में बन्दोबस्त का काम आरम्भ किया और सम्वत् १९४३ में समाप्त किया। जमीन की उपज और हैसियत निश्चित करने में उसने इस बात का खयाल रक्खा कि जमीन का ढाल कितना है, मिट्टी किस

प्रकार की है, सिंचाई का प्रबन्ध है या नहीं और जमीन गाँव से तथा जंगल से कितनी दूर है ? इसलिये भूमि का विभागीकरण ठीक हो गया। रस्से की डोरी हटा कर लोहे की डोरी जारी की गई। पहिले प्रायः प्रत्येक गाँव के बीघे का नाप जुदा था और राज्य में सैकड़ों प्रकार की डोरियाँ मौजूद थीं। मुन्शी दुर्गाप्रसाद ने यह संख्या घटा कर केवल ११ रहने दी जिनका नाप १३० फीट ८ इंच से १४९ फीट ८ इंच तक रक्खा गया। यह बन्दोबस्त मुन्शी दुर्गाप्रसाद ने हाथी पर बैठ कर किया था। उसने राज्य का प्रत्येक खेत घूम घूम कर देखा था और जमीन के ढाल तथा बहाव का पूरा पूरा निरीक्षण किया था। इसलिये इस बन्दोबस्त को "हाथी वाला बन्दोबस्त" भी कहते हैं। इस बन्दोबस्त में प्रायः पुराने लगान ही जारी रक्खे गये थे। लगान में पाई और पाई के अंश का भी हिसाब किया जाता था। इससे भूमि-कर में एक लाख रुपये वार्षिक की वृद्धि हुई थी और दस वर्ष में चार लाख रुपये खर्च हुये थे[1]।

कृषकों को साहयता—अत्यधिक भूमिकर और अनेक प्रकार के अन्य करों के कारण कृषकगण भयंकर निर्धनता से सदैव दबे हुये थे। कई गावों में ऐसी स्थिति थी कि राज और साहूकार के डर से कितने ही कृषक अपना घरबार छोड़कर भाग जाया करते थे। जो कृषक इस प्रकार जमीन छोड़ भागते थे, उनको राज विवश वापिस बुला कर जमीन जुतवाता था। इतना करने पर भी हजारों बीघे जमीन पड़त रह जाया करती थी और कृषकों की आर्थिक विपत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। राज्य की आर्थिक स्थिति भी

---

(१) i रिपोर्ट बन्दोबस्त सोयम पृष्ठ ५०–५१।

(२) ii फाइनल रिपोर्ट ऑफ दी सेकन्ड सेटलमेन्ट, पृष्ठ २०–२१।

चिन्ताजनक थी। अतः न कर हल्के किये जासकते थे और न अन्य प्रकार की सहायता कृषकों को दी जासकती थी। कई वर्षों के निरन्तर राजनीतिक संकट के कारण प्रबन्ध और प्रजाहित की ओर ध्यान नहीं दिया जासका था। वास्तव में कोटा राज्य स्थापित हुआ तब से इस ओर शायद कौन्सिल ने ही प्रथम बार ध्यान दिया था। हजारों वीरान कुओं की मरम्मत के लिये बहुत साधारण ब्याज पर राज की ओर से कृषकों को रुपये उधार देने का और इस ऋण को छोटी छोटी वार्षिक किस्तों में जमा करवाने का आयोजन किया गया। प्रति वर्ष इस काम के लिये बजट में रुपया निश्चित किया गया। इसके अतिरिक्त जहाँ बीज या खाने के लिये अन्न नहीं मिलता था, वहाँ के कृषकों को इस काम के लिये छोटी ब्याज दर पर रुपया उधार दिया गया और बीज समय पर मिलने के लिये भी नियम बनाये गये।

नहरें—सम्वत् १९४६ से पहिले कोटा राज्य में जमीन की सिंचाई करने के लिये कुएँ या डहरियाँ थीं। ये भी मराठों की लूट-मार के जमाने में और उसके फलस्वरूप जालिमसिंह के अनेक करों के कारण बरबाद हो चुकी थीं। स्थिति का निरीक्षण करने के बाद कौन्सिल ने अनुभव किया कि कोटा राज्य में कुछ नहरें और तालाब ऐसे बनाये जासकते हैं जिनसे बहुत सी भूमि की सिंचाई हो सके। इस निश्चय के अनुसार सम्वत् १९३३ में चार स्थानों पर सिंचाई के साधन तैयार करने का आयोजन शुरू हुआ। सम्वत् १९४१ में पारवती की मुख्य नहर तैयार हुई। सम्वत १९४३ में अकलेरा सागर बना। रामगढ़ की नहर का निर्माण १९४६ में समाप्त हुआ और दरा नीमोदा की सारनें सम्वत् १९४३ में बनीं। इन चारों कामों में लगभग साढ़े चार लाख रुपये खर्च हुये और सम्वत् १९५१ में इनके द्वारा सात हजार तथा सम्वत् १९५२ में साढ़े ग्यारह हजार

बीघे जमीन सींची गई[1]।

न्याय विभाग—इस विभाग को नवाब फैजअलीखाँ ने आते ही संगठित कर दिया था। कौन्सिल के समय में इसकी व्यवस्था अधिकाधिक दृढ़ होती गई। सम्वत् १९२० में मुकद्दमों की मिसलें बनाने का जो नियम जारी किया गया था, वह और अधिक व्यवस्थित, नियमित और दृढ़ होगया। सैयद जाफरहुसैन इस विभाग का कितने ही वर्ष तक हाकिम रहा। इसको ब्रिटिश भारत के कानून और जाब्ते से खूब परिचय था और यह बड़ा अनुभवी पुरुष था। इसकी संरक्षकता में न्याय विभाग का प्रबन्ध ही नियमित नहीं हुआ बल्कि शनैः शनैः ब्रिटिश भारत का कानून भी कोटा राज्य में लागू होने लग गया। दण्डविधान और कारागार के नियमों में कई ऐसे परिवर्तन किये गये जिनको मनुष्यता की दृष्टि से सुधार कहना चाहिये। उस समय तक दण्डविधान लिखित और निश्चित न होने के कारण राजकर्मचारीगण मनमानी और चाहे जिस प्रकार की सजा दे दिया करते थे। दण्डविधान की अमानुषिक कठोरता में जनता का अधिक विश्वास था। अतः हाथ पैर कटवा देना और अत्यन्त जघन्य साधनों के द्वारा प्राणदण्ड देना राजस्थान की प्रायः सब रियासतों में प्रचलित था। इस प्रकार का दण्डविधान ब्रिटिश सरकार को रुचिकर नहीं था। ब्रिटिश भारत से यह बर्बरता उठादी गई थी और प्रयत्न किया जारहा था कि देसी रियासतों में भी इस प्रकार की घोर और कठोर सजायें बन्द हो जावें। सम्वत् १९४४ में बीकानेर राज्य में एक अपराधी को तोप के मुँह से बाँध कर उड़वा दिया गया था[2]। इस

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५३।
ii कागजात महकमा खास सम्वत् १९४४, सीगा माल, मिस्ल नं० ८९।

(२) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९४४, सीगा गैर, नं० १२।

दण्डविधि को ब्रिटिश सरकार ने बहुत बुरा माना था और ए०जी०जी० ने सम्पूर्ण रियासतों के नाम पत्र भेजा था कि प्राणदण्ड फाँसी के अतिरिक्त अन्य किसी विधि से नहीं दिया जावे। कोटा राज्य की प्रचलित दण्ड शैली भी कठोर थी। कई प्रकार के अपराधों में पुरुषों को ही नहीं स्त्रियों को भी कोड़े लगाये जाते थे। सम्वत् १९३८ में फौजदार ने तजवीज पेश की कि स्त्रियों के कोड़े लगाना अमानुषिकता है और सभ्यता के नाते यह बन्द होना चाहिये। कौन्सिल ने इस तजवीज को स्वीकार कर लिया[1]। इसके बाद यह भी नियम बना कि पुरुषों के भी कोड़े लगाये जावें तो डाक्टर से उनका मुआयना करवा कर लगाये जावें। इस प्रकार के और भी कई सुधार जारी हुये। पहिले कैदियों से अपनी खूराक के दाम वसूल किये जाते थे। फिर यह नियम हुआ कि जो कैदी तीन महीने से अधिक जेल भोगने वाला हो, उससे अपनी खूराक के दाम नहीं लिये जावें। कुछ अरसे बाद यह नियम बन गया कि सब प्रकार के कैदियों को राज से ही खाना दिया जावे। इसी अरसे में ब्रिटिश भारत से तथा झालावाड़, ग्वालियर, टोंक, पाडोंण, इन्दौर, राजगढ़ और खिलचीपुर के साथ अपराधियों के लेनदेन के सम्बन्ध में सन्धियाँ हुईं[2]। दीवानी सीगे में भी इस अरसे में कई सुधार हुये।

जकात—महाराव शत्रुशालजी के जमाने में यह महक्मा सायरात कहलाता था और इस मद की वार्षिक आमदनी एक लाख

---

(१) कागजात महक्मा खास, सम्वत् १९३९, सीगा फौजदारी, मिस्ल नं० २८।

(२) i कागजात महक्मा खास, सम्वत् १९४४, गैर, मिस्ल नं० ४२।
ii ,, ,, सम्वत् १९३५, कुल्लियात, २०२।
iii ,, ,, ,, १९३८, गैर १४।
iv ,, ,, ,, १९४५, ,, २४।
v ,, ,, ,, १९५३, ,, १२।

पाँच हजार चार सौ तीस रुपये थी जिसमें लगभग इकतालीस हजार रुपये अफीम के लट्ठे के शामिल थे[1]। नवाब फैजअली ने मदारुल-मुहाम होते ही इसका नवीन नामसंस्करण किया और तब से यह विभाग जकात कहलाने लगा। सम्वत् १९२९ में महक्मा सायरात के सम्पूर्ण कर्मचारियों के वेतन तथा दूसरे कामों पर मिला कर साठ हजार रुपये के लगभग खर्च होता था। नवाब फैजअली ने यह खर्च कम कर दिया। फिर भी विभाग की व्यवस्था पूर्वापेक्षा अच्छी होगई। कर कोई नहीं बढ़ाया गया परन्तु आमदनी बढ़ गई। कौन्सिल के शासनकाल में इस विभाग को पुनर्व्यवस्थित किया गया। जकात की दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य को दो हिस्सों में विभक्त किया। एक कोटा और दूसरा बाराँ। प्रत्येक हिस्से पर अलग अलग हाकिम नियत किया। कोटा डिवीजन के हाकिम की मातहती में एक नायब भी नियत किया। यह उल्लेख योग्य बात है कि इन हाकिमों का वेतन आजकल के गिरदावरों के वेतन के लगभग था। कई जगह नई जकातें स्थापित हुईं और कई जगह की जकातें उठा दी गईं। आय और व्यय के हिसाब की तथा निरीक्षण की भी यथासम्भव व्यवस्था की गई[2]। किस चीज पर कितना महसूल लिया जावे, यह निश्चय किया गया, जिससे जकातियों की उच्छृंखलता पर रोक लगी और प्रजा को आराम होगया[3]। पहिले राज के अन्दर भी यदि एक स्थान से दूसरे स्थान को माल ले जाया जाता था तो महसूल लिया जाता था। सम्वत् १९३५ में यह बन्द कर दिया गया[4]। इसके बाद

(१) कागजात सम्वत् १९२९।
(२) कागजात महक्मा खास सम्वत १९३३, सीगा माल, नं० २२।
(३) उपरोक्त, नं० १६२।
(४) उपरोक्त, सम्वत् ३५, सीगा माल, नं० ६।

राहदारी कर भी बन्द हो गया[1]। जकात के दोनों उच्चकर्मचारी माल विभाग की मातहती में काम किया करते थे परन्तु सम्वत् १९४० में जकात माल से बिल्कुल पृथक् विभाग बना दिया गया[2]। सुप्रबन्ध के कारण सम्वत् १९५३ में इस विभाग की आय २,७४,५१२) रुपये तक पहुँच गई थी।

जंगल—सम्वत् १९२४ में इस सीगे की आमदनी केवल साढ़े पन्द्रह हजार के लगभग थी[3] और इसका इन्तजाम एक बिलेदार के सुपुर्द था जिसको नाममात्र का वेतन मिलता था। नवाब फैजअली खाँ ने इस विभाग की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की परन्तु पुराने संगठन को कुछ दृढ़ कर दिया[4]। सम्वत् १९३३ में कौन्सिल ने जंगल के ठेके दिये जाने के नियम बनाये और प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन किया[5]। सम्वत् १९३६ में ठेकों के नियमों में फिर सुधार किया गया[6] और सम्वत् १९३७ में जंगल की रक्षा के नियमों का निर्माण हुआ[7]। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण सम्वत् १९५३ में इस सीगे की आमदनी पचास हजार रुपये से ऊपर होगई[8]। यह विभाग पहले माल के अधीन था। सम्वत् १९३८ में यह अलग

---

(१) कागजात महकमा खास, सम्वत् ३८, सीगा माल, नं० २५।

(२) उपरोक्त, सम्वत् ४०, सीगा माल, नं० १२९।

(३) कागजात सम्वत् १९२४, (गढ की झाला हवेली)।

(४) बजट सम्वत् १९३१, महकमा दफ्तर हिसाब।

(५) कागजात महकमा खास सम्वत् १९३३, माल नं० १५७।

(६) उपरोक्त, सम्वत् १९३६, माल, नं० ३०७।

(७) उपरोक्त सम्वत् १९३७, माल, नं० ९।

(८) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५३, पृष्ठ १४।

कर दिया गया था[1] परन्तु सम्वत् १९४३ में पुनः माल की मातहती में कर दिया[2]।

अफीम—कोटा राज्य की कुछ भूमि अफीम की कृषि के वास्ते विशेष रूप से उपयोगी है। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतवर्ष से अफीम चीन देश को जाने लगी और उक्त कम्पनी को इस व्यापार से विपुल लाभ होने लगा तो अफीम की खेती को इस राज्य में प्रोत्साहन मिला और कृषक लोग हजारों बीघे जमीन में अफीम बोने लगे। कोटा राज्य के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राजनैतिक सन्धि स्थापित होजाने के पश्चात् चीन के साथ व्यापार करने का एकाधिकार कम्पनी के पास नहीं रहा परन्तु फिर भी अफीम की जकात द्वारा ही कम्पनी को बहुत भारी लाभ होता था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीन देश में राजनैतिक जागृति होने लगी। जिसके फलस्वरूप चीन के नेतागण अफीम के आयात का घोर विरोध करने लगे। कम्पनी के लिये इस भारी लाभ का त्याग करना कठिन बात थी। अतः चीन और इंगलेण्ड में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। सन् १८३२, १८७२ और १८९३ में चीन के साथ युद्ध हुये जिसमें चीन का पराजय हुआ और अफीम के निर्बाध आयात को चीन ने विवश स्वीकार किया, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय जगत अँग्रेजों की इस नीति को निंद्य मानने लगा। इस आधार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी मातहत रियासतों में अफीम की खेती पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने लगी। कहने को भारतवर्ष में अफीम की खेती कम की जारही थी, परन्तु वास्तव में इस नीति से अफीम पैदा करने वाली रियासतों को हानि होने लगी। इस नीति का कुप्रभाव कोटा राज्य में उन्नीसवीं शताब्दी

(१) महकमा खास, सम्वत् १९३८, माल नं० ५७।

(२) उपरोक्त, सम्वत् १९४३, माल नं० ७।

के पूर्वार्ध में ही प्रतीत होने लग गया था। कम्पनी के दबाव से अफीम के व्यापार में कई असुविधायें उपस्थित होने लगीं। जिससे राज की आमदनी में कमी होने लगी। सम्वत् १८९४ के बाद जब झालावाड़ राज्य का निर्माण हुआ तो कोटा राज्य के कई ऐसे परगने अलग होगये जिनमें विशेषकर अफीम बोई जाती थी। तो भी सम्वत् १९२४ में अफीम की आमदनी सम्पूर्ण महक्मा जकात की आमदनी से आधी थी। सम्वत् १९५० से पूर्व फिर भी कोटा राज्य में अफीम की खेती काफी होती थी जिससे कृषक ही सम्पन्न नहीं थे, परन्तु राज को भी बहुत आमदनी हुआ करती थी। यहाँ तक कि केवल अफीम के महसूल से सम्पूर्ण वार्षिक आय का लगभग दशमांश प्राप्त हुआ करता था। सम्वत् १९५० (सन् १८९४) में अफीम की खेती के विषय में तहकीकात करवाने के लिये भारत सरकार ने एक समिति नियत की जिसके सदस्य भारतवर्ष के अन्य स्थानों में दौरा करते हुये अजमेर भी आये। उनके आगमन से पहिले ही कोटा राज्य के नाम अफीम की खेती के सम्बन्ध में एक प्रश्नावली भेजी जा चुकी थी। जब अफीम समिति अजमेर पहुँची तो उसके प्रधान ने कोटा नरेश के प्रतिनिधियों को अजमेर बुलाया। कोटे से आप अमरसिंहजी, चौबे रघुनाथदास और पं० उमाशंकर प्रतिनिधि बना कर भेजे गये। इन्होंने अफीम समिति के सामने कोटा राज्य की कठिनाइयाँ प्रगट कीं और इस बात पर जोर दिया कि अफीम की काश्त कोटा राज्य में ज्यों की त्यों रहने दी जावे, परन्तु परिणाम वही हुआ जो भारत सरकार चाहती थी, अर्थात् अफीम की खेती पूर्वापेक्षा लगभग पच्चीस प्रतिशत रह गई। इसके बाद घटते घटते अफीम की खेती अब केवल नाममात्र रह गई है।

नमक सन्धि—सम्वत् १९३३ से पहिले कोटा राज्य में

नमक और खारी बना करती थी और बनाने वालों से राज कर लेता था। उन्नीसवीं शताब्दी के चतुर्थांश में भारत सरकार ने यह नीति स्थिर की कि नमक बनाने का एकमात्र अधिकार अपना हो और रियासतों में नमक निर्माण बन्द कर दिया जावे। इस नीति के अनुकूल कोटा राज्य में नमक बनाना बन्द होगया। इससे राज की आय स्वभावतः कम होगई। अतः क्षति की पूर्ति करने के लिये भारत सरकार ने कोटा राज्य को प्रतिवर्ष सौलह हजार रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय हुआ कि तीन सौ मण नमक निजी खर्च के वास्ते कोटा राज्य को तैयार किया हुआ दिया जावे।

सेना और पुलिस—सेना का संगठन और वार्षिक व्यय अब भी वैसा ही रहा जैसा रामसिंहजी के शासनकाल में था। यह संगठन जालिमसिंह ने अशान्ति के जमाने में किया था। अब शान्ति स्थापित हो चुकने के कारण तथा राज्य की आय घट जाने के कारण इतनी बड़ी सेना का खर्च अनावश्यक भार था। सेना का निरीक्षण करवाने और इस विषय में परामर्श लेने के लिये समय समय पर अँग्रेज अफसर बुलवाया जाता था। सम्वत् १९३७ में सेना का प्रबन्ध पुनः महाराव शत्रुशालजी के सुपुर्द होगया था और उन्होंने विश्वसनीय सैनिकों तथा अफसरों की भर्ती के नियम बनाये थे। सेना का वार्षिक खर्च साढ़े चार लाख रुपये से भी कुछ ऊपर हुआ करता था। इस विषय में ए०जी०जी० ने एजेन्ट को हुक्म भी दिया था कि सैनिक व्यय घटाया जावे और आबकारी की आमदनी बढ़ाई जावे। इसपर भी फौज की संख्या और खर्च दोनों में कोई विशेष कमी नहीं हुई। कौन्सिल के अन्त तक सेना की संख्या और व्यवस्था ज्यों की त्यों ही बनी रही[1]।

(१) i महकमा खास, सम्वत् ३७, फौज ५५।
ii उपरोक्त, सम्वत् ४९, फौज १।

नगर पुलिस और जिला पुलिस पूर्ववत् बनी रही। पुराने शहर की कोतवाली के अतिरिक्त एक कोतवाली रामपुरे में स्थापित हुई। पुरानी कोतवाली में कोतवाल और रामपुरे की कोतवाली में नायब कोतवाल रहने लगा। सम्वत् १९३६ में मोहतमिम् गिराही के अधिकार निश्चित किये गये और चोरी तथा डकैती को कम करने के लिये गिराही पुलिस को विशेष हिदायत की गई। प्रतिमास डकैतियों का और चोरियों का नकशा बना कर पेश करने का हुक्म हुआ[1]। उस समय टोंक राज्य के मीणे हाड़ौती में चोरी या डकैती करके भाग जाया करते थे। अतः ए० जी० जी० के द्वारा यह प्रबन्ध किया गया कि टोंक राज्य का कोई मीणा कोटा राज्य में आवे तो टोंक राज्य से अपने चाल चलन के सम्बन्ध में परवाना लेकर आवे[2]। ठगी और डकैती के कैदियों के लिये यह भी नियम बनाया गया कि यदि वे तीन मास से अधिक के कैदी हों तो उनके खाने का खर्च उन्हीं से लिया जावे[3]। पहिले थानेदार प्रायः मालगुजारी की वसूली में लगा दिये जाते थे जिससे प्रजा को कष्ट होता था और थानेदारों के काम में क्षति हुआ करती थी। अब कौन्सिल ने नियम बना दिया कि थानेदारों से माल सीगे का कोई काम नहीं लिया जावे[4]। इस प्रबन्ध से थानेदारों को अपना काम करने के लिये पर्याप्त समय मिलने लगा। इतने पर भी चोरी और डकैतियों में विशेष कमी नहीं आई। इस स्थिति को सुधारने के लिये कुँवर (अब सर आप) औंकारसिंहजी

---

(१) i महकमा खास, सम्वत् ३६, गिराही नं० १।
ii उपरोक्त, सम्वत् ३६, फौजदारी नं० १९।

(२) उपरोक्त, सम्वत् १९४४, गैर, नं० ४८।

(३) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९४७, फौजदारी नं० ४५।

(४) उपरोक्त सम्वत ३६, माल नं० ३२६।

को जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत किया गया। पुलिस प्रबन्ध के लिये सम्पूर्ण राज्य के तीन विभाग किये गये और प्रत्येक डिवीजन में एक असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत किया गया[1]। इस प्रबन्ध के फलस्वरूप चोरियाँ और डकैतियाँ कम होने लगीं।

माल विभाग का संगठन और सुधार—सम्वत् १९४० में कौन्सिल ने उत्तम प्रबन्ध के लिये माल विभाग का पुनः संगठन किया। सुपरिन्टेन्डेन्ट माल के दफ्तर की पुनर्व्यवस्था हुई[2]। कागजों को व्यवस्थित रखने के लिये नियम बने और कई नये अहलकार नियत हुये। नाजिमों के काम का सुचारुरूपेण निरीक्षण करने के लिये सुपरिन्टेन्डेन्ट की मातहती में दो असिस्टेन्ट नियत किये गये। इनमें से एक कोटे में रहता था और दूसरा शेरगढ़। असिस्टेन्टों के कर्त्तव्य और अधिकार निश्चित किये गये[3]। नाजिमों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा मालगुजारी संग्रह करने के नियम बनाये गये[4]। यह भी नियम बना कि जिस जगह किसी माल के अफसर या कर्मचारी की लेनदेन हो वहाँ पर उसको नियत न किया जावे[5]। माल का विभाग इस प्रकार संगठित हो जाने पर उसका दूसरे विभागों से भी सम्बन्ध हटा दिया गया। जकात और जंगल अलग महकमे बना दिये गये[6]। लेकिन कुछ वर्ष बाद पुनर्विचार करके जंगल को माल का ही

---

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५१, पृष्ठ १८–१९।
(२) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९४०, माल, नं० ८५।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९४१, माल, नं० १९८।
(४) ,, ,, १९३५, माल, नं० १४५।
(५) ,, ,, १९३६, माल, नं० ३४।
(६) i ,, ,, १९४०, माल, नं० १२९।
ii ,, ,, १९३८, माल, नं० ५७।

मातहत कर दिया गया[1]। इस समय तक महक्मा हिसाब भी माल का मातहत था, परन्तु अब वह स्वतन्त्र विभाग होगया[2]। नाजिमों के नाम भी हुक्म हुआ कि थानेदारों से तथा फौज के सिपाहियों से जो रक्षा के निमित्त निजामत में नियत हों, माल सीगे का कोई काम न लिया जावे[3]। इस प्रकार महक्मे के संगठन को ही कौन्सिल ने व्यवस्थित नहीं किया बल्कि कृषकों के साथ भी कई रिआयतें कीं तथा जमीन के सम्बन्ध में कई उपयोगी और आवश्यक नियम बनाये। यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि उस समय कृषकगण ऋण के भयंकर बोझ से दबे हुये थे। बोहरे लोग निर्धन कृषकों को अपने रुपयों के लिये हवालात करवा दिया करते थे जिससे कृषि को क्षति हुआ करती थी। इससे कृषक परिवारों को तो दुख उठाना ही पड़ता था, परन्तु राज्य की भूमि भी पड़त रह जाया करती थी और माल-गुजारी वसूल करने में कठिनता हुआ करती थी। अतः नियम बनाया गया कि कृषकों को इस प्रकार हवालात में नहीं रक्खा जावे और राज का कड़ता वसूल होजाने पर बोहरों का ऋण अदा करवाया जावे[4]। परिस्थिति के अनुकूल छूट देने के नियम बनाये गये और छूट के नकशे समय पर पेश करने का हुक्म हुआ[5]। सम्वत् १९३१ से सम्वत् १९४० तक की जो किसानों के ऊपर बकाया चली आती

---

(१) कागजात महक्मा खास, सम्वत् १९४३, माल, नं० ७।

(२) ,, ,, ,, १९५३, माल, नं० ४५।

(३) ,, ,, ,, १९३६, माल, नं० ३२६।

(४) ,, ,, ,, १९३५, माल, नं० ३।

(५) i ,, ,, ,, १९३७, माल, नं० २५३।

ii ,, ,, ,, १९४०, माल, नं० १७३।

थी वह सब माफ करदी गई[1]। और सम्वत् १९४० तथा सम्वत् १९४१ में २५ प्रतिशत छूट दी गई[2]। जमीन को छोड़ने, बेचने और गिरवी रखने के नियम बनाये गये[3]। पशुओं के लिये प्रत्येक निजामत में कायन हाउस (पशुबाड़े) बने[4]। अबतक यह रिवाज चला आता था कि जिस खेत में अफीम बोई जाती थी उसका कर अफीम के ही रूप में लिया जाता था जिससे राजकर्मचारियों को गड़बड़ करने का बहुत अवसर मिलता था और कृषकों को कष्ट होता था। सम्वत् १९३८ में कौन्सिल ने हुक्म दिया कि ऐसे खेतों का लागान नकद लिया जावे और अफीम लेने का रिवाज बन्द किया जावे[5]।

अन्य प्रबन्ध——कौन्सिल के समय में अन्य कई ऐसे कार्य हुये और नियम बने तथा व्यवस्था की गई जिससे प्रबन्ध में बहुत उत्तमता आगई। सम्वत् १९३० से पहिले देवली में और ए० जी० जी० के यहाँ की खबरें भेजने के लिये रियासत की ओर से नाममात्र के लिखे पढ़े हरकारे नियत रहते थे जिनकी इन उच्चाधिकारियों तक तो क्या, उनके अहलकारों तक भी पहुँच नहीं हुआ करती थी और रियासत के किसी भी पक्ष का उनसे समर्थन नहीं हुआ करता था। अतः सम्वत् १९३३ में इस कार्य के लिये एक वकील देवली में और दूसरा आबू नियत हुआ[6]। कई कोटरियात में सीमा सम्बन्धी विवाद

---

(१) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९४७, माल नं० ८५।
(२) ,, ,, ,, १९४१, माल नं० १७२।
(३) i ,, ,, ,, १९३८, माल नं० १५१।
ii ,, ,, ,, १९४०, माल नं० १५३।
(४) ,, ,, ,, १९३४, फौजदारी नं० १३।
(५) ,, ,, ,, १९३८, माल नं० ३९।
(६) ,, ,, ,, १९३३, गैर नं० ३।

खड़े हुये जो कौन्सिल ने तय किये[1]। कोटा और बूँदी राज्य में भी सीमा के सम्बन्ध में मतभेद खड़ा हुआ, परन्तु पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ने कोई सन्तोषजनक अन्तिम निर्णय नहीं किया[2]। सम्वत् १९४३ में महाराणी विक्टोरिया के शासन का पचासवाँ वर्ष समाप्त हुआ। अतः इस उपलक्ष्य में कोटा राज्य में बड़ा उत्सव मनाया गया[3]। इसी समय बूँदी और बूँदी राज्यान्तर्गत ठिकाना कापरेण में युद्ध हुआ जिसमें कापरेण की हार हुई। कापरेण के ठाकुर सपरिवार बूड़ादीत के पास चम्बल उतर कर कोटा होते हुये देवली की ओर चले गये और कापरेण तथा रोटेदा के किले पर बूँदी ने अधिकार स्थापित कर लिया। उस समय कोटा राज्य की ओर से चम्बल के दाहिने किनारे पर पुलिस का प्रबन्ध रक्खा गया ताकि कोटा राज्य में कोई गड़बड़ न फैले[4]। सम्वत् १९४७ में कौन्सिल ने राजकर्मचारियों की पेन्शन के सम्बन्ध में नियम बनाये[5]। कलाकौशल की उन्नति करने के लिये प्रतिवर्ष एक कला-प्रदर्शिनी करने का आयोजन किया गया और प्रथम प्रदर्शिनी सम्वत् १९४९ में हुई[6]। ऊपर उल्लेख किया है कि नवाब फैजअली ने यद्यपि सरकारी दफ्तरों में उर्दू जारी करदी थी, परन्तु फिर भी अधिकांश काम हिन्दी में ही होता था। अतः अब कौन्सिल के तीन मेम्बरों ने तजवीज की कि दफ्तरों में फिर हिन्दी जारी करदी जावे। तीनों मेम्बरों का मत था कि कोटा राज्य की जनता की भाषा हिन्दी है, स्वयम्

---

(१) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९३३ गैर, नं० १६,२०, २१।
(२) ,, ,, ,, १९३४, ,, १९।
(३) ,, ,, ,, १९४३, कुल्लियात, नं० २१६।
(४) ,, ,, ,, १९४४, गैर नं० ११।
(५) ,, ,, ,, १९३९, कुल्लियात नं० ३३८।
(६) ,, ,, ,, १९४९, ,, नं० ३४८।

कोटा नरेश हिन्दी ही जानते हैं और कौन्सिल के मेम्बर भी उर्दू से अनभिज्ञ हैं, तथा दफ्तरों का काम भी अधिकांश पहिले से हिन्दी में होता ही है, अतः दफ्तरों में उर्दू होना अनावश्यक और अनुचित है। कौन्सिल का चौथा मेम्बर सैयद जाफरहुसैन इसके विपक्ष में था। अतः उसने विपरीत मत प्रकट किया कि प्रबन्ध भाषा उर्दू ही होसकती है हिन्दी नहीं। तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट भी शायद हिन्दी नहीं जानता था, अतः उसने तीनों मेम्बरों के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और दफ्तरों में उर्दू ही बनी रही[1]। इस सम्बन्ध में यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सर जॉर्ज ग्रियरसन ने जो सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाषाओं की जाँच और वर्गीकरण किया था, और जिसमें उसने इस राज्य में बोली जाने वाली सपाड़ी, मालवी और हाड़ौती भाषाओं का उल्लेख किया है, उसमें लिखा है कि कोटा राज्य की भाषा गुजराती से मिलती जुलती है और वास्तव में हिन्दी है तथा इसका उर्दू से कोई सम्बन्ध नहीं है[2]।

टकसाल—मुगल साम्राज्य का पतन होने के बाद महाराव अर्जुनसिंहजी ने अपनी टकसाल कायम कर दी थी और कोटे में अपना सिक्का चला दिया था। परन्तु गुमानसिंहजी का सिक्का अधिक प्रचलित हुआ। इसके बाद यहाँ हाली का रुपया जारी हुआ। गुमानशाही रुपया शुद्ध चाँदी में सलीमशाही और चाँदेरी रुपयों को मिला कर बनाया जाता था। इसके लिये सौ रुपये भर शुद्ध चाँदी में दस रुपये सलीमशाही या छः रुपये चाँदोरी मिला कर गलाने पड़ते थे। सलीमशाही रुपये में चाँदी और ताँबे का अनुपात तीन और एक होता था तथा

(१) कागजात महकमा खास, सम्वत् १९५०, कुल्लियात नं० १८।
(२) ,, ,, ,, ,, १९५३, ,, नं० ९।

चाँदोरी में यह अनुपात तीन और दो होता था। रुपये बनाने के लिये चाँदी साहूकार लोग बम्बई से मँगवाया करते थे। कुछ अरसे बाद चाँदोरी और सलीमशाही रुपयों का मिलना कठिन होगया और कम्पनी का सिक्का जारी होजाने से कोटे के सिक्के के बदल और चलन में कठिनाइयाँ आने लगीं। इसलिये कौन्सिल ने सम्वत् १९५० में रुपयों की टकसाल बन्द कर दी[1]।

शिक्षोन्नति—पहिले लिखा जाचुका है कि कोटा नगर में प्रथम पाठशाला नवाब फैजअली ने खोली थी। यह स्कूल शनैः शनैः उन्नति करता गया। सम्वत् १९३६ में इसमें दो अध्यापक और बढ़ाये गये और लड़कों को प्रोत्साहन देने के निमित्त पुस्तकें खरीदने के लिये चार सौ रुपये वार्षिक मन्जूर हुये। किराये के मकान में एक लड़कियों का स्कूल जारी किया गया जिसमें एक अध्यापिका उर्दू पढ़ाने के लिये और एक सिलाई सिखाने के लिये नियत हुई[2]। नवाब फैजअली ने जो सम्वत् १९३१ में लड़कियों का स्कूल जारी किया था, वह सम्वत् १९३३ में बन्द होगया था। चार वर्ष बाद कोटा नगर के स्कूल में चार अध्यापक और बढ़े, और विद्यार्थियों की संख्या भी काफी बढ़ गई। बाराँ में भी एक स्कूल स्थापित किया गया जिसके लिये एक उर्दू का और एक हिन्दी का अध्यापक नियत हुआ[3]। सम्वत् १९५० में कोटे के स्कूल में अध्यापकों की संख्या चौदह होगई जिनमें पाँच अँग्रेजी के, तीन उर्दू के, एक संस्कृत का, तीन हिन्दी के और दो देसी के थे।

---

(१) i महकमा खास, सम्वत १९५०, माल नं० १, ५४।
ii " " १९३६, " नं० २९३।
(२) दफ्तर हिसाब, बजट सम्वत् १९३६।
(३) " " " १९४०।

सम्वत् १९५० में लगभग एक हजार विद्यार्थी सम्पूर्ण राज्य में शिक्षा पाते थे[1] और शिक्षा विभाग का वार्षिक बजट भी बीस हजार से ऊपर पहुँच चुका था। देहाती स्कूलों के लिये अध्यापक तैयार करने के लिये कोटे में एक हिन्दी स्कूल स्थापित किया गया जिसका नाम नॉर्मल स्कूल रक्खा। बाराँ, इटावा, घाटोली, कनवास, शेरगढ़, किशनगंज, बड़ौद, अटरू, कुन्जेड़, साँगोद, खानपुर, सुलतानपुर, दीगोद, सीसवाली, माँगरौल अन्ता, कैथून और छावनी में सम्वत् १९५० से पहिले ही लड़कों के स्कूल खुल चुके थे[2]।

मेयो कॉलेज के लिये स्थापना के समय कोटा राज्य ने भारी चन्दा दिया था। सम्वत् १९४० से पहिले ही कोटा राज्य ने कितने ही हजार रुपये खर्च कर वहाँ एक छात्रालय बनवा दिया था। कोटा राज्य से सर्व प्रथम इस कॉलेज में प्रवेश करने वाले पीपलदा के ठाकुर थे। ये सम्वत् १९३६ में कॉलेज में भरती हुये थे[3]। सम्वत् १९३७ में लड़कों को पारितोषिक वितरण करते हुये तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने अपने भाषण में कहा था कि मेयो कॉलेज की शिक्षा का एक यह भी उद्देश्य है कि विद्यार्थी अपने देश और धर्म से प्रेम करना सीखें[4]। सम्वत १९३७ में कॉलेज को दस हजार रुपये फिर चन्दा दिया गया[5]। सम्वत् १९५० में मेयो कॉलेज में भरती होने

---

(१) दफ्तर हिसाब, बजट १९५०।

(२) मेजर डब्लू स्ट्रेसन—ए शोरट हिस्ट्री ऑफ दी कोटा स्टेट, पृष्ठ ३५।

(३) महकमा खास, सम्वत १९३६, कुल्लियात नं० ७।

(४) महकमा खास, सम्वत १९३७, फौजदारी, नं० १५।

(५) ,, ,, १९३७, गैर नं० १९,३०।

वाले लड़कों को साठ रुपये मासिक प्रति विद्यार्थी छात्रवृत्ति देना मन्जूर हुआ[1]।

प्रजा की चिकित्सा—कौन्सिल के शासन काल में चिकित्सा का प्रबन्ध उत्तरोत्तर उत्तम होता गया। सम्वत् १९३६ से पहिले ही चेचक के टीके लगाने के लिये तीन वेक्सीनेटर नियत किये और औषधि खरीदने के लिये १,२००) रुपये वार्षिक मन्जूर हुये। शफाखाने की निगरानी रखने के लिये तथा सुविधानुसार इस विभाग को अधिक उन्नत करने के लिये एक अँग्रेज डाक्टर को अलाउन्स देना शुरू किया। यही डाक्टर झालावाड़ के शफाखानों का भी अफसर था[2]। इस प्रकार का प्रबन्ध बहुत अरसे तक चलता रहा। उस समय जनता चीरा लगवाना अच्छा नहीं समझती थी और वेक्सीनेटरों को गाँवों में बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। अतः नाजिमों के नाम हुक्म हुआ कि वेक्सीनेटरों को सब प्रकार की सहायता दी जावे और जनता को चीरा लगवाने पर तैयार किया जावे[3]। शनैः शनैः लोग चीरे के आदी होगये और आवश्यकतानुसार वेक्सीनेटरों की संख्या भी बढ़ गई। सम्वत् १९४० में इस विभाग का बजट ग्यारह हजार कर दिया गया और बाराँ, अटरू तथा खानपुर में किराये के मकानों में शफाखाने जारी किये[4]। इसके थोड़े दिन बाद जनाना शफाखाना सम्वत् १९४३ के बाद महाराणी विक्टोरिया की स्वर्णजयन्ति स्मारक स्वरूप खोला गया जिसमें दो लेडी डॉक्टर और आवश्यकतानुसार कम्पाउण्डर, ड्रेसर और दाइयाँ आदि नियत की गईं। सम्वत् १९५० से पहिले इटावा, साँगोद

(१) महकमा खास १९५०, गैर नं० १२।
(२) दफ्तर हिसाब, बजट सम्वत १९३६।
(३) महकमा खास, सम्वत १९४० कुल्लियात नं० ५७।
(४) दफ्तर हिसाब, बजट सम्वत १९४०।

घाटोली, कुन्जेड़, सुलतानपुर और माँगरौल में भी शफाखाने खुल चुके थे। एक शफाखाना इन्द्रगढ़ में जारी किया गया लेकिन इसका खर्च इन्द्रगढ़ के ही सुपुर्द रहा। सम्वत् १९५० में इस महक्मे का बजट इकतीस हजार के ऊपर होगया। इस समय सब डाक्टर बल्कि कम्पाउण्डर तक बाहर के आये हुये और भारत सरकार से माँगे हुये थे[1]।

प्रजा का स्वास्थ्य—नवाब फैजअली ने नगर की सफाई का श्रीगणेश ही किया था, परन्तु कौन्सिल के समय में म्यूनिसिपल कमेटी का कार्य काफी उन्नत और विस्तृत होगया। इसका कार्य एक सेक्रेटरी कुछ अहलकार और जमादार, तथा भंगियों की सहायता से करता था और इस पर कौन्सिल के एक मेम्बर की निगरानी रहती थी जिसको इस कार्य का अलाउन्स मिला करता था[2]। सम्वत् १९५० से पहिले कमेटी ने नगर की सफाई की अच्छी व्यवस्था करदी थी। रास्ते साफ रहने लगे थे। प्राइवेट टट्टियाँ हुक्म के बिना नहीं बन सकती थीं। जनता के लिये कितनी ही टट्टियाँ नगर में बनवादी गई थीं[3] और भंगी राज की ओर से नगर की सफाई का काम करने लग गये थे। इसके अतिरिक्त खिड़कियाँ, दरवाजे और मकान बनवाने के विषय में भी नियम बनाये गये[4]। पहिले दाइयों को खास मोहल्लों में काम करने के ठेके दिये जाते थे, परन्तु कौन्सिल ने यह नामुनासिब समझ कर बन्द कर दिये

---

(१) दफ्तर हिसाब, बजट सम्वत् १९५०।

(२) उपरोक्त, बजट सम्वत् १९३६, १९४०।

(३) ,, ,, ,, १९४०, १९५०।

(४) i महक्मा खास सम्वत १९३६, फौजदारी नं० ६८।
ii ,, ,, १९५०, ,, नं० ५०।

थे[1]। इसके अतिरिक्त सेर बाँट कमेटी की ओर से जारी किये गये और पाक्षिक निर्खनामा बनने का हुक्म दिया गया था[2]। इस बात की भी हिदायत जारी हुई थी कि रास्ते में पशु नहीं घूमते रहें और बग्गियों के लिये रास्ते साफ रहें[3]।

कर—कौन्सिल के समय में कर प्रायः सब वेही जारी रहे जो झाला जालिमसिंह के जमाने में जारी किये गये थे। जो कर खेती से सम्बन्ध रखते थे उनमें से कितने ही मुन्शी दुर्गाप्रसाद ने बन्दोबस्त के समय मालगुजारी में सम्मिलित कर दिये थे। कौन्सिल ने कूलड़ी और जामदारी नामक दोनों करों का अनौचित्य अनुभव किया और इनको हटा दिया[4]। इसके अतिरिक्त टक्की बराड़ भी बन्द कर दिया गया। यह टक्की के प्रत्येक कागज पर १३) रुपये साल के हिसाब से लिया जाता था[5]।

महाराव शत्रुशालजी के अख्तियारात—सम्वत १९३० में भारत सरकार ने नवाब फैजअली को मदारुल मुहाम नियत करते समय शासन के सब अधिकार उसके सुपुर्द कर दिये थे और शत्रुशालजी का शासन कार्य में कोई हाथ नहीं रहा था। यह स्थिति शत्रुशालजी को आरम्भ से ही अरुचिकर प्रतीत होने लगी थी। विशेष कर अपनी सेना और पुण्यदान के विषय में बेअख्तियार होना उनको असह्य था। इसलिये एजेण्टी प्रबन्ध के स्थापित होते ही उन्होंने इस विषय में प्रयत्न जारी कर दिया होगा। इस विषय में यह स्मरण रखने की बात है

(१) महकमा खास सम्वत् १९३८, कमेटी नं० १।
(२) ,, ,, १९४२, कुल्लियात नं० ४४, १३८।
(३) ,, ,, १९५०, फौजदारी नं० ५।
(४) ,, ,, १९२७, ,, नं० १८।
(५) ,, ,, १९४०, माल नं० १५५।

कि महाराव किशोरसिंहजी ने झाला माधोसिंह और जालिमसिंह को भारत सरकार के दबाव से सब शासनाधिकार समर्पण करते हुये भी यह शर्त की थी कि सेना के कुछ अंश पर उनका पूर्ण अधिकार और शासन रहेगा तथा इसी प्रकार पुण्यदान भी उनहीं के सुपुर्द रहेगा। इस बात को स्मरण करके शत्रुशालजी को अपनी स्थिति पर और भी दुःख होता होगा। फिर भी भारत सरकार कई वर्ष तक अपने निश्चय पर अटल रही, परन्तु सम्वत् १९३७ में आखिर सरकार ने अपनी अटलता के अनौचित्य को अनुभव किया और सेना विभाग के कुल अख्तियार महाराव शत्रुशालजी को दे दिये[1]। इसके चार वर्ष बाद दान विभाग भी शत्रुशालजी के सुपुर्द कर दिया[2]। इससे उनको बड़ा सन्तोष हुआ। प्रकृति से ही पुण्यशील होने के कारण उनको इस बात पर बड़ा दुःख हुआ करता था कि दान करना उनके अधिकार में नहीं है। अब यह विभाग हाथ में आजाने से उनके जीवन के शेष चार वर्ष सन्तोष और शान्ति के साथ कट गये।

शत्रुशालजी का देहन्त—महाराव शत्रुशालजी की शारीरिक दशा कभी भी अच्छी नहीं थी। मद्यपान के व्यसन ने तथा विलासी जीवन ने इनका शरीर जर्जर कर दिया था। अतः इनके कोई सन्तान नहीं हुई। अपने जीवनकाल में ही इन्होंने कुँवर उदयसिंहजी कोटड़ा वालों को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। इसके कुछ दिन बाद ही ज्येष्ठ शुक्ला १२ सम्वत् १९४५ को शत्रुशालजी का देहान्त होगया[3]।

गढ़ का प्रबन्ध—तत्कालही शत्रुशालजी का जेवर तथा कपड़े

---

(१) महकमा खास, सम्वत् १९३७, फौज नं० ५५।
(२) ,, ,, १९४१, कुल्लियात नं० १३।
(३) ,, ,, १९४५, ,, २४२।

सँभालने के वास्ते पोलिटिकल एजेन्ट ने एक कमेटी नियत करदी, और गढ़ की रक्षा और विधवा राणियों के प्रपञ्च को कम करने के लिये यह प्रबन्ध कर दिया गया कि गढ़ के अन्दर कोई जागीरदार या माफीदार न घुसे[1]।

साँवल पासवान को हवालात—साँवल पासवान कोटा निवासी ब्राह्मण था और शत्रुशालजी का परम कृपापात्र निजी सेवक था। लिखा पढ़ा वह नाममात्र का था, परन्तु चतुरता और स्वामि भक्ति के कारण नरेश का विश्वास प्राप्त करके वह प्रभावशाली बन गया था। शत्रुशालजी की उस पर इतनी कृपा थी कि वह आज कल के शब्दों में केवल प्राइवेट सेक्रेटरी ही नहीं, बल्कि उनका प्राइवेट एडवाइजर (परामर्शदाता) बन गया था। बड़े से बड़े आदमी की गति दरबार तक उसके ही द्वारा हुआ करती थी और जब तक शत्रुशालजी साधिकार रहे तब तक प्रत्येक प्रबन्ध कार्य में उसका हाथ रहता था। दरबार का जेवर, कपड़े तथा रुपया भी उसके ही पास रहता था और उसके हिसाब को कोई देखने वाला नहीं था। शत्रुशालजी का देहान्त होते ही पोलिटिकल एजेण्ट ने यह आवश्यक समझा कि जेवर तथा रुपये का विधिवत् हिसाब देखा जावे और भविष्य के लिये सन्तोष जनक प्रबन्ध किया जावे। साँवल पासवान के हिसाब में बहुत गड़बड़ थी और हिसाबी कागज तथा माल के इधर उधर होजाने का खयाल था। अतः उसको हवालात में रखदिया गया और जब मालूम हुआ कि उसका हिसाब साफ नहीं है, तो उसकी जमीन और हवाला जब्त कर लिया गया[2]।

(१) i महकमा खास, सम्वत १९४५, कुल्लियात २४७।
ii ,, ,, ,, २४८।
(२) i महकमा खास सम्वत १९४५, कुल्लियात नं० २६२।
ii ,, ,, १९४६, ,, नं० १३२।

महाराव उम्मेदसिंहजी

सम्वत् १९४५—

जन्म और गोदनशीनी—उम्मेदसिंहजी का आदि नाम उदयसिंह था। ये कोटड़े के जागीरदार महाराजा छगनसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र हैं। छगनसिंहजी बिशनखेड़ी के महाराजा चेनसिंहजी के प्रपौत्र थे और चेनसिंहजी बिशनसिंहजी के पाँचवें पौत्र थे। बिशनसिंहजी किशोरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे जिनको आज्ञाभंग के अपराध में राज्याधिकार से वंचित करके अन्ते की जागीर दी थी। इस प्रकार राजवंश के निकट होने के कारण इनको गोद लिया गया था। उम्मेदसिंहजी का जन्म सम्वत् १९३० की अनन्त चतुर्दशी को हुआ था। अतः कोटे आते समय इनकी अवस्था लगभग पन्द्रह वर्ष की थी।

राजतिलक और शिक्षा—शत्रुशालजी का देहान्त होते ही पोलिटिकल एजेण्ट ने आज्ञा दी थी कि जब तक गोदनशीनी के विषय में भारत सरकार अपना निश्चय घोषित न करदे तब तक कोई जागीरदार या ठिकानेदार गढ़ में प्रवेश न करे। १३ जोलाई सन् १८८९ को भारत सरकार ने इस विषय में अपना निश्चय प्रकट किया और महाराव उम्मेदसिंहजी का उत्तराधिकारित्व स्वीकार किया। सरकार के हुक्म की नकल तमाम रियासत में भेजी गई और उम्मेदसिंहजी का विधिपूर्वक राजतिलक हुआ। प्राचीन परम्परा के अनुकूल राजतिलक के बाद राज्य के सब पटेलों को बेदखल करके फिर नजराणा लेकर अपने अपने पदों पर नियत किया जिससे राज्य को कई लाख रुपये की

आमदनी हुई[1]। अब तक उम्मेदसिंहजी को व्यवस्थित रूप से कोई शिक्षा नहीं मिली थी, अतः राजतिलक के बाद इनको शिक्षा प्राप्ति के लिये मेओ कॉलेज में भर्ती किया गया। मेओ कॉलेज में लगभग चार वर्ष इन्होंने शिक्षा पाई। इस अरसे में मुन्शी शिवप्रतापजी इनके प्राइवेट ट्यूटर (अध्यापक) थे और कर्नल लोक तथा केप्टिन मेनर्स स्मिथ और मेन इनके संरक्षक या गार्डियन[2]। इस अरसे में अँग्रेजी और हिन्दी का इन्होंने साधारण ज्ञान प्राप्त किया और सम्वत् १९४९ में कॉलेज छोड़ दिया। इसी वर्ष इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और उसके कुछ दिन बाद ही भारत सरकार ने इनको शासन के कुछ अधिकार दे दिये[3]।

विवाह—महाराव उम्मेदसिंहजी का प्रथम विवाह उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी की सुपुत्री से हुआ था। उनके एक कन्या हुई जो ११ मास जीवित रही। फिर स्वयम् महाराणीजी का भी देहान्त होगया। अतः चैत्र शुक्ला १५ सम्वत् १९५३ को दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की सुपुत्री से हुआ। इस उत्सव में महाराजा बीकानेर और कई सरदार सम्मिलित हुये, परन्तु बम्बई की ओर प्लेग के प्रकोप के कारण बरात में बहुत थोड़े लोग गये[4]। दस वर्ष तक इनके कोई सन्तान नहीं हुई तब महाराव उम्मेदसिंहजी ने तीसरा विवाह जयपुर राज्यान्तर्गत ईसरदा के ठाकुर की बहिन के साथ आषाढ कृष्ण ९ सं. १९६४

---

(१) महकमा खास सम्वत् १९४७, माल नं० ८५।
(२) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३ पृष्ठ ४।
(३) महकमा खास, सम्वत् १९४९, कुल्लियात, १५९।
(४) i उपरोक्त कुल्लियात नं० १३३।
ii एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३ पृष्ठ ५।
iii महकमा खास सम्वत् १९५४, कुल्लियात नं० २०९।

को किया[1]। यह विवाह सौभाग्य से सफल सिद्ध हुआ और भाद्रपद कृष्णा अमावस्या सम्वत् १९६५ को पुत्र जन्म हुआ। यह शुभ अवसर राजपरिवार में लगभग ७० वर्ष के बाद उपस्थित हुआ था। अतः सम्पूर्ण राज्य में प्रजा ने तथा राजकर्मचारियों ने बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया। नवजात पुत्र का नाम महाराजकुमार भीमसिंहजी रक्खा[2]। बहुत अरसे तक रोग ग्रस्त रहने के बाद महाराणी जाड़ेचीजी का देहान्त होगया।

महाराजकुमार की शिक्षा—महाराजकुमार भीमसिंहजी की प्रारम्भिक शिक्षा कोटे में ही मुन्शी शिवप्रतापजी, लाला गोपीनाथजी अग्रवाल और पण्डित कृष्णदत्तजी राजपुरोहित द्वारा हुई। सम्वत् १९७८ में ये मेओ कॉलेज में भर्ती हुये। इस समय इनको अँग्रेजी, हिन्दी, हिसाब, इतिहास और भूगोल का साधारण ज्ञान हो चुका था। अतः मेओ कॉलेज में जाते ही ये अपनी कक्षा में अच्छे विद्यार्थियों में परिगणित होने लगे और कॉलेज के प्रिन्सिपल ने अपनी रिपोर्ट में इनकी प्रशंसा की[3]। सम्वत् १९७९ में कोटा छोड़ते समय कर्नल मेकोनेघी पोलिटिकल एजेण्ट ने अपने विदा के उपलक्ष में दी हुई दावत का धन्यवाद देते हुये कहा था कि "मुझे खेद है कि महाराज-कुमार इस समय यहाँ उपस्थित नहीं हैं परन्तु उनके विषय में सब ओर से यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि मेओ कॉलेज में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त करली है। मुझे विश्वास है कि जब दरबार उनको कॉलेज से वापिस बुलावेंगे तो उनको शासन कार्य की भी

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६४, पृष्ठ ३।

(२) उपरोक्त सम्वत् १९६५, पृष्ठ ३।

(३) उपरोक्त सम्वत् १९७८, पृष्ठ ३।

आप स्वयम् शिक्षा देंगे[1]"। अँग्रेजी भाषा के अध्ययन में सहायता देने के लिये कर्नल ट्विस को महाराजकुमार का ट्यूटर नियत किया गया। सम्वत् १९८३ में इन्होंने डिप्लोमा परीक्षा पास की और सफल विद्यार्थियों में ऊँचा स्थान प्राप्त किया[2]। यह परीक्षा पास करके महाराजकुमार पोस्ट डिप्लोमा क्लास में भर्ती हुये और इसमें भी अच्छे रहे। इनकी विद्याभिरुचि, परिश्रमशीलता और सच्चरित्रता के कारण मेओ कॉलेज के प्रिन्सिपल ने इनको हेड मॉनीटर नियत किया और अपनी रिपोर्ट में इनकी बहुत प्रशंसा की। केवल अध्ययन में ही नहीं खेल कूद में भी महाराजकुमार की अच्छी रुचि थी[3]। सम्वत् १९८५ में महाराजकुमार ने मेओ कॉलेज की अन्तिम परीक्षा पास की। इन्होंने अगस्त सन् १९१७ में विद्यारम्भ किया था और अप्रेल सन् १९२९ में पोस्ट डिप्लोमा परीक्षा पास करके कॉलेज छोड़ा। इस प्रकार निरन्तर लगभग १२ वर्ष तक विद्याभ्यास किया। कोटा के राजपरिवार में ही नहीं सम्पूर्ण राजपूताने में राजकुमार के लिये यह साधारण बात नहीं है। सम्वत् १९८६ में दरबार ने निश्चय किया कि महाराजकुमार को शासन शिक्षा भी प्राप्त करना चाहिये। अतः वे महक्मा खास और महक्मा माल में काम देखने लगे। इसके अनन्तर अन्य विभागों के काम तथा प्रबन्ध से भी परिचय प्राप्त किया। इस समय महाराज कुमार नियमितरूपेण महक्मा खास में कार्य्य करते हैं[4]।

महाराज कुमार का विवाह—महाराज कुमार भीमसिंहजी का बीकानेर के महाराजा गंगासिंहजी की सुपुत्री से वैशाख शुक्ला २

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७९ पृष्ठ ५।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९८३, पृष्ठ ४।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९८४, पृष्ठ ३।
(४) उपरोक्त, सम्वत् १९८६, पृष्ठ ३।

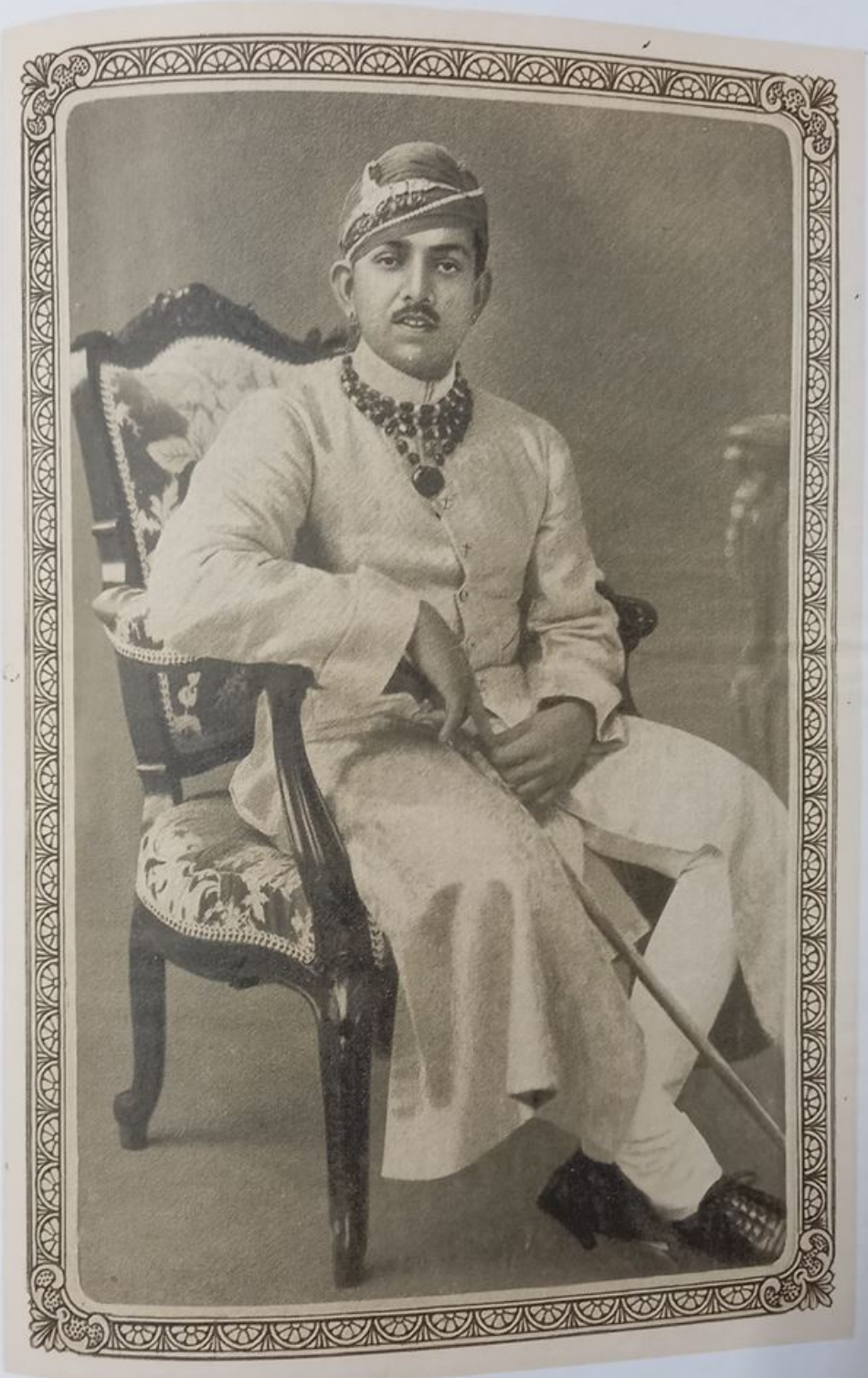

श्रीमान् महाराज कुमार श्री भीमसिंहजी साहब बहादुर

संवत् १९८६ तदनुसार ३० अप्रैल सन् १९३० को विवाह हुआ। इस अवसर पर उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, किशनगढ़, करौली, रीवां, पन्ना, धोलपुर, ग्वालियर, रतलाम, भुज, बूँदी, काश्मीर, इशरदा, श्योपुर बड़ौदा आदि अनेक नरेशों और सरदारों को तथा अनेक अँग्रेज सज्जनों को निमन्त्रित किया गया था। बरात में बूँदी, पन्ना, और सन्तरामपुर के नरेश और भुज के द्वितीय कुमार, तथा सायला, सामोद, कुचाभण और बिसाउ आदि के सरदार गये थे। सरदारों के अतिरिक्त कोटा राज्य के अनेक अफसर, पण्डित और सेठ साहूकार सम्मिलित थे[1]।

पौत्र जन्म—फाल्गुण शुक्ला ८ सवत् १९९० तदनुसार २२ फरवरी सन् १९३४ को महाराव उम्मेदसिंहजी के पौत्र जन्म हुआ। यह राजपरिवार के लिये परम हर्ष का दिवस था; क्योंकि ऐसा शुभ अवसर कई पीढ़ियों के बाद उपस्थित हुआ था।

राज माताएँ—जब उम्मेदसिंहजी का राजतिलक हुआ तो महाराव शत्रुशालजी की दो विधवा पत्नियाँ गौड़जी और तँवरजी तथा महाराव रामसिंहजी की एक विधवा पत्नी भटियाणीजी जीवित थीं। भटियाणीजी की अवस्था बहुत अधिक होचुकी थी। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ और भगवत् स्मरण में व्यतीत हुआ करता था। अपने पुत्र महाराव शत्रुशालजी पर उनका बड़ा प्रभाव था। उसी प्रकार महाराव उम्मेदसिंहजी पर भी उनका प्रभाव बना रहा। राजकाज में भी वे अपने सुयोग्य पौत्र को सलाह दिया करती थीं। अपने अन्तिम दिनों में व्रत-उपवास तथा कठोर नियमों के द्वारा उन्होंने अपने शरीर को कृष कर दिया था। इस प्रकार का पवित्र जीवन बिताते हुये

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९८६, पृष्ठ ४–११।

सम्वत् १९५१ में उनका देहान्त हुआ[1]। सम्वत् १९७० के पौष मास में राजमाता तँवरजी का देहान्त हुआ[2]। और सम्वत् १९७४ के कुँवार में राजमाता गौड़जी का स्वर्गवास हुआ। उनके देहान्त के समय महाराव उम्मेसिंहजी भारतीय नरेशों की एक सभा में सम्मिलित होने के लिये दिल्ली गये हुये थे। यह शोक समाचार सुनते ही वे दूसरे दिन वापिस कोटा आये और अपनी माता का विधिवत् सब और्ध्व दैहिक संस्कार किया[3]।

प्रारम्भिक शासन कार्य—मेओ कॉलेज से शिक्षा प्राप्त करके वापिस आने पर महाराव उम्मेदसिंहजी को शासन के कुछ अधिकार मिल गये थे। पोलिटिकल एजेण्ट और कौन्सिल के अधिकार फिर भी पूर्ववत् बने रहे, परन्तु सेना, कोटरियात, पुण्य विभाग और महलों का प्रबन्ध दरबार के सुपुर्द कर दिया गया। दरबार का इजलास महक्मा खास कहलाने लगा। इन विभागों का कार्य कौन्सिल के मेम्बरों के परामर्श से हुआ करता था। सैनिक विषयों में आप अमरसिंहजी, कोटरियात और पुण्य में राज विजयसिंहजी तथा महलों के विषय में महाराजा जयसिंहजी से सहायता ली जाती थी। अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों में कौन्सिल के सब मेम्बरों से परामर्श लिया जाता था[4]।

शासन के पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति—चार वर्ष तक इस प्रकार आंशिक अधिकारों का महाराव उम्मेदसिंहजी ने अच्छा उपयोग किया जिससे भारत सरकार को इनकी योग्यता पर विश्वास होगया। अतः सम्वत् १९५३ अगहन शुक्ला १ को उनको शासन के पूर्ण

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५१, पृष्ठ १।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९७०, पृष्ठ ३।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९७४, पृष्ठ २।
(४) उपरोक्त, सम्वत् १९५१, पृष्ठ ४।

श्रीमान् भँवर श्री बृजराजसिंहजी साहब बहादुर

अधिकार दे दिये गये। तीस नवम्बर सन् १८९६ को सर रोबर्ट क्रोस्थवेट कोटे आया। पाँच दिसम्बर की प्रातःकाल बहुत बड़ा दरबार लगा। इसमें रियासत के जागीरदार और इन्द्रगढ़, बलवन, खातौली, गैंता तथा पीपल्दा के सरदार और ऊमरी (मध्यभारत) के राजा उपस्थित हुये। इस अवसर पर जोधपुर के महाराजा के काका जालिमसिंहजी और मणिपुर के महाराजा भी कोटा दरबार के मेहमान थे। इनके अतिरिक्त कितने ही अँग्रेज मित्र भी निमन्त्रित किये गये थे जिनमें कर्नल मेनर्स स्मिथ, कर्नल बेल, मेजर जेनिङ्गस, और मेओ कॉलेज के प्रिन्सिपल कर्नल विलियम लोक इस अवसर पर उपस्थित थे। दरीखाने में दरबार ने ए० जी० जी० का स्वागत किया और अपने दायीं ओर बैठाया। कुछ देर बाद वायसराय का खरीता कप्तान बार्कले ने पढ़ कर सुनाया जिसमें महाराव उम्मेदसिंहजी को शासन के पूर्ण अधिकार सौंपे गये थे[1]। इस अवसर पर ए० जी० जी० ने जो भाषण दिया वह अविकल उद्धृत करने के योग्य है। उसने कहा :—

" महाराव साहब, चार वर्ष पूर्व कर्नल ट्रेवर ए० जी० जी० ने आपको कोटा राज्य की गद्दी पर बिठाया था और कुछ विभागों का शासन आपके सुपुर्द किया था। उस समय जो आप पर विश्वास किया गया था वह उचित सिद्ध हुआ है और आपने अपना उच्च कर्त्तव्य ऐसी खूबी के साथ पालन किया है कि अब मुझे वायसराय ने आज्ञा दी है कि रियासत का सम्पूर्ण शासन अधिकार आपके सुपुर्द कर दिया जावे। मुझे इस प्रकार की घोषणा आपके उन सरदारों के सामने करते हुये प्रसन्नता होती है जिनको वायसराय का हुक्म मानने के लिये इस शुभ अवसर पर बुलाया गया है। अपनी नाबालिगी के

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ठ १–२।

समय में कॉलेज में और यहाँ कोटे में आपने ऐसा व्यवहार किया है कि जो लोग आपको जानते हैं, वे सब आपका आदर करने लग गये हैं और आपसे मित्रता रखते हैं, और मुझे विश्वास है कि मेरी भाँति अन्य सज्जन भी जो यहाँ पर उपस्थित हैं, वे सब आपको हृदय से इस अधिकार प्राप्ति के लिये बधाई देते होंगे और चाहते होंगे कि आप सुख और सम्पत्ति के साथ दीर्घ काल तक अपनी प्रजा पर शासन करें।

कोटा रियासत का शासन बीस वर्ष के अधिक अरसे से पोलिटिकल एजेण्ट के तत्त्वावधान में चल रहा है। इस अरसे में राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी होगई है। चालीस लाख के ऋण के स्थान में अब बीस लाख रुपया जमा है। राज्य की उन्नति और प्रजा की भलाई के लिये पुष्कल व्यय किया जा चुका है। एञ्जिनियरिंग विभाग पर ही अट्ठावन लाख से अधिक खर्च हो चुका है और पिछले पाँच वर्षों से लगभग साढ़े तीन लाख रुपये प्रति वर्ष खर्च होता है। सड़कें, दफ्तर, पाठशालायें, और शफाखाने बन गये हैं और एक सौ चौरासी मील की नहर बहुत खर्च करके बना दीगई है। दूसरे विभागों का शासन भी बड़ी उत्तमता से चल रहा है[1]। इसके लिये आप पोलिटिकल एजेण्ट और कौन्सिल के ऋणी हैं। कौन्सिल के सब मेम्बरों ने—नये और पुरानों ने अच्छा काम किया है। यह खेद की बात है कि इस अवसर पर जो उनके परिश्रम का सफल अन्त है, वे सब लोग उपस्थित नहीं हैं। परन्तु जो आज उपस्थित हैं, और मुझे प्रसन्नता है कि उनमें रावबहादुर आप अमरसिंहजी पलायथा को मैं यहाँ देख रहा हूँ जो बीस वर्ष तक कौन्सिल के मेम्बर रहे हैं,

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ठ २।

इन सब को यह देख कर सन्तोष हो रहा होगा कि उनका शासन इतना उत्तम रहा और अब वे सुव्यवस्थित और सुसम्पन्न राज्य को राजा के सुपुर्द कर रहे हैं।

मुझे इस बात का हर्ष है कि कोटा राज्य में दुर्भिक्ष का भय नहीं है जिससे आज की प्रसन्नता कम होती। आपके सम्पूर्ण राज्य में उन्दालू की फसल प्रायः अच्छी है और अभी जो वर्षा हुई है, उससे भय और भी दूर होगया है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं शासन के अधिकार आपको ऐसे समय पर सुपुर्द कर रहा हूँ जब आर्थिक अवस्था अच्छी है, विभिन्न महक्मों का प्रबन्ध उत्तम है, और प्रजा सम्पन्न है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके हाथों से राज्य का शासन-संचालन उन्हीं उन्नत सिद्धान्तों के अनुकूल चलता रहेगा जिनके कारण इस समय आपकी प्रजा इतनी सुखी है।

आप सब महत्त्वपूर्ण विषयों में पोलिटिकल एजेण्ट से पूछा करें, उनकी सलाह माना करें और आपकी नाबालिगी में जो कानून कायदे जारी किये गये हैं, उनमें कोई भारी परिवर्तन करना हो तो पोलिटिकल एजेण्ट की सम्मति लिया करें। सौभाग्य से कर्नल बेली, कर्नल वाइली और मेजर हरबर्ट की भाँति कर्नल सेडलर एक ऐसे अफसर हैं जो आपको प्रत्येक प्रकार की कठिनाई में सहर्ष सहायता देंगे। आपके ऊपर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यों का भार है और पाँच लाख से अधिक प्रजा का सुख दुख आपकी कर्त्तव्यशैली पर निर्भर है। परन्तु मुझे विश्वास है कि अपने राज के शासन कार्य में आप उन स्पष्टता और सच्चाई के सिद्धान्तों से काम लेंगे जिनका आपने मेओ कॉलेज में और सार्वजनिक जीवन में आश्रय लिया है। मुझे विश्वास है कि आपका शासनकाल आपके राज्य की निरन्तर उन्नति और समृद्धि का इतिहास होगा। अब मेरे लिये केवल

यह कार्य बाकी रह जाता है कि वायसराय की आज्ञानुसार यह पत्र मैं आपको भेंट करूँ और अपनी मैत्री के विषय में आपको विश्वास दिलाऊँ और ईश्वर से प्रार्थना करूँ कि आपको सुख और समृद्धि प्राप्त हो[1]।"

सार्वजनिक पुस्तकालय आदि—ए० जी० जी० को धन्यवाद देते हुये महाराव उम्मेदसिंहजी ने घोषित किया कि प्रजा के लिये बाग में एक सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित किया जावेगा और उसी के साथ खेल कूद के लिये मैदान बनाये जावेंगे जिससे प्रजा का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रह सकेगा। इस संस्था का नाम ए० जी० जी० की इजाजत से उन्हीं के नाम पर क्रोस्थवेट इन्स्टीट्यूट रक्खा जावेगा। इस संस्था को अब साधारण बोलचाल में यादघर कहते हैं[2]।

झालावाड़ के परगनों की वापसी—महाराव रामसिंहजी के शासनकाल में सम्वत् १८९४ में कोटा राज्य के सतरह परगने देकर झाला मदनसिंह को अलग राजा बनाया गया था और यह तय पाया था कि राजराणा जालिमसिंह के औरस वंशज इन परगनों का उपभोग करते रहेंगे। सम्वत् १९५३ में झालावाड़ के तत्कालीन राजराणा जालिमसिंह को भारत सरकार ने कुप्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर गद्दी से उतार दिया। उनके कोई औरस पुत्र नहीं था इसलिये भारत सरकार ने कोटे के सतरह परगनों में से पन्द्रह परगने वापिस कोटा दरबार के सुपुर्द कर दिये[3]। इसकी घोषणा केप्टिन स्ट्रेटन पोलिटिकल एजेण्ट ने पाँच जून सन् १८९६ को कोटा दरबार को दी थी। लेकिन

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ट २–३।
(२) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ट ५।
(३) इमपिरियल ए. जे., राजपूताना पृष्ठ ३९०।

अवशिष्ट झालावाड़ राज्य की हदबन्दी अभी नहीं हुई थी और उस राज्य के जागीरदारों के विषय में अभी कुछ निश्चय न होपाया था अतः उन परगनों का शासन कुछ अरसे तक पोलिटिकल एजेण्ट के ही सुपुर्द रहा[1]। ये सब परगने विधिपूर्वक सम्वत् १९५५ में अर्थात् पहिली जनवरी सन् १८९९ को कोटा राज्य में मिलाये गये[2]।

सम्राट् द्वारा सम्मान—शासन सूत्र पूर्णरूप से अपने हाथ में लेने पर उम्मेदसिंहजी ने राजकार्य ऐसी उत्तमता से किया कि सम्राज्ञी विक्टोरिया ने प्रसन्न होकर सम्वत् १९५६ में (दिसम्बर सन् १८९९) इनको K. C. S. I. की उपाधि से सम्मानित किया[3]। इस उपाधि के उपलक्ष में तीन अप्रेल सन् १९०१ को दरबार हुआ जिसमें कर्नल वाइली ए० जी० जी० ने सम्राज्ञी विक्टोरिया की ओर से कोटा नरेश को इस उपाधि के चिन्ह भेंट करते हुये कहा था कि "२१ दिसम्बर सन् १८९२ को आपको अधिकार सुपुर्दगी के उत्सव में मैं शामिल था। तब से अब तक मैं गहरी रुचि के साथ आपके कार्य को देख रहा हूँ। मुझे बड़ा ही सन्तोष है कि उस समय जो आशा की गई थी वह आपने सब प्रकार से पूरी की है। आरम्भ से ही अपनी प्रजा की भलाई में आपकी गहरी व्यक्तिगत रुचि है और अपने राज्य के शासन को उन्नत करने में आप सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। आपका व्यक्तिगत जीवन निष्कलंक है और पारिवारिक तथा सार्वजनिक व्यवहार में आपने अनुभव किया है कि शासक को सब के सामने अच्छा आदर्श खड़ा करना चाहिये। इन गुणों के कारण और आपके

---

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ट ६।

(२) उपरोक्त, सम्वत् १९५६, पृष्ठ २।

(३) उपरोक्त, सम्वत् १९५६, पृष्ट १।

उच्च वंश के कारण तथा सम्राज्ञी के प्रति राजभक्ति दिखाने के कारण स्वर्गीय सम्राज्ञी ने तथा वायसराय ने आपको इस उपाधि से सम्मानित करने की कृपा की है[1]।"

सम्वत् १९६३ में वर्तमान कोटा नरेश को G. C. I. E. की उपाधि मिली। २८ जून सन् १९०६ को जब स्पेशल रेल द्वारा वे भुज से कोटा आरहे थे तो उनको इस उच्च उपाधि की प्राप्ति की सूचना मिली। इस उपाधि को विधिपूर्वक प्राप्त करने के लिये महाराव उम्मेदसिंहजी वायसराय से मिलने के लिये कलकत्ता गये। वहाँ इनका वायसराय ने मर्यादापूर्वक स्वागत किया और परस्पर मुलाकात के बाद २८ जनवरी सन् १९०८ को वायसराय ने G. C. I. E. की उपाधि से कोटा नरेश को अलंकृत किया। इस समय भारतवर्ष के वायसराय लार्ड मिन्टो थे[2]।

महाराव उम्मेदसिंहजी ने सम्वत् १९५८ में मऊ में पश्चिमी शैली की सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी[3]। सम्वत् १९७१ में सम्राट् ने प्रसन्न होकर कोटा नरेश को ऑनरेरी लेफ्टिनेन्ट कर्नल नियत किया। इस उपाधि के लिये तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने सिफारिश की थी[4]। सम्वत् १९७४ में महाराव उम्मेदसिंहजी को G. B. E. की उपाधि प्राप्त हुई[5] एवम् अँग्रेजी साम्राज्य में कोटा नरेश ने बहुत ऊँचा सम्मान प्राप्त किया।

---

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५७, पृष्ट ५।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६४, पृष्ठ १–३।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९५८ पृष्ट १।
(४) " " १९७१ " २।
(५) " " १९७४ " ६।

देशाटन यात्रा आदि—महाराव उम्मेदसिंहजी ने भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्रान्त में घूम कर और सब प्रसिद्ध देवस्थानों की यात्रा करके विस्तृत अनुभव प्राप्त किया है और कई सार्वजनिक कार्यों में सहायता दी है। सम्वत् १९५८ में चीफ्स कॉलेजों के सुधार के लिये तत्कालीन वायसराय ने रईसों की एक सभा की थी जिसमें कोटा नरेश सम्मिलित हुये[1]। सम्वत् १९६९ में रामेश्वर की यात्रा की और दक्षिण भारत को देखा[2]।

काशी विश्वविद्यालय—सम्वत् १९७२ में पण्डित मदन-मोहन मालवीयजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के उत्सव पर कोटा नरेश को आमन्त्रित किया। इससे पूर्व पण्डित मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये आर्थिक सहायता माँगने को कोटा आ चुके थे और दरबार डेढ़ लाख रुपये का चन्दा दे चुके थे। उत्सव में सम्मिलित होने के लिये प्राइवेट सेक्रेटरी और कई सरदारों के साथ महाराव उम्मेदसिंहजी काशी पहुँचे। इस उत्सव में काश्मीर, जोधपुर बीकानेर, किशनगढ़, अलवर, डूँगरपुर, दतिया, बनारस, झालावाड़, नाभा, सुहावल आदि राज्यों के नरेश सम्मिलित हुये थे। कई प्रान्तों के गवर्नर और भारतवर्ष के अग्रगण्य विद्वान् तथा राजनीतिज्ञ उपस्थित थे। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने अपने हाथों से विश्वविद्यालय की नींव डाली थी और बीकानेर नरेश ने विश्वविद्यालय की ओर से वायसराय को धन्यवाद दिया था[3]।

लेडी हार्डिञ्ज मेडीकल कॉलेज दिल्ली—इसी वर्ष दिल्ली में वायसराय ने स्त्रियों के लिये मेडीकल कॉलेज का उद्घाटन किया था।

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५६ पृष्ठ १।
(२) ,, ,, ,, १९६९ पृष्ठ ५।
(३) ,, ,, ,, १९७२, पृष्ठ ३।

इसके उत्सव में सम्मिलित होने के लिये भी वायसराय ने कोटा नरेश को निमन्त्रित किया था। अतः ये इस उत्सव में सम्मिलित हुये और इसमें एक लाख रुपये का चन्दा दिया। इस अवसर पर ग्वालियर, पटियाला, बीकानेर और जींद के महाराजा तथा भोपाल की बेगम आदि शासक उपस्थित थे[1]।

बम्बई में बीकानेर नरेश की विदा—सन् १९१७ में जब यूरोपीय महासमर का स्वरूप चिन्ताजनक होता जाता था तो ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न देशों और उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की लन्दन में एक सभा की गई थी। महाराजा बीकानेर को भारत सरकार ने भारतीय नरेशों का प्रतिनिधि नियत किया था। जब बीकानेर नरेश इँगलेंड के लिये भारत से प्रस्थान करने लगे तो उनको विदा करने के लिये अनेक भारतीय नरेश बम्बई में सम्मिलित हुये। कोटा नरेश महाराजा बीकानेर के घनिष्ठ मित्र हैं, अतः उनको विदा करने के लिये ये भी बम्बई गये। बम्बई के ताजमहल होटल में इस अवसर पर लगभग २५० नरेश, सरदार और उच्च राजकर्मचारी उपस्थित थे और बम्बई का गवर्नर इस सम्मेलन का अध्यक्ष था[2]।

द्वारिका—सम्वत् १९७१ में कोटा नरेश ने कुछ सरदारों और प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ द्वारिका की यात्रा की। इस यात्रा में बड़ौदा नरेश और कच्छ नरेश ने इनका सत्कार किया। द्वारका में महाराव साहब ने देवदर्शन किये और पुण्यदान दिया[3]। सम्वत् १९७४ में दोनों महाराणियों के साथ इन्होंने हरिद्वार की यात्रा की। साथ में सपरिवार कितने ही सरदार, दीवान, प्राइवेट सेक्रेटरी और

(१) ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७२, पृष्ठ ६।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९७३, पृष्ठ ३।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९७१, पृष्ठ ३।

उच्च राजकर्मचारी गये। हरिद्वार में दो सप्ताह तक निवास किया और गंगा स्नान तथा पुण्यदान किया।

काशी विश्वविद्यालय द्वारा सम्मान—सम्वत् १९९३ में काशी विश्वविद्यालय के प्रबन्धकों ने प्रस्ताव पास किया कि कोटा नरेश महाराव उम्मेदसिंहजी को LL. D. की उपाधि से विभूषित किया जावे। विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर पण्डित मदनमोहन मालवीय जी ने उक्त प्रस्ताव से कोटा नरेश को सूचित किया और उपाधि ग्रहण करने के लिये आग्रह किया। कोटा नरेश ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया परन्तु उपाधि वितरण के उत्सव से पूर्व ही सम्राट् पंचम जार्ज का देहावसान होगया अतः विश्वविद्यालय ने इस प्रकार की उपाधियों का वितरण इस वर्ष स्थगित रक्खा। आगामी वर्ष अर्थात् सम्वत १९९४ में विश्वविद्यालय ने इनको पुनः निमन्त्रित किया और LL. D. की उपाधि से अलंकृत किया। उपाधि स्वीकार करते हुये कोटा नरेश ने कहा कि विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय किया है और इसका सम्पूर्ण श्रेय ऋषि-वर पण्डित मालवीयजी को है।

बूँदी, जयपुर और झालावाड़ से मेल

बूँदी—महाराव उम्मेदसिंहजी ने ऐसी रियासतों के साथ जिनसे परम्परागत वैमनस्य था, पुनः प्रेमभाव स्थापित करके बड़े औदार्य्य और सौजन्य का परिचय दिया है। बूँदी और कोटा में सम्वत् १७६४ अर्थात् जाजव की लड़ाई से अनबन चली आती थी। इस विषय में महाराव उम्मेदसिंहजी ने स्तुत्य आदर्श खड़ा किया। सम्वत् १९८० में जब बूँदी के महाराव राजा बीमार हुये तो उनकी

कुशल पूछने के लिये कोटा नरेश बूँदी गये। इससे पहिले भी ये बूँदी जा चुके थे और बूँदी नरेश से मिल चुके थे। इस प्रकार की मुलाकातों से पीढ़ियों का वैमनस्य धुल गया[1]। सम्वत् १९८२ में बूँदी नरेश ने श्री गोविन्दनाथजी के मन्दिर का डोरा किया जिसमें सम्मिलित होने के लिये कोटा नरेश को सपरिवार आमन्त्रित किया। बन्धु-स्नेह को सुदृढ़ करने के लिये महाराव उम्मेदसिंहजी दोनों महाराणियों के साथ बूँदी गये और चार दिन तक वहाँ ठहरे[2]। सम्वत् १९८३ में महाराव राजा रघुबीरसिंहजी का देहान्त हुआ तो शोक प्रकट करने के लिये कोटा राज्य के सब दफ्तर बन्द कर दिये गये और तीज की सवारी भी बन्द रही। शोक प्रकट करने के लिये महाराव उम्मेदसिंहजी राजलोक सहित बूँदी गये। जब वर्तमान बूँदी नरेश महाराव राजा ईश्वरीसिंहजी का राजतिलक हुआ तो कोटे में भी उत्सव मनाया गया और राजतिलक के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये कोटा नरेश बूँदी गये[3]। बून्दी नरेश भी कई बार कोटे आ चुके हैं।

जयपुर—सवाई जयसिंहजी के समय से कोटा और जयपुर में भी घोर वैमनस्य चला आता था। दोनों राज्यों के नरेश कई बार युद्ध क्षेत्र में परस्पर लड़ चुके थे। ऐसे वैमनस्य को हटाना महाराव उम्मेदसिंहजी का ही काम था। इसमें कई घटनाओं के संयोग ने भी सहायता दी। पहिले लिखा जा चुका है कि महाराव उम्मेदसिंहजी का तृतीय विवाह ईशरदा के ठाकुर की बहिन से हुआ था। वर्तमान जयपुर नरेश ईशरदा ठिकाना के कनिष्ठ पुत्र हैं। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा कोटे में पलायथे के आप ओंकारसिंहजी के पास रह कर प्राप्त

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९८०, पृष्ठ ५।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९८२, पृष्ठ ३।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९८३ पृष्ठ ५।

की थी। आप ओंकारसिंहजी का विवाह भी ईशरदा के ठाकुर की बहिन से हुआ है। अतः वर्तमान जयपुर नरेश के साथ बचपन से ही कोटा नरेश का प्रेम था। स्वर्गीय जयपुर नरेश बीमार हुये तो कुशल पूछने को और फिर गोदनशीनी पर हर्ष प्रकट करने को कोटा नरेश महाराजा माधोसिंहजी से मिलने के लिये जयपुर गये। वर्तमान जयपुर नरेश भी कई बार कोटे आ चुके हैं। इस प्रकार महाराव उम्मेदसिंहजी ने दोनों राजघरानों में पुनः स्नेह सम्बन्ध स्थापित किया। अब दोनों नरेश आपस में खूब प्रेमपूर्वक मिलते हैं और आते जाते हैं[1]।

झालावाड़—सम्वत् १९८१ में महाराज राणा झालावाड़ कोटा नरेश से मिलने के लिये आये। कोटा नरेश उनसे सहर्ष मिले। उस समय सर रोबर्ट होलेन्ड ए० जी० जी० कोटे आये हुये थे। उन्होंने अपनी दावत के बाद अपने भाषण में इस अपूर्व घटना का उल्लेख करते हुये कहा कि "पोलिटिकल अफसर की हैसियत से मेरा कर्त्तव्य है कि आपने झालावाड़ नरेश के स्वागत में जो बड़ी कृपा प्रकट की है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद दूँ। जो दोनों राज्यों के इतिहास को जानते हैं उनके लिये यह सन्तोष का विषय है कि झालावाड़ नरेश मित्र भाव से कोटा नरेश से मिलने आये और मैं समझता हूँ कि यह मुलाकात भावी स्नेह सम्बन्ध की भूमिका मात्र होगी[2]।

अन्य नरेशों से मित्रता—उदयपुर, भुज, बीकानेर, रतलाम, और जयपुर से कोटे की रिश्तेदारी ही है। इनके अतिरिक्त

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६९, पृष्ठ ६।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९८४, पृष्ठ ५।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९८१, पृष्ठ ६।

जोधपुर, किशनगढ़, डूँगरपुर, अलवर, काश्मीर, ग्वालियर, बनारस, पन्ना, बड़ौदा, टोंक आदि राज्यों के नरेशों से कोटा नरेश की अच्छी मित्रता है।

प्रजा हितैषिता—राजगद्दी पर बैठने के बाद ही महाराव उम्मेदसिंहजी ने अपने उदार व्यवहार से प्रगट कर दिया कि उनके हृदय में प्रजा के प्रति कितना प्रेम और हित है। सम्वत् १९५६ का दुर्भिक्ष कोटा राज्य में घोर संकट था। अनावृष्टि के कारण अन्न और घास नाममात्र को पैदा हुआ था। अतः राज्य की करुण दशा देखने के लिये कोटा नरेश ने प्रायः सम्पूर्ण रियासत में दौरा किया। हाथी और घोड़ों के कारण जब प्रजा को कष्ट होते हुये देखा तो दरबार ने ऊँटो पर सफर किया और सादगी के साथ दौरा किया[1]। जब जब भी राज्य पर ईति या रोग के कारण विपत्ति आई तो कोटा नरेश ने प्रजा के साथ व्यवहारिक रूप से सहानुभूति प्रकट की है। जब निजामत अटरू में घोर बाढ़ आई और प्रजा को महान् विपत्ति झेलनी पड़ी तो शारीरिक कष्ट उठा कर दरबार बाढ़ पीड़ित लोगों को आश्वासन देने के लिये गये और सब प्रकार से सहायता पहुँचाई।

मन्त्रि मण्डल—जब महाराव उम्मेदसिंहजी को अधिकार प्राप्त हुये तो कौन्सिल के शासन का अन्त होगया। इन्होंने तत्कालीन कौन्सिल मेम्बर चौबे रघुनाथदास को दीवान नियुक्त किया। ये इटावा (यू०पी०) के निवासी थे इनके पिता विशिष्टाद्वैतबादी वैष्णव पण्डित थे। रघुनाथदास ने आगरा कॉलेज में एफ० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी और मि० डायटन प्रिन्सिपल आगरा कॉलेज इनकी सच्चरित्रता तथा सत्यशीलता पर मुग्ध था। रघुनाथदास ने कुछ संस्कृत

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५६, पृष्ठ १।

चौबे सर रघुनाथदासजी

का भी अभ्यास किया था। आरम्भ में इनको शायद लेखक बनने का शौक था। अतः भार्याहित नामकी इनने एक पुस्तक भी लिखी थी। परन्तु साहित्य क्षेत्र में इनको सफलता न हो सकी। कॉलेज छोड़ने पर एक रिश्तेदार की सहायता से इनको यू०पी० में जिला खजानची की नौकरी मिल गई। वहाँ से अलवर राज्य में तहसीलदार हुये। अलवर में इनने बहुत अच्छा काम किया। एक बार लगानबन्दी के विषय में इनका अपने अफसर से घोर मतभेद होगया। जब यह मामला पोलिटिकल एजेण्ट के पास पहुँचा तो उनने चौबे रघुनाथदास के मत को ही स्वीकार किया। तब से पोलिटिकल अफसर चौबे रघुनाथदास से प्रसन्न रहने लगे। सन् १८७७ में मेजर पौलेट कोटे का पोलिटिकल एजेण्ट बन कर आया और उसने कौन्सिल नियत की। मेजर पौलेट चौबे रघुनाथदास का काम अलवर राज्य में देख चुका था और उनकी योग्यता से परिचित था। इसके अतिरिक्त उस समय कोटा राज्य में अँग्रेजी पढ़ा हुआ आदमी दुर्लभ था। अतः कर्नल पौलेट ने चौबे रघुनाथदास को कोटे में बुला लिया। और असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट माल नियत किया। लगभग १६ वर्ष तक इनने इसी पद पर काम किया। फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत हुये। दो वर्ष बाद ही मेम्बर कौन्सिल बना दिये गये और दो वर्ष बाद महाराव उम्मेदसिंहजी को अधिकार प्राप्त होने पर ये दीवान बनाये गये। सम्वत् १९५३ से सम्वत् १९८० तक अर्थात् २७ वर्ष तक ये दीवान रहे। चौबे रघुनाथदास राज और प्रजा दोनों के परम हितैषी थे। महाराव उम्मेदसिंहजी उनकी स्वामिभक्ति, प्रबन्धपटुता और राजनीतिज्ञता पर पूर्ण विश्वास करते थे। साथ ही कोटा राज्य की जनता का भी उनकी न्यायशीलता पर पूरा विश्वास था। एक बार जब वे रोगी हुये तो जनता में सहानुभूति का समुद्र उमड़ पड़ा

था और स्वास्थ्य प्राप्ति पर लोगों ने बड़ा उत्सव मनाया था। चौबे रघुनाथदास उच्च कोटि के शासक तो थे ही, वे ईश्वर भक्त भी ऊँचे दर्जे के थे। विशिष्टाद्वैतवाद के आनुवंशिक अनुयायी होते हुये भी अन्य सम्प्रदायों और धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते थे। भगवद् चर्चा में भी उनकी परम रुचि थी और सत्य से उनको प्रेम था। एक बार आर्य्यसमाज और सनातनधर्म के पण्डितों में कोटा नगर में शास्त्रार्थ हुआ था, उसके अध्यक्ष का पद उनने ग्रहण किया था। उनकी शासननीति उदार थी, कार्य्य शैली व्यवस्थित और न्यायशीलता अनुकरणीय। उनके समय में झालावाड़ के परगने वापिस कोटा राज्य में आये, भूमि का दूसरा बन्दोबस्त हुआ। पीड़ित कृषकों को लाखों रुपयों की छूट दी गई, महामारी प्लेग के समय में लोगों को बड़ी सहायता पहुँचाई गई, राज्य में सड़कें, नहरें, अस्पताल आदि बनाये गये और शिक्षा की प्रशंसनीय उन्नति हुई। सहकारी सभायें और पंचायतें स्थापित हुईं और अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण हुआ। इन सुकार्यों के कारण तथा उनकी अटूट राजभक्ति और उच्च जीवन के कारण भारत सरकार ने उनको रायबहादुर, दीवान बहादुर, सी०एस०आई और अंत में 'सर' की उपाधि से विभूषित किया। उनके समय में कोटा नरेश और कोटा राज्य की बड़ी कीर्ति बढ़ी। सम्वत् १९८० के पौष मास में (१ दिसम्बर १९२३) ७४ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त होगया।

जब राजपूताने के ए०जी०जी० सर रोबर्ट होलेन्ड कोटे आये तो उनकी दावत के बाद व्याख्यान देते हुये चौबे रघुनाथदास के विषय में महाराव उम्मेदसिंहजी ने कहा था कि "मेरे आदरणीय मन्त्री स्वर्गीय दीवान बहादुर सर चौबे रघुनाथदास की मृत्यु होजाने से मेरा एक सच्चा और स्वामिभक्त मन्त्री तथा बुद्धिमान सलाहकार

जाता रहा। उन्होंने ४६ वर्ष से अधिक मेरे राज्य की निष्ठा और कीर्ति के साथ सेवा की थी। प्रजाहित में निःस्वार्थ भाव से उच्च चरित्र के साथ वे लगे रहते थे। अतः मैं निरन्तर उन पर विश्वास करता था। उनकी मृत्यु से मुझे और मेरे राज्य को भारी क्षति पहुँची है। मेरे वृद्ध दीवान कर्त्तव्यपालन का एक दुर्लभ उदाहरण छोड़ गये हैं[1]"।

मुंशी शिवप्रताप—जब महाराव उम्मेदसिंहजी ने कॉलेज छोड़ा तो मुंशी शिवप्रताप उनके प्राईवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुये। सम्वत् १९७३ तक इस पद पर रहे। ये अजमेर प्रान्तान्तर्गत पीपागढ़ निवासी कायस्थ थे और एफ० ए० तक पढ़े हुये थे। इन पर दरबार का बड़ा विश्वास था। प्राईवेट सेक्रेटरी के काम के अतिरिक्त शासन कार्य में भी इनसे परामर्श लिया जाता था। दरबार इनका आदर करते थे इसलिये दीवान को भी लिहाज करना पड़ता था। मुंशी शिवप्रताप की राजभक्ति और कर्त्तव्यनिष्ठा अपूर्व थी। अतः शासन और नीति के सब महत्त्वपूर्ण कार्य चौबे रघुनाथदास और मुन्शी शिवप्रताप की सलाह से हुआ करते थे। प्राईवेट सेक्रेटरी के अतिरिक्त मुंशी शिवप्रताप शिक्षा विभाग के भी अध्यक्ष थे और अपने समय में इनने शिक्षा की बड़ी उन्नति की थी। हिन्दी और अँग्रेजी तथा संस्कृत के प्रायः सब वर्तमान स्कूल इनके समय में स्थापित, समुन्नत और परिपुष्ट हो चुके थे। इनकी छात्रों के साथ बड़ी सहानुभूति थी। उनके संरक्षकों से यह सहर्ष मिला करते थे। इनको स्त्री शिक्षा से बड़ा प्रेम था और भारतीय संस्कृति में इनकी अभिरुचि थी। इन गुणों के कारण मुंशी शिवप्रताप उच्च कोटि के शिक्षाध्यक्ष थे।

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९८०, पृष्ठ ६।

मेजर जनरल आप ओंकारसिंह—सम्वत् १९८० में चौबे सर रघुनाथदास की मृत्यु पर मेजर जनरल आप ओंकारसिंह मेम्बर महक्मा खास नियुक्त हुये। इनके पिता राव बहादुर आप अमरसिंह आरम्भ से अन्त तक बड़े प्रभावशाली मेम्बर कौन्सिल थे। जब कौन्सिल भंग हुई तो पेन्शन पाकर अपने गाँव पलायथे में रहने लगे। आप ओंकारसिंह इनके छोटे पुत्र हैं। इनके बड़े भाई प्रतापसिंह का देहान्त होजाने पर ये आप अमरसिंह के उत्तराधिकारी बने। इन्होंने मेओ कॉलेज से एन्ट्रेंस परीक्षा पास करके गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर में कुछ दिन तक एफ० ए० क्लास में शिक्षा ग्रहण की। मेओ कॉलेज और गवर्नमेन्ट कॉलेज के प्रिन्सिपल इनकी सच्चिरित्रता, परिश्रमशीलता और विद्याभिरुचि के कारण इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। विद्यार्थी जीवन में ये मेओ कॉलेज के हेड ब्वॉय अर्थात् सर्व प्रथम छात्र नियत किये गये थे और पढ़ाई तथा खेल के इनको कितने ही पदक प्राप्त हुये थे। आरम्भ में कुछ अर्से तक गढ़ कमेटी का काम करने पर इनको असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट माल नियत किया गया था। उस समय पुलिस की व्यवस्था अच्छी नहीं थी। अतः सम्वत् १९५१ में इनको माल विभाग से गिराही महक्मे का अफसर बनाया गया। गिराही विभाग उस समय इलाके की पुलिस का नाम था। राजधानी की पुलिस का प्रबन्ध शहर कोतवाल के सुपुर्द रहता था। जो हाकिम अदालतैन का मातहत था। गिराही अफसर की हैसियत से कुँवर ओंकारसिंह ने पुलिस विभाग को सुव्यवस्थित किया। कुछ अर्से बाद शहर पुलिस तथा इलाका पुलिस दोनों को मिला कर कुँवर ओंकार-सिंह को जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत किया गया। इस पद पर इन्होंने सन् १९२१ तक काम किया। इनके अच्छे काम के उपलक्ष

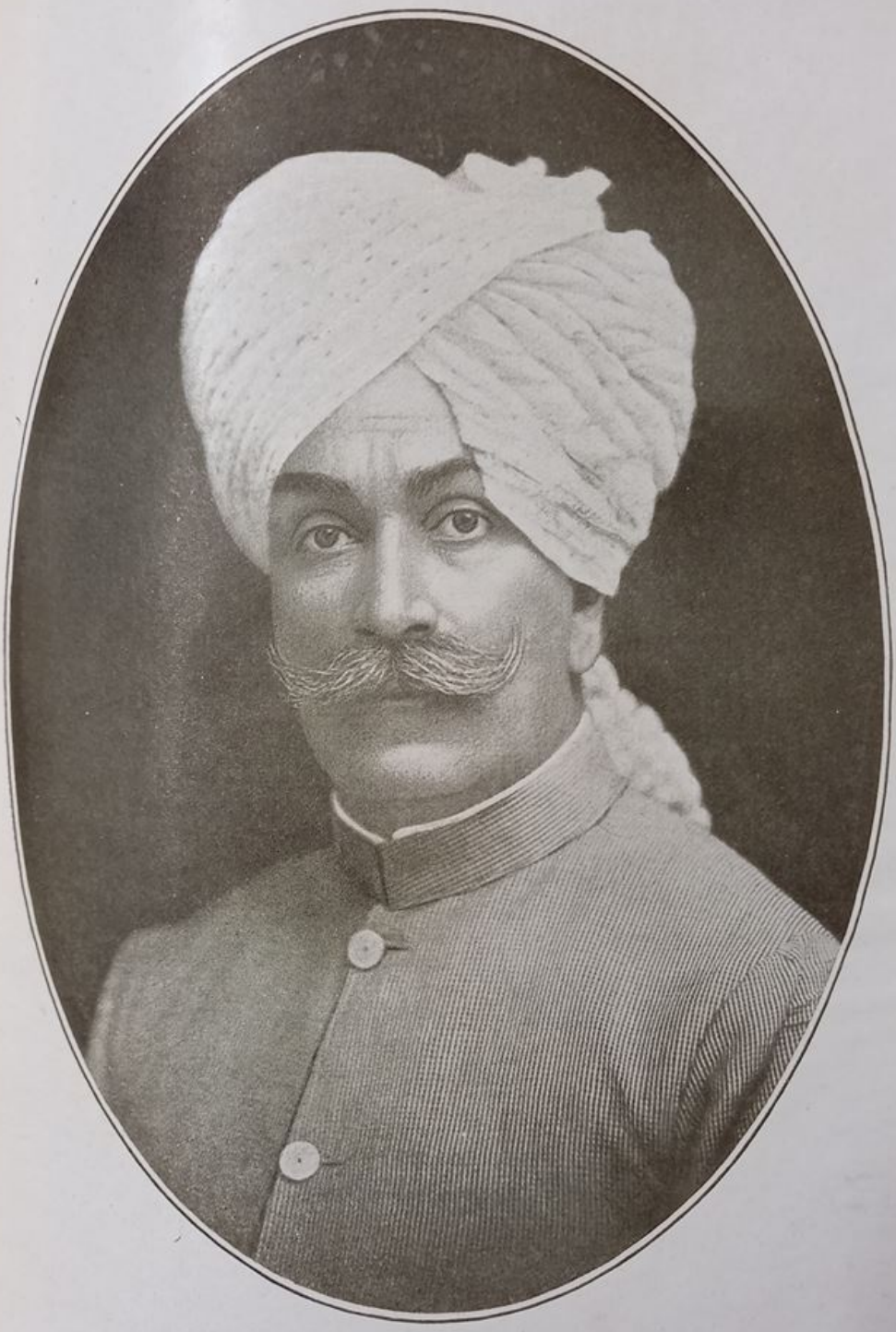

मेजर जनरल आप ओंकारसिंहजी, सी० आई० ई०

में कोटा राज्य की सिफारिश से कुछ अर्से बाद भारत सम्राट् ने इनको सी०आई०ई० की उपाधि प्रदान की। भूतपूर्व सेनाध्यक्ष मुन्शी भेरूलाल की वृद्धावस्था के कारण जब पेन्शन होगई तो आप ओंकार-सिंह सेना विभाग के अध्यक्ष बनाये गये और मेजर जनरल का इनको पद दिया गया। इस विभाग को इन्होंने आधुनिक रूप से व्यवस्थित और संगठित किया। सम्वत् १९८० में अधिक रोगी होकर जब चौबे सर रघुनाथदास इटावा गये तब दीवान के स्थान का काम करने के लिये आप ओंकारसिंह और पं० विश्वम्भरनाथ दोनों महकमा खास के मेम्बर नियत हुये। इस प्रकार दीवान की जगह दो मेम्बर महकमा खास काम करने लगे। यह प्रणाली अब तक चल रही है। सम्वत् १९९२ के ज्येष्ठ मास में पं० विश्वम्भरनाथ ने अस्वस्थता के कारण अपने पद को त्याग दिया। तदुपरान्त लगभग एक वर्ष तक आप ओंकारसिंह ने सुचारु रूप से राज्य प्रबन्ध का संचालन किया। इस अर्से में भी ये मेम्बर महकमा खास ही कहलाते रहे।

विद्यार्थी जीवन से अब तक आप ओंकारसिंह का चरित्र और यश अत्यन्त निर्मल बना हुआ है। प्रत्येक पद का कार्य इन्होंने अद्-भुत लगन और परिश्रम के साथ किया है और नरेश सेवा में निज सुख या स्वार्थ का कभी ध्यान नहीं रक्खा है। यही कारण है कि ये महाराव उम्मेदसिहजी के परम विश्वासभाजन बने हुये हैं।

रायबहादुर पं० बिश्वम्भरनाथ—मेजर जनरल आप ओंकार-सिंह के साथ ही साथ रायबहादुर पं० विश्वम्भरनाथ मेम्बर महकमा खास नियत हुये थे। ये स्वर्गीय चौबे सर रघुनाथदास के ज्येष्ठ पुत्र हैं। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा एन्ट्रेंस तक कोटे में प्राप्त की और फिर आगरा कॉलेज से एम०ए० पास किया। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् ये यू० पी० में डिप्टी कलक्टर नियत हुये। फिर कोटा राज्य ने इनको

यू०पी० सरकार से माँग कर दरबार का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत किया। सम्वत् १९७८ में ये असिस्टेन्ट दीवान का कार्य करने लगे और १९८० में ये मेम्बर महक्मा खास नियत हुये। इनकी स्वामिभक्ति तथा कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर कोटा नरेश ने इनको ताजीम का सम्मान प्रदान किया और भारत सरकार से इनको रायबहादुर की उपाधि दिलवाई। सम्वत् १९९२ में इन्होंने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र देदिया। अब ये अपना समय तीर्थयात्रा और भगवद् आराधना में व्यतीत करते हैं। अपने स्वर्गीय पिता की भाँति ये भी बड़े धार्मिक और सत्य प्रिय हैं। इनका चरित्र बहुत ऊँचा है और ब्राह्मणोचित आत्मसम्मान इनका विशेष गुण है।

रायबहादुर सरदार कान्हचन्द—पं० विश्वम्भरनाथ के चले जाने पर लगभग एक वर्ष तक उनका स्थान खाली रहा और दोनों मन्त्रियों का कार्य अकेले आप ओंकारसिंह ने किया। मई सन् १९३६ में इस रिक्त स्थान पर रायबहादुर सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई। ये पंजाब प्रान्तान्तर्गत झेलम जिले के निवासी हैं। इन्होंने मेट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास की है और सियालकोट के स्कोटिश मिशन कॉलेज में कुछ मास अध्ययन किया है।

कॉलेज छोड़ने के बाद सरदार कान्हचन्द पंजाब में नायब तहसीलदार बने। कुछ अर्से में ये तहसीलदार नियुक्त हुये। नौ वर्ष तक माल और बन्दोबस्त का कार्य किया। इसी अर्से में काश्मीर और पटियाला राज्य ने इनको पंजाब सरकार से माँग कर अपने यहाँ बन्दोबस्त का असिस्टेन्ट अफसर बनाया। पटियाला राज्य में कर्नल सर फ्रेन्क पोफम यंग की अध्यक्षता में इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक कार्य किया जिसके कारण ये पटिलाया नरेश के विश्वासपात्र बन गये।

सन् १९०९ में सरदार कान्हचन्द वापिस पंजाब सरकार ने

राय बहादुर पं० विश्वम्भरनाथजी, एम० ए०

बुला लिये और एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर नियत किये। थोड़े अर्से बाद ये ग्वालियर राज्य के मालवा प्रान्त के अफसर बन्दोबस्त नियुक्त किये गये। इस राज्य में ये बढ़ते बढ़ते रेवेन्यू मेम्बर का भी कार्य करने लग गये थे। ग्वालियर से ये पुनः पंजाब सरकार ने बुला लिये। इस बार ये डिप्टी कमिश्नर हुये। सन् १९२४ में इन्होंने रिटायर होने के लिये छुट्टी लेकर पटियाला राज्य में रेवेन्यू मिनिस्टर का पद स्वीकार कर लिया।

सन् १९२६ में पंजाब सरकार की नौकरी से और १९२७ में पटियाला राज्य की नौकरी से ये रिटायर हुये। पंजाब सरकार से तो इनको पेन्शन मिली ही, पटियाला नरेश ने भी इनकी निष्ठा और भक्ति से प्रसन्न होकर पेन्शन प्रदान की। इसके बाद इन्होंने सिरमौर राज्य में बन्दोबस्त किया और मन्त्री के पद पर भी कार्य किया।

सन् १९३२ में इनको पटियाला नरेश ने पुनः रेवेन्यू मेम्बर नियुक्त किया। इस पद को छोड़ने के पश्चात् पटियाला नरेश और बीकानेर नरेश की अनुमति से सन् १९३६ में सरदार कान्हचन्द कोटा राज्य के राजमन्त्री नियुक्त हुये।

भारत सरकार और कोटा राज्य—महाराव उम्मेदसिंहजी के उन्नतिशील तथा शान्तिमय शासन से प्रत्येक वायसराय और अन्य पोलिटिकल अफसर सदैव प्रसन्न रहे हैं। जो वायसराय कोटे में आया वही यहाँ की शासन व्यवस्था को देख कर मुग्ध हुआ। जितने ए०जी०जी० हुये सबने महाराव उम्मेदसिंहजी की कीर्ति का गान किया है। सब पोलिटिकल एजेण्टों ने कोटा राज्य के शासन को सम्मान की दृष्टि से देखा और सब ने इस राज्य के मन्त्रियों के साथ सहयोग किया।

लार्ड कर्जन—सम्वत् १९५८ में (६ नवम्बर १९०२) लार्ड कर्जन कोटे आया। यह पहिला वायसराय था जिसने इस राज्य का दौरा किया। इस समय रेलगाड़ी केवल बाराँ तक थी। अतः इसको बाराँ से कोटे तक घोड़ा गाड़ी पर आना पड़ा। परस्पर मुलाकात के बाद महाराव साहब ने वायसराय को दावत दी जिसके लिये धन्यवाद देते हुये लार्ड कर्जन ने अपने व्याख्यान में कहा कि "मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरा राजपूताने का दौरा ऐसी रियासत से आरम्भ हुआ है जिसके युवक शासक के कार्य का इतिहास इतना सुन्दर है। ६ वर्ष पूर्व जब महाराव साहब बिल्कुल युवक थे तो इनको शासन के अधिकार मिले थे। तब से अब तक ये निरन्तर उन्नति कर रहे हैं। सन् १८९९ में झालावाड़ राज्य का बटवारा होजाने से इनका राज्य बढ़ गया है। सन् १९०० में मैंने ही इनको के. सी. एस. आई. की उपाधि भेंट की थी। इस वर्ष जनवरी में मैंने इनको कलकत्ते में चीफ़्स कॉलेज सम्बन्धी सभा में सम्मिलित होने के लिये बुलाया था। दरबार मेओ कॉलेज के पुराने भक्त हैं अतः इन्होंने हमको उपयोगी सलाह दी और अच्छी बातें बतलाईं। यह बिल्कुल सच है जैसा कि महाराव साहब ने कहा है कि गत वर्ष के दुर्भिक्ष से कोटा को महान् क्षति हुई है और इसीलिये रियासत पर कुछ अर्से से ऋण होगया है। यद्यपि दरबार ने इस विषय में कुछ नहीं कहा है, परन्तु अपना निजी खर्च कम करके तथा दूसरी मदों का खर्च स्थगित करके उन्होंने सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है। पुराने और डूबते हुये सिक्के को इन्होंने बदल दिया है और अभी हाल ही इन्होंने कहा है कि बाराँ, अजमेर, मारवाड़ रेलवे के आगमन की ये उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि मैं ऐसी रियासत में आया जहाँ का पुराना इतिहास

इतना अच्छा है और जिसका शासन ऐसे सुयोग्य और देश भक्त राजा के हाथ में है"। लार्ड कर्जन कोटे में चार दिन ठहरा। वायसराय की मुलाकात का प्रबन्ध करने का कोटा राज्य की पुलिस के लिये यह प्रथम अवसर था। तो भी सब व्यवस्था बड़ी उत्तम रही। लार्ड कर्जन ने कोटा नरेश से इच्छा प्रकट की थी कि कुँवर ओंकारसिंह पलायथा को जोधपुर तक साथ भेजदिया जावे। अतः वे जोधपुर तक साथ गये[1]।

लार्ड लिटन—सम्वत् १९८१ (जौलाई सन् १९२५) में लार्ड लिटन अवसरप्राप्त वायसराय कोटे आया। परस्पर मुलाकात के बाद उसने भीम केडिट कोर और हरबर्ट कॉलेज को देखा। उम्मेद भवन पर उसको दावत दी गई। जिसमें महाराव साहब का भाषण हुआ। उनको धन्यवाद देते हुये लार्ड लिटन ने कहा कि मैं कोटे में इसलिये आया हूँ कि मैंने सुना था कि यहाँ के शासक बड़े बुद्धिमान, दयालु और प्रजाहितैषी हैं। मैं उनसे परिचय प्रात करना चाहता था और सम्भवतः उनकी मित्रता भी। इस विषय में मुझे निराशा नहीं हुई है और यद्यपि मैं यहाँ थोड़ी ही देर ठहर सका हूँ तो भी इस अर्से में मैंने देख लिया है कि जो कुछ मुझ से कहा गया था वह बहुत बहुत सत्य है। अपने शासक की कोटा राज्य की प्रजा बड़ी कृतज्ञ है और उनसे प्रेम करती है। निःस्वार्थ भाव से जन हितचिन्तन में लगे रहने के कारण कोटा नरेश इस प्रेम और कृतज्ञता के पात्र हैं[2]।

लार्ड रीडिङ्ग—सम्वत् १९८२ (मार्च सन् १९२६) में लार्ड रीडिङ्ग कोटे आया। लार्ड कर्जन की भाँति यह वायसराय भी बड़ा नीति निपुण था। इसने ब्रिटिश भारत की चिन्ताजनक राजनैतिक

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५६, पृष्ठ ६–७।
(२) ,, ,, १९८१, ,, ७–११।

स्थिति को बड़ी चतुरता के साथ सँभाला था। इसने भी भीम केडिट कोर और हरबर्ट कॉलेज को देखा। दावत के समय इसने अपने भाषण में कहा था कि "आपका प्रजा प्रेम और जन हितचिन्तन प्रसिद्ध है। आपके राज्य से बाहर रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले मामलों—जैसे नरेन्द्र मण्डल और रईसों के कॉलेजों—पर भी आपका बड़ा ध्यान है। सम्राट् के प्रति जो आपकी भक्ति है, उसके उल्लेख करने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। इसका भाष्य करने की जरूरत नहीं है। महासमर के समय आपने साम्राज्य की भारी सहायता की थी, उल्लेखनीय चन्दा दिया था तथा आत्मोत्सर्ग किया था। आपको जो उपाधियाँ मिली हैं वे इस बात की सूचक हैं कि सम्राट् आपकी व्यक्तिगत सेवाओं का, जो आपने इस रियासत के रईस की हैसियत से की हैं, कितना आदर करते हैं। ऐसी बहुत कम रियासतें हैं जहाँ की सैनिक परम्परायें आपके राज्य से अधिक अच्छी हों। इस राज्य के निवासियों की वीरता का इतिहास फतेहाबाद के रणक्षेत्र में सन् १६५८ से आरम्भ होता है और १७ वीं, १८ वीं, १९ वीं शताब्दियों में निरन्तर जारी रहा है। देवली की सेना से जो आपका सम्बन्ध है, और महासमर के युद्धों में जो आपकी प्रजा ने लड़ाइयाँ लड़ी हैं, इससे इस वीरता का इतिहास २० वीं शताब्दी में भी जागृत होगया है[1]।

लार्ड इर्विन—लार्ड इर्विन भारत का लोकप्रिय वायसराय था। इसके समय में काँग्रेस ने राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये घोर आन्दोलन किया था। अंत में इसने महात्मा गाँधी से समझौता करके राष्ट्रीय सभा की कितनी ही माँगें स्वीकार करली थीं। सम्वत् १९८५

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९८२, पृष्ठ ७।

में (२७ जनवरी सन् १९२९) को यह कोटे आया। परम्परागत शिष्टाचार के अनुकूल वायसराय दरबार से और दरबार वायसराय से मिले। वायसराय ने हरबर्ट कॉलेज, जेल और भीम केडिट कोर देखे। दावत में दरबार के भाषण का उत्तर देते हुये लार्ड इर्विन ने कहा कि "जहाँ मैं गया हूँ वहीं मुझ पर इस बात का प्रभाव पड़ा कि देशी राज्यों के राजा और प्रजा सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में वायसराय का सम्मान और मित्रता के साथ स्वागत करते हैं। लेकिन मेरे ख्याल से जिस व्यापक प्रेम और अनुग्रह से मैं कोटे में घिर गया हूँ, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। इसका कारण ढूँढना कठिन नहीं है। राजा के व्यक्तित्व की उसकी प्रजा पर छाप लग जाती है और यह उनमें प्रतिबिम्बित होने लगता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि दरबार की कोमल और करुण प्रकृति ने उनके प्रजा के हृदयों को कोमल बना दिया है। जनता जानती है कि दरबार उसके दुखों को सुनने के लिये सदा तैयार रहते हैं और उनके निवारण के लिये सदैव उपाय सोचा करते हैं। दरबार जानते हैं कि वर्त्तमान ज्ञान और विज्ञान का जनता की आवश्यकता के लिये कैसे उपयोग किया जाता है। साथ ही ये उन प्राचीन रिवाजों और परम्पराओं की रक्षा की भी चिन्ता करते हैं जो राजपूत और राजपूताने की जादू भरी विशेषतायें हैं। प्रजा प्रेम के प्रमाण की यदि कोई आवश्यकता है तो यह जनता की उस प्रीति और चिन्ता से सिद्ध होता है जो दो वर्ष पूर्व आपकी चिन्ताजनक निमोनियाँ की व्याधि के समय स्वाभाविक रूपेण उमड़ पड़ी थी। आपके राज्य के बाहर नरेन्द्रमण्डल में जहाँ अपने साथी नरेशों को नेक सलाह देने के लिये आप सदैव तत्पर रहते हैं या आपके विस्तृत मित्र मण्डल में जहाँ आप आदर और प्रेम उपार्जित कर चुके हैं, कोटा महाराव के

नाम का बड़ा आदर है; परन्तु चम्बल नदी के तट पर आपका नाम इससे भी अधिक कीर्ति का परिचायक है। इस थोड़े से समय में मैंने उन बहुत सी उपयोगी संस्थाओं को देखा है जो आपने जनता की नैतिक और लौकिक उन्नति को ध्यान में रख कर अपने प्रबन्ध काल में स्थापित की हैं। मुझे विशेष आनन्द भीम केडिट कोर को देख कर हुआ जहाँ मैं कल प्रातःकाल गया था। आपके राज्य की शिक्षा की ताजा रिपोर्टों में मैंने पढ़ा है कि हिन्दी तथा दूसरी परीक्षाओं में तमाम राजपूताने के स्कूलों में आपके राज्य का स्थान बहुत ऊँचा है। कल हरबर्ट कॉलेज को देखने से मैंने आपके राज्य की शिक्षा-संस्थाओं की उत्तमता की जो चर्चा सुनी थी, उसकी पुष्टि होगई है। इस क्षेत्र में आपने बतला दिया है कि आधुनिक जीवन में जो शिक्षा का मार्मिक भाग है, उसको आप खूब समझते हैं"[1]।

मि० मार्टिनडेल की भविष्य वाणी—सम्वत् १९६० (१३ जनवरी १९०३) में मि० मार्टिनडेल कोटा आये और दावत के समय उन्होंने भाषण दिया। उसके बाद कई ए०जी०जी० होचुके हैं। सब ने ही कोटा राज्य के शासन की प्रशंसा की है परन्तु मि० मार्टिनडेल ने अपने भाषण में जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान की बात कही थी, वह इस इतिहास में उद्धृत करने योग्य है। उसने कहा कि "सन् १८८२ में जब मैं प्रथमवार कोटे में पोलिटिकल एजेण्ट बन कर आया तो तालाब के पास का सुन्दर बाग एक झील के रूप में था जो न देखने में अच्छी लगती थी और न स्वास्थ्यकर थी, और न उसका पानी निकलता था। तमाम राज्य में केवल एक कच्ची सड़क थी। देवली से कोटे तक घोड़े पर या पालकी में आना

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९८५, पृष्ट ५–१२।

पड़ता था। न तार था न कोई पुल थी, न कोई बिजली। जो सुन्दर इमारतें अब राजधानी के चारों ओर खड़ी हुई हैं, उनमें से किसी का अस्तित्व भी नहीं था। तत्कालीन प्राचीन मानवीय चित्र जो उस समय दृष्टिगोचर होते थे, अब सब विलीन होगये हैं। इन्हीं के साथ साथ वह पत्थरों की सूली भी अब दिखाई नहीं देती जो नगर से बाहर ऊँचाई पर खड़ी हुई थी, जो शान्त भूमि की कलंकस्वरूपा थी और उत्पातियों तथा कोटा राज्य की शान्ति को भंग करने वालों के लिये अविचल तथा साकार चेतावनी थी।

पाँच साल में या शायद पाँच साल से भी कम में हमारा विश्वास है कि वे रेल मार्ग अवश्य खुल जावेंगे जिनका दरबार ने अभी जिक्र किया है और जिनके द्वारा कोटा राज्य की स्मृद्धि बढ़ेगी और कोटा राज्य के माल का दूसरे राज्य के माल से विनिमय होसकेगा। हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय कोटा अपनी शानदार नदियों, उपजाऊ विस्तृत खेतों, बेजोड़ चरागाहों, अपनी अद्भुत भौगोलिक स्थिति, और यहाँ से उत्तर को दिल्ली और आगरा, दक्षिण को बम्बई, पूर्व को कलकत्ता, और पश्चिम को कराँची जाती हुई रेलों के कारण व्यापारिक केन्द्र और भारतवर्ष के गल्ले के व्यापार की मुख्य मण्डी बन जायगा। जहाँ पर कुछ समय पूर्व लोगों को फाँसी लगती थी वहाँ पर रेल का बहुत बड़ा जंकशन होगा। नदी के आरपार पुल होगी। दूर दूर से व्यापारी सामान लेकर आवेंगे। दुर्भिक्ष का डर हमेशा के लिये विलीन हो जायगा और शिक्षा जिसकी उन्नति में दरबार इस समय तल्लीन हैं, सब लोगों तक पहुँच जायगी। अपने प्राकृतिक साधनों के बल से कोटा प्रथम श्रेणी के राज्यों का समकक्ष बन जायगा। जनता सम्पन्न, राजभक्त, सन्तुष्ट और सुखी होगी। महाराव उम्मेद-सिंहजी की छत्रछाया में जिनको अगली पुश्तें उम्मेदसिंह महान् के

नाम से स्मरण करेंगी, हाडाओं का केसरिया झण्डा सब पर फहरावेगा[1]।

कर्नल बेनरमेन के बिचार—कौन्सिल के दिनों में तो कोटा राज्य का सर्वोच्च उत्तरदायी शासक पोलिटिकल एजेण्ट था ही। महाराव उम्मेदसिंहजी को शासन संचालन के पूर्ण अधिकार प्राप्त होने पर भी पोलिटिकल एजेण्ट से शासनकार्य में परामर्श किया जाता था। आरम्भ में इलाके का दौरा करते समय दरबार पोलिटिकल एजेण्ट को अपने साथ ले जाया करते थे। कभी कभी दीवान और पोलिटिकल एजेण्ट दोनों साथ साथ दौरा करने जाया करते थे। इस अर्से में जो भी पोलिटिकल एजेण्ट आया, उसमें और दरबार में निरन्तर मित्रभाव बना रहा। वास्तव में महाराव उम्मेदसिंहजी ने आरम्भ से ही शासन संचालन ऐसी रुचि, परिश्रम और चिन्ता के साथ करना आरम्भ किया था कि पोलिटिकल एजेण्ट को कभी कुछ कहने का अवसर ही न मिलता था। सब पोलिटिकल एजेण्ट यहाँ के शासन से अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। कई जिनको कोटे में रहने का अधिक अवसर मिला, वे महाराव उम्मेदसिंहजी के मित्र बन गये और कोटे से चले जाने के बाद भी महाराव साहब के मित्र बने रहे। ऐसे लोगों में सर कर्जन वायली, कर्नल हरबर्ट और कर्नल बेनरमेन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अधिक सम्पर्क के कारण कर्नल बेनरमेन ने महाराव उम्मेदसिंहजी को भलीभाँति परख लिया था और वह अनुभव करने लगा था कि भावी राजपूताने में इनको यश प्राप्त होगा। वह सम्वत् १९५९ में पोलिटिकल एजेण्ट बन कर कोटे में आया था और सम्वत् १९६३ तक इस पद पर यहाँ रहा। यहाँ से विदा होते समय जो उसने विचार प्रकट किये, वे उद्धरण के योग्य हैं। उसने दरबार को धन्यवाद दिया और पिछले वर्षों के महाराव उम्मेद-

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६०, पृष्ठ ३।

सिंहजी के शासनकार्य का सिंहावलोकन करते हुये कहा, "मुझे यहाँ आये हुये ४ वर्ष होगये हैं। इस अर्से में मेरे मित्र सुयोग्य और अनुभवी दीवानबहादुर चौबे रघुनाथदास और अन्य कर्त्तव्यरत अफसरों की सहायता से जो उनकी मातहती में काम करते हैं, दरबार ने अनेक सुधार जारी कर दिये हैं। यदि मैं इन सबका सविस्तर वर्णन करूँ तो अत्यधिक समय लगेगा। इसलिये मैं कुछ मुख्य सुधारों का ही उल्लेख करूँगा। कृषि प्रधान देश में माल का महक्मा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसको भलीप्रकार पुनः संगठित किया जारहा है। जमीन को दुबारा नापकर उसकी किस्म बन्दी की जा रही है और लगान दुबारा निश्चित होरहा है। इस काम को मेरे मित्र मि० बटलर बड़ी चतुराई और बुद्धि के साथ कर रहे हैं। जब यह पूरा होजायगा तो मुझे विश्वास है कि इससे राज और प्रजा का बड़ा हित होगा। इसी महक्मे से मिलता जुलता एञ्जिनियरी का और विशेषकर नहर का महक्मा है। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र मि० डेविन को इस बात पर अभिमान होता होगा कि उन्होंने इस महक्मे का इतना अच्छा प्रबन्ध किया है और अनेक कामों के साथ साथ उन्होंने गर्रा में उम्मेद सागर नामक तालाब तैयार किया है जिसमें चालीस करोड़ घनफुट पानी आसकता है। जो अनेक प्राकृतिक नदियों से भरता है और जो निकटवर्ती गाँवों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। कालीसिन्ध और पारवती पर पुलें बन जाने से तथा अनेक सड़कें तैयार होजाने से और कोटा तथा बाराँ के बीच पक्की सड़क बन जाने से रियासत में आने जाने की बड़ी सुविधा होगई है।

पिछले वर्ष जो अनेक ऑपरेशन हुये हैं और जो अनेक लोगों की चिकित्सा की गई है, वे इस बात के प्रमाण हैं कि राज्य में वैज्ञानिक चिकित्सा का प्रबन्ध बढ़ता जाता है। हम सब लोगों को

पता है कि हमारे मित्र मेजर मेकवाट किस अथक परिश्रम, रुचि और सफलता के साथ राजधानी में तथा इलाके में काम करते रहते हैं और पीड़ित मानव समाज के दुख को कम करने में लगे रहते हैं। हैजा, प्लेग और चेचक की रोक में वे हमेशा तल्लीन रहते हैं। इसी प्रकार विक्टोरिया होस्पिटल में भी अनेक ऑपरेशन होचुके हैं और स्त्रियों की चिकित्सा बड़ी होशियारी से की जाती है।

कुछ समय पहिले मेरे मित्र रायबहादुर मु० शिवप्रताप को रायबहादुरी की सनद भेंट करने का जब मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब मैंने जिक्र किया था कि उनकी नियुक्ति से अब तक राज्य में शिक्षा की सन्तोषप्रद उन्नति हुई है। गत चार वर्षों में छः ग्राम पाठशालायें और खुल गई हैं। मैंने अपने दौरे में देखा कि अधिकांश विद्यार्थी महाजनों और अफसरों के पुत्र हैं, परन्तु फिर भी पटेलों तथा सम्पन्न कृषकों के लड़के भी पाठशालाओं में आने लगे हैं। पहिले लोग प्रारम्भिक शिक्षा के विमुख थे किन्तु अब लोग अनुभव करने लगे हैं कि निःशुल्क शिक्षा से लाभ उठाना श्रेयस्कर है।

मेरे मित्र कुँवर ओंकारसिंह पुलिस के महक्मे का प्रबन्ध बड़े परिश्रम और योग्यता के साथ कर रहे हैं। इस महक्मे को पुनः संगठित करने के लिये एक तजवीज जिससे उसमें बहुत उत्तमता आजावेगी, तैयार करली गई है और शीघ्र ही दरबार की सेवा में विचारार्थ तथा आज्ञार्थ पेश की जावेगी।

महसूल की दर दुबारा कायम होगई है। सीमा सम्बन्धी अनेक विवादों का निर्णय होगया। पुराने पैसों के बजाय अँग्रेजी पैसे जारी कर दिये गये हैं। शासन का प्रत्येक अंग निरन्तर उन्नति कर रहा है। रेलमार्ग बड़ी शीघ्रता से बनाये जारहे हैं और आशा है कि इससे कोटा राज्य के आर्थिक साधन परिपुष्ट होंगे। हम में से कुछ लोगों

को उस काल्पनिक चित्र का स्मरण होगा जो सर आर्थर मार्टिनडेल ने कोटे से विदा होते समय खींचा था और कहा था कि कोटा अपनी शानदार नदियों, उपजाऊ और विस्तृत खेतों, बेजोड़ चरागाहों और यहाँ से उत्तर को आगरा और देहली, दक्षिण को बम्बई, पूर्व को कलकत्ता और पश्चिम को कराँची जाने वाली रेलों के कारण बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन जावेगा और भारतवर्ष में मुख्य अनाज की मंडी माना जावेगा। जिन्होंने देखा है कि रेल मार्ग कितनी शीघ्रता से बनाये जारहे हैं, वे समझते होंगे कि यह काल्पनिक चित्र शीघ्र ही वास्तविकता का रूप धारण कर लेगा।

इस आकर्षक राज्य में काम करना बड़ा रोचक है। मुझे यह कहते हुये अभिमान होता है कि दरबार में और मुझ में निरन्तर मित्रता रही है और दरबार ने और उनके दीवान तथा मेरे माननीय मित्र दीवानबहादुर चौबे रघुनाथदास ने मुझ में पूर्ण विश्वास करके मेरा सम्मान किया है। इससे मुझे अपने कार्य में हमेशा प्रसन्नता रही है। मेरे पिछले चार वर्ष बड़े आनन्द में व्यतीत हुये हैं और यहाँ से विदा होते हुये मुझे हार्दिक खेद होरहा है और मैं आशा करता हूँ कि मुझे फिर दुबारा यहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मुझे विश्वास है कि कोटा नरेश महाराव उम्मेदसिंह का नाम अगली पुश्तें न्यायी और नेक उम्मेदसिंह कह कर लिया करेंगी, जो आतिथ्य की आत्मा हैं और उच्च वंशोचित सौजन्य की साकार प्रतिमा हैं। यह राजपूतों का व्यापक गुण है, परन्तु हाड़ा जाति की यह विशेषता है। दरबार ऐसे शासक हैं जो अपनी प्रजा के हित के लिये और राज्य के अभ्युदय के लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं[1]"।

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६३, पृष्ठ ५।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९५९, पृष्ठ १।

एजेन्सी का दफ्तर हटा—सम्वत् १८७४ में कोटा राज्य ने अँग्रेजी सरकार से संधि की थी और उसके एक वर्ष बाद ही यहाँ पर पोलिटिकल एजेण्ट रहने लगा था। तब से सम्वत् १९७९ तक अर्थात् एक शताब्दी तक एजेन्सी का दफ्तर और एजेण्ट का निवास कोटे में बना रहा। सम्वत् १९७९ में एजेण्ट भरतपुर रहने लगा और यहाँ से उसका दफ्तर उठ गया[१]।

विक्टोरिया की हीरक जयन्ती—सम्वत् १९५३ में सम्राज्ञी विक्टोरिया को शासन करते हुये ६० वर्ष होगये थे। अतः सम्पूर्ण साम्राज्य में हीरक जयन्ती के उपलक्ष में बड़ा उत्सव मनाया गया। भारतवर्ष में भी सर्वत्र इसकी बड़ी धूम रही। कोटा राज्य इसमें कैसे पीछे रह सकता था? इस अवसर पर तोपों के ६० फायर हुये। अनेक कैदी जेल से छोड़े गये और निर्धनों को भोजन करवाया गया। २२ जून की रात्रि को राजधानी में और इलाके के मुख्य कस्बों में दीपावली की गई। गढ़ में दरीखाना हुआ और सर्व प्रकार से आनन्द मनाया गया[२]।

विक्टोरिया का देहान्त—सम्वत् १९५७ (जनवरी सन् १९०१) में सम्राज्ञी विक्टोरिया का देहान्त हुआ। यह शोक समाचार दरबार को २३ जनवरी को मिला। खबर मिलते ही राज्य के सब दफ्तर और दुकानें बन्द करदी गईं। उस दिन घड़ियाल नहीं बजे। नक्कारखाना भी बन्द रहा। एक एक मिनट के अन्तर से १०१ तोपें चलीं और तमाम अफसरों ने शोक चिन्ह धारण किये। एक अर्से तक सब प्रकार के उत्सव भी बन्द रक्खे गये। जब यह शोक समाचार जाब्ते में दरबार को मिला तो उस दिन फिर ८१

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९७६, पृष्ठ ३।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९५३, पृष्ठ ६।

तोपें चलाई गईं। महाराणी विक्टोरिया के अन्त्येष्टि संस्कार की पुनः ८१ तोपें चलीं। महाराणी विक्टोरिया ८१ वर्ष की होकर मरी थी। अतः इँग्लैंड के परम्परा के अनुकूल ८१ तोपें चलाई गई थीं[1]।

एडवर्ड सप्तम का राजतिलक—इसके बाद ही सप्तम एडवर्ड सम्राट् बने। उनके सिंहासन पर बैठने के दिन कोटे में १०१ तोप चलाई गईं और इस शुभ अवसर की सूचना राजधानी में तथा इलाके में ढोल के द्वारा घोषित की गई। २ मार्च सन् १९०१ को दरीखाना किया गया जिसमें निम्न लिखित दो घोषणाएँ पोलिटिकल एजेण्ट ने हिन्दी में पढ़ कर सुनाईं।

सर्व शक्तिमान् परमात्मा ने हमारी स्वर्गीय सम्राज्ञी प्रातः स्मरणीय महाराणी विक्टोरिया को दया करके अपनी शरण में बुला लिया है। अतः उनके देहान्त से ग्रेट ब्रिटेन और आयरलेंड के संयुक्त राज्य के ताज पर परम प्रतापी और शक्तिमान् राजकुमार एलबर्ट एडवर्ड का न्यायपूर्वक हक होगया है। इसलिये हम इस राज्य के धार्मिक और लौकिक सरदार, स्वर्गीय महाराणी की परिषद तथा अन्य मुख्य सज्जनों की सहायता से तथा लन्दन नगर के नागरिक और लॉर्ड मेअर एलडर मेन के सहयोग से एक स्वर से, एक हृदय से घोषित करते हैं कि प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महाराणी के देहान्त से परमोच्च और परम समर्थ राजकुमार एलबर्ट एडवर्ड कानून और हक की रू से एडवर्ड दी सेवन्थ के नाम से हमारे मालिक बन गये हैं और परमात्मा की कृपा से ग्रेट ब्रिटेन और आयरलेंड के संयुक्त राज्य का बादशाह धर्म का रक्षक और भारतवर्ष का सम्राट् बन गया है। हम हार्दिक प्रेम के साथ स्वीकार करते हैं कि श्रृद्धापूर्वक हम निरन्तर उनकी आज्ञा पालन करते रहेंगे। जिस परमात्मा की दया से राजा

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५७, पृष्ठ २।

और राणी राज करते हैं उससे हमारी प्रार्थना है कि शाही राजकुमार एडवर्ड सप्तम बहुत अर्से तक सुखपूर्वक हमारे ऊपर राज्य करते रहें। ईस्वी सन् १९०१ (२३ जनवरी) को सैंजेम्स के दरबार में यह घोषणा कीगई[1]।

बादशाह का उत्तर—"योर रोयल हाइनेस, लाट साहिबान और सज्जनों! यह बड़ा ही दुखदायी समय है कि मुझे आपको ऐसा भाषण देना पड़ा है। मेरा सर्व प्रथम और दुखद कर्त्तव्य आपको यह सूचना देना है कि मेरी प्रिय माता सम्राज्ञी का देहान्त होगया है। मुझे मालूम है कि आप, सम्पूर्ण राष्ट्र और मैं कह सकता हूँ कि सारा संसार हमारी इस क्षति के लिये जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती, कितनी गहराई के साथ सहानुभूति करता है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो भारी भार मेरे कन्धों पर आपड़ा है, उसको वहन करने में मैं सम्राज्ञी के चरण चिन्हों का अनुसरण करूँगा। मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं शब्दशः वैध बादशाह रहूँगा और जब तक मेरे शरीर में साँस है, अपनी प्रजा की भलाई और उन्नति के लिये प्रयत्न करता रहूँगा। मैंने विचार कर लिया है कि मेरा नाम एडवर्ड होगा जिस नाम के मुझसे पहिले मेरे ६ पूर्वज होचुके हैं। ऐसा करते हुये मैं एलबर्ट नाम का मूल्य कम नहीं कर रहा हूँ। यह मुझे अपने पिता से मिला है जिनका सब लोग शोक करते हैं और नेक एलबर्ट के नाम से जिनका स्मरण करते हैं। अतः मैं चाहता हूँ कि उनका नाम अकेला ही चमके। अन्त में मैं पार्लियामेन्ट और राष्ट्र पर विश्वास करता हूँ कि जो कर्त्तव्य मुझे उत्तराधिकार के रूप में मिला है और जिसके पालन करने में मैं अपना अवशिष्ट जीवन और सम्पूर्ण शक्ति लगाना चाहता हूँ, इसको पूरा करने में मुझे सहायता देंगे[2]"।

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५७, पृष्ठ ३।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९५७, पृष्ठ ३।

एडवर्ड सप्तम का भारत में राज्याभिषेक—सम्वत् १९५९ (१ जनवरी सन् १९०२) को एडवर्ड का दिल्ली में राज्याभिषेक उत्सव हुआ। दीवान और कुछ सरदारों के साथ महाराव उम्मेदसिंहजी इसमें सम्मिलित हुये। दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर इनका विधिपूर्वक स्वागत किया गया। उत्सव के प्रत्येक मुख्य कार्य्य में ये सम्मिलित हुये और २० दिन तक दिल्ली ठहर कर वापिस कोटे आये। दिल्ली में ही इनको सूचना मिली कि सम्राट् एडवर्ड ने इनको देवली फौज में ऑनरेरी मेजर का दर्जा प्रदान किया है। कोटे वापिस आकर महाराव उम्मेदसिंहजी ने अपने राज्य में इस अवसर के उपलक्ष में खुशियाँ मनाईं। १०१ तोपें चलीं। १०८ कैदी छोड़े गये। दीनों को भोजन करवाया। पुण्यदान किया। आतिशबाजी चलाई गई और शहर में दीपावली की गई। इस अवसर को चिरस्मरणीय बनाने के लिये सम्वत् १९५६ के अन्त तक जो भूमिकर बाकी था, वह सब छोड़ दिया गया। ऐसी बकाया की रकम लगभग पचास लाख रुपये की थी। २६ जून सन् १९०३ को दिल्ली दरबार के स्मारकस्वरूप सम्राट् की ओर से महाराव उम्मेदसिंहजी को स्वर्णपदक तथा रायबहादुर चौबे रघुनाथदास दीवान, महाराजा माधोसिंह और कुँवर ओंकारसिंह पलायथा को रजत पदक भेंट किये[1]।

एडवर्ड सप्तम के देहान्त पर कोटे में शोक—सम्वत् १९६६ में जब एडवर्ड सप्तम का देहान्त हुआ तो जैसे सम्राज्ञी विक्टोरिया के देहान्त पर शोक मनाया गया था, उसी प्रकार शोक मनाया गया।

जार्ज पञ्चम का राजतिलक दरबार—सम्वत् १९६८ में

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५६, पृष्ठ ७।

(१२ दिसम्बर सन् १९११) दिल्ली में सम्राट् पञ्चम जार्ज का राजतिलक दरबार हुआ। वायसराय ने महाराव उम्मेदसिंहजी को इस अवसर पर दिल्ली आमन्त्रित किया। इसके अनुकूल जब वे दिल्ली पहुँचे तो परम्परा के अनुकूल दिल्ली में उनका स्वागत हुआ[1]। उनके साथ आप गोविन्दसिंह कोयला, राज विजयसिंह कुन्हाड़ी, ठाकुर शिवदानसिंह सारथल, दीवान बहादुर चौबे रघुनाथदास, महाराजा माधोसिंह गैंता, कुँवर ओंकारसिंह पलायथा, रायबहादुर मु० शिवप्रताप प्राइवेट सेक्रेटरी, और पं० पुरुषोत्तम राव सारोला थे। शाही जुलूस में महाराव उम्मेदसिंहजी भी शामिल हुये। साथ में सब राजसी लवाजमा था और चार बग्घियाँ थीं। एक बग्घी में महाराव साहब, लेफ्टिनेन्ट कर्नल बार्कले, कुँवर ओंकारसिंह पलायथा, और आप गोविन्दसिंह कोयला थे। शेष सरदार और दीवान तथा प्राइवेट सेक्रेटरी पीछे की बग्घियों में थे[2]।

सम्राट् से भेंट—८ दिसम्बर को महाराव उम्मेदसिंहजी सम्राट् से मिलने गये और कुछ मिनट बातचीत की। दूसरे दिन बादशाह के प्रतिनिधि रूप से वायसराय महाराव साहब से उनके डेरे पर मिलने आया।

दरबार में सम्मिलित हुये—१२ दिसम्बर को महाराव उम्मेदसिंहजी कर्नल बार्कले और सरदारों तथा अफसरों के साथ दिल्ली दरबार में पहुँचे। रवाना होने से पहिले वायसराय ने अपने हस्तलिखित पत्र द्वारा महाराव साहब को सूचित किया कि सम्राट् ने उनको के०सी०एस०आई० की उपाधि से अलङ्कृत किया है। इससे महाराव साहब को बड़ा सन्तोष और हर्ष हुआ। इसी अवसर पर बादशाह ने

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६८, पृष्ठ २।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६८, पृष्ठ ३।

घोषित किया था कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते से हट कर दिल्ली आवेगी[1]।

कोटा राज्य में उत्सव—इस अवसर पर कोटा राज्य में भी बड़ा हर्ष मनाया गया। यादघर पर एक दरबार लगा जिसमें राज्य के सरदार, जागीरदार, उच्च राजकर्मचारी, साहूकार तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित हुये। जार्ज पञ्चम के चित्र का प्रदर्शन किया गया और जज ने घोषणा पढ़ कर सुनाई। १०१ तोपें चलीं और राज्य के सब दफ्तरों पर रोशनी कीगई। गरीबों को भोजन दिया गया। बहुत से कैदी छोड़े गये और जेल में छुट्टी कीगई। निजामत के कस्बों में भी इसी प्रकार खुशी मनाई गई और विद्यार्थियों को मिठाई बाँटी गई। दिल्ली दरबार के दिन तमाम रियासत के सरकारी दफ्तरों में छुट्टी रही[2]।

सम्राट् को निमन्त्रण—महाराव उम्मेदसिंहजी ने इच्छा प्रकट की कि सम्राट् और सम्राज्ञी उनकी राजधानी में पधार कर उनका गौरव बढ़ावें। ९ अक्टूबर सन् १९११ को वायसराय ने निम्नलिखित पत्र लिखा :—

"मुझे दरबार का खरीता ताः २१ जौलाई १९११ का प्राप्त हुआ है जिसमें आपने लिखा है कि आपकी राजधानी में पधारने के लिये आपका कृपापूर्ण निमन्त्रण मैं सम्राट् और सम्राज्ञी तक पहुँचाऊँ। सम्राट् को खेद है कि वे भारतवर्ष में बहुत थोड़े दिन ठहरेंगे। इसलिये आपके उदार आतिथ्य का लाभ नहीं उठा सकते, परन्तु सम्राज्ञी प्रसन्नता पूर्वक आपके निमन्त्रण को स्वीकार करती हैं और २३ सितम्बर सन्

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६८, पृष्ठ ४–८।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६८, पृष्ठ ९।

१९११ के लगभग आपकी राजधानी में पहुँचने का विचार करती हैं[1]"।

सम्राज्ञी मेरी २४ दिसम्बर को कोटे आईं। बूँदी की सीमा पर महाराव साहब पोलिटिकल एजेण्ट, दीवान तथा सरदारों के साथ स्वागत करने के लिये पहुँचे। सम्राज्ञी कोटे में २८ तारीख तक ठहरीं। इस अर्से में वे महाराजकुमार से मिलीं। बाजार में सवारी निकली। गढ़ में शस्त्रागार देखा, शिकार किया। चम्बल नदी के तट पर एजेण्टी बँगले पर तथा किले पर रोशनी कीगई। विदा होते समय अपना रत्न जटित चित्र उन्होंने महाराव साहब के भेंट किया और दीवान को तथा कुँवर ओंकारसिंह को अपने हस्ताक्षर करके चित्र प्रदान किये। स्टेशन पर गाड़ी में सवार होते हुये सम्राज्ञी ने दरबार से और सरदारों से तथा दीवान और प्राइवेट सेक्रेटरी से हाथ मिलाया[2]।

ट्रान्सवाल युद्ध—गत शताब्दी के अन्त में लगभग १२ वर्ष तक दक्षिण अफ्रीका में अँग्रेजों और 'बोर' (डच) लोगों में युद्ध होता रहा। वहाँ पर डच लोग बहुत अर्से से बसे हुये थे। उनसे अँग्रेजों ने केप ऑफ गुडहोप जो सैनिक और सामुद्रिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अन्तरीप है, खरीदी और फिर अधिकाधिक भूमि प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गये। अफ्रीका के आदिम निवासियों में और बोर लोगों में प्रायः संघर्ष रहा करता था। सन् १८८० में दोनों जातियों में घोर युद्ध आरम्भ हुआ और ऐसा प्रकट होने लगा कि बोर लोग हार जावेंगे और अफ्रीका से निकाल दिये जावेंगे। बोर लोगों का पराजय अँग्रेजों के लिये भी अहितकर सिद्ध होता, अतः अँग्रेजों ने उनको मदद देना चाहा। बोर चाहते थे कि अँग्रेज लड़ाई

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोट सम्वत् १९६८, पृष्ठ १०।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६८, पृष्ठ १०–१२।

में सम्मिलित न हों परन्तु अँग्रेज लोग अपने हित के लिये उनकी सहायता करने पर सन्नद्ध होगये। जब जुलू लोगों ने ट्रान्सवाल प्रान्त पर आक्रमण किया तो अँग्रेजों ने उनको तो हटा दिया परन्तु ट्रान्सवाल अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार अँग्रेजों ने बोर लोगों को उच्छेद से तो बचाया परन्तु उन पर अपना आधिपत्य भी स्थापित करना चाहा। इसको बोर लोग सहन नहीं कर सके। अतः अँग्रेजों में और बोर लोगों में युद्ध छिड़ गया और ट्रान्सवाल प्रान्त समरभूमि बन गया। इसमें अँग्रेजों को बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। एक लड़ाई में अँग्रेज गवर्नर तक मारा गया और उनके अँग्रेज सैनिकों के बध के अतिरिक्त भयंकर आर्थिक क्षति हुई। फिर भी अँग्रेज लोग दुर्दम्य वीरता के साथ लड़ते रहे।

कोटा राज्य ने ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की— ऐसे अवसर पर कोटा दरबार ने सम्राट् को अच्छी आर्थिक सहायता दी और रसद, भार बरदारी के लिये घोड़े तथा अन्य साधन समर्पित करने का भी विचार प्रकट किया। इतना ही नहीं महाराव उम्मेदसिंहजी ने स्वयम् समरभूमि में जाकर अपने वीर पूर्वजों की स्मृति को जागृत करना चाहा। इस विषय में मि० मार्टिन्डेल ए०जी०जी० ने २९ जनवरी सन् १९०० को भाषण देते हुये कहा था कि "किसी राजपूत की स्वामिभक्ति के विषय में और विशेषकर हाड़ा राजपूत की स्वामिभक्ति के विषय में जिनकी कीर्ति विख्यात है, किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि प्रमाण चाहिये तो महाराव साहब ने ट्रान्सवाल युद्ध के फण्ड में बड़ी उदारता के साथ चन्दा देकर और सहायता देने का वचन अभी हाल देकर तथा स्वयम् युद्ध भूमि में जाने की तत्परता दिखाकर यहाँ तक कि राज्य के सम्पूर्ण साधनों द्वारा

साम्राज्य की सहायता करने की उत्सुकता प्रकट करके प्रमाण भी उपस्थित कर दिया है। राजपूताने में इनके राज्य ने अँग्रेज सरकार से सबसे पहिले सन्धि की थी। इनकी कृपा, इनका सौजन्य, इनका आतिथ्य और इनका यश सब को विदित है"।

यूरोपीय महासमर—(सन् १९१४ से १९१८ तक) सन् १९१४ में यूरोपीय महाद्वीप में एक भयंकर उत्पात आरम्भ हुआ जिसने शीघ्र ही संसारव्यापी रूप धारण कर लिया। यह युद्ध आरम्भ में दो यूरोपीय राष्ट्रों में शुरू हुआ था परन्तु थोड़े अर्से में यूरोप महाद्वीप के ही सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं किन्तु संसार के प्रायः सब देश इसमें फँस गये। निरन्तर चार वर्ष तक यूरोप में रणचण्डी का भयंकर नृत्य होता रहा जिसके धक्कों ने सुदूर देशों को भी कम्पायमान कर दिया।

इसके कारण—२० वीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय राष्ट्रों का पारस्परिक वैमनस्य और अविश्वास बहुत बढ़ गया था। प्रत्येक राष्ट्र सर्वाधिकार शक्तिशाली और सम्पन्न बनना चाहता था और अपने पक्के माल को बेचने के लिये क्षेत्र ढूँडने में लगा हुआ था। प्रत्येक राष्ट्र अपने शस्त्रास्त्रों को तथा सैनिक जहाजों को उन्नत और दृढ़ करता था। ऐसे अविश्वास के वायुमण्डल में प्रत्येक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का भय था। अतः आत्मरक्षा के निमित्त यूरोप में कई राष्ट्र संघ बने हुये थे। जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली का एक संघ था, और फ्रांस और रूस का दूसरा। बादशाह एडवर्ड सप्तम की नीति से फ्रांस ब्रिटेन का दोस्त बना हुआ था। सब अनुभव करते थे कि रक्तपात दूर नहीं है और अवश्यम्भावी है। तमाम यूरोप एक प्रकार का बारूदखाना बना हुआ था। केवल चिनगारी की देर थी।

महासमर की चिनगारी—जून सन् १९१४ (सम्वत १९६१)

को यह चिनगारी भी लग गई और बारूदखाना भभक उठा। उस समय आस्ट्रिया का सम्राट् हंगरी का बादशाह था और अन्य कई रियासतों पर राज्य करता था। यूनान, रोमानिया, बलगेरिया और सर्विया ये चारों रियासतें स्वतन्त्र थीं परन्तु रूस को अपना रक्षक मानती थीं। उधर आस्ट्रिया भी इन पर अपना सिक्का जमाना चाहता था। इस नीति का ये चारों रियासतें घोर विरोध करती थीं और आस्ट्रिया के प्रति इनमें द्वेष बढ़ता जाता था। अतः जब आस्ट्रिया का राजकुमार फर्डीनिंड सर्विया की सीमा के पास दौरा कर रहा था तो किसी ने उसकी हत्या कर डाली। आस्ट्रिया ने सर्विया को इस अपराध का उत्तरदायी ठहराया और लिखा कि या तो क्षति पूर्ति की जावे या युद्ध के लिये तैयारी। क्षति पूर्ति के लिये ऐसी माँगें पेश की गईं जिनको कोई भी स्वाभिमानी स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार नहीं कर सकता था। अतः सर्विया ने रूस से रक्षा के लिये याचना की। रूस ने तत्काल सेनासंचालन कर दिया। यह देखते ही जर्मनी रूस और फ्रांस से युद्ध करने के लिये तैयार होगया। फ्रांस की पूर्वी सीमा सुदृढ़ और सुरक्षित थी अतः जर्मनी ने वेलजियम में होकर फ्रांस पर आक्रमण करना चाहा और बेलजियम के बादशाह से प्रार्थना की कि सेना को बेलजियम राज्य में होकर निकलने दिया जावे। बेलजियम नरेश ने इन्कार किया। इस पर जर्मनी ने बेलजियम पर आक्रमण कर दिया। चिरकाल से बेलजियम उदासीन नीति ग्रहण किये हुये था और यूरोप की शान्ति के लिये प्रमुख राष्ट्र भी इस नीति को हितकर समझते थे। अतः जब जर्मनी ने बेलजियम की उदासीनता पर इस प्रकार अतिक्रमण किया तो बेलजियम की रक्षा के लिये ब्रिटेन जर्मनी के साथ युद्ध करने को विवश होगया। शीघ्र ही इस छोटी सी घटना ने विश्वव्यापी रूप

धारण कर लिया। संसार के प्रत्येक राष्ट्र को इसमें किसी न किसी रूप में सम्मिलित होना पड़ा और अनेक राष्ट्रों के पुरुष ही नहीं बल्कि आबाल वृद्ध सम्पूर्ण जन समुदाय ने इस महासमर में भाग लिया। इसमें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का उपयोग हुआ। नवीन प्रकार के अस्त्र आविष्कृत हुये। अपूर्व विधि से आक्रमण किये गये। आकाश से गोले बरसाये गये। विषैला वायु फैलाया गया। टैंक, क्रूजर आदि भयंकर समर साधन काम में लाये गये। इसके अतिरिक्त अपने पक्ष को प्रबल और शत्रु पक्ष को निर्बल करने के लिये अभूतपूर्व विचित्र विधियों का आश्रय लिया गया।

युयुत्सु पक्ष—जर्मनी और आस्ट्रिया आरम्भ में एक तरफ थे और फ्रांस, रूस, ब्रिटेन, बेलजियम और सर्विया दूसरी ओर। कुछ मास पश्चात् टर्की जर्मनी में मिल गया और दूसरे वर्ष बलगेरिया ने भी उसी का पक्ष ग्रहण कर लिया। उधर इटली ब्रिटेन के साथ होगया और फिर जापान, चीन, मिश्र, रोमानिया, पुर्तगाल और यूनान ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। भारतवर्ष ग्रेटब्रिटेन के अधीन है इसलिये यह ब्रिटेन के साथ रहा ही। आरम्भ में अमेरिका के राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन ने मध्यस्थ बन कर दोनों पक्षों में समझौता करा देना चाहा परन्तु जर्मनी ने समरावेश में अमेरिका के अनेक जहाजों को नष्ट कर डाला जिससे क्रुद्ध होकर अन्त में अमेरिका ने भी सन् १९१७ में ग्रेटब्रिटेन का पक्ष ग्रहण कर लिया। उसी वर्ष रूस में घोर क्रान्ति हुई और वह युद्ध से अलग होगया।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ—बेलजियम को परास्त करके जब जर्मन सेना आगे बढ़ी तो फ्रांस और ब्रिटेन की संयुक्त सेना ने उसको रोकना चाहा परन्तु नहीं रोक सकी और बड़ी चिन्ताजनक स्थिति

उत्पन्न होगई। जर्मन सेना का आयोजन था कि फ्रान्स की राजधानी पेरिस को घेर लिया जावे परन्तु अकस्मात् जर्मन लोग घबरा गये और उन्होंने अपना आयोजन बदल दिया। राजधानी से कुछ दूर हट कर एक नदी के किनारे वे लोग युद्ध करने लगे। उधर रूस ने जर्मनी और आस्ट्रिया हंगरी पर आक्रमण किया और कई जगह उनको हराया परन्तु टेनिनवर्ग के युद्ध में जर्मनी ने उसको बहुत बुरी तरह परास्त किया।

जर्मनी केले बन्दरगाह को छीन कर इंग्लेंड और फ्रान्स को अलग करना चाहता था। इसलिये उधर की ओर तीन वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा। वार्डून, ईप्रसे और सोम के युद्ध उभय पक्ष के साहस, वीरत्व और आत्मोत्सर्ग के लिये संसार के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। तीन वर्ष तक निरन्तर युद्ध होता रहा परन्तु दोनों पक्षों में से किसी ने घुटने नहीं टिकाये।

पूर्वी यूरोप में युद्धक्षेत्र अधिक विस्तृत था। बाल्टिक समुद्र, पोलेण्ड, कारपेथियन पर्वत और पूर्वी हंगरी के मैदान सब समर भूमि बने हुये थे। कितने ही स्थानों पर रूस ने जर्मन पक्ष को खदेड़ा परन्तु सफलता कहीं नहीं हुई। फिर भी जर्मनी और आस्ट्रिया चारों ओर शत्रुओं से घिर गये थे और ऐसा प्रतीत होता था कि शीघ्र ही पराजय स्वीकार कर लेंगे परन्तु जब टर्की उनसे मिल गया तो उनको साँस लेने का मौका मिला। टर्की ने रूसियों से कॉकेशश पर्वत पर और अँग्रेजों से स्वेज नहर पर बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी परन्तु दोनों जगह टर्की हारा। फिर ग्रेट ब्रिटेन ने पहिले दरे दानियाल और फिर कुस्तुन्तुनियाँ को छीनना चाहा परन्तु सफलता नहीं हुई। तत्पश्चात् मेसोपोटेमिया में भी ग्रेट ब्रिटेन ने घोर युद्ध किया परन्तु अँग्रेजी सेना को आत्मसमर्पण करना पड़ा। अन्त में बगदाद नगर पर अँग्रेजों का

अधिकार होगया और सब देश जीत लिया गया। मिश्र से फिलस्तीन पर भी आक्रमण किया। अक्टूबर सन् १९१७ को आस्ट्रिया से लड़ते हुये केयोटेटों में इटली का बड़ा पराजय हुआ और अँग्रेजी तथा फ्रान्सीसी सेनाओं ने उसे बचाया।

इस प्रकार अप्रेल सन् १९१७ तक लड़ाई होती रही। उसी मास में अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उधर रूस में राजक्रान्ति हुई और बोलशेविक शासन स्थापित हुआ। इन दो घटनाओं से महासमर का स्वरूप और का और ही होगया। इसके अतिरिक्त जर्मनी में आन्तरिक कलह उत्पन्न होने लगा। सैनिक परिवार तथा कृषक और श्रमजीवी लोग इस निरन्तर युद्ध से ऊब गये और उसके पक्षकारों को जिम्मेवार ठहराने लगे। जर्मनी के नाविकों ने बगावत कर दी। देश में क्रान्ति होगई और जर्मन सम्राट् देश छोड़ भागा। जर्मन नेताओं ने संधि के लिये प्रार्थना की जो नोम्बर सन् १९१८ को विजयी पक्ष ने स्वीकार कर ली।

महासमर और ब्रिटेन—जब युद्ध आरम्भ हुआ तो ब्रिटेन के पास बहुत कम सेना तैयार थी। अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की भाँति इस देश में सैनिक सेवा अनिवार्य नहीं थी अतः एक विषम स्थिति को पार करना था। युद्ध की घोषणा लिबरल (उदार) मण्डल ने की थी परन्तु शीघ्र ही सब पक्षों ने यह अनुभव कर लिया कि संकट के समय सब घरेलू मतभेद भूल जाना चाहिये। अतः सर्वदल सरकार स्थापित की गई। सन् १९१६ तक मि० एसक्विथ और तत्पश्चात् मि० लॉयड जार्ज प्रधान मन्त्री रहे। लार्ड किचनर युद्ध सचिव नियत हुआ। उसके नेतृत्व में आवेश के साथ लोग सेना में भर्ती होने लगे।

भारतवर्ष से सहायता—इस समय भारतवर्ष ने आठ लाख सैनिक साम्राज्य की सहायता के लिये भेजे और लगभग चार लाख

नवयुवकों ने युद्ध स्थलों में दूसरा काम किया। देश ने असंख्य धन से सहायता की। भारतीय सैनिक सर्वत्र लड़ने में सब से आगे रहे और अनेकानेक घोर कष्ट झेले। सम्पूर्ण भारतीय नरेशों ने तन, मन, धन से साम्राज्य की सहायता की। कई स्वयम् युद्धस्थल में गये। सब ने अपनी शक्ति से अधिक आर्थिक और सैनिक सहायता दी। इस बात को सब ने स्वीकार किया था कि साम्राज्य की विजय प्राप्ति में भारतवर्ष का और भारतीय नरेशों का बहुत बड़ा हाथ है।

कोटा नरेश द्वारा सहायता—महासमर के आरम्भ से अन्त तक कोटा नरेश साम्राज्य की रक्षा के लिये अपनी शक्ति से अधिक सहायता देते रहे। सम्वत् १९७४ (अप्रैल १९१७) में जब भारत सरकार ने युद्ध ऋण की घोषणा की तो महाराव उम्मेद-सिंहजी ने पाँच लाख और राजमहिलाओं ने एक लाख रुपये दिये। कोटा राज्य की जनता से भी रुपया इकट्ठा करने के लिये जागीरदार और उच्च राजकर्मचारियों की एक समिति बनाई गई जिसने तीन लाख के लगभग रुपया एकत्र किया। इस प्रकार कोटा राज्य ने लगभग नौ लाख रुपये सहायतार्थ दिये। इससे पूर्व भारतीय रिलीफ फण्ड में तथा युद्ध फण्ड आदि में सवा दो लाख से ऊपर रुपया दिया जा चुका था। वायुयान फण्ड और मशीनगन फण्ड, देवली की फौज तथा अन्य फण्डों में भी महाराव उम्मेदसिंहजी ने बहुत रुपया दिया था। जब दूसरे युद्ध ऋण की घोषणा हुई तो कोटा नरेश और उनकी प्रजा ने लगभग तीन लाख रुपये दिये। इसके सिवाय 'अवरडे' और 'रेडक्रॉस' फण्ड आदि में भी ६०,००० के करीब रुपया दिया गया था। सम्राज्ञी मेरी के जन्म दिन पर एक लाख रुपया अलग दिया गया था। एवम् सब मिलकर कोटा नरेश ने साढ़े पन्द्रह लाख के लगभग रुपया दिया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वयं अपने सरदारों के साथ युद्ध भूमि

में जाने की इच्छा प्रकट की थी[1]।

सन्धि परिषद में महाराजा बीकानेर—जर्मनी के हारजाने और आत्मसमर्पण करने के बाद सन्धि की शर्तें तय करने के लिये फ्रान्स की राजधानी पेरिस के पास फ्रान्स के भूतपूर्व शाही महल वर्सेल्ज में सम्पूर्ण विजयी और पराजित राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक परिषद हुई जिसमें सम्मिलित होने के लिये भारत सरकार ने ब्रिटिश भारत के और देशी राज्यों के प्रतिनिधि नियत किये। रियासतों की ओर से बीकानेर नरेश भारत सरकार ने प्रतिनिधि बनाकर इस परिषद में भेजे थे। यह भारतीय नरेशों के लिये बड़े गौरव की बात थी। कोटा नरेश को इससे विशेष हर्ष हुआ क्योंकि बीकानेर नरेश के साथ पहिले से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। वर्सेल्ज की सन्धि के अनुकूल जर्मनी को निःशस्त्र कर दिया गया, उससे भारी जुरमाना वसूल करने का आयोजन हुआ और एलसेस तथा लोरेन प्रान्त जो उसने गत शताब्दी में फ्रान्स से छीन लिये थे, वापिस फ्रान्स को दिला दिये गये।

राष्ट्र संघ की स्थापना और इससे कोटा राज्य को क्षति—वर्सेल्ज की सन्धि ने अमेरिका के राष्ट्रपति बुड्रो विल्सन की प्रेरणा से राष्ट्र संघ को जन्म दिया। इसमें संसार के सब राष्ट्र सम्मिलित हुये, परन्तु कुछ मतभेद के कारण इस विचार का प्रेरक अमेरिका देश इसका सदस्य नहीं बना। इस संघ के उद्देश्य निश्चित हुये– युद्ध के बिना विश्व शान्ति की रक्षा करना और अन्य प्रकार से संसार की संस्कृति, विद्या और स्वास्थ्य को उन्नत बनाना। इनके अन्तर्गत एक

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७२, पृष्ठ ४३–४४।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९७३, पृष्ठ ३०–३१।
iii उपरोक्त, सम्वत् १९७४, पृष्ठ ११५–११६।

उद्देश्य यह भी था कि मादक पदार्थों का उपयोग कम किया जावे और इसकी पूर्ति के लिये इनकी उत्पत्ति को नियंत्रित किया जावे। इसके अनुकूल भारत सरकार ने अफीम की खेती को कम करना शुरू किया। इसका प्रभाव भारतवर्ष में सबसे अधिक कोटा राज्य पर पड़ा। इस राज्य के कृषकों को अफीम की खेती से बड़ी आमदनी हुआ करती थी और एक समय था जब यहाँ का कृषक मण्डल अफीम की आमदनी के कारण बहुत सुखी और सम्पन्न था। सम्वत् १८७४ (सन् १८१७) की संधि के बाद कम्पनी की परराष्ट्र नीति का शनैः शनैः कोटा राज्य पर प्रभाव पड़ने लगा। १९ वीं शताब्दी के चीन युद्धों के कारण भारत सरकार ने अफीम की तिजारत कम करने के लिये अफीम की खेती को सीमित करना प्रारम्भ किया एवम् कोटा राज्य की अफीम के निर्यात पर भी प्रतिबन्ध लगने लगे; यहाँ तक कि अफीम की दर और बरामद पर भारत सरकार ने पूरा अधिकार स्थापित कर लिया। फिर भी अफीम की खेती कोटा राज्य में होती रही। पहिले से कम अवश्य होगई थी परन्तु फिरभी कई इलाकों में अफीम की आमदनी कृषकों की मुख्य आमदनी थी। राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् अफीम की खेती पर और अधिक प्रतिबन्ध लगने लगे। और गत बीस वर्षों में अब इसकी खेती घटते घटते केवल नाम मात्र की रह गई है। इससे राज्य और प्रजा दोनों को घोर आर्थिक क्षति हुई है। राज्य के सामने प्रश्न है कि इसको किस प्रकार पूरा किया जावे और कृषकों के लिये विकट समस्या है कि अफीम के स्थान पर अब क्या चीज बोई जावे ?

समर-समाप्ति पर कोटा राज्य में उत्सव—जून सन् १९१९ में जर्मनी ने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। महासमर के सफल अन्त पर ब्रिटिश साम्राज्य में हर्षोल्लास उमड़ पड़ा और सर्वत्र बड़ा उत्सव

मनाया गया। कोटा राज्य में भी एक बृहत् उत्सव का आयोजन किया गया। इस कार्य के लिये जागीरदारों की और उच्चकर्मचारियों की एक समिति संगठित की गई। सब विद्यार्थियों को मिठाई बाँटी गई; मन्दिरों में, और गिर्जाघरों में ईश्वर के प्रति धन्यवाद दिया गया, शहर में फौज की सवारी निकाली गई। गरीबों को वस्त्र और भोजन दिया गया और अनेक प्रकार के खेल कूद हुये[1]।

कोटा राज्य में श्लेष्म ज्वर और प्लेग—चार वर्ष के निरन्तर और घोर रक्तपात के बाद कुछ राष्ट्र विजयी और कुछ पराजित हुये परन्तु महासमर के दुष्परिणाम विजयी और पराजित दोनों प्रकार के राष्ट्रों को ही नहीं बल्कि समस्त विश्व को अनुभव करने पड़े। यूरोप के समस्त देशों में बीमारी फैली और लाखों लोग उसके भेंट होगये। रूस में घोर दुर्भिक्ष का कई वर्ष तक अकाण्ड ताण्डव होता रहा। भारतवर्ष युद्ध क्षेत्रों से बहुत दूर था तो भी उसके कुफलों से नहीं बच सका। यहाँ भी प्रायः प्रत्येक नगर और गाँव में श्लेष्म ज्वर अथवा इन्फ्लुएन्जा फैला और लाखों मनुष्य स्वाहा होगये। कोटा राज्य में भी इसका घोर प्रकोप हुआ। राजधानी में तथा इलाके के प्रत्येक गाँव में इसका अर्से तक बड़ा जोर रहा। इसी प्रकार प्लेग से भी कोटा राज्य का कोई भाग नहीं बचा। इसकी रोक और चिकित्सा के लिये राज ने भरसक प्रयत्न किया परन्तु तो भी हजारों लोग मृत्यु के ग्रास बन गये।

भारतवर्ष में राजनैतिक अशान्ति—अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार से तथा विचार विनिमय के साधनों की वृद्धि से गत शताब्दी के अन्त में भारतीय लोग अपनी पराधीनता को अनुभव करने लगे और अधिकार प्राप्ति के लिये आन्दोलन की चर्चायें होने लगीं। इस वाता-

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७६, पृष्ट २–३।

वरण में राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण हुआ और राष्ट्रीय शिक्षा का संगठन हुआ। आर्य समाज, ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने नवीन जीवन का संचार किया। देश की राजनैतिक आकांक्षाओं को व्यवस्थित और संगठित रूप में सरकार के सामने उपस्थित करने के निमित्त इण्डियन नेशनल काँग्रेस (राष्ट्रीय सभा) का जन्म हुआ। फिर राजनैतिक क्षेत्र में एक ऐसा दल खड़ा होगया जिसको राष्ट्रीय सभा की वैध प्रणाली सन्तुष्ट नहीं रख सकी। इस प्रकार राजनैतिक आन्दोलन अधिकाधिक उग्र होता गया। सन् १९०८ (सम्वत् १९६५) में भारतीय सरकार ने बंग देश को दो भागों में विभक्त कर दिया जिससे उस प्रान्त में राजनैतिक असन्तोष की ज्वाला और भी अधिक भभक उठी। सौभाग्य से सन् १९११ (सम्वत् १९६८) के दिल्ली दरबार में सम्राट् ने स्वयं घोषणा की कि बंग देश को विभक्त नहीं किया जावेगा।

सन् १९१९ के भारतीय शासन सुधार—भारत निवासियों की राजनैतिक आकांक्षायें उत्तरोत्तर बढ़ती रहीं और उनकी प्राप्ति के लिये आन्दोलन भी अधिकाधिक प्रबल और संगठित होने लगा। यूरोपीय महासमर के समय यह आन्दोलन और पुष्ट हुआ और आकांक्षाओं का क्षेत्र विस्तृत होगया। भारतवर्ष ने तन, मन, धन से ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की थी अतः भारतीय नेता आशा करने लगे कि समर-समाप्ति पर भारतवर्ष की राजनैतिक माँगे पूरी की जावेंगी। युद्ध के समय मित्र-मण्डल की ओर से यह बार बार घोषित किया गया था कि यह युद्ध दलित राष्ट्रों के उद्धार और स्वशासन के प्रचार के लिये किया जा रहा है। इन घोषणाओं से भारत के राजनैतिक नेताओं की आशायें और भी बढ़ गई थीं। दुर्भाग्यवश समर समाप्ति के बाद राजनैतिक आन्दोलन का दमन करने के लिये एक

कानून पास किया गया जिसके कारण देश भर में घोर असन्तोष उमड़ पड़ा। महात्मा गांधी ने इसका प्रबल विरोध किया और असहयोग आन्दोलन का संगठन किया। उधर जनता को शान्त करने के लिये पार्लियामेन्ट ने भारतीय सुधार कानून पास किया जिसके अनुकूल ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के कुछ अधिकार बढ़ा दिये गये। इस प्रकार एक तरफ यह नये प्रकार का शासन चलता रहा और दूसरी ओर असहयोग आन्दोलन। कुछ अर्से बाद चोरीचोरा में उत्तेजित जनता ने कुछ पुलिस कर्मचारियों का बध कर डाला जिससे महात्मा गांधी को महान् विषाद हुआ और अपनी भूल को स्वीकार करके उन्होंने असहयोग आन्दोलन का संवरण कर लिया।

नरेन्द्र मण्डल की स्थापना—सन् १९१९ के भारतीय सुधारों के साथ ही सम्राट् पंचम जार्ज की आज्ञा से ड्यूक ऑफ कनॉट ने नरेन्द्र मण्डल (चेम्बर ऑफ प्रिन्सेस) की स्थापना की। इसमें प्रायः सब नरेश सम्मिलित हुये। कोटा नरेश भी इसके सदस्य बन गये। तब से अब तक इसके प्रायः प्रत्येक कार्य में महाराव उम्मेदसिंहजी सम्मिलित होते रहे हैं और संस्था के कार्य संचालन में इनकी सम्मति का बड़ा आदर किया जाता है। आरम्भ में इस संस्था की उपयोगिता का अनुमान नहीं होसका था परन्तु जब भारतीय राष्ट्र संघ (Indian Federation) का प्रश्न देशी नरेशों के सामने उपस्थित हुआ तब अनुभव हुआ कि यह संस्था कितनी उपयोगी है।

भारतीय संघशासन की योजना—सन् १९१९ के भारतीय सुधार में यह बात दर्ज की गई थी कि प्रत्येक दश वर्ष बाद इस बात की तहकीकात की जावेगी कि शासन सुधारों में क्या हेर फेर किया जावे? इसके अनुसार पार्लियामेन्ट ने एक कमीशन आवश्यक

जाँच के लिये भारतवर्ष में भेजा। इसने भारतवर्ष में घूम कर तथा अनेक राजनैतिक दलों से मिलकर पार्लियामेन्ट में अपनी रिपोर्ट पेश की इसके पश्चात् भारत के विभिन्न राजनैतिक दलों के सहयोग से भावी शासन सुधार की योजना तैयार करने के लिये लन्दन में "राउन्ड टेबिल कान्फ्रेन्स" या गोलमेज परिषद की गई। भारतीय राष्ट्रीय सभा ने साइमन कमीशन का और इस परिषद का बहिष्कार किया और महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रबल राजनैतिक आन्दोलन हुआ जिससे सम्पूर्ण देश क्षुब्ध होगया। गोलमेज परिषद में सम्मिलित होने के लिये कई नरेशों को भी पार्लियामेन्ट ने आमन्त्रित किया था। इनमें बीकानेर नरेश प्रमुख थे। इस परिषद में भारतीय नरेशों ने प्रकट किया कि हम भारतीय राष्ट्र संघ में सम्मिलत होने के लिये तैयार हैं।

जब महात्मा गाँधी का आन्दोलन बहुत प्रबल होगया तो लार्ड इरविन ने उनसे समझौता कर लिया जिसके अनुकूल काँग्रेस की कुछ माँगें भारतीय सरकार ने स्वीकर कर लीं और महात्मा गांधी ने काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज परिषद में जाना स्वीकार कर लिया। इस परिषद में भी भारतीय नरेश उपस्थित थे। उन्होंने पुनः प्रकट किया कि अधिकांश रियासतें कुछ आवश्यक शर्तों के साथ संघ विधान में सम्मिलित होने के लिये तैयार हैं। गोलमेज परिषद से वापिस आने पर महात्मा गांधी को कैद करके नये वायसराय लार्ड विलिंगडन ने राष्ट्रीय आन्दोलन का बड़ी दृढ़ता और चतुरता से दमन कर दिया और संघ शासन के आयोजन की बात जारी रखी। तीसरी गोलमेज परिषद के बाद संघ विधान का स्वरूप निश्चित होने लगा और भारतीय नरेशों को इस संघ में सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया।

संघ विधान और कोटा राज्य—साइमन कमीशन के बाद

ही देशी राज्यों की आर्थिक स्थिति आदि की जाँच करने के लिये पार्लियामेन्ट ने बटलर कमेटी नियत की थी। इसने प्रायः सम्पूर्ण राज्यों में दौरा किया और आर्थिक स्थिति की जाँच के साथ साथ सनदों और सन्धियों का भी अध्ययन किया। तदुपरान्त डेविडसन कमेटी नियत हुई जिसने आर्थिक प्रश्नों की और अधिक जाँच की और अपनी रिपोर्ट पेश करते हुये कितने ही कर, खिराज, आदि के विषय में तजवीज पेश की। सन् १९३५ में पार्लियामेन्ट ने गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट पास किया जिसमें दर्ज किया गया कि संघशासन में प्रत्येक देशी राज्य का क्या स्थान होगा, किन किन विषयों का शासन संघ सरकार के सुपुर्द करना पड़ेगा, संघ सभा (Federal Assembly) और राजसभा (Council of State) में उसके कितने सदस्य होंगे और किस हद तक उसका सम्बन्ध सीधा सम्राट् से होगा ? इस विधान में सम्मिलित होने के लिये वायसराय ने कोटा नरेश को भी सलाह दी परन्तु यह प्रकट कर दिया कि सलाह स्वीकार करना या न करना उनकी इच्छा पर निर्भर है। कोटा नरेश ने आवश्यक शर्तों के साथ इस विधान में अपने राज्य को सम्मिलित करना स्वीकार कर लिया है। इसके अनुकूल कोटा राज्य से एक सदस्य संघ सभा में और एक राजसभा में भेजा जा सकेगा।

सन् १८१७ की सन्धि की भाँति यह सन्धि भी यदि हुई तो कोटा राज्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। सन् १८१७ के बाद कोटा राज्य ने नवीन राजनैतिक युग में प्रवेश किया था। क्रमशः उन्नति करते हुये इस युग में कोटा राज्य ने जो उन्नत दशा प्राप्त की, उसका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जावेगा। अब संघविधान में सम्मिलित होकर कोटा राज्य ने दूसरे युग में प्रवेश किया है। इस युग का श्रीगणेश नवीन राजनैतिक विचारों से और आकांक्षाओं से आरम्भ होगा।

कोटा और इन्द्रगढ़—इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन, गैंता, करवाड़, पीपल्दा, फूसोद और आँतरदा—ये कोटरियात ईस्वी १८ वीं शताब्दी सेकोटा राज्य के मातहत हैं। इन्हीं के कारण कोटा और जयपुर में भटवाड़े का युद्ध हुआ था। कोटा राज्य स्वयम् क्षति उठा कर भी लगभग दो सौ वर्ष से इनकी रक्षा कर रहा है। कई बार इन्द्रगढ़ और खातौली आदि कोटरियात के सरदार कोटा नरेश के हुक्म से रियासत के सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में लड़े हैं। इन्द्रगढ़ और उसके मातहत ठिकानों में जब कभी कलह हुआ है तो कोटा दरबार ने फैसला किया है। कोटरियात के परस्पर सीमा सम्बन्धी विवादों का निर्णय भी कोटा राज्य ही करता रहा है। सम्वत् १९६२ में इन्द्रगढ़ के महाराजा ने यह दावा पेश किया कि इन्द्रगढ़ कोटे का मातहत नहीं है। अतः भारत सरकार इस कोटड़ी से अपना सीधा सम्बन्ध स्वीकार करे। यह मामला जब ए०जी०जी० के सामने पेश हुआ तो उन्होंने निर्णय किया कि सन् १८१७ से भारत सरकार और पोलिटिकल विभाग निरन्तर रूप से इस कोटरी को कोटा राज्य का अभिन्न अंग मानते रहे हैं और जब कभी कोटरियात के सरदारों ने स्वाधीनता का दावा पेश किया है तो उसको नहीं माना गया है। मिस्टर कोल्विन ए०जी०जी० ने अपने निर्णय में लिखा था कि इन्द्रगढ़ महाराजा का दावा निराधार है[1]। दूसरे वर्ष अर्थात् सम्वत् १९६३ में इन्द्रगढ़ के महाराजा कोटा आये और दरबार से निवेदन किया कि उनके अधिकार स्पष्ट कर दिये जावें और पारस्परिक भेंट का शिष्टाचार निश्चित कर दिया जावे। ये विषय बहुत अर्से से अनिश्चित थे और इन्हीं के कारण महाराजा इन्द्रगढ़ असन्तुष्ट थे। दरबार ने विचार करके महाराजा इन्द्रगढ़ को शासन के काफी अधिकार प्रदान कर

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत १९७२, पृष्ट २।

दिये जिससे वे सन्तुष्ट होगये और दरबार को भी प्रसन्नता हुई[1]।

बूँदी से सीमा सम्बन्धी विवाद—एक अर्से से बूँदी और कोटा में सीमा सम्बन्धी मतभेद चला आता था। बूँदी का दावा था कि जहाँ बूँदी राज्य चम्बल नदी के तट को स्पर्श करता है, उस जगह कोटा राज्य की नावें नदी में नहीं चल सकतीं। इस विषय की जाँच करने के लिये भारत सरकार ने केप्टिन ए०बी० ड्रमण्ड को स्पेशल बाउण्डरी सेटलमेन्ट ऑफीसर नियत किया। उसने कोटा राज्य के हक में रिपोर्ट पेश की जिसको ए०जी०जी० ने स्वीकार किया। इस निर्णय के अनुकूल यह मान लिया गया कि कोटा राज्य की नावें चम्बल नदी में चल सकती हैं[2]।

शासन सुधार—महाराव उम्मेदसिंहजी का शासनकाल कोटा राज्य के लिये सुधार और उन्नति का युग है। इनके राजतिलक के समय जो कोटा राज्य की दशा थी, उससे यदि आधुनिक दशा की तुलना की जावे तो कहा जासकता है कि उस समय इस राज्य में मध्यकाल था और अब आधुनिक काल है। राजप्रबन्ध के प्रत्येक अंग में आश्चर्यजनक सुधार होगया है। भूमि-प्रबन्ध योग्य और विशेषज्ञ कर्मचारियों के द्वारा सुव्यवस्थित कर दिया गया है। न्यायविभाग ब्रिटिश भारत की शैली पर संगठित होचुका है। प्रायः वहीं का न्याय विधान कोटा राज्य की अदालतों में प्रचलित है। इसी प्रकार अन्यान्य विभागों की व्यवस्था होचुकी है। इनके राजतिलक के समय शिक्षित लोग गिनती के थे, परन्तु अब प्रायः प्रत्येक गाँव में कई साक्षर लोग मिल सकते हैं। सम्वत् १९५८ में इस राज्य के २०० में ३ लोग लिख पढ़ सकते थे परन्तु सम्वत् १९८८ में विद्या की इतनी उन्नति

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६३, पृष्ठ १।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६२, पृष्ठ ६।

हो चुकी थी कि ३०० में ९ लोग साक्षर थे। इस समय कोटा निवासियों में कितने ही ऐसे हैं जो विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। चिकित्सा विभाग पर प्रति वर्ष काफी धन खर्च किया जाता है। राजधानी में और निजामत के बड़े बड़े कस्बों में सफाई का बड़ा सन्तोषप्रद प्रबन्ध है। सड़कें, नहरें, सरकारी इमारतें, ग्राम पंचायतें, सहकारी सभायें, निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क चिकित्सा, निर्वाचित म्यूनिसिपल कमेटियाँ, राजधानी में बिजली, पानी के नल आदि सब उन्नत शासन के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

भूमि प्रबन्ध—मु० दुर्गाप्रसाद के बन्दोबस्त में अनेक खूबियाँ थीं परन्तु साथ ही कितनी ही त्रुटियाँ भी थीं। बन्दोबस्त हुये भी अब बहुत अर्सा हो चुका था।अतः आवश्यकता थी कि दूसरा बन्दोबस्त करवाया जावे और भूमि प्रबन्ध को आधुनिक ढंग से व्यवस्थित और संगठित किया जावे। अतः सम्वत् १९६० में पंजाब प्रान्त के एक सुयोग्य उच्च राजकर्मचारी मि० (अब सर) मोन्टेग्यू बटलर को प्रान्तीय सरकार से माँगा गया और दूसरे बन्दोबस्त का मोहतमिम् बनाया गया[1]। इसने पाँच वर्ष में राज्य के प्रत्येक इलाके में घूम कर तथा खेतों को स्वयम् देख कर बड़ी योग्यता के साथ बन्दोबस्त किया। इस बन्दोबस्त में पीवत का लगान २॥) से ६॥) रुपये तक नियत हुआ। कोरवान जमीन छः श्रेणियों में विभक्त की गई—सरे, उतार, बरड़ा, मेरघास तीर और खेड़ा। सरे का लगान १=) से १॥।-) तक, उतार का ॥) से १=) तक, बरड़े का ।) से ।=) तक, मेर घास का ।) से ॥) तक, तीर और खेड़े का १॥) से ३) तक नियत किया गया। कुछ पहाड़ी गाँवों में खेड़े का लगान बहुत कम कर दिया गया। कोटा राज्य में जब नया सिक्का जारी हुआ तो कृषकों को पुराने इलाके में १४

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६०, पृष्ठ १।

प्रतिशत और नये अर्थात् झालावाड़ से आये हुये परगने में १८ प्रतिशत अस्थायी रूप से लगान में छूट दीगई थी। परन्तु इस बात को सब जानते थे कि यह छूट हमेशा मिलने वाली नहीं है। मि० बटलर ने अनेक बातों को ध्यान में रख कर यह छूट बन्द करदी परन्तु साथ ही उन करों के विषय में तहकीकात कीगई जो पुराने जमाने से कृषकों के खातों के साथ चले आते थे। इन करों में मापा, धाइजोड़ा, नावाँ लट्ठा तम्बाकू, बाज कलम, सालीना, लवाजमा, कलसाधूमा, छदम्मी, चबीना, हाजिरी कुम्हारान, नजराना खाई, भैंस बराड़ माफ कर दिये गये और छदम्मी कानूँगोई और श्रीजी की दमड़ी ये दोनों कर लगान में सम्मिलित कर दिये गये। इस प्रकार कृषकों को अब केवल भूमि कर ही देना रह गया[1]। इस बन्दोबस्त से पहिले की अपेक्षा लगान में १० प्रतिशत वृद्धि हुई,[2] परन्तु पहिले की अपेक्षा अन्न का भाव अब बहुत मँहगा हो चुका था। सेर बाँट दूसरे जारी हो चुके थे। अच्छी सड़कों और रेल के कारण व्यापार में अनेक सुविधायें होगई थीं। इसलिये इस दश प्रतिशत लगानवृद्धि को कृषकों ने आसानी से सहन कर लिया।

पड़त जमीन आबाद कराई—पड़त जमीन को आबाद करने के लिये मि० बटलर ने तजवीज की कि ऐसी जमीन को बहुत कम लगान पर कृषकों को जोतने दिया जावे। इस तजवीज के स्वीकृत होजाने के कारण हजारों बीघा जमीन आबाद होगई।

राज्य सम्वत्—पहिले राज का सम्वत् अगस्त से जौलाई तक माना जाता था परन्तु मि० बटलर की सलाह से सम्वत् १९६२

(१) फाइनल रिपोर्ट ऑफ दी सेकन्ड सेटलमेन्ट—एम० एस० डी० बटलर, पृष्ट २२—२३।

(२) उपरोक्त पृष्ट २६।

में यह व्यवस्था बदल दी गई और आयन्दा यह सम्वत् प्रथम अक्टूबर से ३० सितम्बर तक माना जाने लगा ।

हिन्दी राजभाषा बनी—मिस्टर बटलर के बन्दोबस्त से पहिले अदालतों का काम उर्दू में हुआ करता था। अदालती हुक्म और फैसले उर्दू में लिखे जाते थे परन्तु छोटे अहलकार सब हाड़ौती भाषा में काम करते थे। इसके अतिरिक्त नाजिम, नायब और इनसे ऊँचे अफसर सब उर्दू में काम करते थे और हिन्दी से अनभिज्ञ थे। हाड़ौती की लिपि आसानी से पढ़ी नहीं जाती थी। यही शैली विशेषकर महक्मा माल में जारी थी। इसलिये माल के अफसर पटवारियों के कागजात का समुचित निरीक्षण नहीं कर सकते थे। इस स्थिति को सुधारने के लिये मि० बटलर ने यह तजवीज की कि राजभाषा नागरी करदी जावे और अफसर तथा अहलकार केवल नागरी का ही व्यवहार करें। दरबार ने इस तजवीज को स्वीकार कर लिया। अतः सब अफसरों को नियत समय के अन्दर हिन्दी पढ़ लेनी पड़ी। मि० बटलर को यह देखकर सन्तोष हुआ होगा कि उनके विदा होने से पहिले ही माल विभाग में हिन्दी जारी हो चुकी थी।

बन्दोबस्त की समाप्ति—मि० बटलर ने बन्दोबस्त का कार्य सम्वत् १९६१ (१३ अक्टूबर १९०४) में आरम्भ किया था और सम्वत् १९६५ में समाप्त किया। काम आरम्भ करते समय भूमि-कर की आय २२,१९,१४४) रुपये थी समाप्ति पर २४,३७,४९४) रुपये होगई। इस बन्दोबस्त में ३,५६,२४९) रुपया खर्च हुआ। दरबार को इस बात पर प्रसन्नता हुई कि मि० बटलर को मोहतमिम् बन्दोबस्त की हैसियत में सी० आई० ई० की उपाधि प्राप्त हुई। यहाँ से मि० बटलर २९ मार्च सन् १९०९ को लाहौर डिप्टी कमिश्नर

बन कर रवाना हुये[1]। अपनी योग्यता के कारण ये निरन्तर उन्नति करते रहे और सर की उपाधि से अलंकृत होकर मध्यप्रान्त के गवर्नर बने। इस समय वे इंगलैंड में Isle of man नामक टापू के गवर्नर हैं। कोटा छोड़ने के बाद भी सर मोन्टेग्यू बटलर कई बार कोटे आ चुके हैं और महाराव उम्मेदसिंहजी के बड़े शुभचिन्तक हैं।

बन्दोबस्त का सुपरिणाम—इस बन्दोबस्त से भूमिकर की सुव्यवस्था और भूमि प्रबन्ध में आसानी तो हो ही गई परन्तु इसके अतिरिक्त पड़त जमीन शनैः शनैः खूब आबाद होने लगी। बन्दोबस्त की समाप्ति के समय सर मोन्टेग्यू बटलर की इस तजवीज की सफलता के विषय में अनुमान करना कठिन था परन्तु कुछ वर्ष बाद ही पता लगने लगा कि उनका आयोजन कितना उत्तम और दूरदर्शिता के साथ सोचा हुआ था। सन् १९०४ (सम्वत् १९६१) में जब बन्दोबस्त आरम्भ हुआ था तो हकत जमीन का क्षेत्रफल १८,६२,०२७ बीघा था, परन्तु सम्वत् १९७७ में इसका क्षेत्रफल २४,३०,८४६ बीघा होगया[2]। सर मोन्टेग्यू बटलर की सर्वोत्तम तजवीज यह थी कि भविष्य में जब कभी कृषि में नुकसान हो तो उसके अनुकूल तत्काल लगान में छूट दी जाया करे। इस तजवीज को दरबार ने उसी समय स्वीकार कर लिया था और अब निरन्तर इसका पालन हो रहा है[3]।

तीसरा बन्दोबस्त—मुन्शी दुर्गाप्रसाद का बन्दोबस्त पहिला था और सर मोन्टेग्यू बटलर का दूसरा। दूसरे बन्दोबस्त की रिपोर्ट में तीसरे बन्दोबस्त के लिये कोई समय निश्चित नहीं किया गया था परन्तु २० वर्ष बाद जमीन और व्यापार की हालत में बहुत परिवर्तन

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६५, पृष्ठ ६।

(२) उपरोक्त, सम्वत् १९७८, पृष्ठ १।

(३) फाइनल रिपोर्ट ऑफ दी सेकिन्ड सेटिलमेन्ट—एम०एस०डी०बटलर, पृष्ठ ३२

होजाने के कारण तीसरा बन्दोबस्त जारी किया[1]। इस समय सर मोन्टेग्यू बटलर मध्यप्रान्त के गवर्नर थे। यह तीसरा वन्दोबस्त उनकी सहायता और परामर्श से मु० खजानसिंह डिप्टी रेवेन्यू कमिश्नर ने किया था[2]। इस बन्दोबस्त में दूसरे बन्दोबस्त की अपेक्षा भूमि कर में ३२॥ प्रतिशत वृद्धि की गई थी परन्तु जनता ने इसको खुशी से बर्दाश्त किया है[3]। यह बन्दोबस्त सम्वत् १९८४ में समाप्त हुआ था।

जमींदारी की प्रथा—सम्वत् १९५६ के भयंकर दुर्भिक्ष के कारण कोटा राज्य की जन संख्या बहुत कम होगई थी। विशेषकर किशनगंज और शाहाबाद की तरफ आबादी बहुत घट गई थी और जो कृषक बचे थे, उनकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। सम्वत् १९५६ के बाद भी कई दुर्भिक्ष पड़े और आबादी घटती ही गई। तब जन संख्या बढ़ाने के लिये तथा पड़त जमीन को आबाद करने के लिये अनेक विधियाँ सोची गईं, उनमें एक यह भी थी कि इन निजामतों के गाँवों में जमींदारी प्रथा जारी करदी जावे। इस तजवीज को उस समय इस आशा से स्वीकार किया गया था कि लोग बाहर से आकर यहाँ बसेंगे और कृषि की उन्नति होगी। पंजाब और संयुक्त प्रान्त के लोगों ने इन निजामतों में लगभग १३० गाँव जमींदारी पर लिये और इसकी अवधि २० साल नियत हुई। जब दूसरा बन्दोबस्त किया गया तो २० वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई थी। अतः जब इन गाँवों का भी बन्दोबस्त करने का आयोजन किया गया तो जमींदार लोग सहमत नहीं हुये। अतः दरबार ने बन्दोबस्त स्थगित कर दिया। तीसरे बन्दोबस्त के समय जमींदारी को २० वर्ष हो

(१) रिपोर्ट बन्दोबस्त सोयम, पृष्ठ ५४।
(२) उपरोक्त, पृष्ठ ११४ और १२४।
(३) ,, ,, ७६।

चुके थे अतः उनका बन्दोबस्त किया गया और जमींदारों के गाँवों का लगान राज्य के सिद्धान्त से निश्चित किया गया।

तीसरे बन्दोबस्त की रिपोर्ट में लिखा है कि जिस अभिप्राय से जमींदारा दिया गया था, वह पूरा नहीं हुआ। जमींदारों ने यू० पी० या पंजाब से कोई कृषक लाकर आबाद नहीं किये और न कृषि में किसी प्रकार की उन्नति की। यदि ये गाँव जमींदारे पर नहीं दिये जाते तो अब तक अधिक उन्नत होजाते। इस प्रथा से राज को और कृषकों को तो हानि हुई ही है, परन्तु जमींदारों ने भी जिनके गाँव नदी के निकट नहीं हैं, विशेष नुकसान उठाया है[1]।

तकावी, बन्दे, कानून आदि—कृषि की उन्नति और कृषकों की रक्षा के लिये प्रति वर्ष नाममात्र ब्याज पर ऋण दिया जाता है जिसको 'तकावी' कहते हैं। यह ऋण कुएँ खुदवाने या सुधारने के लिये, बैल खरीदने के लिये या बीज अथवा खाने का अन्न मोल लेने के लिये दिया जाता है। यह प्रथा कुछ अंश में नवाब फैजअली के समय में ही जारी हो चुकी थी, परन्तु वर्त्तमान शासनकाल में इसका विकास हुआ है। इससे कृषक साहूकारों के भारी ब्याज से बच जाते हैं और कृषि की क्षति नहीं होती[2]। जिन खेतों में पानी के बहाव से जमीन कट कर नाले बनते जाते हैं, उनकी रोक के लिये विशेष प्रबन्ध किया गया है। ऐसे खेतों की रक्षा करने के लिये उचित स्थान पर कच्चे-पक्के बंद बँधवा दिये जाते हैं जिससे नाले पुर जाते हैं और खेत बरबाद नहीं होते। माल विभाग का प्रबन्ध सब प्रकार सुव्यवस्थित हो चुका है। अनेक अंशों में यह आदर्श प्रबन्ध कहा जा सकता है।

---

(१) रिपोर्ट बन्दोबस्त सोयम, पृष्ट ६८ से ७१ तक।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ २४ से २६ तक।

इस विभाग का संचालन लिखित और स्वीकृत कानून के अनुसार होता है जिसका निर्माण सर मोन्टेग्यू बटलर ने किया था। आवश्यकतानुसार अनुभवी विशेषज्ञों की सम्मति से इस कानून में कहीं कहीं परिवर्तन होते रहते हैं।

कृषिसुधार के लिये वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग—बन्दोबस्त से भूमि प्रबन्ध सब भाँति सुव्यवस्थित होजाने पर इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि कृषि कार्य को उन्नत किया जावे और वर्तमान वैज्ञानिक साधनों द्वारा खेती की उपज बढ़ाई जावे तथा यन्त्रों का उपयोग करके मानव श्रम को यथासम्भव कम किया जावे। सम्वत् १९६७ में लाहौर में कृषि प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें उन्नत कृषि साधनों का प्रयोग बतलाया गया था और अधिक उपयोगी बीज खाद आदि का प्रदर्शन किया गया था। साथ ही पशुपालन आदि सम्बन्धी वैज्ञानिक विधियाँ समझाई गई थीं। इन सब बातों को प्रत्यक्ष देख कर व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये कोटा राज्य से स्टेट एञ्जिनियर, दो माल के अफसर, एक जंगलात का अफसर और चार पटेल भेजे गये। इसी प्रकार जब प्रयाग में सम्वत् १९६७ में कृषि प्रदर्शिनी हुई तो चार माल के अफसर और सोलह पटेल उसे देखने के लिये भेजे गये। लाहौर की प्रदर्शिनी में से दो वैज्ञानिक हल, और एक गन्ना पेलने की मशीन तथा एक फसल काटने की मशीन खरीदी गई। ये सब मशीनें प्रयोग, प्रदर्शन और अनुभव के लिये कुन्जेड़ भेजी गईं। यह खेद की बात है कि अशिक्षा और अज्ञान के कारण कृषक जनता ने इन मशीनों से यथोचित लाभ नहीं उठाया।

कृषि-प्रयोग क्षेत्र—इस उद्देश्य से कि वैज्ञानिक साधनों के प्रयोगों को प्रत्यक्ष बार बार देखने से कृषक उन्नत उपायों का उपयोग

कर सकेंगे और प्रयोगों द्वारा विशेषज्ञ स्थानीय विशेषताओं का अध्ययन करके कृषकों को लाभ पहुँचा सकेंगे, बाराँ के पास एक कृषि-प्रयोग क्षेत्र जारी किया गया। १९६ बीघा जमीन इस काम के लिये दीगई। कृषि यन्त्रों से यहाँ खेती होने लगी और निरीक्षण के लिये विशेषज्ञ नियत किये गये। इस खेत में कई प्रकार के बीजों को बोकर देखा गया कि किस प्रकार के बीज कोटा राज्य की भूमि के लिये उपयोगी हैं। कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग कृषकों को समझाया गया[1]। प्रयोग से सिद्ध हुआ कि एक विशेष प्रकार की रूई कोटे की भूमि के लिये विशेष उपयोगी है। गेहूँ की सिंचाई का उचित समय भी प्रयोग से निश्चित किया गया। इस क्षेत्र से यह भी पता लगा कि मुजफ्फर-नगर का गेहूँ कोटे के लिये सबसे अच्छा है[2]। इस प्रयोग क्षेत्र में खर्च अधिक होता था और लाभ कम। कारण यह था कि इसके निरीक्षक भारी वेतन पाने वाले थे और क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य भी प्रयोगों का प्रदर्शन करना था न कि धन कमाना। अस्तु सम्वत् १९६९ में हाकिम माल ने रिपोर्ट की कि इस प्रयोग क्षेत्र से राज्य को तीस हजार रुपयों की हानि उठानी पड़ी है और इसका प्रबन्ध भी अच्छा नहीं है। इसलिये यह प्रयोग क्षेत्र बन्द कर दिया गया[3]।

दुर्भिक्ष के समय सहायता—महाराव उम्मेदसिंहजी के समय में दो भयंकर दुर्भिक्ष पड़े। पहिला सम्वत् १९५६ का और दूसरा सम्वत् १९६२ का। सम्वत् १९५६ में केवल एक बार आषाढ़ मास में भारी वर्षा हुई और फिर वर्ष भर सूखा रहा। इससे सम्पूर्ण राज्य

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोट सम्वत् १९७६, पृष्ठ ११।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९७८, पृष्ठ १६–१७।
(३) उपरोक्त, सम्वत् १९७९, पृष्ठ १७–१८।

में घोर दुष्काल पड़ा, और कई वर्ष तक कृषकों की दयनीय आर्थिक दुर्दशा नहीं सुधर सकी। उस समय कोटा राज्य में १८,३९,६६२ बीघा जमीन कृषि के योग्य थी जिसमें अनावृष्टि के कारण केवल १०,७२,०२४ बीघा जमीन में बीज बोया जा सका। यह भी इस आशा पर बोया गया था कि शरत् काल में वर्षा हो जावेगी और फसल पनप सकेगी। दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हुआ, जिससे उपज केवल नाममात्र की हुई। अन्नाभाव से तथा हैजे से लगभग २४ प्रतिशत जनता काल का ग्रास बन गई। पहिले प्रति वर्गमील में १२६·७ आबादी थी परन्तु सम्वत १९५६ के दुर्भिक्ष के बाद यह घट कर ९६·१ रह गई। तृणाभाव से लाखों पशु मर गये। इस विषम स्थिति में जनता की सहायता करने के लिये तालाब, सड़कें आदि कई काम राज्य में जारी किये गये जिसमें तीन लाख से ऊपर रुपये खर्च हुये। इससे हजारों दुर्भिक्ष पीड़ित लोगों को मजदूरी मिली। इसी वर्ष रेलवे लाइन बनाने का काम तेजी के साथ शुरू किया गया। इससे भी लोगों को दो लाख से ऊपर रुपया मजदूरी में मिला। कृषकों को अन्न दिलाने में और आगामी वर्ष के लिये बैल, बीज और कृषि सम्बन्धी सामान खरीदने के लिये लगभग दो लाख रुपये की नाममात्र ब्याज पर तकावी दीगई। इस प्रकार लगभग सात लाख रुपया उत्पीड़ितों की सहायता में खर्च किया गया। इससे राजकोष को बड़ी क्षति पहुँची। यह आर्थिक समस्या इस बात से और बढ़ गई कि सम्वत् १९५६ में २६,४६,०००) रु० वाजिब भूमिकर में से केवल ११,३३,०००) रुपया वसूल होसका। इस प्रकार लगभग ५६ प्रतिशत भूमिकर वसूल नहीं होसका[1]। कोटा राज्य के

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५६, पृष्ठ ७–८।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९५७, पृष्ठ ४–५।

इतिहास में इस प्रकार उत्पीड़ित जनता की सहायता करने का यह प्रथम अवसर था। इससे पहिले कोटा राज्य की ओर से ऐसे विपत्तिकाल में उचित सहायता पहुँचाने की कोई सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं की जाती थी। सम्वत् १९६२ सम्वत् १९५६ जैसा भयंकर दुर्भिक्ष तो नहीं था परन्तु इस वर्ष भी राज और प्रजा दोनों को भारी क्षति हुई। अनावृष्टि के कारण खेती बहुत कम हुई और केवल साढ़े नौ लाख रुपये भूमिकर के रूप में वसूल होसके। लाखों रुपये की छूट देनी पड़ी और ५९ प्रतिशत से ऊपर भूमिकर बाकी रह गया। दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायतार्थ एक कमेटी बनाई गई और तत्कालीन मोहतमिम बन्दोबस्त सर मोन्टेग्यू बटलर इस कार्य के लिये मुख्य अफसर नियत किये गये। कई जगह तालाब, सड़कों आदि का काम जारी करके लोगों को मजदूरी दीगई। रेलवे लाइनों का काम भी इस वर्ष बहुत चला। इसका प्रबन्ध राज ने किया, जिससे निर्धन लोगों को बड़ी सहायता मिली। बैल, बीज आदि खरीदने के लिये नाममात्र के ब्याज पर कृषकों को तकावी दीगई[1]। सम्वत् १९७५ भी एक प्रकार का दुर्भिक्ष था। इस साल किसी प्रकार की हानि से कृषि को तो विशेष हानि नहीं हुई थी परन्तु अन्न के गहरे निकास के कारण कोटा राज्य में बहुत कम अनाज रह गया था। यहाँ तक कि एक रुपये का पाँच सेर भी अच्छा गेहूँ नहीं मिलता था। इस निकासी से महक्मा जकात को खूब आमदनी हुई थी और कृषकों को भी लाभ था परन्तु और लोगों के लिये यह स्थिति असह्य होगई थी। इसलिये जनता में असन्तोष बढ़ने लगा और एक दिन राजधानी में अन्न की कई गाड़ियाँ तथा दुकानें लुट गईं। लुटेरों में अधिकांश हम्माल, कूँजड़े और इसी प्रकार के छोटे

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६२, पृष्ठ ४–५।

लोग थे। स्थिति को सँभालने में और तत्काल शान्ति स्थापित करने में राज को कोई कठिनता नहीं हुई। लगभग तीन चार घण्टे बाद ही स्थिति काबू में आगई और बलवा करने वाले गिरफ्तार कर लिये गये, परन्तु उच्च कर्मचारियों को अनुभव होगया कि गल्ले को अनियन्त्रित रूपेण निकालते रहने की नीति उचित नहीं है। अतः कई उच्च कर्मचारियों की एक कमेटी बनाई गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि राज्य में जहाँ जहाँ और जिसके पास अन्न हो, उसका पता लगाया जावे और उसको उचित भाव पर बिकवाया जावे। अन्न की निकासी पर भी इतना भारी कर लगा दिया गया कि अनाज को बाहर भेजने में व्यापारियों को कोई लाभ नहीं होता था[1]।

प्रजाहित के कार्य—महाराव उम्मेदसिंहजी के शासनकाल में ऐसे काम बहुत हुये हैं जिनसे प्रजा की उन्नति हुई है। इनमें शिक्षोन्नति, चिकित्सा प्रबन्ध, सहकारी सभायें और बैंक आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

शिक्षा—सम्वत् १९५० से पहिले राजधानी में एक लड़कों का तथा एक लड़कियों का स्कूल था और इलाके में १८ ग्राम पाठशालायें थीं। सम्पूर्ण राज्य में १०८५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे, सब मिल कर ३४ अध्यापक थे और ८७१०) रुपया शिक्षा विभाग पर व्यय होता था[2]। सम्वत् १९५० में मु० शिवप्रताप इस विभाग का अध्यक्ष नियत हुआ और उसने बड़ी लगन से शिक्षा प्रचार करना प्रारम्भ किया। उस समय ग्रामीण पाठशालाओं में हाड़ौती लिपि पढ़ाई जाती

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७५, पृष्ठ ३२–३३।
(२) i " " १९७३, " ६५।
ii बजट सम्वत् १९५०, दफ्तर हिसाब।

थी। राजधानी के स्कूल में भी हिन्दी की क्लासों के साथ साथ हाड़ौती या देशी लिखना सिखाया जाता था। सम्वत् १९५५ में प्रथमवार राज के सब स्कूलों में हिन्दी जारी कीगई। आरम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य हुई परन्तु एक वर्ष बाद ही इसका सुपरिणाम दृष्टिगोचर होने लगा[1]। सम्वत् १९६० में मि० टी० एल० रीड, प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर को कोटा दरबार ने अपने राज्य की शिक्षा प्रणाली का निरीक्षण करने के लिये तथा भविष्य के लिये आयोजन तैयार करने के लिये आमंत्रित किया। उसने कोटा राज्य के प्रायः सब स्कूलों को देख कर तथा स्थानीय परिस्थिति का अध्ययन करके शिक्षा के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट पेश की जो स्वीकार की गई और तब से मि० रीड की बताई हुई शिक्षा शैली से इस राज्य में शिक्षा दी जाने लगी। सम्वत् १९६३ में स्कूलों की तथा विद्यार्थियों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि मु० शिवप्रताप इन सब को अकेले नहीं सँभाल सकते थे अतः उनकी मातहती में शिक्षा संस्थाओं के निरीक्षण के निमित्त दो इन्सपेक्टर नियुक्त हुये। पहिले मु० शिवप्रताप इन्सपेक्टर ऑव स्कूल्स कहलाते थे, अब डायरेक्टर ऑफ स्कूल्स कहलाने लगे। इसी वर्ष यह आवश्यकता अनुभव हुई कि कोटा राज्य के इलाके से तथा निःशुल्क शिक्षा से आकर्षित होकर बाहर से जो विद्यार्थी कोटा के स्कूलों में विद्याध्ययन के लिये आते हैं, उनके लिये छात्रालय खोला जावे। एवम् उस वर्ष एक बोर्डिंग हाउस स्थापित किया गया जो अब उन्नत और परिवर्त्तित होते होते रघुनाथ होस्टल के नाम से कोटा राज्य के भूतपूर्व सुयोग्य दीवान चोबे सर रघुनाथदास के अमर नाम का स्मरण दिलाता है।

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५६, पृष्ट १८।

अँग्रेजी शिक्षा--सम्वत् १९५० से पूर्व केवल राजधानी में ही अँग्रेजी का स्कूल था और इसमें भी केवल मिडिल क्लास तक शिक्षा दी जाती थी। मुं० शिवप्रताप ने अपनी नियुक्ति होते ही सम्वत् १९५१ में नवम कक्षा खोली और सम्वत् १९५३ में सर्व प्रथम कोटा राज्य से एक लड़का प्रयाग विश्वविद्यालय में एन्ट्रेन्स की परीक्षा में सम्मिलित हुआ[1]। सम्वत् १९५१ में राजपूतों के वास्ते एक पृथक् स्कूल स्थापित किया गया जिसका नाम नोबल्स स्कूल रक्खा। इसमें भी हाई स्कूल की भाँति पढ़ाई होने लगी, परन्तु दरबार हाई स्कूल के समान यह उन्नत नहीं हो सका। दरबार हाई स्कूल मुं० शिवप्रताप के तत्त्वावधान में उत्तरोत्तर उन्नत होता गया। उनकी मृत्यु के समय इसमें हाई स्कूल के सब विषय पढ़ाये जाने लग गये थे और राजपूताने के प्रसिद्ध स्कूलों में गिना जाता था। सम्वत् १९६५ तक यह हाई स्कूल कहलाता था। उस वर्ष इसके लिये एक अलग इमारत बनना आरम्भ हुआ जिसका शिलान्यास कर्नल चार्ल्स हरबर्ट, सी. एस. आई. ने तारीख २५ मार्च सन् १९०९ में किया। तब से हाई स्कूल हरबर्ट हाई स्कूल कहलाने लगा। कर्नल चार्ल्स हरबर्ट कोटा राज्य का पोलिटिकल एजेण्ट रह चुका था और महाराव उम्मेदसिंहजी का मित्र था। इसी वर्ष नोबल्स स्कूल भी हरबर्ट हाई स्कूल में सम्मिलित करदिया गया। अनुभव से सिद्ध हुआ था कि जाति विशेष के लिये अलग शिक्षा संस्था हितकर नहीं है[2]। नई इमारत में पहुँचने के बाद यह संस्था और भी उन्नत हुई। मुं० शिवप्रताप ने विज्ञान की प्रयोगशालाओं को सम्पन्न तथा पुस्तकालय को उन्नत करके इस संस्थाको सर्वांग सुन्दर

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५३, पृष्ठ २०।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६५, पृष्ठ २, १३, २१।

बना दिया। सम्वत् १९८० में जब लाला दयाकृष्ण डायरेक्टर थे, दो क्लासें और बढ़ादी गईं और १२ वीं क्लास तक इस संस्था में शिक्षा दी जाने लगी। तब से हरबर्ट हाई स्कूल इन्टर कॉलेज कहलाने लगा।

कस्बा बाराँ का अँग्रेजी मिडल स्कूल भी इसी वर्ष हाई स्कूल बनाया गया[1]।

स्त्री शिक्षा—सम्वत् १९६२ तक स्त्री शिक्षा की कोई सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं थी। राजधानी में एक स्कूल नवाब सर फैजअली ने स्थापित किया था जिसमें एक मुसलमान अध्यापिका थी और प्रायः मुसलमान लड़कियाँ ही पढ़ती थीं। कुछ अर्से के बाद एक हिन्दू अध्यापिका नियुक्त की गई थी परन्तु फिर भी हिन्दू लड़कियाँ काफी संख्या में भर्ती नहीं हुईं। एक स्कूल पुराने शहर में भी खोला गया परन्तु इसमें भी उपस्थिति बहुत कम हुई। अतः सम्वत् १९६२ में दोनों स्कूल बन्द कर दिये गये। बाराँ में भी एक लड़कियों का स्कूल सम्वत् १९५६ से पूर्व खोल दिया गया था परन्तु जनता का स्त्रीशिक्षा के प्रति इतना विरोध था कि इस स्कूल में लड़कियों को अक्षरशिक्षा नहीं दी जासकती थी। केवल चून्दड़ियाँ बाँधना और कपड़े सीना तथा कशीदे का काम सिखाया जाता था। सम्वत् १९६२ में महाराणी जाड़ेचीजी ने स्त्रीशिक्षा के लिये पच्चीस हजार रुपये प्रदान किये जिस से वर्तमान महाराणी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई[2]। परन्तु कई वर्ष तक कोई सुयोग्य मुख्याध्यापिका नहीं मिल सकी। इसलिये स्कूल केवल नाममात्र को चलता रहा इस अभाव की पूर्त्ति के लिये लड़कियों को अध्ययन कार्य सीखने के लिये लखनऊ भेजा गया। लखनऊ से

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९८०, पृष्ठ ५३।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९६२, पृष्ठ १७।

वापिस आने पर इन्हीं में से एक लड़की को मुख्याध्यापिका नियुक्त किया गया और स्कूल की व्यवस्था ठीक होने लगी। सम्वत् १९७३ में मुं० शिवप्रताप का देहान्त होगया। उसके बाद स्कूल की व्यवस्था पुनः बिगड़ने लगी। तब से सम्वत् १९८८ तक ८ या ९ मुख्याध्यापिकायें हुईं परन्तु इस स्थान का सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं हुआ। इस अर्से में देशव्यापी सामाजिक जागृति के फलस्वरूप स्त्रीशिक्षा अधिकाधिक लोकप्रिय होने लगी और कोटा राज्य की जनता भी स्त्रीशिक्षा की उपयोगिता अनुभव करने लगी, और कई कस्बों के निवासियों ने लड़कियों के स्कूल खुलवाने की माँग पेश की। इस समय महाराणी गर्ल्स स्कूल तो हाइ स्कूल बना दिया है इलाके में भी कई जगह लड़कियों के स्कूल खुलगये हैं और प्रति वर्ष अनेक लड़कियाँ मिडिल परीक्षाओं में बैठती हैं[1]।

नार्मल स्कूल—शिक्षा विभाग का शासन सूत्र अपने हाथ में लेते ही मुं० शिवप्रताप ने अनुभव किया था कि कोटा राज्य में आवश्यक योग्यता के अध्यापक नहीं मिलते हैं। अतः योग्य अध्यापक तैयार करने के लिये राजधानी में नार्मल स्कूल स्थापित किया। आरम्भ में इसमें केवल हिन्दी मिडिल तक पढ़ाई होती थी। मिडिल पास करने पर लड़के अध्यापक बना दिये जाते थे। थोड़े अर्से बाद इसको वास्तव में नार्मल ट्रेनिंग स्कूल बना दिया गया। इस समय इस स्कूल में सी.टी. क्लास भी खोल दी गई है।

अन्य स्कूल—राजधानी में एक संस्कृत पाठशाला है जो स्वर्गीय महाराज रणछोड़लालजी ने स्थापित की थी। इस पाठशाला

---

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९८१, पृष्ठ ५१।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९७४, पृष्ठ ५८।

को राज से २००) रु० मासिक आर्थिक सहायता दी जाती है। मुं० शिवप्रताप के समय एक राजकीय संस्कृत पाठशाला भी थी परन्तु उनके देहान्त के पश्चात् वह बन्द कर दी गई। राज्य में कई जगह ईसाइयों के भी छोटे छोटे स्कूल हैं जिनमें पिपलोद का गर्ल्स स्कूल उल्लेखनीय है। हाड़ोती शिक्षा मण्डल नामक एक संस्था ने भी शिक्षा प्रचारार्थ कई स्कूल जारी कर रक्खे हैं जिनको शिक्षा विभाग से आर्थिक सहायता दी जाती है।

मुं० शिवप्रताप का देहान्त—सम्वत् १९७३ में मुं० शिवप्रताप का देहावसान हुआ। उस समय शिक्षा विभाग बहुत उन्नत हो चुका था। उनके समय में शिक्षा पहिले की अपेक्षा दुगुनी होगई थी [1] और वर्तमान् शिक्षा संस्थायें सब उन्नत अवस्था प्राप्त कर चुकी थीं। उस समय ८९ स्कूल थे जिनमें से चार केवल लड़कियों के लिये थे और चार में अँग्रेजी पढ़ाई जाती थी। मुं० शिवप्रताप के बाद हरबर्ट स्कूल के हेड मास्टर डायरेक्टर नियत हुये। इस समय विद्यार्थियों और अध्यापकों की संख्या पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ गई है और शिक्षा की उत्तरोत्तर उन्नति होरही है।

छात्र वृत्तियाँ—मुं० शिवप्रताप ने स्थानीय योग्य विद्यार्थियों को बाहर भेज कर ऐसे विषयों की शिक्षा दिलाने की नीति जारी की थी जो राज्य के लिये उपयोगी हों। इसके अनुसार कई लड़के डाक्टर और एञ्जिनियर बनने के लिये भेजे गये थे। कृषि और बाग का काम सीखने के लिये छात्रवृत्ति दीगई थी [2]। जो लोग इस प्रकार

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत १९६७, पृष्ट २६।

(२) i उपरोक्त, सम्वत १९५८, पृष्ट १३।
ii ,, ,, १९५७ ,, २।
iii ,, ,, १९६५ ,, २१।

शिक्षा प्राप्त करके आते थे उनको रियासत में नौकरियाँ दी जाती थीं। यही नीति अब तक जारी है। अब गरीब और योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने में प्रति वर्ष कई हजार रुपये खर्च किये जाते हैं। इस समय कई विद्यार्थी राज्य से छात्रवृत्ति पाकर बाहर अनेक विषयों की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

परीक्षा परिणाम—परीक्षा परिणामों की उत्तमता के कारण कोटा राज्य का शिक्षाविभाग इस समय राजपूताने में प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के वायसराय लार्ड इरविन ने सम्वत् १९८५ में इस बात पर विशेष सन्तोष प्रगट किया था कि इस राज्य की शिक्षा संस्थाओं के परीक्षाफल बड़े प्रशंसनीय रहा करते हैं[1]।

चिकित्सा विभाग और म्यूनिसिपल बोर्ड—महाराव उम्मेदसिंहजी के राजतिलक के समय इस राज्य में राजधानी तथा कई कस्बों में शफाखाने जारी हो चुके थे। सम्वत् १९५७ तक इलाके के शफाखाने में देशी और अँग्रेजी दोनों प्रकार की दवाइयाँ रक्खी जाती थीं क्योंकि जनता पश्चिमीय चिकित्सा विधि पर विश्वास नहीं करती थी। शनैः शनैः शफाखानों की उपयोगिता जनता समझने लग गई और राज की ओर से नये शफाखाने खुलने लगे। सम्वत् १९५६ में ही पाँच शफाखाने नये खोले गये थे। अब रियासत के प्रत्येक मुख्य गाँव में शफाखाना है, जहाँ गरीब और अमीर सब प्रकार के लोगों की मुफ्त चिकित्सा की जाती है और औषधि भी मुफ्त दी

---

iv एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९६७, पृष्ठ २३।
v ,, ,, ,, १९७०, ,, ३२।
vi ,, ,, ,, १९८३, ,, ५१।
vii ,, ,, ,, १९७४, ,, ४८।
(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९८५, ,, १२।

जाती है। सम्राज्ञी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती पर विक्टोरिया हॉस्पिटल नामक शफाखाना स्त्रियों की चिकित्सा के लिये खोला गया था जिसमें अब दो महिला डाक्टर हैं और कई दाइयाँ। लखनऊ, इन्दौर और आगरा के मेडिकल कालेजों से कोटे के कई विद्यार्थी डाक्टर बन चुके हैं और इस समय भी इन संस्थाओं में यहाँ के कई विद्यार्थी शिक्षा पारहे हैं। चिकित्सा का इतना उत्तम प्रबन्ध है कि प्लेग, हैजा आदि बीमारियों का होना अब कई साल से बन्द है। जनता में स्वास्थ्य सम्बन्धी विचारों का प्रचार करने के लिये तथा लोक सेवा की भावना को जागृत और पुष्ट करने के लिये रेड क्रॉस सोसाइटी भी कोटा राज्य में संगठित कीगई है।

सफाई के लिये म्यूनिसिपल कमेटी कौन्सिल ने स्थापित कर दी थी परन्तु उस समय यह पूर्णरूप से सरकारी महक्मा था। महाराव उम्मेदसिंहजी के शासनकाल में इसके प्रबन्ध में जनता के प्रतिष्ठित लोग सम्मिलित किये जाने लगे। शुरू में ऐसे लोग नामजद किये जाते थे परन्तु फिर निर्वाचित होने लगे। कमेटी का कार्यक्षेत्र भी विस्तृत होने लगा। सम्वत् १९७२ में म्यूनिसिपल कमेटी के लिये नया कानून बनाया गया। इसके अनुकूल म्यूनिसिपल बोर्ड के सदस्य और प्रधान सब निर्वाचित होने लगे। उसी वर्ष बाराँ में भी म्यूनिसिपल बोर्ड स्थापित हुआ[1]। यही सिद्धान्त अब शनैः शनैः अन्य कस्बों में भी लगाया जारहा है और म्यूनिसिपल बोर्ड का कार्यक्षेत्र धीरे धीरे विस्तृत होता जाता है।

सामाजिक सुधार—सामाजिक सुधार के लिये प्रथम प्रयास सम्वत् १९५८ में किया गया था। यह आयोजन किया गया था कि

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७२, पृष्ठ ६०–६१।

जो जातियाँ चोरी आदि करना अपनी जीविका मानती हैं, उनको एक स्थान पर बसाकर सभ्य बनाया जावे और उनमें राजनियम के प्रति आदर उत्पन्न किया जावे। इस कार्य की सफलता के वास्ते जैसे कार्य कर्ताओं की और जिस प्रकार के वायुमण्डल की आवश्यकता हुआ करती है, वे यहाँ पर प्राप्त नहीं थे अतः दुर्भाग्यवश यह तजवीज सफल नहीं हुई[१]। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भाँति कोटा राज्य में पुराने जमाने से बेगार की प्रथा चली आती थी जिससे लोगों को बड़ा कष्ट था। दरबार ने अनुभव किया कि बेगार सामाजिक अन्याय है। अतः सम्वत् १९८० में यह प्रथा बन्द कर दी गई[२]। इसी प्रकार कोटा नरेश का ध्यान बालविवाह की कुप्रथा की ओर गया। वैष्णव मत के प्रभाव से इस राज्य में बहुत छोटे छोटे बच्चों के विवाह होजाया करते थे। सम्वत् १९५७ की मनुष्य गणना रिपोर्ट से पता चला था कि दो वर्ष की लड़कियों की भी शादी होजाया करती थी। नौ वर्ष से कम अवस्था वाली लगभग ग्यारह सौ लड़कियाँ सम्वत् १९५७ में विवाहित थीं जिनमें कितनी ही विधवायें हो चुकी थीं[३]। यही दशा सम्वत् १९६७ तक बनी हुई थी[४]। सम्वत् १९७७ की मनुष्य गणना से प्रकट हुआ कि इस कुरीति का स्वतः सुधार बहुत कठिन है। इस-लिये सम्वत् १९८४ में दरबार ने कानून बना दिया कि बारह वर्ष से पहिले लड़की का और सोलह वर्ष से पहिले लड़के का विवाह करना जुर्म माना जावेगा[५]। आरम्भ में यह कानून कितने ही लोगों

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९५८ पृष्ठ १५।
(२) ,, ,, ,, १९८० ,, ६।
(३) ,, ,, ,, १९५७ ,, २४–२५।
(४) ,, ,, ,, १९६७ ,, ७१।
(५) ,, ,, ,, १९८४ ,, ६।

को अप्रिय मालूम हुआ परन्तु अब अधिकांश लोग इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। साथ ही शिक्षाप्रचार और सुधार-संस्थाओं के प्रयत्न से बालविवाह की कुरीति को जनता अनुभव करने लगी है। प्रचार कार्य के लिये सम्वत् १९८८ में दो उपदेशक नियत किये गये[४]। इनके सुपुर्द यह काम किया गया कि राज्य में भ्रमण करके जनता को सामाजिक और निर्विवाद धार्मिक विषयों पर उपदेश करें और बाल-विवाह आदि कुरीतियों के दुष्परिणामों को समझावें। ऐसे उपदेशों की सफलता उपदेशक के व्यक्तित्त्व पर निर्भर है परन्तु यह प्रयत्न राज्य के लिये बड़ी प्रशंसा की बात है। एक कुरीति यह थी कि प्रायः लोग विधवा स्त्रियों को फुसलाकर, धमका कर या अनुचित दबाव डाल कर अपने धर्म में शामिल कर लिया करते थे जिससे हिन्दू मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ता जाता था और जनता की माँग दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी कि ऐसी स्थिति को कानून द्वारा सुधारा जावे। अतः बिना समझे धर्म बदलना जुर्म करार दिया गया। धर्म परिवर्तन को इस प्रकार कानून द्वारा रोक देने से जनता में बड़ा सन्तोष हुआ।

रेलवे लाइन—सम्वत् १९५६ से पूर्व कोटा राज्य में कोई रेलवे लाइन नहीं थी। उस समय जी०आई०पी० की लाइन गुना तक और बी०बी० एन्ड सी०आई० की लाइन एक तरफ नागदा और दूसरी तरफ मथुरा तक थी। सम्वत् १९५३ में कोटा राज्य ने इस बात का प्रयत्न किया था कि जी०आई०पी० रेलवे की लाइन गुना से बाराँ तक आजावे। बाराँ कोटा राज्य के अन्न के व्यापार का केन्द्र है। इसलिये वहाँ तक रेलवे लाइन के बन जाने से व्यापारिक उन्नति की बड़ी सम्भावना थी। गुना से बाराँ तक इस लाइन को

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९८८, पृष्ठ ९।

ग्वालियर और कोटा दोनों राज्यों में गुजरना था। अतः दोनों रियासतों ने परस्पर सहयोग करके अपने अपने राज्य में लाइन बनाने का काम स्वीकार किया। तब भारत सरकार ने सम्वत् १९५३ (२२ जनवरी १८९५) में गुना से कोटा तक रेलवे लाइन बनाने की स्वीकृति दे दी। आरम्भ में यह तजवीज थी कि यह लाइन फतहगढ़ (ग्वालियर) और नाहरगढ़ होती हुई पारवती नदी के दायें किनारे किनारे आकर हींकड़ के पास उस नदी को पार करे। परन्तु जब रेलवे के चीफ एञ्जिनियर ने मार्ग का निरीक्षण किया तो वह इस नतीजे पर पहुँचा कि यह लाइन छबड़ा (टोंक) होती हुई कवाई के निकट अँडेरी नदी को पार करके कोटा राज्य में प्रवेश करे और फिर अटरू होती हुई बाराँ पहुँचे। इस तजवीज के अनुसार टोंक राज्य के सहयोग की आवश्यकता पड़ी। टोंक-भी इसमें सम्मिलित होगया और अपने हिस्से का खर्च देना उसने स्वीकार कर लिया। गुना से बाराँ तक इस लाइन की लम्बाई ७६ मील है, जिसमें २२ मील ग्वालियर राज्य में, २२ मोल टोंक राज्य में और ३२ मील कोटा राज्य में है। लाइन के निर्माण के लिये ७९ हजार रुपया प्रति मील का अनुमान किया गया था। इस हिसाब से कोटा राज्य ने ३२ मील का खर्च दिया[1]।

सम्वत १९५६ में यह लाइन बाराँ तक और १९६३ में कोटा तक खुल गई। सम्वत १९६५ में नागदा मथुरा लाइन भी तैयार

---

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत १९५३, पृष्ठ ७–८।

ii उपरोक्त, सम्वत १९५६, पृष्ठ ७।

होगई और कोटा नगर दोनों लाइनों का जंकशन बन गया[1]।

इन दोनों लाइनों के खुलने से मि० मार्टिनडेल की भविष्य वाणी सर्वांश में तो सत्य सिद्ध नहीं हुई परन्तु फिर व्यापार की उन्नति में, नवीन विचारों के प्रचार में, सांस्कृतिक सम्पर्क में और शिक्षा की उन्नति में इनसे बड़ा लाभ पहुँचा है।

गवर्नमेन्ट डाकविभाग से सन्धि—सम्वत १९५७ में पहिले राज और प्रजा की डाक का प्रबन्ध रियासत ही करती थी परन्तु कोटा राज्य से बाहर डाक भेजने के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। सरकारी डाक विशेष प्रबन्ध से आती जाती थी परन्तु जनता के लिये कोई सुविधा नहीं थी। महाराव उम्मेदसिंहजी के सुशासन से उन्नति भी इतनी अधिक हो चुकी थी कि डाक के सुव्यवस्थित प्रबन्ध की आवश्यकता दिन दिन बढ़ती जाती थी। इस समय भरतपुर और मारवाड़ राज्य तथा अन्य कई रियासतें गवर्नमेन्ट के डाकविभाग में सम्मिलित होचुकी थीं, अतः कोटा राज्य ने भी सम्वत् १९५७ में गवर्नमेन्ट के डाकविभाग के साथ उन्हीं शर्तों पर सम्मेलन करना स्वीकार कर लिया जो अन्य राज्यों के साथ की गई थीं[2]। सर्व प्रथम राजधानी में और बाराँ में डाकखाने स्थापित हुये परन्तु इनकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ती गई। सम्वत् १९६३ में इनकी संख्या ३३ होगई[3]। अब राज्य के प्रत्येक मुख्य कस्बे में डाकखाने स्थापित होचुके हैं।

---

(१) i फाइनेन्शियल रिपोर्ट सम्वत् १९६३ व १९७० (एकाउन्ट ऑफिस)

ii एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५९, पृष्ठ ५।

iii " " " १९६२, " १८।

iv " " " १९६३, " १७।

(२) " " " १९५७, " ३।

(३) " " " १९६३, " १३।

उपरोक्त सन्धि के बाद रियासत के डाकखाने बन्द कर दिये गये। गवर्नमेन्ट ने आरम्भ में ८,५००) रुपये के डाक टिकिट रियासत को देना स्वीकार किया। कुछ वर्ष बाद १०,०००) रुपये के डाक टिकिट प्रति वर्ष देने मन्जूर हुये। आज कल १५,०००) रुपये के टिकिट दिये जाते हैं।

तार—कौन्सिल ने सम्वत् १९४९ (२१ मई १८९२) में ब्रिटिश सरकार से खर्च वगैरह का मुआहदा करके देवली से कोटा तक तार की लाइन खोली थी[1]। उसके बाद यह झालरापाटन तक बढ़ाई गई। रेलवे लाइनों के खुल जाने पर और शहरों से भी सम्बन्ध होगया और कोटा नगर तार द्वारा भारतीय नगरों से ही नहीं किन्तु संसार के नगरों से जुड़ गया। तारघर और डाकखाने ने कोटा राज्य के पार्थक्य को हटा कर इसको विश्वसमाज के साथ सम्बन्धित कर दिया।

सहकारी सभायें—मिस्टर (अब सर मोन्टेग्यू) बटलर के बन्दोबस्त से छूट देने की नीति से और अन्य कई प्रकार की कानूनी सुविधाओं से कृषकों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। परन्तु अभी बहुत सुधार की आवश्यकता थी। सबसे बड़ी समस्या थी कृषकों का ऋण। महाजनों की सूदखोरी और हिसाबी झंझटों के कारण अधिकांश कृषक ऋण से दबे हुये थे। उनकी अज्ञानता और निर्धनता से अनुचित लाभ उठा कर महाजन लोग उन पर ऋण का भार और बढ़ाते जाते थे। उस समय अन्न बहुत मँहगा था और मिस्टर बटलर के बन्दोबस्त से भूमिकर बिल्कुल निश्चित होचुका था। अतः कृषकों की आमदनी तो कम नहीं थी परन्तु वे लोग महाजनों के भारी जाल में बुरी तरह

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोट सम्वत् १९५१, पृष्ठ २२–२३।

फँसे हुये थे। इसके अतिरिक्त शादी, मृत्यु और अन्य सामाजिक अवसरों पर अपनी हैसियत से अधिक खर्च कर देने के कारण कृषक लोग पनपने नहीं पाते थे। इस शोचनीय स्थिति का सुधार करने के लिये सम्वत् १९७२ में चौबे सर रघुनाथदास ने सहकारी सभायें स्थापित करने का विचार किया और इस विषय की तजवीज बनाने का काम बाबू घनश्यामदास के सुपुर्द किया। इनकी तजवीज मंजूर हुई और सम्वत् १९७२ में सहकारी सभाओं का कानून पास हुआ[1]। सहकारी सभाओं का उद्देश्य यह था कि कृषक लोग सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें, स्वावलम्बी बनें, महाजनों के ऋण से मुक्त हों, कम ब्याज पर उनको रुपया मिल सके और अपव्यय करने के रिवाज हटें। सम्वत् १९७३ में सहकारी सभायें स्थापित होने लगीं। हाकिम माल इनका रजिस्ट्रार नियत हुआ और बा० घनश्यामदास सहायक रजिस्ट्रार[2]। थोड़े ही अर्से में सहकारी सभायें बहुत लोकप्रिय होगईं। कृषक लोग महाजनों की क्रूरताओं से मुक्त होने के लिये दौड़ दौड़ कर इन सभाओं में सम्मिलित होने लगे। दो वर्ष के अन्दर कई निजामतों में सहकारी काम फैल गया। सम्वत् १९७६ में बाबू घनश्यामदास इस विभाग के रजिस्ट्रार नियत हुये और हाकिम माल की देख रेख नाममात्र की रह गई[3]। इस प्रकार कुछ वर्ष और सहकारी सभाओं की लोकप्रियता बढ़ती रही और कृषकों का ऋणभार हलका होता हुआ दृष्टि आने लगा। फिर दुर्भाग्यवश कृषि-जन्य पदार्थ सस्ते होने लगे और यहाँ तक सस्ते हुये कि पूर्वापेक्षा कृषकों की आय लगभग तृतीयांश रह

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९७२, पृष्ठ ९।
(२) उपरोक्त सम्वत् १९७३, पृष्ठ ३६।
(३) i ,, ,, १९७५, ,, १८–१९।
ii ,, ,, १९७६, ,, १५।

गई। इसका प्रभाव सबसे अधिक सहकारी विभाग पर पड़ा। भूमि-कर कृषक लोग येन केन प्रकारेण देते ही हैं परन्तु सहकारी विभाग का ऋण चुकाने का सामर्थ्य प्रतिदिन क्षीण होता जाता है अतः इस समय सहकारी विभाग की उपयोगिता पर लोगों को सन्देह होने लगा है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थिति स्थायी नहीं है।

सहकारी बैंक—कृषकों को साधारण ब्याज पर रुपया देने के लिये तथा लेनदेन के सुरक्षित साधन प्रस्तुत करने के लिये बाबू घनश्यामदास की प्रेरणा से सम्वत् १९८५ में सहकारी बैंक स्थापित हुआ जिसका संचालन राज्य के तत्त्वावधान में निर्वाचित संचालकों के द्वारा होता है और इसका प्रधान सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार है। अब बाराँ और रामगंज मण्डी में भी इस बैंक की शाखायें खुल गई हैं।

औद्योगिक उन्नति—कोटा राज्य कृषि प्रधान देश है। रेलगाड़ी के आने से पहिले, यहाँ की खपत के लिये शाहाबाद के इलाके से लोहा निकाला जाता था जिससे कृषि के औजार और बर्तन बनते थे। कपड़ा प्रायः यहीं तैयार होता था। बाराँ में पोमचे और चून्दड़ियाँ बहुत तैयार होती थीं और इनकी अच्छी तिजारत थी। कपड़े की छपाई का काम कई जगह होता था। माँग-रौल, कैथून, पलायथा आदि कई कस्बे खादी के केन्द्र थे। जलवाड़े में लकड़ी का काम बहुत बनता था। इटावे का दाँत का काम, इन्द्रगढ़ का मिट्टी और खराद का काम और कोटे की मलमल और चारखाने नामी थे। इलाके में कसूमा, आल और नील का रंग तैयार किया जाता था। कोटे में कागज बनता था। रेल के आने पर जब बाहर से मशीन की बनी हुई सस्ती और अच्छी चीजें आने

लगीं तो उनके मुकाबिले में स्थानीय चीजें नहीं ठहर सकीं और उद्योग धन्धे सब नष्ट होगये। ये लुप्त धन्धे तो पुनर्जागृत नहीं होसकते थे, परन्तु नवीन प्रकार के संगठित व्यवसाय जारी करने के लिये सम्वत् १९७२ में बाराँ कस्बे में एक काँच की फेक्टरी खोली गई जिसमें चूड़ियाँ, लालटेनों के गोले और लेम्प की चिमनियाँ आदि बनाई जाने लगीं। यह फेक्टरी कुछ ही साल चली और फिर बन्द होगई। अन्य प्रान्तों की उन्नत, सुसंगठित और परिपुष्ट फेक्टरियों के सामने नवजात फेक्टरी का टिकना आसान नहीं था, विशेषकर जब उसके प्रबन्धक, संचालक, विशेषज्ञ और कितने ही मजदूर तक बाहर से आये हुये थे और जिनका एकमात्र उद्देश्य था उच्चकर्मचारियों की अनभिज्ञता से अपना काम बनाना। रेलगाड़ी के आने से ही इस राज्य में रूई के पेंच (कोटन प्रेस), तेल की फेक्टरी, पत्थरों की कानें आदि व्यवसाय जारी हुये हैं। बाराँ और रामगंज मण्डी में इस समय रूई के पेंच जारी हैं और यह व्यवसाय स्थायी होगया है[1]। तेल की फेक्टरी रियासत की ओर से खोली गई थी[2], परन्तु इसमें असफलता हुई। अब इसको एक व्यापारी चला रहा है। बाराँ में दाल का कारखाना है। निजामत चेचट में नीले और पीले रंग के पत्थर की खान निकली है। यह पत्थर रेल द्वारा बम्बई तक पहुँचता है और इन खानों पर सैकड़ों मजदूर काम करते हैं। रियासत के खनिज पदार्थों का पता लगाने के लिये सम्वत् १९७० में एक विशेषज्ञ नियत किया गया था। जिसने पाँच वर्ष तक राज्य में दौरा करके और खनिज पदार्थों का वैज्ञानिक पृथक्करण करके अपनी रिपोर्ट पेश की थी। उसको

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६७, पृष्ठ १९।
ii उपरोक्त, सम्वत् १९६९, पृष्ठ २३।
(२) उपरोक्त, सम्वत् १९७६, पृष्ठ ६०।

कोई ऐसा पदार्थ नहीं मिला जिससे कोई उद्योग जारी किया जासके[1]।

सिक्का सुधार—कौन्सिल के समय में सलीमशाही और चान्दोरी रुपये की दुष्प्राप्ति के कारण कोटे की टकसाल बन्द करदी गई थी। कोटे का सिक्का अर्थात् हाली का रुपया सम्वत् १९५७ तक चलता रहा लेकिन इस सिक्के का मूल्य घटता ही गया। सम्वत् १९५६ में दुर्भिक्ष के बाद कलदार रुपये के साथ हाली के रुपये का बदला करने में व्यापारियों को असुविधा होने लगी और तिजारत को क्षति पहुँचती थी। सम्वत् १९५७ में भारत सरकार से बात चीत जारी की गई थी कि हाली का और मदनशाही रुपया सरकार लेले और उसके बदले में कलदार रुपया देदे। इस समय कोटा राज्य के हाड़ौती भाग में हाली का रुपया चलता था और झालावाड़ से वापिस आये हुये परगनों में मदनशाही। इससे भूमिकर वसूल करने में अनेक असुविधायें हुआ करती थीं। इस वर्ष के अन्त में यह बात तय पाई कि सौ कलदार के बदले में ११४ हाली का या ११८ मदनशाही रुपया दिया जावेगा। सम्वत् १९५८ में घोषणा की गई कि छः महीने के अन्दर जो लोग अपने रुपये रियासत के कोष में जमा कर देंगे, उनको बदले में कलदार रुपये हिसाब से देदिये जावेंगे[2]। इस घोषणा से छः महीने में हाली का और मदनशाही दोनों मिला

---

(१) i एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९७०, पृष्ठ २३।
ii ,, ,, ,, १९७२, ,, ६।
iii ,, ,, ,, १९७३, ,, ५४।
iv ,, ,, ,, १९७५, ,, ३६।
v ,, ,, ,, १९७१, ,, २९।
vi ,, ,, ,, १९७४, ,, ३२।

(२) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत् १९५७, पृष्ठ ३।

कर लगभग अड़तीस लाख रुपया राजकोष में जमा हुआ जिनको भारत सरकार की बम्बई की टकसाल में भेज दिया और वहाँ से निश्चित दर के अनुसार कलदार रुपये बन कर आगये। इसके पश्चात् सम्वत् १९६३ में रियासत के पैसे भी बन्द करके भारत सरकार के पैसे जारी कर दिये गये[1]।

इमारतें—महाराव उम्मेदसिंहजी के राज्याभिषेक से पहिले महलों के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय सरकारी इमारत नहीं थी। एजेन्टी बँगले पर भी फूस की छतें थीं। सरकारी दफ्तर कुछ गढ़ के अन्दर होते थे और कुछ बाहर कच्चे मकानों में। जब लड़के और लड़कियों के स्कूल राजधानी में जारी हुये तो इनके लिये किराये के मकान लिये गये थे। इस समय कोटा नगर के अन्दर और बाहर जो अनेक सुन्दर इमारतें खड़ी हुई हैं, ये सब वर्तमान शासनकाल में बनी हैं। अब तक स्टेट एञ्जिनियर तो कई हो चुके हैं परन्तु उल्लेखनीय इमारतें और पुल सब मिस्टर जॉर्ज केम्बेल डेविन के बनाई हुई हैं। स्वयम् महाराव उम्मेदसिंहजी को इमारतें बनवाने में बड़ी रुचि है। जितनी इमारतें बनी हैं, अधिकांश का निर्माण उन्होने रुचि के साथ देखा है और विशेषज्ञ की भाँति इन्होंने कई परिवर्तन कराये हैं। इस समय रियासत के सब कस्बे कच्ची या पक्की सड़कों से जुड़े हुये हैं। इन सब का निर्माण महाराव साहब की प्रेरणा से और रुचि से हुआ है। राजधानी की उल्लेखनीय इमारतें हरबर्ट कॉलेज, क्रॉस्थवेट इन्स्टीटचूट, कर्जन वायली मेमोरियल, महाराणी कन्या पाठशाला, उम्मेद भवन और महाराणी साहिबा के महल हैं। कॉलेज की स्थापना का जिक्र पहिले ही हो चुका

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६३, पृष्ठ १३।

है। क्रॉस्थवेट इन्स्टीटचूट सर रोबर्ट क्रोस्थवेट ए०जी०जी० का स्मारक है। इन दोनों इमारतों का निर्माण, आकार और नकशे आधुनिक कौशल के सुन्दर उदाहरण हैं। कर्जन वायली मेमोरियल भी बड़ी अच्छी इमारत है। सर कर्जन वायली कोटा राज्य के पोलिटिकल एजेण्ट और राजपूताना के ए०जी०जी० थे।

पुरानी इमारतें—सम्वत् १९६० में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कोटा राज्य का दौरा किया और यहाँ की पुरानी इमारतों को देखा। उसने अपनी रिपोर्ट में कई पुरानी इमारतों को जीर्णोद्धार करने की सिफारिश की। तब कन्सुवां के महादेव के मन्दिर का, रामगढ़ की किशनाई माताजी के मन्दिर का, और शाहाबाद की मस्जिद का कुछ जीर्णोद्धार करवाया गया[1]। इस समय कितनी ही प्राचीन भव्य इमारतें जीर्ण और शीर्ण अवस्था में पड़ी हुई हैं। इनमें से कई इमारतें प्राचीन और मध्य हिन्दूकाल की वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं और कोटा राज्य की गौरवपूर्ण सम्पत्ति हैं।

बिजली और पानी के नल—शिक्षा, इमारतें और सड़कों से कोटा नगर आज से बहुत अर्से पहिले आधुनिक नगर बन चुका था। इसकी सुन्दरता बढ़ाने के लिये रामपुरे का बाजार भी सम्वत् १९६२ के लगभग चौड़ा कर दिया गया था। पूर्णरूप से इस नगर को आधुनिक नगर बनाने में केवल बिजली की रौशनी और पानी के नलों की कमी थी। इसकी पूर्ति करने के लिये तत्कालीन चीफ एञ्जिनियर मि० डेविन से तजवीज पेश कराई गई। उनकी योग्यता और परिश्रम से ये दोनों काम बड़ी सुन्दरता के साथ सम्पादित हुये।

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत १९६२, पृष्ठ १९।

चम्बल नदी के सुन्दर तट पर बने हुये आकर्षक वॉटर वर्क्स मिस्टर डेविन की योग्यता के स्मारक हैं और महाराव उम्मेदसिंहजी की उदारता के अचूक परिचायक[1]।

उच्च राजकर्मचारियों को उपाधियाँ—महाराव उम्मेदसिंहजी के शासन से भारत सरकार निरन्तर सन्तुष्ट रही है। पोलिटिकल अफसर उनका सदैव सम्मान करते रहे हैं जिनमें कई इनके घनिष्ठ शुभचिन्तक हैं। इनकी उदार नीति और न्यायपरायणता के कारण राजमन्त्रियों को तथा उच्च राजकर्मचारियों को अपने कर्त्तव्य-पालन का बड़ा अच्छा अवसर मिला है। फलस्वरूप प्रायः सभी राजकर्मचारियों ने दरबार की छत्रछाया में ब्रिटिश सरकार से सम्मान प्राप्त किया है।

चौबे रघुनाथदास ने इस राज्य में साधारण पद पर राजसेवा आरम्भ की थी। अपने परिश्रम और योग्यता के कारण बढ़ते बढ़ते दीवान होगये। उनको क्रमशः 'रायबहादुर', 'दीवान बहादुर', 'सी. एस. आई.' और 'सर' की उपाधियाँ प्राप्त हुईं[2]। अन्तिम उपाधि अर्थात् नाइटहुड की प्राप्ति के अवसर पर तत्कालीन ए० जी० जी० मि० हौलेण्ड ने दरबार को लिखा था कि "मुझे इस बात पर प्रसन्नता है कि चौबे रघुनाथदास ने जो श्रीमान् की लम्बी और निष्ठापूर्ण सेवा की है, उसका बादशाह ने आदर किया है[3]"। आप ओंकारसिंह पलायथा को भी सन् १९४० में 'नाइट हुड' से अलंकृत किया गया।

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९७३, पृष्ठ ३१।

(२) i ,, ,, ,, १९६२, ,, ३।
ii ,, ,, ,, १९६८, ,, १४।
iii ,, ,, ,, १९६९, ,, ७।

(३) ,, ,, ,, १९८१, ,, ७।

इसी कारण मुंशी शिवप्रताप की राजसेवा से सन्तुष्ट होकर ब्रिटिश सरकार ने उनको 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की थी। उनको सनद प्रदान करते हुये कर्नल बेनरमेन ने मुं० शिवप्रताप से कहा था कि "आपने अपने महत्त्वपूर्ण विभाग का उच्च योग्यता और उत्साह के साथ संचालन किया है और कोटा राज्य में शिक्षा की उन्नति की है, उसके उपलक्ष में यह उपाधि दी गई है[1]"।

पं० विश्वम्भरनाथ एम० ए०, पं० श्रीराम भार्गव जज, राज विजयसिंहजी कुन्हाड़ी, आप गोविन्दसिंह कोयला, महाराजा माधोसिंह गैंता, बाबू दुर्गाप्रसाद भूतपूर्व हाकिम माल और डाक्टर विद्याशंकर को 'रायबहादुर' की उपाधियाँ मिलीं[2]।

बाबू किशनसहाय भूतपूर्व हाकिम माल, पं० बिशनलाल कोल भूतपूर्व जज, और पं० प्रेमनाथ टिक्कू भूतपूर्व आई० जी० पुलिस को 'रायसाहब' की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। इनके अतिरिक्त मि० डेविन ओ० बी० ई० बने और सेठ केशरीसिंह 'दीवान बहादुर'।

कोटा राज्य के गत ३२० वर्ष के इतिहास में महाराव उम्मेदसिंहजी द्वितीय परम सौभाग्यशाली नरेश हैं। ये सम्पदा और सन्तान से सम्पन्न हैं, देश और राज्य में इनका सम्मान है, और सम्राट् की कृपा और महाराजकुमार की शिक्षा इनके राज्य के उज्जवल भविष्य की प्रतिज्ञा है!

॥ इति ॥

---

(१) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् १९६३, पृष्ठ १७।
(२) i ,, ,, १९७४, ,, ६।
ii ,, ,, १९८६, ,, ४।

परिशिष्ट संख्या १२

जालिमसिंह के नाम रघुनाथराव पेशवा का पत्र

श्री

संवत १८३१ मार्गशीर्ष शुद्ध १२

सीधश्री सर्वउपमालायक श्रीराजराणे जालमसीघजी ज्योग्ये श्रीमुख्यें प्रधान रघुनाथ बाजीराव के आसीर्वाद बंचना. ईहाके समाचार भला छै. उठाका भला चाहीजेजी. आप्रंच सीरकार कारबारीने फतूर करो. उनी षातीर तुकुजी हुलकर वा माहादजी सीधीया उनोकु लेकर दक्षन गये. तीन उपरी सीधीया की अंत: करणमे संपूर्ण रुष उठा. की जाणी आपु [इ] काईक तुकोजीकी भी उठा. [उ] की [या] रुष देषी. ती उपरी म्हाने हीदोस्थानकुं कुच कीयो. अबी थाकी तरफ आवां छा. कोटा को आदीराजा छो. थाकी शूरता बड़ी लोकमे प्रसिद्द छे. सीरकारपर यो समया विपरीत [प]डयो छै. त्ता उपरी बड़ाई जाणी करोगे. दर कुच कोटाकु पुहुचत है. मीती आगहन शुदी १२ संवत १८३१. बिसेख क्या लिषिये.

सीधश्री सर्वउपमा लायक श्रीराजराणे जालमसींघजी जोग्य ।

श्रीमंत् रघु
नाथ राव

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६१	६	महारष्ट्र	महाराष्ट्र
३६६	३	अतः १७६६	अतः सम्वत् १७६६
३६८	४	महराणा	महाराणा
३७१	१४	विपिन्न	विपन्न
३७३	३	नाल कटोरा	ताल कटोरा
३७६	१६	आधीनता	अधीनता
३८५	१२	उसको	उनको
३८६	२	जाता	करता
३६६	३	१७६७	१७६८
४०१	१०	यह	ये
४१३	२२	कविराजा	ठाकुर
४१३	६	सम्वत् १७६६	सम्वत् १७६४
४२३	१३	माधोसिंह	माधोसिंहजी
४२४	२	विपिन्न	विपन्न
४३८	५	सिम्मलित	सम्मिलित
४३८	१८	वास्तिविक	वास्तविक
४३६	४	मुसलामनो	मुसलमानों
४४१	११	ठिकाने	मातहत
४६५	१४	धाभाई	भाई
४६८	५	माहराणी	महाराणी
४६७	२१	शास नसंचालन	शासन संचालन
५२६	१२	सम्वत् १८११	सम्वत् १७६७
५८२	१८	तीन	दो
६१३	२५	कल्यासिंहजी	कल्याणसिंहजी
६२३	८	दाहिनी	बायीं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३४	८	मौरियों	मोरियों
६५३	२	आठों	सातों
६५३	१६	सन् १८२३ (सम्वत् १८१०)	
६६०	७	परिचत	सम्वत् १८८० में परिचित
६६६	२०	पृथा	प्रथा
६७७	१५	साहयता	सहायता
६८६	२०	औंकारसिंहजी	ओंकारसिंहजी
६८६	६	लागान	लगान
६६३	२०	स्ट्रेसन	स्ट्रेटन
६६६	२	बनने	बनाने
७०३	११	२२ फरवरी	२१ फरवरी
७०५	२२	मानने	सुनने
७२५	१४	प्रात	प्राप्त
७२७	१	को	'को' न पढ़ा जावे
७३२	१५	निः शुक्ल	निः शुल्क
७३५	३	के	की
७६३	१०	सम्वत् १६६७	सम्वत् १६६६
७७४	१	हीरक	स्वर्ण
७७८	३	फिर	फिर भी
७८४	१५	डेवन के	डेवन की
७१६ से	७८७	चौबे रघुनाथदास	चौबे रघुनाथदासजी
		मु० शिवप्रताप	मु० शिवप्रतापजी
		आप ओंकारसिंह	आप ओंकारसिंहजी
		पं० विश्वम्भरनाथ	पं० विश्वम्भरनाथजी
		सरदार कान्हचन्द	सरदार कान्हचन्दजी

कोटा राज वंश

- राव माधोसिंहजी (१६८१–१७०५ वि०)
  - राव मुकुन्दसिंहजी (१७०६–१४ वि०)
    - राव जगतसिंहजी (१७१४–४० वि०)
  - मोहनसिंहजी
  - जुझारसिंहजी
  - कन्हीराम
  - राव किशोरसिंहजी (१७४१–५२ वि०)
    - बिशनसिंहजी
      - पृथ्वीसिंहजी
        - महाराव अजीतसिंहजी (१८१३–१५ वि०)
          - महाराव शत्रुशालजी प्रथम (१८१५–२१ वि०)
          - महाराव गुमानसिंहजी (१८२१–२७ वि०)
            - महाराव उम्मेदसिंहजी प्रथम (१८२७–७६ वि०)
              - महाराव किशोरसिंहजी (१८७६–८४ वि०)
              - विष्णुसिंहजी
              - पृथ्वीसिंहजी
                - महाराव रामसिंहजी (१८८४–१९२२ वि०)
                  - महाराव शत्रुशालजी द्वितीय (१९२२–४५ वि०)
        - भोपालसिंहजी
        - सूरजमलजी
        - बालसिंहजी
        - चैनसिंहजी
          - साहबसिंहजी
            - छगनसिंहजी
          - प्रतापसिंहजी
            - भगवतसिंहजी
              - धीरजसिंहजी
            - शिवनाथसिंहजी
              - छगनसिंहजी (दत्तक)
                - जयसिंहजी
                - महाराव श्री उम्मेदसिंहजी द्वितीय १९४५–
                  - श्री भीमसिंहजी
                    - श्री ब्रजराजसिंहजी
    - राव रामसिंहजी (१७५२–६४ वि०)
      - महाराव भीमसिंहजी (१७६४–७७ वि०)
        - महाराव अर्जुनसिंहजी (१७७७–८० वि०)
        - श्यामसिंहजी
        - महाराव दुर्जनशालजी (१७८०–१८१३ वि०)
        - किशनसिंहजी
    - अर्जुनसिंहजी
    - हरनाथसिंहजी